सचित्र

महाभारत

लेखक—

पं० सन्तराम

सचित्र महाभारत

लेखक

पं० सन्तराम जी मोगा निवासी ।

प्रकाशक

लाजपत राय एण्ड संज़,

बुकसेलरस् एण्ड पब्लिशरस्, लाहौर ।

सं० १९८१ वि०, सन् १९२५ ।

प्रथम संस्करण २०००] [मूल्य ३)

प्रकाशक—

लाजपत राय एण्ड संज़

बुकसेलरस् एण्ड पब्लिशरस्,

लाहौर।

मुद्रक—

शरत्चन्द्र लखनपाल मैनेजर

बाम्बे मैशीन प्रेस, मोहनलाल रोड,

लाहौर।

सचित्र महाभारत

पं० सन्तराम जी।

भूमिका ।

महाभारत एक बड़ा ही अद्भुत और विचित्र ग्रन्थ है इसमें जिन घटनाओं का वर्णन है वे भारत के सब प्रान्तों से सम्बन्ध रखती हैं और भारत की प्रसिद्ध कथाओं में से कोई ही ऐसी होगी जिसका बीज इस ग्रन्थ में न पाया जाता हो। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सम्बन्धी जितने उपदेश इस ग्रन्थ में विस्तृतरूप से लिपिबद्ध हैं वैसे संसार की किसी पुस्तक में भी दिखाई नहीं देते। समाज की रक्षा, स्थिति और उन्नति के जो उपाय वर्णन किये गये हैं अथवा जो उच्चादर्श व्यक्तियों और समष्टियों के सामने रखे गये हैं उन की तुलना कठिनता से ही किसी अन्य पुस्तक के अन्तर्गत होगी। जगत प्रसिद्ध भगवद्गीता जिसका अनुवाद भूमण्डल की सब प्रसिद्ध भाषाओं में हो चुका है और जिसके आदर्श रूप बल और तेजयुक्त, उच्चविचारों से भूषित उपदेशों के सामने बड़े २ विद्वान अपना सिर झुकाते हैं, इसी ग्रन्थ का एक छोटा सा अङ्ग है। लोकोक्ति है कि कोई भी विषय ऐसा नहीं कि जिसका वणन महाभारत में न मिलता हो।

महाभारत का प्रभाव भारतवर्ष पर महान है। अन्धकार के समय में जब विद्या का ह्रास इस देश में हो गया महाभारत लोगों की दृष्टि से ओझल नहीं हुआ। प्रत्येक माता, पिता अपने सन्तान के मनों को इसकी कथाओं से प्रसन्न करते हुये उनके आत्माओं को धर्म शौर्य, ज्ञान और उत्साह से रंजित करते थे। सहस्रों पण्डित नगरों और ग्रामों में घूमते हुये रात्रि के समय वृद्धों, युवकों, कुमार और कुमारियों के

हृदयों और मस्तिष्कों को अपनी कथाओं से आर्द्र और प्रकाशित करते थे। इस कथा की रीति से हिन्दू जनता के अन्दर एकता, समानता, जातित्व और सहानुभूति के भाव उत्पन्न होने से जाति बलवान बनाई जाती थी। महाभारत जैसा प्रभावशाली ग्रन्थ हमारे पूर्वजों के हाथ में एक तीक्ष्ण शस्त्र था। और उन्होंने अपने इस शस्त्र का प्रयोग उत्तम रीति से किया। हिन्दू जाति बड़ी ही पुरानी जाति है उसके जीवन में अनेक घटनाओं ने अपना मुंह दिखलाया है उन घटनाओं को सुलझाने और जाति और धर्म की रक्षा के लिये हमारी जाति के महापुरुषों को अनेक उपाय बर्तने पड़े। ऐसा प्रतीत होता है कि जाति की विशेष आपत्तियों को दूर करने के लिये देश की विद्वत सभाओं और राजमण्डलों ने समय की आवश्यकतानुसार महाभारत में परिवर्तन किया। दुर्घटनायें तभी दूर हो सकती हैं जब जाति के अन्दर उनका जीतने वाले विरोधीभाव उत्पन्न किये जावें। हमारे राजाओं, महाराजाओं और पण्डितों ने शुद्धभाव से इस महा पुस्तक में अधिक न्यून करके कथाओं द्वारा विशेष भावों का प्रचार और संचार हिन्दू जाति में किया। परन्तु जिन्होंने महाभारत में परिवर्तन किये उन सब के भाव शुद्ध नहीं थे। जब बहुत से मतमतान्तरों और सम्प्रदायों के फैलने से हिन्दूजाति के भिन्न २ विभागों में परस्पर कलह और द्वेष फैल गया तो सम्प्रदायी पण्डितों ने इस कथा पुस्तक को अपने विचारों का सहारा और प्रमाण बना कर इसमें बहुत कुछ हस्ताक्षेप किया। आजकल पुस्तकों में हस्ताक्षेप करना कठिन है क्योंकि मुद्रणयन्त्र मौजूद है जो पुस्तक एक बार छप जाती

है उसमें न्यूनाधिक होना असम्भव है। परन्तु जब हस्तलेख से ही पुस्तक प्रस्तुत किये जाते थे तो प्रत्येक लेखक के लिये सुगम था। कि वह अपनी ओर से कुछ श्लोक बना कर पुस्तक में लिख दें और आगे के लिये जो पुस्तकें लिखी जावें वे इन श्लोकों को मूल पुस्तक का भाग समझ कर मूल पुस्तक में सम्मिलित कर लेवे। ज्ञात होता है कि महाभारत में पूर्वोक्त दोनों कारणों से बहुत सा प्रक्षिप्त भाग मौजूद है।

इस प्रक्षिप्त भाग में इस प्रकार के विचार भी वर्तमान हैं जो श्रुति और बुद्धि के विरुद्ध हैं। ऐसे विचारों के प्रचार से हिन्दुजाति को हानि पहुंचती रही और अधिक हानि पहुंचने की सम्भावना है। पापी लोग अपने पतित आचरणों पर लज्जित होने के स्थान में महाभारत के पतित विचारों का आसरा लेकर अपनी लज्जा को छिपाने की चेष्टा करते हैं। इसी प्रकार के विचारों ने तत्त्वदर्शी, आत्मदर्शी, विद्यासम्पन्न, योगी, शूरवीर, दृढ़ संकल्प, महान आत्मा कृष्ण को भोग-विलास में रत कामातुर स्वरूप में हिन्दु जाति के सामने प्रकट किया है इसलिये परमावश्यक है कि महाभारत को उसके अपने असली स्वरूप में लोगों के सामने प्रकाशित किया जावे। महाभारत में स्वयं लिखा है कि व्यास जी ने २४००० श्लोक लिख कर इस ग्रन्थ को रचा परन्तु आजकल महाभारत में सवा लाख के लगभग श्लोक पाये जाते हैं। इस अवस्था में प्रक्षिप्त श्लोक को मूल श्लोकों से पृथक् करना बड़ा ही कठिन व्यवसाय है इस कार्य के लिये लाखों रुपये चाहिये जिन से बहुत से विद्वानों को योगक्षेम का प्रबन्ध कर उनको केवल इसी काम पर लगाया जाय। कुछ पण्डित

महाभारत की हस्तलिखित पुस्तकों को एकत्रित करने पर लग जावें, कुछ विद्वान इन हस्तलिखित पुस्तकों को देख भाल कर प्रक्षिप्त भाग को पृथक् करें और जो भाग शेष रह जावे उसको सम्पादित और प्रकाशित करें। अन्य विद्वान संस्कृत साहित्य में जहां २ महाभारत के प्रमाण मिलते हैं उनको एकत्रित करें, विशेष विद्वानों का यह काम भी हो कि वे श्लोकों की रचना के भेद को तीव्र दृष्टि से जांच पड़ताल करते हुये अपने विचारों को प्रकाशित करें। इन सब साधनों से उपार्जित ज्ञान को उपलब्ध करके विद्वत मण्डली महाभारत के मूल रूप को निश्चय करके भारतवर्ष का कल्याण करें। यह पवित्र कार्य साधारण कार्य नहीं है इसकी पूर्ति के लिये राजाओं, महाराजाओं, धनवान श्रीमानों को प्रयत्न करना पड़ेगा। योरुपियन विद्वान इस कार्य के लिये पर्याप्त नहीं। चूंकि वे हमारे सनातन धार्मिक विचारों और जातीय भावों से अनभिज्ञ हैं अथवा अपनी पैतृक विद्या सम्पत्ति का अत्यन्त सन्मान करते हुये हमारे पूर्वजों के विचारों को तुच्छ समझते हैं और अपनी झूठ को भी हमारे सत्य से ऊंचा मानते हैं, इसलिये वे महाभारत के संस्करण के असमर्थ हैं और जो संस्करण उनकी अधीनता वा अनुकरण में किया जावे वह भी माननीय नहीं। आर्य्य राजाओं और आर्य्य विद्वानों को ही संस्करण का कार्य अपने हाथ में लेना चाहिये।

बड़े आनन्द का विषय है कि श्रीमान् पं० सन्तराम जी ने महाभारत को आर्य्य भाषा में प्रकाशित करके हम सब को कृतार्थ किया है। मैं इस काम को पूर्व निर्दिष्ट महानकार्य का

आरम्भिका सूची ।

इति प्रस्तावना

प्रथम भाग ।

विषय — पृष्ठ

विषय — पृष्ठ

द्वितीय भाग ।

(वन खंड १)

तृतीय भाग ।

चतुर्थ भाग।

पञ्चम भाग।

अष्टमो भागः ।

भीष्म उपदेश ।

❀ समर्पण ❀

वेदश्रद्धालु—भारतभक्त—ब्राह्मणगुणगणागार।

पुण्यात्मा—स्वर्गीय श्रीमान् पण्डित गणपति

राम जी शर्मा उपाध्याय की पवित्र स्मृति में:—

पूज्य पिता जी !

"आत्मा वै जायते पुत्रः" मातृमान् पितृमान् आचार्य्यवान् पुरुषो वेद"इन ब्राह्मण वचनों के अनुसार मुझ में जो कुछ स्वल्प सा ज्ञान विज्ञान, कर्म काण्ड या धर्मभाव है वह केवल मात्र आपके उच्च विचारों का परिणाम, प्रयत्नों का साफल्य तथा आशीर्वादों का प्रसाद है। आपने अपने जीवन काल में अनेक प्रकार के कष्ट भी सहे, किन्तु मेरी मनोवृत्ति को सदा सद्-गुणोपार्जन के योग में ही महती सहायता दी, आपके सहज पितृस्नेह की स्मृति सदा बनी रहती है यद्यपि आपके उप-कारों से उऋण होने का क्षणिक संकल्प भी मेरे लिये असीम धृष्टता है फिर भी ब्राह्मणात्मा ज्ञानवृद्धि से ही अधिक सन्तुष्ट हो सकता है अथ च मैंने स्वराज्य मन्दिर वास (जेलयात्रा) "जो कि आपके शरीर की क्षीणता में प्रधान कारण हुआ था" का दुरुपयोग न करके विद्याविनोद में ही लगाया था, यह कार्य क्रम का चित्र दर्शाने के लिये सोत्कण्ठ हृदय से भारतीय द्वितीय बृहदितिहास महाभारत पर एक दिव्य स्वतन्त्र परिश्रम से संपादित पुस्तक आपकी पवित्र स्मृति में आपके स्वर्गारोहण के ठीक एक वर्ष पश्चात् समर्पण करता हूं।

आपका प्रियतम पुत्र—

सन्तराम शर्म्मा।

(सहाय और धन्यवाद)

मैंने इस पुस्तक के बनाने सजाने में नीचे लिखी पुस्तकों का पाठ किया है १ श्रीमद्भागवत २ महाभारत नीलकंठी टीका सहित ३ महाभारत प्रो० आर्यमुनि जी कृत ४ म० भा० प्रोफैसर राजाराम जी शास्त्री कृत ५ भारत मीमांसा श्री० चि० वि० वैद्य कृत ६ श्रीकृष्ण चरित्र महराठी वैद्य कृत ७ भारतीय युद्ध १ भाग दत्तात्रेय गोपाल लिमये कृत (महराठी) ८ हिन्दी सचित्र महाभारत ९ पांडव चरित्र गुजराती जैन पुस्तकालय ज़ीरा १० शिशुपाल वध, शाकुन्तल नाटक ११ उर्वशी नाटक १२ नैषध काव्य १३ मनुस्मृति १४ गीता रहस्य महराठी १५ ऋग्वेद मूल १६ मैसिज आफ दी वेदाज डा० गोकुलचन्द जी ऐम० ए० कृत १७ भारतवर्ष का सच्चा इतिहास स्वर्गवासी रघुबीर शरण दुबलिश मेरठ कृत १८ सत्यार्थ प्रकाश १९ स० जसवन्तसिंह टुहाना कृत हिन्दी महाभारत के ४ हिस्सा २० महाभारत गुजराती संपूर्ण २१ श्रीकृष्ण चरित्र ला० लाजपतराय जी २२ भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता हिन्दी स्व० रमेशचन्द्र दत्त सी० आई० ई० २३ टाडराज स्थान हिन्दी मिश्र बलदेव प्रसाद कृत २४ इनमें से नं० २, ३, ४, ५, ६, ७, १५, और १८ नम्बरी पुस्तकों से सब से अधिक सहाय लिया है इसलिये मैं इन ग्रन्थकारों तथा ग्रन्थ भेजकर सहाय देने वालों का कृतज्ञ हुं और धन्यवाद करता हुं विशेषकर अपने छोटे भाई पं० रामप्रताप जी शास्त्री का कृतज्ञ हुं जिन्होंने मेरी जेल यात्रा के पीछे सारे परिवार के भरण पोषण का बोझ उठाने के साथ २ मुझे हर प्रकार की उपयोगी सामग्री ठीक समय पर पहुंचाई ।

सन्तराम वेदरत्न—वैद्यभूषण ।

* ओ३म् *

प्रस्तावना ।

अग्निना अग्निः समिध्यते । ऋग्वेद १।१२।६

१

जीवन जीवन से ही बनता है ।

जिस तरह यह सारा संसार सूर्य चन्द्र आदि के होते हुये भी, अन्धकारमय होता, यदि सूर्य चन्द्र आदि को प्रकाश देने वाला, परम ज्योति रूप, परमात्मा इसे प्रकाशित न करता, इसी तरह यहां के सारे मनुष्य अन्धों की भान्ति इधर उधर ठुकराने वाले होते, यदि महात्मा लोग, अपने दिव्य तथा सफल जीवन से, मनुष्यों के पथ प्रदर्शक न हों तो ऐसे ही पुरुषों की बाबत, एक कवि ने सच कहा है कि महात्मा लोग धर्म यात्रियों के लिये रोशन मिसाल (दीपक) का काम देते हैं। और यही बात वेद के ऊपर लिखे मन्त्र में आता है कि अग्नि अग्नि से बढ़ता है या यूं कहो कि जीवन - जीवन से ही बनता है ।

२

आर्यावर्त का ऊंचा महल जिन चमकने वाले बहुमूल्य रत्नों से, सारे जगत् को किसी समय चकाचौंध कर रहा था उस भारतीय नर रत्नों की खान महाभारत ग्रन्थ है ।

यथा समुद्रो भगवान् तथा हि हिमवान् गिरिः ।

ख्याता वुभौ रत्ननिधि तथा भारत मुच्यते ॥

आदि पर्व ६२ । ४८ ।

जिस प्रकार समुद्र और हिमालय जड़ रत्नों की खान है, उसी प्रकार महाभारत धर्म की खान है । "लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक" भा० यु में लिखते हैं कि "कालिदास के समान कवियों ने अपनी अलौकिक कविता के लिये आधार भूत मानकर जो कथानक लिये हैं उनमें से कुछ कथानक इसी "रत्ननिधि" के हैं । और अर्वाचीन धर्मशास्त्र कारों तथा राजनीतिज्ञों ने धर्म, नीति और व्यवहार के लोकोपयोगी समर्थक प्रमाण, और वचन इसी सर्वोपजीवी आकर (खान) से निकाले हैं" । अत: आदि में हम भी इस प्रस्तावना में महाभारत सम्बन्धि कई एक विचार प्रगट करेंगे । महाभारत काल में आर्य राजे जगत् विजयी थे और प्रजा सुखी थी ।

ततः सागर कुक्षिस्थान् म्लेच्छान् परम दारुणान्
पल्हवान् बर्बरांश्चैव किरातान् यवनान् शकान् ॥
ततोरत्नान्युपादायवशे कृत्वा च पार्थिवान् ।
न्यवर्तत कुरुश्रेष्ठो नकुलश्चित्र मार्गवित् ॥

सभा पर्व अ० ३२ श्लो० १७

विचित्र मार्गों का जानने वाला नकुल समुद्र के मध्य रहने वाले परम दारुण म्लेच्छ, अर्थात् पल्हव (फारस) बर्बर किरात यूनान और शकदेशों को जीतकर और उनसे रत्न लेकर इन्द्रप्रस्थ को लौट आया ।

सर्वारम्भाः सुप्रवृत्ताः गोरक्षा कर्षणं बाणिक् ।
विशेषात्सर्व मेवैतत्संजज्ञे राजकर्मणः ॥
अवर्षं चातिवर्षं च व्याधिपावक मूर्छनम् ।
सर्व मेतत् तदानासीद्धर्म नित्ये युधिष्ठिरे ॥

सभापर्व

न बाल एव म्रियते तदा कश्चिज्जनाधिप ।
न च स्त्रियं प्रजानाति कश्चिद् प्राप्त यौवनः ॥

राज्य के उत्तम प्रबन्ध होने से पशुपालन, खेती बाड़ी, बणिज व्यापार, अच्छी तरह से होता था। धर्मात्मा युधिष्ठिर के राज्य में अवर्षा, अतिवर्षा, शारीरिक रोग अग्निभय आदि बिलकुल न था। तब न कोई बचपन में मरता न बिना पूरी जुवानी (२५ वर्ष) से पहिले स्त्री को जानता, अर्थात् विवाह न करता था।

म० भा० की सभ्यता।

बङ्गाल के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त भा० वर्ष की प्राचीन सभ्यता के प्रथम भाग में लिखते हैं–कि अब (महाभारतीय काल में) विद्या और कलाकौशल में बहुत कुछ उन्नति होगई थी, राजा लोग पंडितों को अपनी सभा में बुलाते थे, अपने नियमानुसार यज्ञ करते थे, रणक्षेत्र में माननीय और शिक्षित सेनाओं के नेता होते थे, सुयोग्य पुरुषों को कर उगाहने, और न्याय करने के लिये नियुक्त करते थे, और

सभ्य शासकों को जो २ कार्य करने चाहिये वे सब करते थे।

राजा के सम्बन्धी तथा मित्र लोग, और जाति के सब योधा लोग, बचपन ही से धनुष चलाना और युद्ध में रथ हांकना सीखते थे। तथा वेदों को और उस पवित्र विद्या को भी पढ़ते थे जो कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को जबानी सिखाई जाती थी। पुरोहित लोग धर्म सम्बन्धी क्रिया कर्मों के विधानों को बढाए जाते थे, देश के प्राचीन साहित्य को रक्षित रखते थे। और लोगों को उनके धार्मिक कर्मों में शिक्षा तथा सहायता देते थे। लोग नगरों और ग्रामों में रहते थे, अपने घर में पवित्र होमाग्नि स्थापित रखते थे, शान्ति के उपायों का अवलम्बन करते थे। अपने लड़कों को बचपन से वेदों की तथा धार्मिक और सामाजिक कार्यों की शिक्षा देते थे और धीरे २ उन सामाजिक रीतियों को पुष्ट करते थे. जो कि भारतवर्ष में कानून की तरह पर हैं। समाज में स्त्रियों का उचित प्रभाव था, और उनके लिये किसी प्रकार की, कैद अथवा रुकावट नहीं थी।

५

म० भा० चन्द्रवंशियों का इतिहास है।

जिस तरह रामायण सूर्यवंशी क्षत्रियों का वर्णन करता है और प्रसंग वश इतर वानर आदि जातियों का भी, इसी तरह महाभारत प्रधानता से नहुष ययाति,प्रतीप,शन्तनु,भीष्म पितामह, धृतराष्ट्र, पांडु आदि चन्द्रवंशीय क्षत्रियों का वर्णन करता है, प्रसंगानुसार नाग, दानव, असुर, राक्षस, दैत्य, गन्धर्व, देव, तथा भरद्वाज, व्यास, गौतम, आदि ऋषियों का

भी वर्णन करता है। स्मरण रहे ये सूर्य चन्द्र आकाश में प्रकाशित होने वाले ग्रह उपग्रह नहीं और नहीं दानव वंश के मुखिया हैं, किन्तु क्षत्रिय वंश के वंश प्रणेता हैं। देखो महा-भारत आदि पर्व अध्याय ६६ श्लोक २७

अन्यौतु खलु देवानां सूर्या चन्द्रमसौ स्मृतौ।
अन्यौ दानव मुख्यानां सूर्या चन्द्रमसौ तथा॥

५

महाभारत का मुख्य "सम्पादक" और "लेखक"।

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्यवेदं सनातनम्।
इति हासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवती सुतः॥

आदि १। ५४

अर्थ तप और ब्रह्मचर्य से वेदों का विस्तार करने के पीछे सत्यवती के पुत्र व्यासदेव ने इस पवित्र इतिहास को रचा। और लिखने के लिये उस समय के मुख्य लेखक 'गणेश" को बुलाकर कहा आप इस भारत ग्रन्थ के लिखारी बनें तब गणेश ने कहा—

श्रुत्वैतत्प्राह विघ्नेशो यदिमे लेखनी क्षणम्।
लिखतेनावतिष्ठेत तदास्यां लेखकोह्यहम्॥१।७८

यदि मेरी लेखनी लिखते २ रुक न जाय तब मैं लेखक

बन जाऊंगा। अन्त को इसी शर्त पर गणेश ने भारत को लिखा। विशेष देखो आदि पर्व अध्याय प्रथम ॥

६

महाभारत युद्ध का काल।

यस्मिन् कृष्णो दिवं यात स्तस्मिन्नेव तदाऽहनि। प्रतिपन्नं कलियुगम् ॥

(विष्णुपुराण अंश ४ अध्याय २४ श्लोक ४०)

भागवत स्कन्ध १२ अ० २ श्लो० २९ में भी श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण पर कलियुग प्रवेश माना है, जिसे आज ५०२४ वर्ष होते हैं। यही समय भारत युद्ध वा युधिष्ठिर राज्यशासन का है। म० भा० गदा पर्व में भी यही लिखा है।

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ। षड् द्विकपञ्च द्वियुतः शक कालस्तस्य राज्ञश्च ॥ बृहत्संहिता १३। ३।

जिस समय राजा युधिष्ठिर पृथिवी का शासन कर रहे थे, उस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्रों में थे, और उस राजा के २५२६ वर्ष थे जब शक काल आरम्भ हुआ। शक काल तात्पर्य यहां शाक्यमुनि गौतम बुद्ध से है, जिसका संवत् अब २४९८ है जिसमें २५२६ मिलाने से ५०२४ बनते हैं।

अकबर के समय में भी युधिष्ठिर का यही समय निश्चित हुआ था। जैसा कि आईने अकबरी पृ० २६१ (छापा

कलकत्ता सन् १८६७ ई०) में लिखा है "कलियुग के लगते ही पहला राजा युधिष्ठिर हुया था, विक्रम संवत् के आरम्भ तक युधिष्ठिर को हुये ३०४४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। सो इस में विक्रमी सं० १९८० जोडने से ५०२४ वर्ष हो बनते हैं।

महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार तथा समालोचक राय बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य ऐम० ए० के आधार से लोकमान्य तिलक गीता रहस्य हिन्दी के पृ० ५४८ में लिखते हैं "श्रीकृष्ण, यादव, पांडव, तथा भारतीय युद्ध का एक ही काल अर्थात् कलियुग का आरम्भ है, पुराण गणना के अनुसार उस काल से अब तक ५००० पांच हजार से भी अधिक वर्ष बीत चुके हैं।

स्वर्गवासी श्रीरमेशचन्द्र आदि विद्वान् युधिष्ठिर काल को मसीह से १४०० वर्ष पूर्व मानते हैं पर वह उपरोक्त पुष्ट प्रमाणों से निर्बल ठहरता है।

७

महाभारत की जगत् व्यापकता।

महाभारत का भाग (गीता) का इंगलैंड जर्मन अमेरिका आदि में प्रचार होता देख लोग हैरान होते हैं पर गीता रहस्य ५६० से मालूम होता है, कि जावा, बालीद्वीप आदि विदेशों में वि० सं० ४३५ के लगभग यही भारत लगभग इसी आकार में प्रचलित था, तथा वहां की 'कवि' नामक भाषा में अनुवाद भी हो चुका था। तिब्बत् की देशी भाषाओं में भी इसका अनुवाद देखा जाता है।

देखो संस्कृतविद्योपाख्यानपृ० १७१।

८

महाभारत का वर्तमान परिवार।

नीचे के चित्र से उन पुस्तकों का पता लगेगा जो म० भा० के आधार पर संस्कृत तथा आर्य भाषा में रचे गये हैं। एसे ही ग्रन्थ गुजराती महराठी बंगला आदि अन्य भारतीय भाषाओं में रचे गये होंगे।

महाभारत के आधार से संस्कृत में रचे ग्रन्थ।

१ शकुन्तला नाटक (कालिदास कृत)
२ प्रचंड पांडव (राजेश्वर)
३ बेणि संहार ना० (नारायण भट्ट)
४ सुभद्राहरण-नाटक
५ सावित्री चरित्र (शंकर लाल)
६ बालभारत नाटक
७ धनंजय विजय-काञ्चनाचार्य
८ सौगन्धिका हरण 'व्यायोग'
९ विक्रमेविशीय-(कालिदास)
१० ययाति चरित्र-रुद्रभट्ट
११ ययाति विजय—
१२ ययाति शर्मिष्ठा
१३ तपा संवरण (त्रावनकोर राजकृत)
१४ सुभद्रा विजय
१५ सुभद्रा धनंधय (गुरु राम कृत)
१६ हरिश्चन्द्र नाटक
१७ हरिश्चन्द्र यशश्चन्द्रिका
१८ राघव पांडवीय
१९ सभापर्व उद्धव कृत
२० भारत चम्पू
२१ शिशुपाल वध (माघकृत)
२२ किरातार्जुनीय
२३ नैषध काव्य
२४ नलोदय
२५ पांडव चरित
२६ युधिष्ठिर विजय

इत्यादि

महाभारत से प्राकृत (भाषा) में ग्रन्थ ।

१ शाकुन्तल नाटक
२ पांडव विजय
३ पांडव प्रताप
४ सुभद्रा हरण
५ लक्ष्मणा हरण
६ द्रौपदी वस्त्र हरण
७ द्रौपदी हरण
८ द्रौपदी स्वयंवर
९ यक्ष प्रश्नोत्तर
१० द्रौपदी का धावा
११ अष्टावक्र व्याख्यान
१२ बन्दी व्याख्यान
१३ नल आख्यान
१४ हरिश्चन्द्र आख्यान
१५ सावित्री आख्यान
१६ नल दमयन्ती
१७ हिडंबासुर आख्यान
१८ बक वध
१९ अर्जुन उर्वशी
२० विदुर नीति
२१ भीष्म स्तव राज
२२ गजेन्द्र मोक्ष
२३ अभिमन्यु आख्यान
२४ अभिमन्यु चक्र व्यूह
२५ जयद्रथ वध
२६ कर्ण चरित्र
२७ गदा युद्ध
२८ वन पर्व
२९ आदि पर्व
३० भगवद्गीता
३१ स्वर्गा रोहरण
३२ यादव स्थली
३३ चन्द्रहासका आख्यान
३४ सुधन्वा आख्यान
३५ मोरध्वज
३६ मान्धाता आख्यान
३७ अश्वमेध यज्ञ
३८ उत्तराभिमन्यु
३९ श्रीकृष्ण चरित्र
४० पांडव चरित्र-गु० इत्यादि

९

महाभारत पर संस्कृत टीका वा विवरण ।

म० भा० का अंग्रेजी टीका बा० प्रतापचन्द्र राय कृत,

महाराठी चिं० विं० वैद्य कृत गुजराती श्री० इच्छाराम सूरि-राम देसाई कृत उर्दू उफक कृत हिन्दी श्री० पं० आर्यमुनि जी तथा प्रो० राजाराम शास्त्री लाहौर कृत उत्तम हैं। संसार की प्रायः सभी प्रसिद्ध २ भाषाओं में इस ग्रन्थ रत्न के अनुवाद हैं।

महाभारत पर संस्कृत टीका वा विवरण।

१ भारत भावदीप नीलकंठ चतुर्धर कृत ये १६०० शाका में रची गयी सर्वोत्तम है
२ महाभारत तिलक
३ महाभारत निर्वाचन
४ गूढार्थ प्रकाशिका (नन्द-किशोर कृत)
५ भारतार्थ प्रकाश—नारायण सर्वज्ञ कृत
६ भारतार्थ दीपिका—अर्जुन मिश्र कृत
७ वाक्य रचनावलि—आनन्द पूर्णमुनि
८ ज्ञानदीपिका—देवबोध कृत
९ वाक्य दीपिका—चतुर्भुज मिश्र
१० दुर्बोधपद भंजनी—विमल बोध
११ भारत पद प्रकाश
१२ विषम श्लोक टीका—राम-किंकर—नाट्यालंकार
१३ वाक्य प्रदीप—रामानुजकृत
१४ महाभारत कूटोद्धार
१५ महाभारत तात्पर्य
१६ म० भा० तात्पर्य निर्णय—आनन्द तीर्थ कृत
१७ म० भा० तात्पर्य निर्णय—मधुमन्दिर कृत
१८ म० भा० तात्पर्य प्रकाश संकेत
१९ म० भा० तात्पर्य रक्षा
२० म० भा० तात्पर्य संग्रह
२१ म० भा० मञ्जरि—क्षेमेन्द्रकृत
२२ म० भा० मीमांसा
२३ म० भा० समुच्चय
२४ म० भा० सार
२५ म० भा० सार संग्रह-अ-

प्यय दीक्षित कृत	२७ म० भा० तात्पर्य प्रमाण
२६ म० भा० स्फुट श्लोकोद्धार	संग्रह-(बुलर साहिब कृत)

१० इत्यादि

महाभारत का वर्तमान आकार ।

विद्वानों का मत है कि "वर्तमान भारत के रचयिता १ व्यास २ वैशंपायन ३ सौति हैं इसके नाम भी क्रमशः तीन ही हैं १ जय २ भारत और ३ महाभारत ।

चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारत संहिताम् ।

आदि १ । १०२

इस प्रमाण से कहा जाता है कि व्यास जी ने पहले २४ हज़ार श्लोक संहिता रची, फिर उन्होंने अपने पुत्र शुक, तथा वैशम्पायन आदि शिष्यों को पढ़ाया । वैशंपायन ने राजा जनमेजय को, फिर लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा (सौति) ने शौनक आदि ऋषियों को नैमिषारण्य पर प्रश्नोत्तर रूप से सुनाया । यह बात मूल महाभारत में लिखी है । जिससे सिद्ध होता है कि हर एक श्रोता वक्ता के समय में कुछ न कुछ बढ़ता ही गया । जिसकी पुष्टि में नीचे के कुछ विद्वानों के मत और निश्चित चित्र साक्षी देंगे ।

१ पं० नीलकंठ जी चतुर्धर भारत के सर्व श्रेष्ठ टीका-कार जिन्हें पैदा हुये २५० वर्ष से अधिक हो चुका है वह हर पर्व की समाप्ति पर अनुक्रमणिका अध्याय (आदि पर्व अ० २) के अनुसार अध्याय संख्या मिलाते हुये लिखते हैं यहां अध्याय न्यूनाधिक हैं ।

२ लो० मा० पं० बाल गंगाधर तिलक गीता रहस्य हिन्दी पृ० ५२४ में श्री० वैद्य के सिद्धान्त को सयुक्तिक मानते हुये लिखते हैं "अतएव यहां पर इतना कह देना ही यथेष्ट होगा कि वर्तमान समय में जो महाभारत उपलब्ध है वह मूल में वैसा नहीं था, भारत या महाभारत के अनेक रूपान्तर हो गये हैं ॥

महाभारत मीमांसा चिं० वि० वैद्य कृत के पृ० ३ का चित्र।

११

(जिससे भिन्न २ भारतीय प्रतियों और अनुक्रमणिका के अध्यायों की तुलना होती है)

सं०	पर्व नाम	अक्रमणिकानुसार		गोपालनारायण प्रति अनुसार		गणपत कृष्ण प्रति अनुसार		कुम्भ कोनम् प्रति अनुसार	
		अ०	श्लो०	अ०	श्लो०	अ०	श्लो०	अ०	श्लो०
१	आदि पर्व	२२७	८८८४	२३४	८६१२	२३४	८४६६	२६०	१०६६८
२	सभा पर्व	७८	२५११	८१	२७१२	८१	२७०९	१०३	४३७७
३	बन पर्व	२६९	११६६४	३१५	१०४९७	३१५	११८५४	३१५	१४०८१
४	विराट् पर्व	६७	२०५०	७२	२२७२	७२	२३२७	७८	३५७५

५	उद्योग पर्व	१८६	६६६८	१६६	६५५८	१९६	६६१८	१६६	६७५२
६	भीष्म पर्व	११७	५८८४	१२२	५९६९	१२२	५८१७	१२२	५९८८
७	द्रोण पर्व	१७०	८९०९	२०२	८५७२	२०२	८५६३	२०३	१०१२७
८	कर्ण पर्व	६९	४६६४	८६	४६६४	८६	४९८७	१०१	४६८६
९	शल्य पर्व	५६	३२२०	६५	३६१८	६५	३६०८	६६	३५९४
१०	सौप्तिक पर्व	१८	८७०	१८	८०३	१८	८१०	१८	८१५
११	स्त्री पर्व	२७	७७५	२७	८२५	२७	८२६	२७	८०७
१२	शान्ति पर्व	३२९	१४७३२	३६५	१४९३८	३६६	१३७३२	३७५	१५२५३
१३	अनुशासन पर्व	१४६	८०००	१६८	७६३६	१६६	७८३९	२७४	१०९८३
१४	आश्वमेधिक पर्व	१०३	३३२०	९२	२७३६	९२	२८५२	११८	४५४३
१५	आश्रमवासी	३२	११११	३६	१०८८	३९	१०८५	४१	१०९८
१६	मौसल पर्व	८	३२०	८	२८७	८	२८७	६	३००
१७	महाप्रस्थान	३	१२३	३	११०	३	१०६	३	१११
१८	स्वर्गारोहण	५	२०९	६	३२०	६	३०७	६	३३७

इस चित्र से मालूम होता है कि कुम्भ कोणम् की प्रति में सबसे ज्यादा बढ़ती हुई है। कई स्थानों पर श्लोक संख्या डेढ २ श्लोक पर दी है यदि उसे ठीक कर दिया जाय तो

और भी बढ़ जाय। बनपर्व और द्रोणपर्व में तो बहुत ही बढ़ाया है। कहीं २ कम भी किये गये हैं।

अध्याय उप पर्व के घटाऊ बढाऊ का चित्र २

(जो गुजराती महाभारत की भूमिका से उद्धृत किया गया है)

सं०	अनुक्रम०	उप पर्व	वर्तमान उपपर्व	* बधाव घटाऊ	अनुक्रम० अध्याय	वर्तमान अध्याय	बधाव घटाऊ	अनुक्र० श्लोक	वर्तमान श्लोक
१	आदि	१८	१९	×१	२३५	२३४	×७	८८८४	८६२३
२	सभा	८	८	−१	७८	८१	×३	२५११	२७१२
३	वन	१६	२१	×५	२६९	३१५	×४६	११६६४	११८५९
४	विराट्	४	५	×१	६७	७२	×५	२०५०	२२७२
५	उद्योग	११	१०	−१	१८६	१९६	×१०	६६९८	६६१४
६	भीष्म	५	४	−१	११३	१२२	×५	५८८४	५८७९
७	द्रोण	८	८	०	१७०	२०२	×३२	८६०६	९६५३
८	कर्ण	१	१	०	६९	६६	×२७	४९६४	५०१४
९	शल्य	४	३	−१	५२	६५	×६	३२२०	३६३८

*इस चिन्ह से बढ़ता-इस से घटता समझ। श्लोकों को घटता बढ़ता स्वयं विचार लें अंक मिला

१०	सौप्तिक	३	२	−१	१८	१८	०	८७०	८०३
११	स्त्री	५	३	−२	२७	२७	०	७७५	८२५
१२	शान्ति	४	३	−१	३२९	३६६	× ३७	१४७३२	१३७७४
१३	अनुशासन	१	२	× १	१४६	१६९	× ३२	८०००	७७०१
१४	अश्वमेध	२	२	× १	१०३	९२	− ११	३३२०	२८४५
१५	आश्रमवासी	३	३	०	४२	३९	− ३	१५०६	१०८८
१६	मौसल	१	१	०	८	८	०	३५०	२८७
१७	महाप्रस्थान	१	१	०	३	३	०	३२०	११[illegible]
१८	स्वर्गारोहण	१	१	०	५	६	×१	२०९	३२०

यह चित्र गणपत कृष्णा की प्रति से मिलाया मालूम देता है इस से प्रतीत होता है समय २ हाथ डालने वालों ने श्लोक, अध्याय उप पर्व डाले ही नहीं वरन इच्छानुसार निकाल भी डाले हैं। जिस से तत्कालीन इति वृत्त जानने में बहुत विघ्न पैदा हो रहा है।

हमारे विचार में तो न केवल उप पर्व ही बढ़ाये गये हैं, किन्तु बड़े २ पर्व मौसल महा प्रस्थान, स्वर्गारोहण भी बाल्मीकीय रामायण के उत्तर कांड की भान्ति पीछे से मिलाये गये हैं। चाहे इन्हें मिलाये सैंकड़ों वर्ष हो गये हों, कारण इन की अधिकांश रचना और घटना आर्ष इतिहास के अनुकूल नहीं। विशेष आगे लिखेंगे।

रा० ब० ला० भवानीदास बत्रा ऐम० ए० फैलो पंजाब यूनिवर्सिटी ।

अपने संस्कृत विद्योपाख्यान के पृ० १७१ पर लिखते हैं, कि यह ग्रंथ (महाभारत) पहले ८८०० श्लोक का था फिर आदि पर्व में लिखा है कि इस के २४००० श्लोक हुए, अब इस के एक लाख श्लोक हैं । फिर इसी पृष्ठ पर लिखते हैं "भारत मञ्जरी" नामक एक ग्रंथ कश्मीर देश के क्षेमेन्द्र नामी कवि ने लिखा है । इस में बनपर्व के २४२ से २६३ अध्याय तक नहीं आये जिस में संशय होता है कि यह २२ अध्याय उन के ग्रंथ में न थे । कई ग्रंथों में शल्य पर्व भिन्न है किसी में गदा पर्व में ही आ जाता है । इस से भी वधाऊ घटाऊ पाया जाता है ।

वेदोद्धारक महर्षि स्वामीदयानन्द सरस्वती की सम्माति ।

स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी ११ समुल्लास पृ० ३१५ पर लिखते हैं कि ' यह बात राजा भोज के बनाये 'संजीवनी' नामक इतिहास में लिखी है, जो कि ग्वालियर के राज्य 'भिंड' नामक नगर के तिवाडी ब्राह्मणों के घर में है । उस में स्पष्ट लिखा है कि व्यासजी ने चार सहस्र चार सौ, और उन के शिष्यों ने पांच सहस्र छः सौ श्लोक युक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था, वह विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिता जी के समय में पच्चीस, और अब मेरी आधी उमर में

तीस सहस्त्र, श्लोक युक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है, जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊँट का बोझा हो जायगा ॥ (यह सच ही निकला इस समय १२५०००हैं)

१२

महाभारत में विधर्मियों का हस्ताक्षेप ।

१–महाभारत से निकाले पुस्तक पांडव चरित्र गुजराती में लिखा है जैन आचार्य नेमिकुमार को कृष्ण की स्त्रियें विषय के लिये प्रेरा करती थीं, तथा स्तनों के स्पर्श से उस के शरीर को घिसा करती थीं।

२–नेमिकुमार श्रीकृष्ण से बहुत बलवान् थे।

३–प्रसिद्ध टाड साहब टाड के राजस्थान में लिखते हैं एक व्यास जी शान्तनु के पुत्र थे । अम्बिका अम्बालिका विचित्रवीर्य की पुत्री * (व्यास का भतीजा) थीं। व्यास ने भतीजियों को स्त्री बना धृतराष्ट्र व पांडु पैदा किये।

४–शकुन्तला भरत की † स्त्री थी।

५–शकुन्तला दुष्यन्त की ‡ पुत्री थी।

---

* स्त्री को पुत्री लिख, पुत्री से व्यभिचार करने वाला साबत करने की इच्छा है।

† माता को स्त्री लिख महा पाप किया है।

‡ यहां स्त्री को पुत्री और पुत्र को जामाता लिख आर्य सभ्यता को दूषित किया है।

१३

सुधार की आवश्यकता।

इन अन्तरीय और बाह्य विकारों को देख कहना पड़ता है कि आवश्यकता है कि भारतवर्ष की एक पंडित सभा इस का सुधार करे, ताकि भारत अपने वास्तविक रूप में सभ्यता दिखा कर लोगों का पथ प्रदर्शक बन सके।

१४

महाभारत के चित्र और वर्तमान चित्रकार।

महाभारत के पढ़ने से प्रतीत होता है तब के नर नारी बड़े आकार और बड़ी आयु के थे पर अब जो चित्र दिखाए जाते हैं वे छोटे आकार के तथा विपरीत आयु के हैं। इसलिए इनका जहां प्रभाव कम पड़ता है वहां वे चित्र इतिहास विरुद्ध भी हैं। हम भारत के चित्रकारों से सविनय प्रार्थना करते हैं कि वे इतिहास के चित्रों को तत्कलीन पुराने ग्रंथों के आशय पर चित्रित किया करें।

१४

चित्र प्रमाण अनुसार बनाने चाहिये।

इस समय न केवल भारत कालीन शस्त्र अस्त्रों के चित्र प्रमाणानुकूल नहीं किन्तु प्रसिद्ध २ व्यक्तियों के चित्र भी प्रमाण विरुद्ध हैं। जैसे श्री कृष्ण उस समय के महा योधा व नीतिज्ञों में एक थे, और युद्ध समय उन की उमर १ सौ वर्ष के लगभग थी, सुभद्रा विवाह में भी उन की उमर ६५ वर्ष से

ज्यादा थी राजसूय यज्ञ में ७० वर्ष के ऊपर थी पर चित्र उन के प्रत्येक दशा में (यहां तक कि देह त्याग काल में भी जब कि वह १२५ वर्ष के थे) बाल अवस्था के ही दिखाए जाते हैं यह ठीक नहीं ।

महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी स्वयंबर में ४५ वर्ष के लगभग थे चित्र उन का—

योऽसौ पुरस्तात्कमलायताक्षस्तनुर्महासिंहगति र्विनीतः । गौरः प्रलंबोज्ज्वल चारुघोणो विनिसृतः सोऽच्युत धर्मपुत्रः ॥

१ । १८९ । २२

लम्बा, कमलनेत्र, महासिंह सम विक्रान्तगति, विनय युक्त, उज्वल नास का लिखी है, पर बनाने वाले कुछ का कुछ बना देते हैं, इस में भी जरूर सुधार चाहिये ।

१५

महाभारत के शस्त्र अस्त्र विलक्षण थे ।

महाभारत में ऐसे धनुषों का वर्णन है जिस में न केवल एक किन्तु ११ वा ५६ तक बाण एक बार ही चलते थे, ऐसे बाणों का वर्णन है, जो बन्दूक की गोली की भान्ति नालीदार धनुषों से चलते थे, फूल समान कोमल मुख के, सर्प समान दंश लगाने वाले भी थे । ऐसे संजोयों (कवचों) का वर्णन है जो कांटों वाले और अभेद्य थे, प्रस्वापन मोहन आदि अस्त्र भी थे, तलवारें विलक्षण थीं, क्या ही अच्छा हो यदि धनुर्वेद

और वर्तमान शस्त्र अस्त्रों के ज्ञाता इन पर विस्तार सहित सचित्र वर्णन करें। महाभारत में तोप, बन्दूक, पिस्तौल आदि सब कुछ विद्यमान हैं।

१६

राष्ट्र की सुखद अवस्था।

महाभारत के भिन्न २ स्थानों के देखने से प्रतीत होता है कि उस समय देश को खान पान की वस्तुओं, पठन पाठन सामग्री, तथा धार्मिक, सामाजिक आचार विचारों की, स्वतंत्रता के कारण सब प्रकार का सुख प्राप्त था लोग बलवान् देह, निरोग शरीर के कारण दीर्घ जीवन लाभ करते थे। भारत के युद्ध में सौ २ डेढ़ २ सौ दो २ सौ तथा चार ४०० सौ की आयु के बृद्ध भी लड़ने और वीरों से लड़ने की शक्ति रखते थे। जीवन वर्तमान काल के लोगों की भान्ति किसी को असह्य न था, यज्ञ याग के प्रताप से कोई आधिव्याधि किसी को न सताती थी।

१७

शान्तमय असहयोग।

पांडवों ने अपने अधिकारों से वञ्चित किये जाने पर सत्याग्रहियों की भान्ति दुर्योधन आदि से (शक्ति रखने पर भी) शान्तमय असहयोग किया, और लम्बे काल तक अपना बल बढ़ाते रहे तथा धर्म प्रचार द्वारा अपना विस्तृत प्रभाव करते रहे।

१८

राष्ट्रबल की सहानुभूति।

पांडवों की सत्याग्रही जीवनियों की सारे देश में चर्चा

फैल गयी, और अधिकार दबाने वाले बलाध्यक्षों के विरुद्ध सब के हृदय में भाव बढ़ गये, यहां तक कि लोग किसी अवसर की ढूंढ करने लगे, क्योंकि वे सत्याग्रहियों के साथ हो सत्य का पूजन कर पुण्य भागी बनना चाहते थे।

१९

अहिंसात्मक असहयोगियों का विजय।

अन्त को जब सत्याग्रहियों का तप बढ़ गया, और राष्ट्र का सारा विचारशील बेलाग बल, इनके साथ हो गया, जिस के यन्त्र को चलाने के लिये श्री कृष्ण का विचार मन्त्र काम करता था, तब कुरुक्षेत्र की विशाल और समतल भूमि में युद्ध छिड़ गया दूसरी ओर ग्यारहः अक्षौहणी इधर ७ अक्षौहणी सेना एकत्र हो घोर युद्ध करने में प्रवृत्त हो गई और विजय दिखाई देने लगा।

२०

यतोधर्मः ततो जय।

अठारह दिन के घोर संग्राम के पीछे जब अल्प दल बहुत समूह को अपनी थोड़ी सामग्री से ही पराजित करता दिखाई पड़ा और बिना किसी शास्त्रीय नियम तोड़ने तथा अकथनीय क्रूरता किये परम विजय को प्राप्त हो गया तब सारे देश में अपने पराये के मुख से यही शब्द सुनाई देते थे—'जहां धर्म वहां जय' होती है।

२१

महाभारत और वेद ।

इदं हि वेद समितं पवित्रमपिचोत्तमम् ॥

आदि० ६२ । १६ । स्वर्गा० ५ । ६७

महाभारत के तत्व को समझने के लिये यह जान लेना भी जरूरी है कि ऊपर लिखे प्रमाणों के आधार पर यह वेद समित कहा गया है, वेद विरुद्ध बात वेद वक्ता वेदान्त रचयिता श्री व्यासजी को इस में अभिप्रेत नहीं ।

२२

वेद और राज्यव्यवस्था ।

महाभारत में जैसे अन्य विषय वेदसमित लिखे हैं वैसे ही राजा के विषय में भी है ।

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ।

ऋ० १० । १७३ । १

सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशोह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह । अथर्व ३ । ४ । १

त्वां विशो वृणतां राज्याय । अथर्व ३।४।२

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः ।

इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय ॥

ऋ० १० । १७३ । २

ध्रुवंत इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥

१० । १७३ । ५

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत। अथर्व १५।९

प्रजापते प्रजा अभूम ॥ यजु० ९ । २१

विशां राजानमद्भुत मध्यक्षं धर्मणामिमम् ॥

ऋ० ८ । ४३ । २४

त्वं राजेव सुव्रता गिरः सोमा विवेशिथ ॥

ऋ० ९ । २० । ५

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिता विव ॥

ऋ० १० । ९७ । ६

ऊपर के मन्त्रों में बतलाया है सब प्रजा अपनी इच्छा से राजा को देश रक्षा के लिये चुने । राजा सब के आदर योग्य है । राजा अपने व्रत में पर्वत के समान अचल हो । इन्द्र (सूर्य) सम चलने वाला राजा राष्ट्र को धारण करता है। जो प्रजा का पालन द्वारा रंजन करता है वही राजा है । देशवासी प्रजा पालक राजा की ही, प्रजा बनना चाहते हैं । राजा जन्म से नहीं किन्तु प्रकृति रंजन से होता है, राजा धर्म नियमों की रक्षार्थ अध्यक्ष है । राजा व्रत बनाने में नहीं किन्तु व्रत पालने में एक आदर्श हो अर्थात् राजा कभी कोई नियम भंग न करे । राजा राजसभा के सभासदों से मिल कर प्रभाव पैदा करे जैसे औषधें अनेक मिल कर रोग वारक शक्ति पैदा करती हैं ।

असुराणां हन्ताजनि ब्रह्मणो गोप्ताजनि धर्मस्यगोप्ताजनि ॥ ऐतरेय ८ । १२

राष्ट्री विशं घातुकः । राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुमन्यते ॥ शतपथ० कां० १३ अ० २ ब्रा० ३

ब्रह्मचर्येण तपसा राजाराष्ट्रं विरक्षति ।

अथर्व० कां० ११ । ३ । १७

राजा असुरों (दुष्टों) को दमन करने हारा वेद और धर्म का रक्षक हो । एक पुरुष कभी देश का मालक न हो । क्योंकि एकला स्वार्थवश प्रजा को खा जाता है, प्रजा की पुष्टि नहीं चाहता । ब्रह्मचर्य और इन्द्रियसंयम आदि तप से प्रजा का चुना हुआ राजा ही देश की रक्षा कर सकता है ।

२३

महाभारत और राज्यव्यवस्था ।

राजा—को आर्य लोग संसार के कल्याण के लिये धर्म, प्रकाश के लिये सूर्य, जीवन धारण के लिये जैसे मत्स्यों के जल हैं, वैसा मानते थे । शान्ति प० अ० ६८

और आदिपर्व १६० । १२ में लिखा है 'राजानं प्रथमं विन्देत्' । अर्थात् पुरुष सुख के लिये राजा को पहले प्राप्त करे ।

स्मरण रहे राजा का काम प्रजा को पालना, रक्षा करना और उन्हें प्रसन्न रखना होता था, भोग भोगना नहीं जैसा कि लिखा है ।

पुत्रमिव पालयन् प्रजाः ।

राजा वै प्रकृति रञ्जनात् ॥ शान्ति० ५९।१२५

राष्ट्रं च रञ्जयामास । १ । १०० । ४४

और नीचे लिखे नामों से प्रतीत होता है राजा का धर्म (कर्तव्य) प्रजा पालन ही है। जैसा कि राजा के पर्याय नीचे के नामों से जाना जाता है १ भूपति, २ भूपाल ३ भूप ४ पृथ्वीपति, ५ पृथ्वीपाल, ६ क्ष्मानाथ, ७ प्रजापति, प्रजेश्वर, ९ नरनाथ, १० नरेन्द्र, ११ प्राणनाथ, १२ देवेन्द्र, १३ देव, १४ राष्ट्र वर्धन, १५ शासक, १६ विशांपति, १७ महीपाल, १८ लोकनाथ, १९ अन्नदाता, २० भयत्राता, २१ सर्व पिता आदि। राजा लोग प्रजा के साम्हने इस व्रत की प्रतिज्ञा भी किया करते थे। महाभारत में यहां तक लिखा है कि 'जैसे गर्भवती स्त्री अपने सुख की कल्पना को छोड़ अपने पेट के बच्चे के कल्याण की सदा चिन्ता करती है, वैसे ही राजा अपनी प्रजा के सुख की चिन्ता करे। शान्तिपर्व अ० ५६ श्लो० ४५।

कुराजा—जो राजा धर्मानुसार प्रजा की पालना नहीं करता उसे कुराजा कह कर प्रजा निन्दा किया करती थी।

वरं अराज्यं न कुराज्य राज्यम् ।

राज्य नियम—प्रजा को राज्याज्ञा मानने के लिये जैसे नियम होते थे वैसे ही राजा को पालने के लिये नियम होते थे। राजा मंत्रियों तथा राजसभासदों की आज्ञा विरुद्ध कोई स्वेच्छाचारता का काम नहीं करता था। इसकी साक्षी प्रायः

सारे महाभारत से मिलती है। रामायण के समय में भी ऐसी ही रीति थी।

अराजकेषु राष्ट्रेषु प्रजाऽनाथा विनश्यति।

आ० १०५। ४४

हतंराष्ट्रमराजकम् ॥

न हि पापात्परत मस्ति किंचिद राजकात् ॥

शान्ति० अ० ६७

नाराजकेषु राष्ट्रेषु वस्तव्य मितिरोचये ॥

शान्ति० अ० ६७

अराजकता—को भारत में भारी पाप, राष्ट्र को नाश करने वाला कह कर बतलाया है राजा हीन देश में वसना नहीं चाहिये।

स्वराज्य—कुराज्य से यद्यपि सुराज्य (उत्तम राजा) की स्तुति की है, पर सब से उत्तम दशा स्वराज्य की कही है, जिस में सब देशवासी अपना हित कर सकें, किसी पर दूसरे का अन्याय मूलक अनुचित अधिकार न हो। जैसा कि—

गृहे गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियंकराः।

सभा० अ० ११

स्त्री राज्य—योग्य पुरुष न रहने पर महाभारत में स्त्री को राजा बनानने की भी प्रथा थी, ऐसे राज्यों को स्त्री राज्य कहा जाता है, विदुला अपने राज्य की सम्राज्ञी थी।

कुमारो नास्ति येषां च कन्यास्तत्राभिषेचय ॥

शान्ति० ३३ । ४६

जिन के कुमार न हो उन्हें कन्या को राज्यपद पर अभिषिक करना चाहिये।

मालाबार में अब भी स्त्रियें पैतृक सम्पत्ति की स्वामिनी होती हैं। इस पर श्री रमेशचन्द्रदत्तजी अपने सभ्यता के इतिहास में लिखते हैं भा० १ पृ० १६४ पुत्रियें पिता की 'सम्पत्ति की मालिक होती थीं । शास्त्र और विद्या में विशेष योग्यता पाती थीं । राजनीति और शासन में उन का उचित अधिकार था ।

परंपरागत राजा—ये सब कुछ होने पर भी राजा प्रायः उसी कुल में से होता था जिस का राज्य चिर से प्रचलित था, इस का कारण यह न था कि वे राजा देश को दबाये रखते थे, किन्तु मुख्य कारण यह था कि अपने पिता पितामह से उन प्राप्त किये शासक संस्कारों से इतना अधिक संस्कृत होता था कि प्रजा उसे ही राजा चुनने में राष्ट्र का हित समझती थी। अयोग्य होने पर न भी होता था जैसा कि कंस, जरासंध, पुरू के बड़े भाई तथा देवापि आदि २। इस पद्धति से जहां उस समय में लाभ रहे होंगे वही आगे चल कर अब तक परंपरागत राज्यसत्ता के अति बलवती हो जाने से मन मानी करजानी" की प्रथा चल ठीक २ न्याय नष्ट होगये 'राजा करे सो न्याय ' का दुष्ट सूत्र देश में फैल गया, जिस से बंधा भारत अब परतंत्रता के दुःख भोग रहा है । विचारकों को चाहिये शास्त्राधार से इस प्रथा को सुधार डालें।

२४

इस प्रस्तावना के अन्त में और पुस्तक के आदि में एक बात हम लिख देना आवश्यक समझते हैं जिस से कि हम दोषभागी न हो सकेंगे और वह यह कि "ना मूलं लिख्यते किंचित्" इस में जो कुछ लिखा है कल्पना से नहीं किन्तु शास्त्रों में उस का मूल है। इस लिये सज्जनों से प्रार्थना है कि कहीं प्रमाद से त्रुटि हो तो क्षमा करें।

सा मा सत्योक्ति परिपातु विश्वतः ॥

ऋ० १० । ३६ । १४

॥ इतिशम् ॥

ओ३म्

प्रार्थना

ओ३म् । आब्रह्मन् ! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायता
माराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधीमहारथो
जायतां, दोग्ध्रीर्धेनुर्वोढाऽनड्वा नाशुः सप्तिः
पुरन्ध्रिर्योषा, जिष्णूरथेष्ठाःसभेयो युवास्य-यज-
मानस्य वीरो जायतां, निःकामे निःकामे न
पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यंतां
योगक्षेमो न कल्पताम् ॥ यजु० २२ । २२

हे परमेश्वर ! हमारे देश में ब्राह्मण ब्रह्मवर्चसी (द्रोण सम) हों । क्षत्रिय शूरवीर धनुर्धारी निरोग (श्रीकृष्णार्जुन तुल्य) हों । पुष्फल दूध देने वाली धेनु और बलवान् बैल हों और शीघ्रगति वाले घोड़े हों । पुर (राष्ट्र) को धारण करने वाली (द्रौपदी सम) स्त्रियें हों । वीर रथ स्थित जीतने वाले (अभिमन्यु से) नवयुवक हों । हे ब्रह्मन् ! इस यजमान के सभ्य युवक पैदा हों । समय २ पर इच्छानुकूल वर्षा वर्षे । औषधें फलवती, रसवती, वा प्रभाववती हों । हे सर्वेश्वर ! हमें उपयोगी धन सम्पत्ति प्राप्त हो और वह हमारे अधिकार से हमारे लिये सुरक्षित हो ।

ओ३म्

प्रथम भाग
पूर्वज खण्ड

चमकीले रत्नों की खान
(महाराज युधिष्ठिर के पूर्वज)

जिस ज्योतिःमय, सुखदायक, पुण्य जीवन का पाठ आज हम पाठकों को कराना चाहते हैं, वह न केवल चन्द्र वंश का ज्योतिःस्वरूप नक्षत्र है, किन्तु वह संसार में अपने शुद्ध शान्त गुणों से चमकने वाले नर रत्नों की खान का बहुमूल्य रत्न है। निःसन्देह यह बात सत्य है, कि जगत् में मान गुणों का है, वे गुण वंश से मिले हों वा संसर्ग से, पर तो भी रत्नों के मूल्य विचार में जो मूल्यखान के कारण बढ़ता है, वह केवल रूप से नहीं। वंश के कारण सचमुच पुरुष के गुणों में सुवर्ण में सुगन्धसा स्वरूप मिल जाता है, इस लिये हम आरम्भ में चन्द्रवंश के कई एक न अस्त होने वाले नक्षत्रों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं॥

१ सत्यवादी महाराजा ययाति ।

यह महाराज पुरूरवा का प्रपौत्र, राजशिरोमणि आयुः का पौत्र, प्रसिद्ध राजा नहुष का पुत्र था। ययाति ने धनुर्वेद के साथ २ ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों को पूर्ण रीति से सेवन कर, वेदांग सहित सम्पूर्ण वेद ज्ञान प्राप्त किया था। ब्रह्मचर्य समाप्त कर दैत्यराज वृषपर्वा की विदुषी कन्या शर्मिष्ठा* से

---

* वर्तमान महाभारत में ब्रह्मर्षि शुक्राचार्य की कन्या देवीयानी से भी इनका विवाह लिखा है, परंतु नीचे लिखे हेतु प्रमाणों से वह बात पीछे की मिलावट दिखाई देती है।

१—वेद और धर्मशास्त्र में क्षत्रिय पुरुष का ब्राह्मण कन्या से विवाह निषिद्ध है, और सवर्ण विवाह की प्रशंसा है। भिन्न वर्ण में विवाह लिखा है तो अनुलोम क्रम से प्रतिलोम से नहीं, इस क्रम में यह प्रतिलोम कहाता है।

२—ब्राह्मणी से क्षत्रिय की सन्तान वर्णसंकर है। (देखो मनु अ० ३। ४, १२, १३ तथा अ० १० श्लो० ११, १२)

३—जो पुस्तक महाभारत के आधार से बने हैं जैसे सावित्री सत्यवान्, सुभद्रा धनञ्जय, नल दमयन्ती, पुरुरवा उर्वशी, शकुन्तला दुष्यन्त इसी प्रकार ययाति शर्मिष्ठा भी पुस्तक है जो पति पत्नी संबन्ध सूचित करते हैं, कोई ग्रन्थ ययाति देवयानी, नहीं। वर्तमात कथा में यह भी घड़ा है कि देवयानी महाराणी और शर्मिष्ठा दासी थी, क्योंकि तब ब्राह्मणों का बल अधिक था। इसी प्रसंग में यह बात भी स्मरणीय है कि ययाति के पीछे राजा पुरु गद्दी पर बैठे थे, जो शर्मिष्ठा के पुत्र थे, यदि देवयानी पटरानी होती तो दासी पुत्र कभी राजा न

विवाह किया, और पहले आश्रम की भान्ति दूसरे आश्रम को यथाशास्त्र पालन किया । शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु, पुरु, तीन पुत्र हुये ॥

सत्यप्रेम-महाराज ययाति विद्वान्, बलवान्, समर्थवान्, होने पर भी प्रजा मत के अनुसार देश का शासन (रक्षण, पालन) करते तथा हर विषय में सत्य का आदर करते थे, आपका विश्वास था कि सत्य से सुख बढ़ता है, और सत्य की राजा को पालना करनी चाहिये, राजा सत्य के विरुद्ध यदि बोलता है तो नष्ट होजाता है, इस लिये संकट में पड़ कर भी राजा अपने कहे को झूठ करने की हिम्मत न करे ॥

बनता, देवयानी पुत्र ही बनता, विशेष कर तब जब कि ब्राह्मणों का अधिक बल था)

४--यदि देवयानी रानी होती तो कवि कालिदास अपने शकुन्तला नाटक के अंक ४ श्लो० ६ में यह न लिखते

" ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमताभव "

अर्थात् काश्यप ऋषि शकुन्तला को आशीर्वाद देते हुये कहते हैं--पुत्रि ! जिस प्रकार ययाति राजा को उनकी धर्म-पत्नी 'शर्मिष्ठा' है इसी प्रकार तू भर्ता को आदर योग्य हो । इस से यह भी सिद्ध होता है कि महाभारत में यह मिलावट कालिदास के पीछे मिली है ।

५--चन्द्रवंश के किसी अन्य राजा ने ऐसा शास्त्र विरुद्ध संबन्ध किया नहीं, किन्तु महाराज प्रतीप ने इसकी निन्दा की है, देखो महाभारत आदिपर्व अ० ९७ श्लोक ६

राजा प्रमाणं भूतानां स नश्येद् मृषाऽवदन् ।
अर्थ कृच्छ्रमपि प्राप्य न मिथ्या कर्तुमुत्सहेत् ॥

आदि० ८२ । १८

महाराज ययाति नित्य सन्ध्या, अग्निहोत्र, अतिथि पूजन, आदिकर्म बड़ी 'सावधानी और कर्तव्य बुद्धि से किया करते और देश में इनका प्रचार भी करते थे ।

युवराज—गृहस्थाश्रम का काल पूरा होजाने पर, राजा ने देश का धर्मानुसार पालन करने का स्वभाव और सामर्थ्य अपने छोटे पुत्र पुरू में देख, उसे युवराज बनाने का निश्चय किया, तब कुछ लोगों ने यह कह कर कि "बड़े पुत्र के होते आप छोटे को कैसे युवराज बनायेंगे"? शंकाकी इस पर आपने कहा इस विषय में मुझ अकेले का कोई अधिकार नहीं किन्तु जिस देश का मैं राजा हूं उसकी प्रकृति (प्रजा–सब वर्ण) जिसे चाहेगी वही राजा होगा, इस निश्चय के पीछे देशवासियों को बुलाकर भरी सभा में कह दिया—

पुत्रोयस्त्वानु वर्तेत स राजा पृथिवीपतिः ।

आ० ८५ । २६

देशवासियो ! जो युवराज तुम्हारे अनुकूल वर्ते वही देश का राजा होगा । इस पर देश के प्रतिनिधियों ने एक मत से उत्तर में कहा—

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि सत्तमः ८५।३०

राजन् ! तथा राज सभासदो ! जो राजकुमार राजा के

योग्य गुणों से सम्पन्न, माता पिता की आज्ञानुसार सदा (प्रजा पालन द्वारा) हित करने वाला, सत् पुरुष है, वह सर्व श्रेष्ठ कल्याणपद (राजा) के योग्य है, चाहे वह आयु में, दूसरों से छोटा भी क्यों न हो ॥ इस व्यवस्था वा लोकमत के अनुसार राजकुमार पुरु को युवराज बनाया गया।

वानप्रस्थ आश्रम-में प्रवेश। पुर, नगर, ग्राम, के लोगों की मति अनुसार पुरुको राज्याभिषेक कर, प्रसन्न मन से महाराज तपस्वियों के रूप में वन में अपने शेष जीवन को तप में लगाने के लिये चले गये।

अग्नींश्च विधिवज्जुह्वन् वानप्रस्थ विधानतः।
अतिथीन्पूजयामास वन्येन हविषा विभुः॥
८६। १३-१४

वन में वानप्रस्थ विधि से वन के कन्द मूलों से देव-याग, अतिथि पूजन, करता हुआ राजा, अपना जीवन बिताता २ स्वर्गगति को प्राप्त होगया॥

कुलधर्म पालक।
२ महाराजा पुरु।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तयामामद्य मेधया अग्ने मेधाविनं कुरु॥ यजु० ३२।१४

येनास्य पितरोयाताः येन याताः पितामहाः!
तेनयायात् सतां मार्गं तेनगच्छन्न रिष्यते॥ मनु०

अर्थ—जिस मेधा की देव गण (विद्वान्) तथा पिता पितामह, उपासना करते रहे हैं, हे ईश्वर ! उस बुद्धि से मुझे बुद्धिमान् कीजिये । श्रुति

जिस वेदोक्त मार्ग से पितामह जी बन यात्रा करते रहे हों, बुद्धिमान् उसी सत्मार्ग से जीवन बितावे, क्योंकि सत्मार्ग पर चलता हुआ पुरुष कभी दुःखी नहीं होता । स्मृति वचनम् ॥

महाराजा पुरु—ऊपर कहे श्रुति स्मृति के विधान अनुसार सारा जीवन गुजारता रहा । इसने पहले ब्रह्मचर्य पालन कर, वेद वेदांग पढ़े, फिर ब्रह्मचर्य पूर्ण कर, 'पौष्टि' नाम की देवी से वेद मर्यादा से विवाह कर, योग्य, गुणी इन्द्र सम पराक्रमी, तीन पुत्र (प्रवीर आदि) उत्पन्न कर और अपने समय में देश की सब प्रकार से वृद्धि कर, समय पर पिता की भान्ति वानप्रस्थ आश्रम का नियम पालने के लिए चला गया । इन्हों ने अपने दिव्यगुणों से इतना यश पैदा किया कि इनके पीछे चन्द्रवंश इन के नाम से अर्थात् 'पुरुवंश' से प्रसिद्ध हो गया, और अब तक प्रसिद्ध है ।

३ वीर्यवान् महाराजा दुष्यन्त ।

पुरुवंश में महाबली, धनुर्धारी, वज्रसमान दृढदेहधारी, महाराजा दुष्यन्त हुया, यह जहां गदायुद्ध, धनुर्युद्ध, आदि युद्धों में प्रवीणथा वहां धर्म के तत्व समझने, धर्मानुष्ठान करने देश की अन्तर और बाहर की कमियों कोदूर करने और अपने को प्रजामत के अनुकूल रखने में भी बड़ा सावधान था ।

* देशदशा *

न वर्ण संकर करो न कृष्याकर कृज्जनः ।
न पापकृत्कश्चिदासीत् तस्मिन् राजानि शासति६
नासीच्चौरभयं तात न क्षुधा भय मण्वपि ।
नासीद्व्याधिभयं चापि तस्मिन् जनपदेश्वरे ॥८
तमाश्रित्य महीपाल मासंश्चैवाऽकुतोऽभयाः ॥९
संमतः समहीपालः प्रसन्न पुरराष्ट्रवान् ॥ १४
भूयोधर्मपरैर्भावैर्मुदितं जनमादिशत् ॥१५॥

आदि० अ० ६८

अर्थ—इस राजा के राज्य में कोई व्यभिचारी, पापी, आकृष्ट कर्मकारी न था। तब न चोरों का भय न थोड़ासा भी भूख का डर, न किसी प्रकार की व्याधि का भय था। इस राजा का आश्रय लेकर लोग चारों ओर से अभय होजाते थे, इसी लिये यह राजा सब प्रजा का सँमत,और प्रसन्न पुर,राष्ट्र वाला था। इस के धार्मिक जीवन को देख धर्म करने से सारा जनपद अपने धार्मिक भावों से आनन्दित रहता था॥

राजा की बन यात्रा

राजा दुष्यन्त एक दिन राज चिन्हों को त्याग, मन्त्री, पुरोहित और कुछ चुने हुए योधाओं को साथ लेकर बनयात्रा को निकला, चलते २ नाना पुष्प फलों से सुगन्धित, शोभा युक्त,नाना चित्र विचित्र रूपों तथा स्वरों वाले पक्षियों से निनादित, भिन्न २ वेदों की

शास्त्राओं के जानने हारे, यज्ञ कर्म में कुशल, तपोनिष्ठ ऋषियों से, पवित्र कण्वऋषि के आश्रम में गया। साथियों को आश्रम के बाहर छोड़ मंत्री के साथ आगे बढ़ा, तो ऋषि कन्यायें पुष्पवाटिका में सुगन्धित पुष्प चुन रहीं थी, इतने में एक अति मनोहर, सुन्दर वर्ण, खिले हुए फूल पर जिस पर कुछ मत्त भ्रमर लपक रहे थे, एक कन्या की दृष्टि पड़ी ज्यों ही उस ने उसको तोड़ने के लिए सुकोमल हाथ बढ़ाया, त्यों ही वे भ्रमर पुष्प रस के सुवासित उस ब्रह्मचारिणी के मुखकमल पर दौड़े, तब वह सुकुमारी झट पट कुछ पीछे हटी, और भय त्रस्त वाणी से सखियों को सहायार्थ याचना की भान्ति पुकारने लगी। इस अवस्था को परपुरुष के आक्रमण से पैदा हुई समझ राजा झट बोला—

कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्। अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्वि कन्यासु ॥ शकुन्तला ना० १।२१

कौन है रे! दुर्विनीतों को शासन करने वाले, पुरुवंशियों के शासन काल में, मुग्ध स्वभाव तपस्वि कन्यायों में, अविनय पूर्वक विचर रहा? (इससे उस समय के राजाओं के शासन अभिमान का दृश्य खूब दिखाई देता है)॥

ऋषि कन्या का विनय

चलता २ जब राजा कण्व के आश्रम के अन्दर गया, तब वहां शून्य आश्रम देख, राजा बोला यहां कौन है? यह शब्द सुन लक्ष्मी सरूप तापसी वेश में, कृष्णनेत्रों वाली ब्रह्मचारिणी

निकली, तथा राजा को देख कर बोली " स्वागतन्ते " आइये महाराज बैठिये और आसन आदि देकर पाद्य, अर्घ्य आदि से सत्कार कर तथा कुशल क्षेम (यथायोग्य) पूछ, बोली कहिये श्रीमान् ! आप कैसे पधारे हैं ? उत्तर में राजा ने कहा महाभाग ऋषि कण्व के दर्शन के लिये आये हैं, वे कहां गये हैं ?

ऋषि कन्या ने कहा श्रीमन् ! मेरे पिता आश्रम के हितार्थ बाहर गये हैं, आप कुछ काल (दिन) ठहरिये उन के आने पर मिल कर जाना ।

मन की प्रमाणिकता

राजा ने फिर कहा शोभने ! तू कौन है ? और किस की कन्या है ? कन्या ने कहा श्रीमन् ! मैं भगवान् कण्व की पुत्री हूं। शकुन्तला नाम है, तब राजा ने मंत्री से कहा—

असंशयं क्षत्रपरिग्रह क्षमा, यदार्यमस्या मभिलाषि मे मनः । सतां हि संदेह पदेषु वस्तुषु, प्रमाणमन्त करणस्य प्रवृत्तयः ॥ श० ना० १ । १९

मंत्री जो ! कण्व महाराज बाल ब्रह्मचारी हैं, और ब्राह्मण हैं, यह कन्या उन की नहीं, सच पूछिये तो यह कन्या किसी क्षत्रिय राजा की है, संदेह न कीजिये ! इस में मेरा शुद्ध मन प्रमाण है, अर्थात् मैं आर्य हूं, मेरा आचरण मन वच क्रिया से कभी अनार्यों का सा नहीं हुआ, आज मेरा मन शुद्ध भाव से किसी अन्य सम्बन्ध से, इस की ओर जा रहा है ! अच्छा अभी निश्चय हो जाता है। यह आपस में विचार कर कन्या से कहा, भद्रे ! महाभाग कण्व तो ऊर्ध्वरेता हैं, तू उन की पुत्री

कैसे है ? इस पर कन्या ने अपना जन्म वृत्तान्त सुना कर कहा जन्म दाता को मैं जानती नहीं, इन्हों ने मेरी पालना, पोषणा, शिक्षा, दीक्षा, की है, शास्त्र में जन्म दाता, प्राण दाता, अन्न दाता, तीन पिता कहे हैं इसलिये ये ही मेरे पिता (पालक) हैं ॥

वन में विवाह

इस प्रकार उस कन्या को क्षत्रिय कन्या जान तथा उसके गुण कर्म स्वभाव 'वीरांगनाओं के देख, और उसके समान अपने को जान, उस से संकेत में कहा शुभे ! मैं इस देश का पृथ्वीपति हूं, और मैं चाहता हूं, कि तू मेरी भार्या हो, क्योंकि अवस्था तेरी मेरे समान ही विवाह के योग्य है, कुल शील भी समान है, और ऐसों का ही विवाह वेद शास्त्र में उत्तम विधान किया है। तू ऋषि पुत्री नहीं किन्तु राजपुत्री है।

राजपुत्री ने कहा विवाह में कन्यादान का अधिकार पिता को है, कन्या कोई अपना दान आप नही कर सकती !

राजा-देवी ! यह बात ठीक नहीं. क्योंकि विवाह के शब्दार्थ ही एक दूसरे को अपनी इच्छानुसार जान कर प्राप्त होने के हैं, दान का इसमें कोई प्रसंग नहीं, विवाह का दूसरा नाम " पाणि ग्रहण " है जिसका अर्थ भी एक दूसरे के हाथ को अपने हाथ में जीवन भर, पति धर्म तथा पत्नी धर्म पालन निमित्त, ग्रहण करना है।

पिता के दानादि का विचार वहां के लिये है जहां कन्या अबोध हो, ज्ञानवती को तो अपने विवाह का पूर्ण अधिकार अपने आपको है। देखो ऋग्वेद१ अथर्ववेद२ में भी यही लिखा है।

---

१ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। ऋ० १० ।८५।३६ । २ अमोहमस्मि सा त्वं सामाहमस्मि

राजपुत्री ने कहा राजन् ! ब्राह्मादि आठ विवाहों में उत्तम कौनसा है ?

राजा—सुन्दरि ! क्षत्रिय के लिये राक्षस, और गंधर्व-विवाह, मनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने कहे हैं, परं गन्धर्व विवाह उनमें श्रेष्ठ है।

राजपुत्री—राजन् ! गन्धर्व विवाह का अर्थ क्या है ?

राजा—मनोरमे ! जिस विवाह में वर वधु दोनों की इच्छा से प्रीतिपूर्वक, अपने २ कर्तव्यों का अन्योन्य निश्चय करके सन्तान अर्थ जो पतिपत्नी का संबन्ध विधिपूर्वक निश्चय करना है उसे गन्धर्व विवाह कहते हैं।

इस पर राजपुत्री (शकुन्तला) ने कहा—

यदिधर्म पथस्त्वेषः यदि चात्मा प्रभुर्मम।
प्रदाने पौरवश्रेष्ठ ! शृणुमेसमयं प्रभो ॥१५
सत्यं मे प्रतिजानीहि यथा वक्ष्याम्यहंरहः ।
मयिजायेत यः पुत्रः सभवेत्त्वदनन्तरः ॥१६
युवराजो महाराज सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।१७।

आदि० अ० ७३

प्रभो ! यदि आपका कथन धर्म मार्ग है, और यदि शास्त्रानुसार मैं स्वयं विवाह में हस्तदान करने में प्रभुत्व रखती हूं, तो हे पुरुवंश श्रेष्ठ ! विवाह सम्बन्ध को दृढ़ करने के लिये,

---

ऋक्त्वंघरोहं पृथिवी त्वम् । ताविहसंभवाव प्रजामाजनयावहै ॥ अथर्व १४ । २ । ७१

मैं एक प्रतिज्ञा आप से कराती हूं, आप उसे सत्य करने का प्रति वचन दें, जो मैं एकान्त में कहूंगी । वह प्रतिज्ञा यह है "मुझ से जो पुत्र उत्पन्न हो आप के शासन काल के अनन्तर युवराज वह हो" यह मैं सत्य कहती हूं ! यदि आपको यह अंगीकार है, तो मैं विवाह के लिये सहमत हूं ।

राजा ने उत्तर में कहा देवि ! "एवमस्तु" ऐसा ही होगा ।

इस प्रकार दोनों ने विचार पूर्व निश्चय कर यथोपलब्ध सामग्री से ऋषिआश्रम में विधिवत् विवाह संस्कार कर लिया, और साथियों को राजधानी में लौटा कर, राजा कुछ काल वहां ही निजूतौर पर रहा, तथा महात्मा कण्व के आने से पूर्व ही राजधानी में चला गया । इस संस्कार का पता बिना आश्रम वासी नरनारियों के बाहर बहुत ही कम चला ॥

ऋषिका आशीर्वाद

जब ऋषि आश्रम में आये तब समय पा कर शकुन्तला की सखी प्रियंवदा ने कहा—

दुष्यन्ते नाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः ।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव।श०४।२

ब्रह्मन् ! आपकी पुत्री शकुन्तला, संसार के उदय के लिये महाराज दुष्यन्त के तेज को धारण कर रही है,

अग्नि गर्भ शमी (जंडो) की तरह और साथ ही वह सब विवाद (संवाद) भी ऋषि को सुनाया जो शकुन्तला दुष्यन्त में हुआ था ॥

सब कुछ जानने पर ऋषि ने कहा हे कल्याणि ! तू ने

जो मुझसे पूछे बिना पुरुष संयोग किया है, वह धर्म बाधक नहीं। क्षत्रिय के लिए गन्धर्व विवाह श्रेष्ठ है। पुरुष श्रेष्ठ दुष्यन्त धर्मात्मा और महात्मा है, जिस प्यार करने वाले को तू ने पति बनाया है। अवश्य तेरा पुत्र भी महात्मा, महाबली सारी पृथिवी को शासन करने वाला पैदा होगा। जिस तरह शर्मिष्ठा से ययाति पुत्र पुरु हुआ था।

संकल्पितं प्रथम मेव मया तवार्थे, भर्तार मात्म सदृशं सुकृतैर्गतात्वम् ॥ शकुन्तला ना० ४। १२

पुत्रि ! मैंने तेरे लिए पहले ही ऐसा भर्ता चिन्तन किया था, अच्छा हुआ जो तू अपने उत्तम कर्मों से, अपने सदृश भर्ता को प्राप्त हुई है। मैं आज तेरे विषय में निश्चिन्त हुआ हूं।

शुश्रूषस्व गुरुन्कुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने।
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्य प्रतीपंगमः॥
भूयिष्टं भव दक्षिणा परिजन भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येवं गृहणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधयः॥

सुशीले—विवाह पीछे तेरा धर्म है, कि तू पति कुल में सदा बड़ों की सुश्रूषा, समान स्त्रियों में सखीभाव कर, पति से निरादर मिलने पर भी उस के विरुद्ध विचार मत रख, परिजनों को द्रव्यादि देने वाली, अभिमान रहित हो, इस प्रकार युवतियें सद्गृहणी पद को प्राप्त होती हैं।

शकुन्तला का वर मांगना

आशीर्वाद के पीछे ऋषि ने प्रसन्न हो कर शकुन्तला से कहा पुत्रि ! मैं तेरे आचरण से प्रसन्न हूं तू वर मांग ।

मयापतिर्वृतोराजा दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः ।
तस्मै स सचिवाय त्वं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥३३॥
ततो धर्मिष्ठतां वव्रे राज्याच्चा स्खलनं तथा ।
शकुन्तला पौरवाणां दुष्यन्त हितकाम्यया ॥३४

शकुन्तला ने वर मांगते समय कहा भगवन् ! आप मंत्री सहित राजा पर प्रसाद कीजिये, तथा ऐसा वर दीजियें, जिस से पुरुवंशियों में कभी धर्म लोप न हो, तथा उन के वंश से राज्यभ्रष्ट न हो ।

इस पर तपस्वी ऋषि ने कहा ।

तथास्तु ।

सिंह संहारी कुमार ।

(४ सर्वदमन वा महाराज भरत)

महाराज दुष्यन्त के चले जाने पर, शकुन्तला वीरांगना की भान्ति, वीर जननी का व्रत (नियमादि) पालन करने लगी । और पूर्ण समय पर उसे देव समान सुन्दर, सुदृढ़, बालक जन्मा, बालक के जातकर्मादि सब संस्कार वेदानुसार पुण्यात्मा ऋषि ने समय पर किये । जब वह छः वर्ष का था, तब बन से सिंह, व्याघ्र, वराह, तथा हस्तियों को पकड़ कर

आश्रम में ले आता, उन पर चढ़ता, कभी २ उन्हें आश्रम के वृक्षों से बांध देता, इस कर्म को देख ऋषियों ने इसका नाम " सर्व दमन " रखा था।

इस समय इसका कद साधारण मनुष्य जितना ऊंचा था।

सर्व दमन की शिक्षा

ऋषियों ने शीघ्र बढ़ने वाले राजकुमार की, शिक्षा का प्रबन्ध, विशेष रूप से उस के कुल योग्य कर दिया, जिस प्रकार उस ने शरीर के बल वीर्य पराक्रम में शीघ्र उन्नति की, उसी प्रकार विद्या तथा नीति में भी उन्नति शीघ्र प्राप्त करली, सारांश इस अलौकिक पुरुषोत्तम ने लोकदृष्टि से बहुत छोटी * उमर में स्नातक की पदवी प्राप्त कर ली।

राजधानी की यात्रा

आश्रम पति ने सर्व दमन को सब प्रकार से योग्य समझ शिष्यों को कहा, कि अब शकुन्तलापुत्र युवराज पद के योग्य है, इसे इस की माता के साथ राजधानी में पहुचाओ, नारियों का अधिक

---

* हमारा अनुमान है तब १२ वर्ष की आयु होगी। अब भी ऐसे बालक आर्यावर्त में पैदा होते हैं, ग्वालियर के आर्य मुंशी तोताराम के पुत्र ब्रह्मचारी शंकरानन्द ने १२ वर्ष में शास्त्री परीक्षा पास की थी। कलकत्ता के गायनाचार्य प्रोफैसर " मदन " आठ वर्ष से पूर्व ही संगीत के महा पण्डित हो गये हैं, मिर्जापुर के सेठ शाहू पुरुषोत्तमदासजी की पौत्री के विवाह में प्रो० मदन हमारे साथ २ दिन रहे उन की आयु तब भी १२ वर्ष से ज्यादा न थी। यह संस्कार तथा शिक्षा प्रबन्ध का फल है।

वास बान्धवों में अच्छा नहीं, किन्तु पतिकुल वास ही इन की शोभा बढ़ाता है । गुरु आज्ञा पा ऋषि शिष्य शकुन्तला और सर्व दमन को साथ ले, बड़े उत्साह के साथ, दुष्यन्त की राजधानी की ओर चले, और निश्चित समय में आनन्द भरे मन से हस्तिनापुर में दाखल हुए ।

राजसभा में झगड़ा

ऋषि शिष्यों के शकुन्तला को पुत्र सहित हस्तिनापुर में छोड़ जाने पर महाराणी शकुन्तला पुत्र को साथ लेकर, राजसभा में गई, और पुत्र के शिर पर हाथ धर राजा को सम्बोधन कर बोली महाराज ! यह आप का पुत्र है, विवाह की प्रतिज्ञा अनुसार इसे युवराज बनाइये ! और मुझे आज्ञा कीजिये, मैं अब आप के किस धर्म कार्य में लगूं अथवा आश्रम में चली जाऊं ?

राजा—यह सुन स्मरण करता हुआ भी कहने लगा तापसि ! "मैं नही जानता" तू कौन है ? किस की है ? मेरा तुझ से धर्म, काम, अर्थ, सम्बन्धी कोई सम्बन्ध नहीं तू यहां ठहर वा जा, जो इच्छा हो कर ।

राणी—इस रूखी, झूठी, बाणी को सुन अत्यन्त दुःखी हुई भी पुत्र के अधिकार रक्षा करने निमित्त, क्रोध से युक्त नेत्र, मुख, बाणी वाली, बल से राजा को देख कर कहने लगी—राजन् ! जानते हुए भी साधारण पुरुष की भान्ति कैसे निशंक हो कर कह रहे हो "मैं नहीं जानता" इस में सत्य, असत्य, तेरा हृदय जानता है, अतः अपने हृदय की साक्षी से कल्याण की बात कहो ! अपने आत्मा का अपमान मत करो । मैं अकेला हूं, तू जो मानता है, क्या तू अपने हृदय में स्थित मुनि (अन्त-

र्यामी) को नहीं देखता जो कि पाप को जानता है। तू उस के निकट पाप कर रहा है ? अपने आप आई हुई मुझ पति-व्रता का अपमान मत कर। राजन्! चींटियें भी अपने अंडों की पालना करती हैं, तू वेदवेत्ता हो कर अपने पुत्र को कैसे नहीं पालेगा। आर्य पुत्र! तुझ से त्यागी हुई मैं खुशी से अपने आश्रम को चली जाऊंगी, पर इस अपने पुत्र को त्यागने के योग्य (समर्थ) तू नहीं है।

राजा —यह सुन बोला, शकुन्तले! मैं इस पुत्र को नहीं जानता, जितने समय की तुम बात कहती हो, उसे देर नहीं हुई, और यह बालक इतने काल में इतने बल का, इतना लंबा हो नहीं सकता, तापसि! जो कुछ भी तू कहती है, बे मालूम है, मैं तुझे नहीं जनाता, जहां तेरी इच्छा हो चली जा।

झगड़े का निर्णय

राजा का जबाब सुन, राणी ने, सभासदों को साक्षी में रखकर, राजा से कहा नरेन्द्र! सत्य समान पुण्य नहीं. और कपट तुल्य पाप नहीं, भार्या में पैदा हुआ पुत्र, शीशे में प्रति बिम्बित मुख चित्र समान स्पष्ट होता है, पुत्र का मुख निर्मल सरोवर में मुख छाया के समान सब को दिखाई दे जाता है. क्या तुम नहीं देखते कि यह बालक तुम्हारे प्रतिबिम्बवत् है। हां यदि तेरा लगाव झूठ में है, और " स्वयं विश्वास नहीं करता है, तो शोक! मैं आप ही चली जाती हूं क्योंकि 'तेरे जैसे से* मेरा

---

* अनृते चेत् प्रसंगस्ते श्रद्धासि नचेत्स्वय।
आत्मनाहन्त! गच्छामि त्वादृशे नास्ति संगतम् ॥७४।१८७

सम्बन्ध नहीं रह सकता, राजन्! स्मरण रख तेरे बिना भी मेरा पुत्र पृथ्वीपाल ही होगा " इनता कह कर, शकुन्तला चल पड़ी ॥

इस सत्यबाणी का सभा में यह प्रभाव हुआ, कि चारों ओर से बाणी होने लगी " राजन्! पुत्र की पालना करो, यह भरण योग्य है, तथा शकुन्तला का निरादर मत करो, इस पुत्र के जन्म दाता तुम हो, शकुन्तला जो कहती है वह सत्य है ॥

इस पर राजा ने पुत्र को ग्रहण किया, और देवी शकुन्तला का सत्कार करते हुए, शकुन्तला से कहा देवि ! मैंने जानते हुए भी इतना इसलिए किया " लोक यह न समझें मेरा तेरा सम्बन्ध काम जन्य था, क्योंकि मेरे तुझ से विवाह का ज्ञान इनको न था, तथा मैंने इस पुत्र को युवराज बनाना था, यह काम सारे देश का है, क्योंकि राजा चुना हुआ होता है, अतः इस शुद्धि के लिए ही मैंने तुम्हें कष्ट दिया है। तू सचमुच पटरानी है, मैं सब प्रकार से तेरा सन्मान करता हूं। इस दिन से सारी प्रजा ने इस " सर्वदमन " का नाम भरत रखा। इसी भरत के नाम से आर्यावर्त का नाम भारतवर्ष, पुरुवंश का नाम भारतकुल हुआ। यह राजा चक्रवर्ती सार्वभौम प्रताप वाला हुआ। इस के समय में देश में धर्म प्रचार, विद्या प्रचार, वीरता संचार बहुत हुआ। इसे वेद के यज्ञों पर बड़ी श्रद्धा थी, इसलिए महर्षि कण्व को बुला कर इसने अनेक यज्ञ किये ॥ आदिपर्व अध्याय ७४

५—वंशकर्ता महाराज कुरु ।

इस वंश के प्रसिद्ध पुरुष ब्रह्मण्य महाराज संवरण का पुत्र महाबली कुरु हुआ । कुरु के गुण इतने सर्वप्रिय तथा शान्त थे, कि सब लोग इनकी महिमा गाते ।

राजत्वे तं प्रजासर्वा धर्मज्ञ इति वव्रिरे ।
तस्य नाम्नाह्यभिख्यातं पृथिव्यां कुरुजांगलम् ॥

१ । ९४ । ४६ ।

और इन्हें धर्मात्मा जान, सारी प्रजा ने राजा चुना । तथा इस देश का नाम कुरु पाञ्चाल, प्रदेश का नाम कुरुक्षेत्र, कुल का नाम कुरुवंश, इनके आदरार्थ रखा, और अब तक भी प्रसिद्ध है । इस की सन्तान को " कौरव " कहते हैं ।

६—सतीव्रत प्रतीप ।

कुरुवंश के विख्यात कीर्ति, सब का हित चाहने वाले, अति सुन्दर, आकार के, महाराज प्रतीप हुए । वे प्रायः गंगा तट पर निवास किया करते थे । आप वर्ण धर्म के मानने वाले, वर्ण-संकरता के घोर विरोधी हुए हैं । एक दिन एकान्त में बैठे आप को एक परम सुन्दरी, यौवन मदमत्त स्त्री ने आकर कहा महाराज ! मैं आप के पास कुछ याचना के लिये आई हूं, कृपा कर मेरी कामना पूर्ण कीजिये । इस पर राजा ने सरल शब्दों में कहा कल्याणि ! कहो मैं आप का क्या हित करूं, आप क्या चाहती हो ।

कामवती बोली—कमनीय रूप ! उदार स्वभाव राजन् !

मैं प्रीति से आप की सेवा करना चाहती हूं, चाहने वाली कामिनी का त्याग, श्रेष्ठ पुरुषों को निन्दा का पात्र बना देता है, अतः आप मुझे अवश्य स्वीकार करें।

राजा ने कहा—

नाहं परस्त्रियं कामाद्गच्छेयं वर वर्णिनि !
न चासवर्णां कल्याणि धर्म्यं मेतद्धि मेव्रतम् ॥

शोभने! मैं कामेच्छा से पर स्त्री को तथा दूसरे वर्ण की नारी को सेवन नहीं कर सकता. क्योंकि मेरा धर्म यही बताता है, और मेरा निज व्रत भी यही है। यह सुन कर स्त्री ने कहा राजन्! मैं किसी नीचवर्ण की नहीं, रोगिणी नहीं, निन्दनीय नहीं, तथा परनारी नहीं, किन्तु कन्या हूं, आप निराश न करें। इस पर भी महाराज अपने धर्म और व्रत से डगमगाये नहीं। इत्यादि व्रतों के कारण प्रतीप आर्यावर्त के पूजनीय महाराज हुए हैं ॥

वर्तमान के राजकुमारों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

७—पुण्यात्मा शान्तनु।

महाराज प्रतीप के शान्त प्रभाव से पुण्यकर्मकारी पुत्र पैदा हुआ, इस लिये इसका नाम "शान्तनु" रक्खा। शान्तनु को ब्रह्मचर्य से शिक्षा पूर्ण होने पर। ३६ वर्ष की आयु में लक्ष्मीरूप अभ्यंगागी, दिव्य वस्त्र भूषण धारण करने वाली, शील गुण औदार्य, तथा सदाचार से मन को जीतने वाली, नवयुवती देवी "गंगा" से स्वयम्वर रीति से विवाह हुआ।

शान्तनु के दो भाई और (देवापि, बाह्लीक) भी थे परं प्रजा संमत होने से राजा का पद इसी को सौंपा गया।

राणी गङ्गा जन्हुराज की कन्या थी, इसने बड़ी उमर तक वेदादि शास्त्र, धनुर्वेद, रतिशास्त्र, कामशास्त्र, तथा धात्री विद्या का मनन किया था। वीर चरितों से परिचित होने से यह भीरु न रही थी, किन्तु बहुतसी बातों में तो पति को भी अपने अनुकूल कर लेती थी। युवती होने पर भी, काम चेष्टा से बाधित होकर इसने विवाह न किया था, वरन संसार में अमर और वीर पुत्र जन, स्त्री जन्म सफल करने के लिये, तपस्वी राजा को पति वरा था।

धात्री विद्या के लिये यह कहा करती थी।

मद्विधा मानुषीधात्री लोकेनास्तीह काचन ॥

आदि० ९८। २०

राजा के गुण

राजा शान्तनु दम, दान, क्षमा, बुद्धि, लज्जा, धैर्य, तेज, सत्य भाषण में, प्रसिद्ध था। इसके उज्ज्वल धर्म ने, तो अर्थ काम से लोगों की श्रद्धा ही उठादी थी। हस्तिनापुर में रहता भी यह, सारे जगत् को शिक्षा द्वारा शासन करता था। जगत् के राजाओं ने, इस के धर्म से प्रभावित होकर " राज राज " की पदवी दे रक्खी थी, इस के राज्य में कोई निरपराध मृग आदि का भी वध न करता था। अपने वंश को बढ़ाने के साथ, यह सब भूतों का पालक तथा समान शासक था।

यज्ञादि कर्म

देवर्षि पितृयज्ञार्थ मारभ्यन्त तदाक्रियाः।

न चा धर्मेण केषांं चित्प्राणि नामभवद्वधः ॥
असुखानामनाथानां, तिर्यग्योनिषु वर्तताम् ।
स एव राजा सर्वेषां, भूतानामभवत्पिता ॥

आ० १०० । १७ । १८

राजा सदा देवयज्ञ, ऋषियज्ञ, पितृयज्ञ, की क्रिया करता जीवन विताता, इसके देश में किसी प्राणी का अधर्म से वध न होता था। दुःखियों, अनाथों, गौ आदि पशुओं, तथा पक्षियों वा प्राणीमात्र का पालक होने से वही पिता* था।

(भीष्मखंड २)

८-बाल ब्रह्मचारी

(९ देवव्रत वा भीष्मपितामह)

शान्तनु के गंगा के गर्भ से, देव समान पुत्र, उत्पन्न हुआ जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वीर जननी गंगा ने गर्भाधान से ही विधिपूर्वक धारण कियैा था।

यं गंगा गर्भविधिना धारयामास सुव्रता ॥

शान्ति पर्व०

---

* रघुवंश में सूर्यवंशी महाराजा दिलीप का वर्णन कालीदास ने ऐसा ही किया है। सर्ग १।

राजाने, जात कर्म आदि संस्कार, विधिपूर्वक किये, देवताओं के लक्षण देख इसका नाम "देवव्रत" रक्खा।

देवव्रतकी पालना और शिक्षा

अभी देवव्रत बालक ही था कि उस की माता किसी बात में राजा से सहमत न होकर, तथा अपने पुत्र को क्षत्रियों की पूरी शिक्षा देने के लिये, अपने साथ पितृगृह में ले गई॥ और छोटी ही आयु में अंग सहित वेद, अनुष्ठान सहित धनुर्वेद की प्रसिद्ध २ धनुर्वेदज्ञों से शिक्षा दिलादी। जिस से वह वीर राजाओं में भी महाबली, महात्मा, महावीर्य, और महारथी कहलाने के योग्य बन गया।

देवव्रत की धनुर्विद्या

एक दिन महाराज शान्तनु, गंगातट पर भ्रमण कर रहे थे, उन्होंने देखा, गंगा प्रवाह पहले जैसा नहीं, ऐसा प्रतीत हुआ कि कहीं गंगा की धारा में बंध लग गया है। जाचने के लिये ऊपर की तरफ गये, तो देखा, एक बालक बाणों की वर्षा से, गंगा के प्रवाह को, रोक रहा है। बालक को राजा ने पहचाना नहीं, परं बालक ने राजा को जान, अपने को वहां से छुपा लिया। थोड़ी दूर पर विचरती स्त्री को देख जाना, कि यह राजपत्नी गंगा है, और झट छुप जाने वाला बालक "देवव्रत" होगा, इस विचार से गंगा को अपनी ओर बुलाया, जब वह उत्तम वस्त्र भूषण धारण किये सुन्दर देह वाली आई तो बालक और उस के गंगा रोध आदि दिव्य कर्म का वृत्तान्त पूछा—

१ गृहाणेमं महाराज मया संवर्धितं सुतम्।
आदान पुरुष व्याघ्र! नयस्वैनं गृहं विभो ३४

२ वेदानधिजगे सांगान् वसिष्ठादेववीर्यवान् ।
कृतास्त्रः परमेष्वासो देवराजसमो युधि॥३५
३ उशनावेद यच्छास्त्र मयं तद्वेद सर्वशः ॥३६
४ तथैवांगिरसः पुत्रः सुरासुरनमस्कृतः ।
यद्वेद शास्त्रं तच्चापि कृतस्नमस्मिन्प्रातिष्ठितम्
५ यदस्त्रंवेद रामश्च तदेतास्मिन्प्रातिष्ठितम् ।
महेष्वास मिमं राजन् राजधर्मार्थ कोविदम्३९
६ मयादत्तं निजंपुत्रं वीरं वीर ! गृहं नय ॥ ४०

आदि अ० १०० ।

कुमार के विद्या गुरु

उत्तर में क्षत्रिय अलंकारों से सजे हुए कुमार " देवव्रत " का दाहना हाथ पकड़ कर, देवी गंगा बोली-महाराज ! मुझ से पाले पोसे इस शेर नर को लेओ, और घर पहुंचाओ १ गुरु वसिष्ठ से इस ने सब वेदों को प्राप्त कर लिया है, तथा इस वीर्यवान् ने, अस्त्र विद्या सीख, इन्द्र सम, परम धनुर्धर की प्रतिष्ठा पाई है। २ दैत्य गुरु शुक्राचार्य्य जो शास्त्र जानता है, वह इस ने सीख लिया है। ३ देवगुरु (आंगिरस पुत्र बृहस्पति) जो अस्त्र कर्म जानता है, वह सब इसे आता है। ४ जमदग्नि पुत्र परशुराम का वेद भी इस में विद्यमान् है । ५ यह राजधर्म और अर्थ शास्त्र का पण्डित है, युद्ध में परिचय दिखा, महा धनुर्धर

कहला चुका है। अब इसे आप मेरा दिया समझ, घर में वीर पुरुषवत्, सन्मान से ले जाइये ६ ॥

युवराज को अभिषेक

स्नातक देवव्रत को पा राजा अपने को कृतार्थ मानने लगे, तथा इसने प्रजा सम्मति से गुणवान् पुत्र को युवराज की गद्दी पर बिठा दिया।

राष्ट्रंचरंजयामास वृत्तेन भरतर्षभः ॥

आ० १०० । ४४

थोड़े दिनों में भरतवंश में श्रेष्ठ, देवव्रत ने, अपने सदाचार, और नीति न्याय, से सारे देश को, सब प्रकार से, प्रसन्न कर लिया । देवव्रत की माता ने राजा से अब कोई सम्बन्ध न रख, अपना जीवन तप में लगा दिया।

देवव्रत का भीष्म व्रत

राजा शान्तनु को देवव्रत की वीरता देख, जहां प्रसन्नता होती, वहां उसे अकेला पुत्र होने से वह भी योधा और रणप्रिय, चिन्ता भी रहती। इस के लिये उस के मन में कभी २ यह इच्छा होती, कि गुण शीलवती, स्त्री का संयोग मिले, तो विवाह कर दूसरे पुत्रो को ही प्राप्त करूं ॥

कुछ वर्ष बीतने पर एक दिन की बात है, कि राजा यमुना के किनारे २ घूमता हुआ एक घाट पर पहुंचा, जहां उस ने एक रूपवती कन्या को नौका चलाते देखा। राजा ने उस से उस का नाम और वंश पूछा, तो उसने बतलाया, कि "सत्यवती" मेरा नाम है, मैं * चेदि के राजा वसु की कन्या

* चेदिराज का बुन्धेलखण्ड (संयुक्तप्रान्त) में राज्य था।

हूं। मेरे पिता ने यहां के दाशराज † (मलाहों के राजा) की गोद में दिया है, दाशराज, मेरा धर्म पिता है, सो मैं इस प्रकार दाशराज की पुत्री हूं, अपने पिता की आज्ञा से धर्मार्थ, नाव चलाती हूं॥

शान्तनु—उसे रूप यौवन गुणशील और वंश से अपने योग्य जान, उसे वरने के लिये, दाशराज के पास गये, और अपने मन की बात उस से कही, तिस पर यह बातचीत हुई॥

दाशराज—राजन्! आप धर्मात्मा राजा हैं, आप से योग्य सम्बन्ध, और क्या हो सकता है? पर मैं कन्या हित के लिये, कन्या पिता के नाते से, एक प्रण आप से लेना चाहता हूं, और वह यह है कि "जो पुत्र इससे जन्म ले वह युवराज हो" इस वर को पूरा करना, अपने अधिकार से बाहर समझ, राजा चुपचाप घर आ गया, पर उसके रूप शीलादि की चिन्ता लगी रही। पिता को चिन्ताग्रस्त देख "देवव्रत" ने पूछा पिता जी! आप किस चिन्ता में हैं, पिता ने कहा—

१—अपत्यं न स्त्वमेवैकः कुले महति भारत।
२—शस्त्र नित्यश्च सततं, पौरुषेपर्यवस्थितः॥
३—कथंचित्तवगांगेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम्॥
४—असंशयं त्वमेवैकः शतादपिवरः सुतः॥
५—अनपत्य तैकपुत्रत्व मित्याहुर्धर्मवादिनः॥

आ० १०० । ६३–६५

---

† पुराणों में धीवर की कन्या निराधार ही लिखा है।

पुत्र ! यद्यपि तू शतपुत्र से ज्यादा श्रेष्ठ है, पर तू एक है और शस्त्रधारी, नित्य युद्ध में रुचि रखता है, दैवयोग से तुम पर कोई विपद् आ जाय, तो हमारी कुल का* अभाव समझ !

---

* कई लोग शान्तनु के इस विवाह को केवल काम विवाह समझते हैं, वह ठीक नहीं । (१) उस के जीवन में दम (इन्द्रिय संयम) लज्जा, धैर्य, सत्यता आदि गुणों का खास प्रभाव था ।

(२) उन्हों ने एक पुत्र को और वह भी युद्ध प्रिय को कुलधर्म तथा वेदोक्त नित्य नैमित्तिक धर्मों के पालने में न काफी समझ दूसरे पुत्र की कामना की, जैसा कि आदि पर्व अ० १०० श्लो० ६३-७१ में महाभारतकार ने लिखा है ।

(३) कामेच्छा ही होती तो सत्यवती के पिता के पास जाकर नियम पूर्वक विचार न कहता, कोई कामी लोगों की सी क्रिया करता ।

(४) सत्यवती के पिता द्वारा मांगे 'वर' बिना विचारे दे देता ।

(५) अपनी इच्छा, मन्त्रियों, तथा भीष्म को न कहता ।

(६) अनेक पुत्रों की कामना वेदादि शास्त्रों में भी पाई जाती है, जैसे "क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौस्वेगृहे" ऋग्० १० । ८५ । ४२ ॥ अथर्व १४ । २ ७१

(७) "पुत्रान्विन्दावहै बहून् ते सन्तु जरदष्टयः" ब्राह्मण ग्रन्थ भी यही कहते हैं ।

(८) सूत्र ग्रन्थों में भी अनेक पुत्रों का वर्णन है "पुत्रैर्लोकान् जयति" वशिष्ठ०

धर्मशास्त्री लोग भी एक पुत्र वाले को पुत्र हीन, समझते हैं, यही चिन्ता मुझे निरन्तर जला रही है।

---

(९) धर्मशास्त्र में अनेक पुत्र कामना है "पुत्रांश्चोत्पादयधर्मतः" मनु० ३ । ३६

(१०) लोगों में भी एक पुत्र की मां अन्धी दो पुत्रों की मां एक नेत्रा कहलाती है।

(११) राज सेवा (युद्ध) धर्म सेवा (संन्यास) में भी एक पुत्र को लोकसंग्रह के विचार से विद्वान् लोग अधिकार नहीं देते॥

(१२) यदि राजा की कामेच्छा ही होती तो "देवव्रत" स वेदवेत्ता शूर पुरुष तथा आर्य प्रजा इसके अनुकूल हो कर विरोध करती।

(१३) महाभारत के बनपर्व में राजा सोमक ने एक पुत्रवान् होने पर कहा है।

धिगस्त्विहैक पुत्रत्व मपुत्रत्वं वरंभवेत् ।
नित्यातुरत्वाद्भूतानां शोकएवैक पुत्रता ॥

अर्थ—धिक्कार है एक पुत्रत्व को, इस से तो पुत्र का न होना ही अच्छा है। क्योंकि संसार के अनेक दुःखों को, एक दूर नहीं कर सकता, इस लिये अनेक पुत्र ही, पुत्र धर्म को पूर्ण कर सकते हैं। इत्यादि प्रमाणों से यही सिद्ध होता है, कि राजा शान्तनु का दूसरा विहाह, केवल काम इच्छा, पूरी करने के लिये न था।

देवव्रत ने, आगे पिता से कुछ न पूछ, पिता के हित-कारी, मंत्री से, विस्तार से पूछा, उसने सब कुछ बता दिया। तब इसने निश्चय किया, मैं पिता की चिन्ता मिटा सकूंगा। इस लिये वह उस मंत्री, और कुलके राजाओं को साथ लेकर, दाशराज के पास गया। और स्वयं पिता के लिये, सत्यवती का सम्बन्ध मांगा।

दाशराज ने कहा राजकुलदीपक ! कौन है जो इस सम्बन्ध को पसन्द न करें ? परं कन्यापिता होने से, मैं एक बात कहता हूं जो राजा शान्तनु से भी कही थी—

अपत्यं चैतदार्यस्य यो युष्माकं समोगुणैः।
यस्यशुक्रात्सत्यवती सम्भूता वर वर्णिनी॥

आ० १०० । १९

यह कन्या, जिस आर्य राजा के वीर्य* से है, वह गुणों से, कुरुवंश के, समान है। इस लिये कन्या पिता रूप से, हम

---

* सत्यवती, वसु जाति के राजा उपरिचर की पुत्री, मत्स्यराज की सगी बहिन थी। और दाशराज की पालतू पुत्री थी, देखो आदिपर्व अ० ६३ श्लोक १-७० तथा अध्याय १०० श्लोक ४६, ७५, ७६।

१ पितुर्नियोगाद्भद्रं ते दाशराज्ञो महात्मनः। ४९।

२ आभिगम्य दाशराजं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम्। ७५।

३ अपत्यं चै तदार्यस्य योयुष्माकं समागुणैः।
यस्यशुक्रात्सत्यवती सम्भूता वर वर्णिनी॥ ७९

पहले श्लोक में, सत्यवती शान्तनु को कहती है, मैं अपने

चाहते हैं, सत्यवती वहां ब्याही जाय, जहां न केवल वह राणी बने, किन्तु राज माता भी बने, अर्थात् इस का पुत्र "युवराज" हो। किन्तु यहां डर यह है, कि सत्यवती के जो पुत्र हो उस में, और आप में, सौतेलेपन से वैर होजाय, तो फिर सत्यवती के पुत्र का कुशल नहीं। क्योंकि जिसके आप वैरी हों, उसे कौन बचा सकता हैं ? बस यही विवाह करने में विचार है। दाशराज का, अभिप्राय समझ, देवव्रत ने भरी सभामें कहा—

योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति।
इदं मे व्रतमादत्स्व सत्यं सत्यवतांवर ॥

१ । १०० । ८६ । ८० ।

हे सत्यवादी दाशराज ! यह मेरा सत्यव्रत ग्रहण करो, कि इस से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह हमारा, (सब भरतों का) राजा होगा। यह सुन दाशराज ने कहा राजपुत्र ! आप का वचन, अटल है, यह सब जानते हैं, इन राजाओं के मध्य में जो व्रत लिया, वह आपके ही योग्य है, और वह पूर्ण होगा,

---

पिता दाशराज की आज्ञा से धर्मार्थ नौका चलाती हूं। दूसरे में बतलाया है कि दाश जाति के राजा, (सत्यवती के पालक) के पास जा, देवव्रत ने अपने पिता के लिये कन्या संबन्ध मांगा। तीसरे में दाशराज कहते हैं, यह सत्यवती जिस आर्य राजा की पुत्री है, वह गुणों में कुरुवंश के, बराबर है। श्रीकृष्ण को बार २ दाशार्ह कहा है इस से प्रतीत होता है कि दाशराज की जाति कुछ यादवों से मिलती जुलती होगी।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है, सत्यवती धीवर की कन्या न थी !

इस में संशय नहीं, परं आपका जो पुत्र हो, उससे भी तो, वैसा ही डर है, वह राज्य पर स्वत्व मानेगा, इस से भी वैर बढ़ेगा, और विनाश होगा,—

देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा

दाशराज का, अन्तरीयभाव समझ, पिता के हित की कामना से, देवव्रत ने कहा—

दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम ।
शृण्वतां भूमिपालानां यद् ब्रवीमि पितुःकृते १४
राज्यंतावत् पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिपाः ।
अपत्यहेतोरपि च करिष्येऽयं विनिश्चयम्॥१५
अद्यप्रभृतिमेदाश ! ब्रह्मचर्यं भविष्यति ।
अपुत्रस्यापि मे लोकाः भविष्यन्त्यक्षया दिवि॥

आ० १०० । ९६

दाशराज ! मेरी यह प्रतिज्ञा समझ, जो इन सब राजाओं के सुनते हुए, पिता के लिये, करता हूं। हे नरपतियो ! राज्य तो, मैंने पहले ही छोड़ दिया है, सन्तान के निमित्त भी, अब यह निश्चय करता हूं, सुनो !

" आज से लेकर हेदाशराज ! मैं ब्रह्मचारी ही रहूंगा "

पुत्रहीन के लिये जो लोक हैं, वे मेरे लिये अक्षय हों।

इस प्रकार देवव्रत ने, पिता के लिये, न केवल राज्य छोड़ा, भोग छोड़ा, और किसी परिमित समय के लिये, गृहस्थ सुख छोड़ा, किन्तु सारे जीवन के लिये, सारा संसार सुख, खुशी २ से छोड़ दिया।

सचमुच, इस देवव्रत ने, पितृभक्ति की, परम सीमा, बांध कर आर्य जाति के लिये, रखदी। ऐसे भीषण व्रत करने के कारण, सारे देशने इन्हें 'भीष्म' की पदवी दी, उस दिन से इनका नाम "भीष्म" हुआ, जिसे संसार इस समय, "भीष्म पितामह" के पूज्य नाम से पुकारता है। आर्यजाति, और आर्यावर्त के, नवयुवक क्षत्रियो! चन्द्रवंशी कहलाने वाले देशबन्धुओ! भीष्म के वंशधरो! कभी तुमने भी, सोचा है, तुम्हारा क्या कर्तव्य है? अपने माता, पिता के सम्बन्ध में। महाभारत के पाठको! क्या तुमने, यह शिक्षा कि विवाह होते ही, माता पिता की वर्षों तक सुध न लेनी, उनके बार २ पुकारने पर, अपनी रमणी की आज्ञा बिना, सेवा तो क्या उनकी बात तक का, उत्तर न देना, तुमने भीष्म से सीखा है? वा असुरों से? आर्यवीरो! तुम्हारा यह काम, होना चाहिये, कि तुम अपने पूर्वजों, के गुणों को, जीवन में ढाल, संसार को चमकाओ! वरन याद रक्खो उन तपस्वियों का तप तुम्हारे सर्वसुख को शापित कर देगा।

९ विचित्रवीर्य का विवाह

तथा

(अम्बा का पूजन)

अब भीष्म के त्याग से, सत्यवती का विवाह शान्तनु से सबकी सम्मति से हुआ। तथा सत्यव्रतो से चित्रांगद, और विचित्रवीर्य, दो वीर पुत्र पैदा हुये। इनको छोटी उमर में ही पिता स्वर्ग सिधार गये। माताकी आज्ञा से, इनकी शिक्षा, दीक्षा का प्रबंध भीष्मजी ने किया, जब चित्रांगद योग्य

हुये, उन्हें राज्यासन पर बैठाया गया। परं वह विना विवाह किये ही, चित्रांगद नामा गंधर्व के साथ द्वन्द्व युद्ध में "वीरगति" को प्राप्त हो गये। विचित्रवीर्य, तब बालक ही था, पर तो भी " भीष्म ने उसे राजा बनाया। जब 'विचित्रवीर्य' युवा हुआ तो भीष्म ने, सुना कि काशीराज की ३ कन्याओं (अम्बा अम्बिका और अम्बालिका) का स्वयंवर है। भाई के लिये भीष्म वहां गये, राजाओं से युद्ध कर तीनों को रथ में बिठा, कुशलता पूर्वक घर लौट आये।

माता की आज्ञा से जब उन तीनों से विचित्रवीर्य के विवाह की तियारी की तो, उन मे से जेठा कन्या, अम्बा, ने लज्जा से, सिर नीचे कर, कहा-

भीष्म! मैं मन मे शाल्वराज को अपना पति वर चुकी हूं. वे भी मुझे वर चुके हैं और इस में, मेरे पिता की भी सम्मति थी, स्वयंवर मे मैंने उन्हें ही वरना था। हे धर्मज्ञ! यह सब कुछ विचार, जिस में धर्म हानि न हो वैसा काम कीजिये. यह सुन वेदज्ञ ब्राह्मणों, से विचार कर अम्बा को सत्कार पूर्वक शाल्वराज के पास जाने की आज्ञा देदी। पाठक देखिये, आर्य सभ्यता का उदार भाव, और तुलना कीजिये ईसाई मुसलमान, जातियों के, पर स्त्रियों से नित्य किये जाने वाले पिशाची व्यवहारों को

भाई का विवाह

विचित्रवीर्य अपने समय में प्रजा का पालन पूरे धर्म से करता रहता था अम्बा को भेज, अम्बिका, और अम्बालिका, से राजा विचित्रवीर्य का विवाह कर दिया। विवाह पीछे, विचित्रवीर्य, भोग सुखों में

अधिक पड़ गया, जिस का फल यह हुआ, कि वह केवल सात वर्ष गृहस्थ सुख भोग कर * क्षय रोग से ग्रस्त हो गया। बड़े २ योग्य चिकित्सकों के इलाज, तथा मित्रों की सेवा शुश्रूषा में, भी वह नवयुव अवस्था में ही क्षय रोग से परलोक वासी हो गया।

भाई की स्त्रियों से व्यवहार।

स्नुषाइव स धर्मात्मा भगिनीरिवचानुजाः।
यथादुहितरश्चैव परिगृह्य ययौ कुरून् ॥

आ० १०२। ५६

स्वयंवर से, जब भाई के लिये, इन अति मनोहर, रूप, शील, यौवन वाली, राजकुमारियों को, भीष्म लाये, तब धर्मात्मा भीष्म उन्हें पुत्रवधुओं, छोटी बहिनों, अपनी पुत्रियों के, समान व्यवहार करते हुए लाये, और सारा जीवन (आपत् काल तक में भी) उसी दृष्टि से देखते रहे।

भीष्म प्रतिज्ञा पालन

विचित्रवीर्य के मृत्यु पीछे, सन्तान भाव से, सत्यवती, बहुत दिन तक तो चिन्ता में रही। एक दिन सत्यवती ने भीष्म को बुला कर सुहृदों के सामने कहा पुत्र! मैं जो आज्ञा देती हूं वह तुम्हें

---

* शुश्रुत उत्तर तंत्र अध्याय ४१ में लिखा है।

अति व्यवायिनो वापि क्षीणेरेतस्यनन्तरम्।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥१०
दुर्विज्ञेयोदुर्निवारः, शोषोव्याधिर्महाबलः ॥३॥

अवश्य माननी चाहिये। तुम्हारा प्यारा भाई, निःसन्तान मरा है अब जिस प्रकार तुम्हारे पिता का वंश नष्ट न हो, और राज्य बिना स्वामी के न हो, वैसा करो। अर्थात् इन दोनों को पत्नी बना, इन से पुत्र पैदा कर, राज्य पालन करो।

परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यंदेवेषु वा पुनः।
यद्वाप्यधिक मेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन ॥१५
त्यजेच्च पृथिवीगन्धमापश्च रसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुस्पर्श गुणं त्यजेत् ॥१६
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मताम् ॥१७
न त्वहं सत्य मुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन ॥१८

आदि १०३।

माता के वचन, मित्रों की पुष्टि, सुन कर भीष्म ने, उत्तर दिया माता! मैं सारी त्रिलोकी को, देवताओं के राज्य को, वा इन दोनों से भी अधिक वस्तु को त्याग सकता हूं, पर सत्य को, किसी तरह भी, नही त्याग सकता! पृथिवी गन्ध को त्याग दे, जल अपने रस को छोड़ दे, तेज रूप को त्याग दे, वायु स्पर्श गुण को छोड़ दे, सूर्य प्रभा को त्याग दे, अग्नि गर्मी को त्याग दे, पर मैं सत्य के त्यागने का कभी विचार

क्रियाक्षय करत्वाच्च क्षय इत्युच्यते पुनः ॥४॥

अधिक विषय सेवन से, धातु क्षय होने से, क्षय (शोष) घोर रोग पैदा हो जाता है, जो असाध्य है।

करने, को भी तय्यार नहीं हूं । इस उत्तर को सुन, और तो सब चुप रहे माता एक बार फिर बोली—

पुत्र ! मैं तेरी सत्यनिष्ठा को जानती हूं, पर तू आपद्धर्म और कुल नाश को विचार कर, मेरा कथन स्वीकार कर, इसी में तेरे सम्बन्धियों की, प्रसन्नता है । यह सुन भीष्म ने कहा—

राज्ञिधर्मान वेक्षस्व मा नः सर्वान् व्यनीनशः ।
सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते ॥

आ० १०३ । २४

माता ! धर्म को देख, हम सब का नाश मत कर, क्षत्रिय के लिये, सत्य से भ्रष्ट होना, किसी धर्म में भी, प्रशंसित नहीं ।

भीष्म के नाम लेने वालो ! देखो प्रतिज्ञा पालन इस का नाम है, कि निष्कलंक, रह कर मित्रवर्ग और माता को भी, अप्रसन्न न कर, अनायास राज्यसुख, पत्नी सुख, भोगने की सन्धि, भीष्म को प्राप्त होती हैं, तथापि अपनी एक बार की गई प्रतिज्ञा, पूर्ण करने के लिये, मनुष्य के मन को अतिशय खैंचने वाले इन दोनों सुखों पर, उन्हों ने लात मार दी । धन्य हो आर्य वीरो ! तुम्हारे इन्हीं त्यागों के प्रभाव से ही वैदिकधर्म तथा आर्य जाति ऊंची स्थित है । और आगे को अनन्तकाल तक यह जीवन संसार को * ऊंचा करता रहेगा ।

---

* कर्णलटाड राजस्थान पुस्तक में लिखते हैं, इसी नमूना से शिक्षा ले " वीरवर चंड ने (जिस का वंश अब चण्डावत नाम से प्रसिद्ध है) अपने पिता राणा लाक्षा की,

ब्रह्मचर्य का दैवी बल

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।

अथर्व कांड ११।५।१६

भीष्म के अखण्ड ब्रह्मचर्य का ही यह बल था, कि जिस से वह साधारण राजों और योधाओं को जीत कर वश कर लेता, किन्तु एक बार अपने गुरु, धनुर्विद्या के जगत् विजयी, वीर परशुराम से भी पराजित् न हुए। महाभारत के वीर सग्राम में जितने दिन आप सेनापति रहे, उतने दिन द्रोण, कर्ण, शल्य, आदि सब मिल कर भी पांडव दल का सामुख्य करने के लिये, सेनापतित्व न कर सके। महाभारत में तो यहां तक लिखा है, कि इस अच्युत पुरुष के संसार को वश में करने वाला मृत्यु भी वश में था, इसी लिए रणक्षेत्र में ही प्राण न त्याग, इन्हों ने युधिष्ठिर राज्य देख उत्तरायण में देह त्याग, देवपुर गमन, किया।

आज्ञा तथा इच्छा से अनायास ही मेवाड़ का राज्य जीवनभर के लिये, अपने सौतेले भाई "मुकल" के लिये उस के जन्म से पहले ही त्याग दिया था, और जब तक सौतेली माता ने चाहा, बालक भाई को गद्दी पर बैठा, राज्य प्रबन्ध किया, और जब माता अप्रसन्न होने लगी, तब देश ही त्याग दिया। फिर जब कालांतर में चित्तौड़ की दशा बिगड़ कर, दूसरों के हाथ जाने लगी, और सौत मां ने चंड को मदद के लिये बुलाया, तब सैंकड़ों वीरों को साथ ले मां की आज्ञा में आ पहुंचे। मालूम नहीं कितने युवराज भीष्म के जीवन से प्रभावित हो कर आर्य जाति का मान बढ़ा चुके हैं। देखो हिन्दी टाडराजस्थान पृ० १६०

१० धृतराष्ट्र और महाराज पांडु आदि का जन्म ।

नियोगोत्पत्ति वेदोक्त धर्म है

जब माता सत्यवती को वंश विनाश का सदा ध्यान रहने लगा, तो वेदवेत्ता धर्मवित, भीष्म ने कहा–माता ! कुल वृद्धि, किसी तपस्वी ब्राह्मण द्वारा कर लेनी चाहिये, यह क्षत्रियों का पूर्व से चला आता आपद्धर्म है ।

पाणिग्राहस्यत नम, इति वेदेषु निश्चितम् ।

आ० १०४ । ६

नियोग विधि से ब्राह्मण से पैदा हुई सन्तान ब्राह्मण की नहीं, किन्तु पाणि गृहीता (पति) की होती है, यह * वेदों का निश्चय है ।

भीष्म की वात सुन माता ने महर्षि व्यास को बुलाने का विचार किया, जिसे भीष्म ने पसन्द कर, माता की आज्ञा से श्री वेदव्यास को बड़े आदर सत्कार से बुलाया। व्यास जी ने आकर सत्यवती से कहा माता जी क्या आज्ञा है ?

---

* उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं गतासुमेत मुपशेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ ॥

ऋग्० १० । सू० १८ । मं० ८

अर्थात् नियोग की सन्तति पूर्व पति की होती है । दिधिषुः द्विरूढ़ास्त्री । शब्द कल्पद्रुम कोशे ।

माता-पुत्र † !

यवीयस स्तव भ्रातुर्भार्ये सुरसुतोपमे । ३७
रुपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च धर्मतः ।
तयोरुत्पादयाऽपत्यं समर्थो ह्यसिपुत्रक ॥

आ० १०५ । ३८

तेरे छोटे भाई की देव कन्या समान सुन्दर, युवति, और नियोगधर्म से पुत्र कामना रखती हैं, तुम सब प्रकार से योग्य हो, इन में सन्तान पैदा करो !

श्री व्यास ने कहा माता आप पर, अपर, धर्म को जान कर जो कहती हो, मैं करने को उद्यत हूं, पर बिना व्रतों के मुझे प्राप्त होना युक्त नहीं । अतः इन्हें एक वर्ष के लिये व्रत रखना चाहिये । माता के शीघ्रता करने पर व्यास जी इस कार्य के लिये तत्काल सहमत हो गये ।

अब सत्यवती ने बड़ी पुत्र वधु कौशल्या को समझा कर कहा—" कौशल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्यत्वानु प्रवेक्ष्यति । १०६ । २ । देवि तेरा देवर ‡ रात को तेरे घर आएगा, तैने सावधान रहना ।

---

† वेदव्यास, परशर ऋषि से, सत्यवती के कन्या अवस्था के पुत्र थे, और वेदों के भारी प्रचारक, वेदान्तशास्त्र तथा भारत इतिहास के कर्ता हुए हैं । इन्हीं का योगशास्त्र पर विस्तृत भाष्य भी है । जन्मवृत्त देखो महाभारत आदि पर्व अ० १०५ ॥

‡ देवरो-द्वितीयोवरो भवति । निरुक्ते अ० ३ । खं० १५

विकृत सन्तान

ऋतुस्नान से शुद्ध हुई, अम्बिका के शयन भवन में, अर्धरात्रि को व्यास जी गये, वह तेजस्वी के तेज को न सह कर, सावधान न रह सकी, यद्यपि मन से बुद्धिमान् पुरुषों का † चिन्तन करती रही। आयुर्वेदादि के ज्ञाता ऋषि को जब माता ने वृत्तान्त पूछा तो ऋषि ने कहा-

महाभागो महावीर्यो महाबुद्धिर्भविष्यति ।
किन्तु मातुः स वैगुण्यादंध एवभविष्यति ॥

आ० १०६ ९,१०

पुत्र बड़ा भाग्यवान्, बलवान्, तथा बुद्धिमान् होगा, पर माता के विगुण (अज्ञान) से * अन्ध होगा। तब सत्यवती ने कहा, पुत्र ! अन्धा, कुरुओं का राजा, नहीं हो सकता, दूसरा पुत्र (राजा) कुरुवंश को दो, तब फिर व्यास ऋषि, स्त्री धर्म से पवित्र हुई, अम्बालिका के मन्दिर में, रात को पुरुष धर्म से गये, इन्हें देख अम्बालिका भय से पीली हो

पति का चाहे छोटा वा बड़ा भाई हो दूसरा वर होने से उसे देवर कहा है। मनु॰ में भी लिखा है।

तामनेन विधानेन निजोविन्देत देवरः ॥ ९ । ६९

* आयुर्वेद के ग्रन्थों में पुत्र की रचना माता के अधीन तो लिखी है। पर आंख बन्द करने से अन्धा होगा ऐसा जो कहीं २ लिखा है, इसकी पुष्टि नहीं होती। और ऐसा सम्भव भी नहीं प्रतीत होता, कारण जन्मान्ध स्त्रियों के सुलोचन सन्तति देखी जाती है। शुश्रुत शारीरिक स्थान अ० २ में लिखा है ' अंजनादंधो रोदनाद्विकृत दृष्टिः २ । २५

गई । इसका फल, माता को, इन्हों ने पांडु वर्ण का पुत्र होना बताया । और इसी कथनानुसार बड़ी रानी के नेत्र हीन, महाबली, धृतराष्ट्र हुए, छोटी के नीति निपुण. पर पांडु वर्ण के पांडु हुए । फिर कुछ वर्ष पीछे माता ने बड़ी रानी से, एक पुत्र और मांगा, और जब ऋषि रतिभवन गये, तो अम्बिका ने उन के प्रभाव के समान, अपने को न देख, अपनी सुरूपा सुशीला युवति दासी को अपने वस्त्राभूषण पहना, रतिभवन में भेजा, उस ने रतिशास्त्र † अनुसार ऋषि को रति धर्म से प्रसन्न किया, और स्वयं प्रमाद रहित कामिनी के समान, शान्त सन्तुष्ट रही । जिसे तत्काल ऋषि ने कह दिया शोभने! इस तेरे गर्भ से सर्व बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, कल्याणकारी, धर्मात्मा पुत्र होगा । इसी वचन के अनुसार महात्मा विदुर, दासी गर्भ से हुए, जिन्होंने सारा जीवन कभी धर्म का त्याग नहीं किया और सदा कल्याणकारी, कर्म अपने बुद्धि बल से करते रहे‡ ।

* धृतराष्ट्र आदि के संस्कार *

धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च विदुरश्च महामतिः ।
जन्मप्रभृति भीष्मेण पुत्रवत्परिपालिताः ॥

---

† रति कर्म की व्याख्या (१) शुश्रुत (२) चरक (३) अग्नि संहिता के भिन्न (४) रतिमञ्जरि (५) स्वर दीपिका आदि में विस्तार से वर्णित है, वर्तमान कोकशास्त्र में उन की कुछ छाया ही है ।

‡ शुश्रुत शारीरिक २ । २६ में लिखा है, माता जैसे पुरुषों का दर्शन चिन्तन करेगी वैसा पुत्र होगा ;

संस्कारैः संस्कृतास्ते तु व्रताध्ययन संयुताः ।
श्रमव्यायामकुशलाः समपद्यन्त यौवनम् ॥

धृतराष्ट्र, पांडु, और विदुर, पुत्र समान भीष्म ने पाले, और जन्म संस्कार आदि सब संस्कार, यथा समय, इन के किये, और यज्ञोपवीत संस्कार के पीछे तीनों की विद्या (वेद विद्या और धनुर्वेद) का प्रबन्ध बिना इस विचार के कि कौन दासी पुत्र है, कौन रानीपुत्र है, गुरु के पास किया। और वे तीनों ही ब्रह्मचर्य का समय नियम पूर्वक बिता कर, शास्त्राभ्यास द्वारा ज्ञान वृद्धि और व्यायाम द्वारा शारीरिक उन्नति कर यौवन को प्राप्त हो गये।

* धृतराष्ट्र आदि की विद्यायें *

धनुर्वेदे च वेदे च, गदायुद्धेऽसि चर्मणि ।
तथैवगजशिक्षायां नीतिशास्त्रेषु पारगाः ॥१९
इतिहास पुराणेषु नानाशिक्षासु बोधिताः ।
वेद वेदांगतत्वज्ञा सर्वत्र कृतनिश्चयाः ॥२०॥
पांडुर्धनुषि विक्रान्तो नरेष्वधिकोऽभवत् ।
अन्येभ्यो बलवानासीद् धृतराष्ट्रो महीपति ॥

आ० अ० १०९

तीनों भाई धनुर्वेद, वेद, * गदायुद्ध, ढाल तलवार

---

* इस से प्रतीत होता है, कि आर्यावर्त में विद्यादान

युद्ध, हस्ति शिक्षा, नीति शास्त्र, पुराण " ऋषियों के वचन " और नाना प्रकार की तथा देश विदेश की भाषा, आदि की शिक्षा में पूर्ण पण्डित हो गये। इन में पांडु धनुर्विद्या में धृतराष्ट्र बल में, और विदुर धर्म नीति, जानने में विशेष प्रसिद्ध हुए। धृतराष्ट्र के वल की एक स्थान पर यह प्रसिद्धि है कि उस ने लोह प्रतिमा को आलिंगन करने में ही मृतिका की प्रतिमा समान चूर्ण कर दिया था।

इन तीनों के संस्कार आदि कर्मों को, तथा विद्या कौशल, को देख कर नगर, गांव, पुर, और देश के, लोग बड़े प्रसन्न हुआ करते थे।

* देश की तत्कालीन दशा *

वाहनानि प्रहृष्टानि मुदिता मृगपक्षिणः।
गन्धवन्ति च माल्याणि, रसवन्ति फलानि च ॥३
वणिग्भिश्चान्व कीर्यन्त नगराण्यथ शिल्पिभिः।
शूराश्च कृतविद्याश्च सन्तश्च सुखिनोऽभवन् ॥४
नाभवन् दस्यवः केचिन्ना धर्मरुचयो जनाः ॥५
धर्मक्रिया यज्ञशीलाः सत्यव्रत परायणाः।

में. विशेष कर वेदविद्या में, दासी पुत्र, राज पुत्र में, कोई भेद न किया जाता था, और धृतराष्ट्र की शिक्षा से यह भी सिद्ध है, कि तब नेत्र हीनों के लिये भी सब विद्याओं का प्रबंध था।

अन्योन्ये प्रीतिसंयुक्ता व्यवर्धन्त प्रजास्तदा ॥६

तब घोड़े, बैल, आदि सवारी को जुतने वाले पशु, प्रहृष्ट, मृग, पक्षी आनन्दित, फूल, गन्धयुत, फल रस भरे थे। व्यापारी, और कारीगरों में भरपूर, शूरवीर, विद्वान्, सज्जन, सुख युक्त विचार थे । तब न चोर, न धर्म में अरुचि दिखाने वाले, दीखते थे, किन्तु सब लोग धर्माचारी, यज्ञकारी, सत्यवादी, और आपस में प्रेम व्यवहार कर बढ़ने वाले थे।

नाभवत्कृपणः कश्चिन्नाभवन्विधवाः स्त्रियः ।
तस्मिञ्जनपदे रम्ये कुरुभिर्बहुलीकृते ॥११॥
कूपाराम सभावाप्यो ब्राह्मणावसथास्तथा ।
बभूवुः सर्वार्द्धियुता स्तस्मिन्राष्ट्रे सदोत्सवाः ॥१२

उस कौरवों से बढ़ाये हुए, सुन्दर देश में, न कोई कंजूस पुरुष, न विधवा स्त्री थी, कुवें, बगीचे, सभा, बावड़ी और ब्राह्मणों के आश्रम शोभायुक्त, सुरक्षित, तथा नित्य उत्सव, सम्पन्न रहते थे।

* राजधानी की दशा *

तन्महोदधिवत् पूर्णं नगरं वै व्यरोचयत् ।
द्वारतोरण निर्व्यूहैर्युक्त मभ्रचयोपमैः ॥
नदीषु बनखंडेषु वापी पल्वल सानुषु ।

काननेषु च रम्येषु विजह्रुर्मुदिता जनाः ॥

आदि० १०६ । ६

राजनगर 'हस्तिनापुर' समुद्र की तरह, रत्नों से पूर्ण, और मेघों के छूने वाले, सुन्दर सजे हुए मन्दिरों (महलों) से शोभायमान था। नदी वन खंड पहाड़ * बावली तलाई और रमणीक घने जंगलों में बिना किसी डर के आनन्द मनाते, सैर किया करते थे। प्रतीत होता है ५००० वर्ष के बदलने वाले काल ने हस्तिनापुर के प्रान्त को न केवल अन्दर से किन्तु बाहर से भी विरूप सा कर दिया है।

राजघरों की दशा।

गृहेषुकुरुमुख्यानां पौराणां च नराधिप !।
दीयतांभुज्यतां चेति वाचोऽश्रयन्ते सर्वशः ॥

१०६ । २६

कौरवों के घरों से, और अन्य पुरवासियों के घरों से, नित्य कर्म के पीछे चारों तर्फ से, यही आवाज आती थी कि "दान करो और भोगो"।

इन तीनों धर्मवीरों के प्रभाव से कुरुजांगल देश, कुरुक्षेत्र, (भूमि) और कुरुवंश, हर प्रकार से बढ़ा हुआ था।

उन दिनों दूसरे देशों की तरफ से सदा यह लोकनाद सुनाई देता था, कि वीर जननियों

---

* बावलीयों के सुरूप के देखने के लिये हुश्यारपुर तथा कांगड़ा जिला के हिन्दु नगरों की यात्रा करनी चाहिये।

में, काशीराज की पुत्रियें (धृतराष्ट्र और पांडु की मातायें। देशों में कुरुजांगल, नगरों में हस्तिनापुर, धर्म वेत्ताओं में "भीष्म" सर्व श्रेष्ठ हैं। सारांश यह इन तीनों ने नष्ट हुआ शान्तनुवंश फिर ऊंचा कर दिया था।

पांडु को राज्याभिषेक

योग्य होने पर, भीष्म जी ने, प्रजावर्ग को, एकत्र कर, अपना राजा बनाने का प्रस्ताव, पेश किया। तब प्रजा ने धृतराष्ट्र को नेत्रान्ध होने के कारण, विदुर को दासीपुत्र, होने के कारण, राजा न चुन कर सर्व गुणों से युक्त, धनुर्धारी पांडु, को कुरुवंश का राजा चुना। चुनाव के पीछे, विधि सहित तिलक दिया गया, और भीष्म विदुर आदि की सम्मति से, सर्व सुखकारी शासन होने लगा, अपने बल, पराक्रम, तथा धर्म से महाराज पांडु संसार के पूजनीय राजाओं में गिने जाने लगे।

विवाह की कामना

तीनों के पूर्ण यौवन काल, और कुल योग्य ज्ञान प्राप्त करने पर, नीति निपुण, विदुर से भीष्म जी बोले हे धर्मज्ञ पुत्र! सत्यवती, और व्यासमुनि की सहायता से यह गुणों से प्रथित अपना कुल, मैंने पुनः स्थापन किया है, अब कुल बढ़ाने का यत्न करना चाहिये। सुना है-कुन्तिभोज की कन्या, मद्रराज की पुत्री, तथा गांधार के अधिपति सुबल की आत्मजा, गुण, शील, रूप, योग्यता, और कुलीनता में अपने योग्य है, आप की क्या सम्मति है? मेरे विचार में सन्तान अर्थ ये सम्बन्ध उत्तम रहेंगे?

भवान्पिता भवान्माता, भवान्नः परमोगुरुः।

तस्मात्स्वयं कुलस्यास्य विचार्य कुरु यद्धितम् ॥

११० । ८

धर्मात्मा विदुर ने कहा–आप हमारे पिता, माता, और परम गुरु हैं, विचार कर, आप ही इस कुल का, जिस में हित समझते हैं कीजिये।

धृतराष्ट्र का विवाह

राजा सुबल को, जब भीष्म ने कहला भेजा, उस ने अपनि पुत्री, शकुनी समेत विवाह अर्थ भेज दी, और विधि पूर्वक गांधारी का विवाह धृतराष्ट्र से हो गया। विवाह के पीछे गांधारी पतिव्रताओं के शील आचार से, सब कुरुवंशियों को, प्रसन्न करती हुई अपना जीवन बिताने लगी।

तुष्टिं कुरुणां सर्वेषां जनयामास भारत ॥१८
वृत्तेनाराध्यतान्सर्वान्गुरुन् पतिपरायणा।
वाचापि पुरुषानन्यान् सुव्रता नान्वकीर्तयत् ॥

११० । १९

गांधारी अपने सदाचार से गुरु जनों को प्रसन्न, पति को आनन्द, रखती और सारे जीवन में, कभी किसी पुरुष को, वाणी से भी पुरुष भाव से न पुकारती थी। सुना तो यहां तक भी जाता है, कि उस ने अपने नेत्रों पर विवाह दिन से ही पट्टी बांधी हुई थी, जिसे कि वह पति सेवा काल के बिना कभी न उतारती।

महाराज पांडु के दो विवाह

धृतराष्ट्र के विवाह पीछे, कुन्तिभोज की पुत्री, पृथा का स्वयंवर सुन पांडु वहां गये और स्वयंवर की रंगभूमि में राजाओं की पंक्ति में नियम पूर्वक जा बैठे।

सिंहदर्पं महोरस्कं बृषभाक्षं महाबलम् ।
आदित्यमिव सर्वेषां राज्ञां प्रच्छाद्यवै प्रभाः ॥५
तं दृष्ट्वासानवद्यांगी कुन्तीभोजसुता शुभा ॥६
पांडु नरवरं रंगे हृदयेना कुलाऽभवत् ॥ ७॥
व्रीडमानास्तजं कुन्तीराज्ञः स्कन्धं समासजत् ८

सिंह सम बली, बड़ी छाती वाले, मदमत्त, वृषभ तुल्य नेत्रों वाले, और राजाओं से अधिक तेजस्वी, पांडु को देख कर, पहले हृदय से, फिर लजाते हाथों से जयमाला डाल कर कुन्ति ने, पति वर लिया, और विधि से संस्कार हो कर पत्नी बन गई। जब बहुत वर्ष बीतने पर भी सन्तान न हुई तो–

विवाहस्यापरस्यार्थे चकारमतिमान् मतिम् ।
सोऽमात्यैः स्थविरैः सार्धं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ॥

११३ । २

भीष्म ने दूसरे विवाह का विचार देश के वृद्ध मंत्रियों ब्राह्मणों ऋषियों से विचार कर, मद्रराजा की कन्या से विधि वत् पाणिग्रहण संस्कार किया।

जग्राहविधिवत् पाणिं माद्र्याः पांडुर्नराधिपः

११३ । १८ ।

इस प्रकार प्रजासंमत राजा, दो * स्त्रियों का पति होने, पर भी देश उन्नति, के काम में, सदा संलग्न रहता, और देश को हर एक आधि व्याधि से बचाता ।

महात्मा विदुर का विवाह

इसी प्रकार देवक राजा की, समान गुण रूप शील रखने वाली, पारसवी, कन्यासे विदुर महात्मा का, विवाह हुआ । और उस से विदुर के ॥

पुत्रान्विनयसंपन्ना नात्मनः सदृशान्गुणैः ।

११४ । १४ ॥

अपने समान गुण शील धर्म विद्या बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए।

महाराज पांडु का दिग्विजय ।

कुल प्रतिष्ठा, धर्म वृद्धि, देश दशा, सुधारने के लिये वीर पांडु ने, भीष्म, धृतराष्ट्र, आदि वृद्धों की आज्ञा से, भारी वीर सेना को साथ लेकर दिग्विजय यात्रा आरम्भ की, और थोड़े काल में ही, उस ने दाशार्ण, मगध, विदेह, सुह्म पुंड्र, देशों के राजाओं को जीत बहुत धन, रत्न, वस्त्र, भूषण, शस्त्र, अस्त्र, और हाथी, घोड़े, गाय, आदि पशु प्राप्त किये । किसी समय जिन राजाओं ने कुरुराजाओं को तंग किया था उन्हें

---

* कहते हैं, कुन्ति समान गृह धर्म की ज्ञाता और माद्री सम सुन्दरी उस समय कोई नारी न थी ।

कर देने वाला, बना लिया। इस विजय में पांडु के यश दिवाकर ने पुराने प्रतापी महीपालों को नक्षत्र समान मंद दीप्ति का बना दिया।

उपाजग्मुर्धनंगृह्य, रत्नानि विविधानि च ।३३
गोरत्नान्यश्वरत्नानि रथरत्नानि कुञ्जरान् ।३४।
खरोष्ट्रमाहिषीश्चैव, यच्चकिञ्चिद जाविकम् ।
कंबलाजिनरत्नानि, रांकवास्तरणानि च ॥

११३ । ३५

जीते हुए राजा लोग, अपने देश में, पैदा होने वाले नाना रत्न, धन, उत्तम गौएं, रत्न स्वरूप घोड़े, रत्न रूप रथ, तथा हस्ती ऊंठ, भैंस, गधा, भेड़, बकरी, उत्तम कम्बल, वस्त्र आदि लेकर प्रणाम करने तथा प्रसाद प्राप्त करने आये।

* राजा की उदारता और विनय *

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः स्वबाहुविजितं धनम् ।
भीष्मायसत्यवत्यै च मात्रे चोप जहार सः ।१।
विदुरायच वै पांडुः प्रेषयामास तद्धनम् ।
सुहृदश्चापि धर्मात्मा धनेन समतर्पयत् ॥

धृतराष्ट्र की आज्ञा से बाहु बल से जीता धन राजा पांडु ने भीष्म और माता सत्यवती के भेंट धर दिया, और कुछ धर्मात्मा विदुर को भेंट दे, शेष को सुहृदों की सेवा में लगा दिया।

धन्य है आर्य पुत्रो ! तुम्हारी वृद्ध भक्ति, और उदारता, संसार के किसी देश और जाति ने तुम सरीखे भक्त अब तक पैदा ही नहीं किए, जिस धन की लालसा से दुनियां मरी जाती है, वह पैदा करके भी सांझ को सूख जाने वाले फूलों की भान्ति बड़ों के चरणों की भेंट कर देते हो ! जरूरत है तुम्हारा यह भाव वर्तमान भारत में भी संचार करे। वृद्धों ने वह सारा धन यज्ञ (देश सुधार) में लगा दिया ।

धृतराष्ट्र का दूसरा विवाह
और
(दो पुत्रों का जन्म)

जब गांधारी के, कई वर्ष तक कोई सन्तान न हुई, तो धृतराष्ट्र का एक वैश्य की कन्या से दूसरा विवाह हुआ। अब गांधारी के सुयोधन और वैश्या के युयुत्सु ये दो पुत्र * पैदा हुए ।!

---

* इस पर कई लोग पूछेंगे कि महाभारत में धृतराष्ट्र के १०१ पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन सुना गया है, यह दो पुत्रों का विधान कैसे ?

इस पर हम कुछ विचार युक्ति तथा प्रमाण से नीचे लिखते हैं, बुद्धिमान् विचार कर, परिणाम निकालें । महाभारत में धृतराष्ट्र के १०१ पुत्रों की सूचि आदिपर्व अध्याय ६७ और ११७ में विस्तार से क्रम पूर्वक (छुटाई बड़ाई के ध्यान से) लिखी है, सो हमारे विचार में सब नाम दुर्योधन के ही

हैं। जो गुण कर्मों को देखकर अपनी २ रुचि से उस के नाम साथियों (झोली चुकों) और प्रजापक्षियों ने समय २ पर रक्खे। जैसे १ दुर्योधन २ दुःशासन ३ दुर्मुख ४ दुष्कर्ण ५ दुःसह ६ विकर्ण ७ कुंडोदर ८ बह्वाशी ६ दुर्विरोचन १० दुर्मद ११ विरावी १२ पाशी १३ दुराधार १४ दुर्मर्षण १५ महोदर १६ दीर्घरोम १७ ऊर्णनाभि १८ जलसंध १९ विकट २० कुंडाशी आदि २ नाम प्रजापक्षियों ने धरे। और साथियों ने १ सुयोधन २ सुशासन ३ पंडित ४ सुलोचन ५ सुबाहु ६ चित्र कुंडल ७ अयोबाहु ८ महाबाहु ६ भीमवेग १० भीमबल ११ भीमविक्रम १२ विशालाक्ष १३ दृढ़संध १४ जरासंध १५ अपराजित् १६ सोमकीर्ति १७ सुहस्त १८ सदःसुवाक् १६ सहस्रवाक् २० उग्रश्रवा आदि २। जो लोग १०१ नामों को अलग २ पुत्र मानते हैं, उन्हें मालूम हो अ० ६७ और ११७ में ये नाम क्रम पूर्वक दिये हैं, पर इस में बड़ा भेद दिखाई देगा जैसा अ० ६७ में सुषेण, कुंडोदर, महोदर, चित्रबाहु,का नम्बर ३३,३४,३५, ३६, है पर अध्याय ११७ में इन्हीं के क्रम से ४६, ५०, ५१ और १२ नम्बर हैं ॥

इसी प्रकार बाकी बीसियों के नम्बर उलट पलट दिखाई पड़ते हैं।

२ इन सूचियों में कई नाम दुबारा भी आए हैं, जैसे कुंडधार, धनुर्धर, दुर्मुख, आदि। और कई नाम एक सूचि में हैं दूसरी में बिलकुल नहीं जैसे पण्डित, प्रमथ, प्रमाथी, दंडी, विरज, आदि २ जो एक पिता के पुत्रों में होना असम्भव है।

३ इन के बिना छोटी २ सूचि और जगह भी आती है,

जैसे अ० ६३ और श्लो० १८-२० में उस में जो नाम हैं उन में से कई एक पहले की दोनों सूचियों में नहीं, जैसे, जय, सत्य-व्रत, पुरुमित्र, चित्रसेन आदि २।

४ सौ पुत्र वेद विरुद्ध भी है, जैसा लिखा है दशास्यां 'पुत्रानाधेहि" ऋ० १०।८५। ४५ एक स्त्री में अधिक से अधिक १० सन्तान लिखी है। लोक में बहुत सन्तान की निन्दा सुनी जाती है "बहुप्रजः कृच्छ्र मापद्यते" और 'बहुप्रजःनै ऋतिमाविवेश ऋ० वे०' अर्थात् बहुत सन्तान वाला दुःख वा दु.ख के मूल को प्राप्त होता है।

५ महाभारत के पढ़ने से मालूम होता है, कि गांधारी के बहुत गर्भ नहीं हुए, और उस का विवाह बड़ी उमर में हुआ, जिस से एक बार ही इतने पुत्रों का होना असंभव है, यदि विचार के लिये अनेक गर्भ मानें और विवाह समय गांधारी की आयु २० वर्ष समझें तो ५० वर्ष तक दो वर्ष के अन्तर में १५ गर्भ हो सकते हैं, (क्योंकि ५० वर्ष से ऊपर स्त्री के गर्भ धारण शक्ति नहीं रहती, ऐसा आयुर्वेद लिखता है) एक २ गर्भ में हर बार दो २ बाल मानें तो सारे जीवन में ३० से ज्यादा पुत्र नहीं हो सकते। स्मरण रहे हर बार किसी स्त्री को जोड़े (दो २) बालक हो नहीं सकते।

६ पौराणिक लोग जो यह मानते हैं, गर्भ तो एक ही हुआ, पर वेदव्यास जी ने उस के १०१ टुकड़े करके १०० पुत्र तथा एक दुःशला कन्या घी के बर्तन में डुबो २ कर बना दिये?

सो यह कल्पना वेदादि शास्त्र, मानुषी सृष्टि, तथा प्रकृति नियम, के विरुद्ध होने से माननीय नहीं।

७ कई भाई कहेंगे, कि मान लो म० धृतराष्ट्र के दश वा इस से भी अधिक रानियें थीं; एक २ से दश २ पुत्र हो कर १०० पुत्र हो गये होंगे ?

यह कल्पना भी निर्मूल है, क्योंकि महाभारत में (उपरोक्त अध्यायों में) साफ २ लिखा है, कि धृतराष्ट्र के दो ही भार्या थीं, एक गांधारी, दूसरी वैश्या, इसी लिये गांधारी से सुयोधन, और पुत्री दुःशला, वैश्या से महा मति युयुत्सु पैदा हुआ ॥

८ विचार के लिये यह भी कहा जाता है, कि यदि दुर्योधन के ही दुःशासन आदि नाम हैं, तो महाभारत के भिन्न २ स्थानों पर, दुःशासन आदि के भिन्न २ काम काज का वर्णन आता है, उस का क्या समाधान है ? सो इस का समाधान यह है,कि जैसे कर्ण, जरासंध, आदि भिन्न १ व्यक्ति हैं, और धृतराष्ट्र के पुत्र भी (पौराणिक मत में) इसी भान्ति दुःशासन विकर्ण आदि भिन्न २ व्यक्ति हो सकते हैं।

९ इन व्यक्तियों को दुर्योधन भ्राता, वा धृतराष्ट्र पुत्र भी कहा गया है, इस का क्या उत्तर है ? । इस का उत्तर यही है, कि बन्धुवत् होने से भ्राता राजा को अति प्रिय होने से पुत्र, कहलाये। देखो रामायण में अन्य माता का पुत्र होने पर भी लक्ष्मण को सहोदर कहा है।

देशे २ कलत्राणि देशेदेशे च बान्धवाः ।
तंदेशं नैव पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥

कन्या की परम इच्छा

पुत्र होने पर भी गांधारी ने विदुषी, वीर कन्या के होने की व्यासजी से परम इच्छा प्रगट की और उस के लिये हर एक कर्तव्य कर्म करने की रुचि प्रकाश की। इस पर व्यासजी ने वह उपाय बतलाया जिस के करने से गृहस्थी के सुयोग्य कन्या उत्पन्न हो सकती है *।

गांधारी ने इस उपाय को किया और उस के दुःशला नाम की कन्या पैदा हुई, जिस का बड़ी होने पर सिन्धुराज जयद्रथ के साथ, विवाह हुआ, जिस सिन्धुराज का वृत्तान्त अगले खंडों में आयेगा।

(गुरु खंड ३)

राजा द्रुपद और द्रोणाचार्य।

पुरानी रीति के अनुसार, भरद्वाज ऋषि के आश्रम में, सब वर्णों के विद्यार्थी मिल कर, विद्याभ्यास करते थे, इन दिनों वेद विद्या के, बिना धनुर्विद्या, तथा नीतिविद्या, के आचार्य भी ब्राह्मण ही हुआ करते थे। विद्यार्थियों में ऋषि भरद्वाज के पुत्र, द्रोण और पृषत् पुत्र (द्रुपद) भी शिक्षा पाते

---

१० इत्यादि विचारों वा प्रमाणों से हम इसी निश्चय को स्थिर करते हैं, कि महाराज धृतराष्ट्र के दो पुत्र तथा एक कन्या ही थी १०१ वा १०२ न थे।

* बृहदारण्यक उपनिषद् ६।४।१७ में लिखा है, पंडित तथा दीर्घयुषी पुत्री पैदा करने का उपाय।

थे। रहते २ गुरु पुत्र और राजपुत्र का आपस में अभिन्न हृदय हो गया। इसी प्रसंग में राजपुत्र ने कहा गुरुपुत्र! जब मैं राजा हुआ तो आपने दर्शन देना, आप मेरे मित्र हो, मैं मैत्री प्रकाश कर आनन्द लाभ करूंगा। इस प्रति वचन के पीछे, राजपुत्र विद्याकुशल हो कर राजगद्दी पर बैठ गया। इधर पिता के मरने पर, ब्रह्मचर्य पूर्ण कर, राजगुरु कृपाचार्य की बहिन गौतमपुत्री कृपी * से द्रोण जी का विवाह हो गया। और अश्वत्थामा पुत्र भी पैदा हो गया। संसार यात्रा के लिये भीख मांगना बुरा समझ द्रोणाचार्य राजा द्रुपद के पास गये और पूर्व सखा कह कर मैत्री सम्बन्ध दिखाने की ओर ध्यान दिलाया तब राजमद से मत्त राजा ने कहा—

न दरिद्रो वसुमतो ना विद्वान् विदुषः सखा।
न शूरस्य सखाक्लीवः सखि पूर्वं किमिष्यते।९
नाऽश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य ना राथि रथिनः सखा
नाऽराजा पार्थिवस्यापि सखि पूर्वं किमिष्यते॥

१३१। ११

अविवेकी पुरुष! दरिद्र, धनवानों के विद्या हीन विद्वानों, नपुंसक शूरवीरों के, कभी मित्र नहीं होते। वेद हीन, श्रोत्रिय

---

* द्रोण की स्त्री बड़ी पण्डिता और नित्य अग्निहोत्र किया करती थी। देखो आदि पर्व १३१। ४६

नातिकेशीं महाप्रज्ञा मुपयेमे महाव्रताम्।
अग्निहोत्रे च सत्रे च दमे च सततं रताम्॥

का, रथ विद्या शून्य, रथी का, जैसे मित्र नहीं होता इसी प्रकार अराजा राजाओं के मित्र नहीं हो सकते। हां यदि अन्न की भूख हो तो भोजन करलें। यह आशा विरुद्ध क्षत्रिय के उद्गार सुन, सम्मान प्रिय ब्राह्मण तड़प गया। और मन ही मन में इस का यथार्थ उत्तर सोचता हुआ वहां से चला गया। द्रोणाचार्य साधारण ब्रह्मविद्या ही के पंडित न थे किन्तु धनुर्विद्या के परम शास्त्री, परशुराम जी से सीख शस्त्र अस्त्र विद्या के भी आचार्य थे।

❋ वीर गुरु का वीर श्रेष्ठ पुत्र ❋

(अश्वत्थामा)

राजा द्रुपद से, रूखी सूखी बातें, सुन गुरुद्रोण के हृदय में, पहले से भी ज्यादा वीर विद्या में, श्रद्धा होगई थी। इस कारण उसने अपने पुत्र अश्वत्थामा को, वीर विषय में प्रसिद्ध शूर, महारथी बना दिया। जिसका वर्णन आप गीता १।८ में पढ़ते हैं, तथा महाभारत के भारी युद्ध का अन्तिम चिरजीवी सेनापति अश्वत्थामा ही था।

यस्मिन्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम्।
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति॥

द्रो० १९६। २९।

इसके जन्म समय, एक हज़ार गौ, योग्य ब्राह्मणों को द्रोणाचार्य ने दान की थी, जो लोग द्रोण को इतना दरिद्र मानते हैं, कि उसके घर एक भी गाय न थी और वह अश्वत्थामा के दूध मांगने पर आटे का सुफेद पानी पिलाकर

सन्तुष्ट किया करता था, वे कृपण जन द्रोण के अभिन्न हृदय शिष्य अर्जुन के ऊपर कहे वचन को बार २ पढ़ें। और ब्राह्मण तथा दरिद्र एकार्थ वाचक पर्याय ही है का मत त्याग करदें।

❋ महाबली महात्यागी धनुर्वीरकर्ण ❋

दुर्योधन का परम मित्र महादानी कर्ण, मातृपक्ष से कुमारी अवस्था मे कुन्ती के उदर और सूर्यदेव के वीर्य से पैदा हुआ, जननीने लोक निन्दा से डर कर एक सुन्दर तैरने वाली, मंजूषा (पिटारी) में उसे सावधानी से रख कर तथा वीर बालकों के उपयोगी कर्ण कुंडल* संजोय, साथ धर कुछ ऐसा प्रबंध कर, जिस से बालक कुछ दिन जीवन धारण कर सके, नदी में बड़े शोक, और दुःख के साथ प्रवाह दिया।

दैवयोग से "अधिरथ" नामी सूत ने उसे उठा लिया और निसन्तान होने के कारण उसने बड़े चाव से अपनी स्त्री "राधा" के अर्पण किया, जिसने इसे आत्मज तुल्य पाला, और सब संस्कार समय २ पर किये, इस का नाम "वसुषेण" रखा। कर्ण नाम पीछे से प्रसिद्ध हुआ। यह वीरता तथा धनुर्विद्या में अर्जुन से कम न था। दान में यहां तक प्रसिद्ध था कि एक बार इस से, इन्द्र ने कर्ण कुंडल मांगे, इसने तत्काल कानों को खाली कर, देदिये, तब से इसका नाम 'कर्ण' हुआ। कृतज्ञ तथा पक्षपालक ऐसा था कि एक बार सारे भारत का राज्य मिलने पर भी इसने इस लिये इन्कार कर दिया कि ऐसा राज्य

---

* साथ मिलने के कारण कई लोग कर्ण कुंडल और संजोय को सहज कहने लग गये, वरन स्त्री गर्भ से धातु मय भूषण आदि पैदा नहीं होसकते।

लेना आर्यत्व के विरुद्ध है, क्योंकि इसमें अपने उपकारी दुर्योधन के विपक्ष में होना पड़ता है।

* द्वितीय भाग *

(वनखण्ड १)

॥ महाराजा पाण्डु का वनवास ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयतु अग्निर्मेधां ददातु मे ॥ वेद

प्रथम भाग में कहे अनुसार राज्य का पिता समान पालन कर अपने बड़ों के समान, आत्म उद्धार, निमित्त दीक्षा, और तपका जीवन बिताने के लिये, म० पांडु ने ठीक समय पर वानप्रस्थ आश्रम में वनमें जाकर प्रवेश किया। और शास्त्र आज्ञानुकूल महाराणी कुन्ती और माद्री भी वन में साथ ही चली गईं।

अग्नीजुह्वन्नुभौकालावुभौ कालावुपस्पृशन् ।
एकांतशीलीविमृशन् पक्काऽपक्केन वर्तयन् ॥
पितॄन्देवांश्च वन्येन वाग्भिरद्भिश्च तर्पयन् ॥

११६ । ३३, ३५

पांडु वन में दोनों समय, संध्या अग्निहोत्र करने वा वेदादि शास्त्रों के विचार में एकान्त शील रहने लगे। तथा आश्रम में आये ऋषि मुनियों का वन के कन्द मूलों, शीतल

जलों और मधुर वचनों से सत्कार करते थे। स्वयं एक समय भोजन पक्कापक्क फल आदि करते और निज तप में यहां तक अभ्यासी होगये, कि कोई-एक अंग को शस्त्र से काट ले दूसरा चन्दन लेप कर जाय दोनों को एक समान ही अनुभव करते।

नियोग की आज्ञा

पांडु को, ऋषियों ने, सन्तान की महिमा सुनाते हुये, पुराने इतिहासों को सुना कर नियोग से पुत्रवान् होने का उपदेश किया। जिसका फल यह हुआ कि प्रजा के कल्याणार्थ उत्तम सन्तान पैदा करने के लिये—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्। ऋ० मं० १०।

के वेद वचन अनुसार देवी कुन्ती से एक दिन एकान्त में राजाने कहा—

सोऽब्रवीद्विजने कुन्तीं धर्मपत्नीं यशस्विनीम्।
अपत्योत्पादने यत्न मापादि त्वं समर्थय॥१२०।२७

देवि! इस आपद्धर्म को सन्तान पैदा करने के लिये तू भी समर्थन कर। और जीवित भर्ता वाली स्त्रियों के इतिहास भी बताये जिन्होंने पति आज्ञा से नियोग किये थे।*

---

१५ * आदिपर्व अ० १२०—१२२ तक में देखें। नियोग आपद् धर्म है, इसका प्रचार, जाति रक्षार्थ बताया है। अल ब्रूनी भारत की यात्रा की आठवीं सदी ईसा में आया था। तब तक इस का प्रचार यहां पर था देखो अल ब्रूनी का भारत हिन्दी १ भाग।

महाभारत में तो धृतराष्ट्र पांडु आदि पूर्वजों का जन्म

❀ धर्मराज का जन्म ❀

पुमांसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननुजायतांस्वाहा ।

सामवे० ब्रा० १ । ४ । ६

जो हीन विद्या, बुद्धि, शक्ति, आज भारत में है वह पहले समय में क्षीण न थी किन्तु यहां के नर नारी हरएक जीवन, विद्या, वा जीवन सहायक, गुणों के पूर्ण वेत्ता थे। इसी नियम से महाराणी कुन्ती ने अपने पिता के घर में रहते हुये दुर्वासा ऋषि से जनन विद्या, धात्री विद्या, पुरुष निर्माण कला, पूरे नियम से सीखी हुई थी। इसी के आधार पर, जब ऋषियों के उपदेश से महाराज पांडु ने पुत्र उत्पत्ति को धर्म कार्य समझा तो पति की धार्मिक आज्ञा को, मान कर उनकी सम्मति से उस समय के महा विद्वान् 'धर्म' नामक ऋषि को अपने आश्रम में सन्तान उत्पादन के लिये निमन्त्रित किया, और धर्म रूप पुत्र की कामना की।

और जब उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया, तब कुन्ती विधिवत् 'धर्म' ऋषि से संयोगवती हुई। और गर्भकाल में गर्भरक्षा आदि नियमों का उसने पूरी रीति से पालन किया। और यथा काल गर्भ के संस्कार पुंसवन, सीमन्तोनयन, वेद रीति से किये।

भी नियोग से ही है 'कई विद्वानों की सम्मति में तो नियोग की सन्तान की विशेष प्रशंसा की है' पर स्मरण रहे इस के अधिकारी विषयी स्त्री पुरुष नहीं होते।

जन्म वा नाम संस्कार

ओं इन्द्र ! श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि ।

ऋ० मं० २ सू० २१ मं० ६ ।

अंगादंगात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे ।
वेदो वै पुत्र नामासि त्वं जीव शरदः शतम् ॥

वैदिक धर्म के उद्धारार्थ किये, यज्ञ की पूर्ति का दिन, ईश्वर कृपा तथा म० पांडु और देवी कुन्ती की सत्य निष्ठा से आ पहुंचा, अर्थात् पूर्ण दश मास गर्भ में देवी गुणों से रचना पाने के पश्चात्, संसार के रस से पुष्ट होने, और पुष्ट हो कर, जगत् में धर्म की रक्षा करने के लिये, वर्षा ऋतु के अन्त में निर्मल शरद् ऋतु के आरम्भ आश्विन* शुक्ल पंचमी, ज्येष्ठा नक्षत्र प्रातःकाल ही चन्द्रवंश को उज्वल करने वाले वेदज्ञ माता पिता के अंग से अंग तथा हृदय से हृदय लेकर धर्मपुत्र पैदा हुये ।

जिसे सुन सारे वनवासियों में आनन्द ही, आनन्द, व्याप्त होगया । और बालक का जात कर्म संस्कार करने पर सब ऋषियों ने कहा—

---

* महाभारत के सम्पूर्ण पाठ करने से पता चलता है कि उस समय जन्मपत्री आदि का प्रचार न था, और हो भी नहीं सकता था क्योंकि मेषादि राशियों की कल्पना जिनके आश्रय ग्रह चाल चलते हैं, महाभारत के पीछे की है । म०भा० में १२ राशों का कहीं वर्णन नहीं ।

एषधर्मभृतांश्रेष्ठो भविष्यति नरोत्तमः ।
विक्रान्तः सत्यवाक्चैव राजा पृथ्व्यांभविष्यति॥

१२३ । ८

यह बालक धर्मधारियों में श्रेष्ठ सत्यवादी पराक्रमी पृथ्वी का राजा होगा। और सबने क्षत्रियवर्ण के योग्य इसका नाम " युधिष्ठिर " रक्खा ।

* भीमार्जुन का जन्म और नामसंस्कार *

अश्माभव परशुर्भव हिरण्य मस्तृतं भव ।
आत्मासि पुत्रमामृथाः सजीव शरदः शतम् ॥

पा० गृ० १ । १६ । १८ ।

युधिष्ठिर जन्म के १ वर्ष पीछे राजा ने कुन्ती से कुछ और वीर पुत्रों की कामना की, तब राणी ने क्रम से वायुदेव से, और इन्द्र से, दो पुत्र नियोग विधि से प्राप्त किये। जिन में से बड़े का नाम शतशृङ्ग वासी ऋषियों ने भीम, तथा छोटे का नाम अर्जुन रखा। इन के संस्कार भी पूर्व वत् हुए। यह तीनों पुत्र दो २ वर्ष के पीछे हुए।

नियोग की मर्यादा

कुन्ती की इस सन्तान विद्या को देख आश्चर्ययुक्त हुआ राजा, पुत्र लोभ से, और पुत्र उत्पन्न करने के लिये कुन्ती से बोला, इस पर कुन्ती ने कहा-राजन् ! नियोग आपद्धर्म है, इससे तीन से अधिक सन्तान पैदा करना ऋषि नहीं बताते । आपद्धर्म में भी नियोग से अधिक संतान पैदा करना, एक स्त्री के लिये, व्यभिचार हो जाता है।

नातश्चतुर्थं प्रसव मापत्स्वपि वदन्त्युत ।
अतः परं स्वैरिणीस्याद्बंधकी पंचमे भवेत् ॥

१२३ । ७७ ।

आप धर्मात्मा हो कर धर्म से अति क्रमण हुआ, यह वचन कह रहे हैं ।

माद्री पुत्रों का जन्म संस्कार

कुन्ती के दिव्य पुत्रों को देख, और कुन्ती की इस विद्या को स्मरण कर एक दिन माद्री ने, राजा से कहा "यदि आप कुन्ती से प्रेरणा करें, और वह मुझे भी इस (सन्तान सूत्र) को बता दे तो मैं भी कुन्ती और गांधारी की, तरह पुत्रवती हो जाऊं" यह सुन राजा ने एक दिन कुन्ती से कहा-

सा त्वंमाद्रीं प्लवेनैवतारयैना मनिंदते !
अपत्य संविभागेन परांकीर्ति मवाप्नुहि ॥

१२४ । १४

देवि ! माद्री को भी, इस प्रकार सन्तान प्लव, देकर तार, और यश को प्राप्त हो ! यह सुन कुन्ती ने माद्री को सन्तान सूत्र बताया, जिस के अनुष्ठान से माद्री अपनी रुचि अनुसार यथा समय, अश्विनीकुमारों से गर्भवती हुई । और उस ने समय पर दो पुत्र पैदा किये । जिन का नाम हिमालय वासी ऋषियों ने नकुल, तथा सहदेव, क्रम से रखा ।

पांडवों का पालन पोषण

युधिष्ठर आदि पांचों भाई एक वर्ष की आयु में ही पांच वर्ष के बालकों से प्रतीत होते थे, पांचों की गति, ग्रीवा, कान्ति, सिंहों के समान थी, ये पांचों ओर निर्भय हो विचरते हुए, ऋषियों के आश्चर्य को बढ़ाते थे। बन के क्रूर पशु इन से भय खाते, यह कभी किसी से भयभीत न होते थे। सारांश यह मनुष्य देह में ये पांचों नर सिंह पलते थे।

पांडवों का शिक्षण

ऋषिआश्रम में, रहते हुए युधिष्ठिरादिकों, ऋषियों ने साधारण धर्म सूत्रों की शिक्षा के साथ २ बहुत से वेदों के सूक्त भी स्मरण करा दिये, जो उन के भावी जीवन में सदा उत्साह, और धैर्य, विजय देते रहे।

म० पांडु का स्वर्गवास

जैसा कि पहले आ चुका है, महाराजा पांडु को क्षय रोग था, अतः उसकी निवृत्ति तथा तप दीक्षा के लिये ही वे राजधानी त्याग हिमालय के शतश्रृङ्ग नामक शिखर पर, वास करने लगे थे। और वहां रहते इन्हें बहुत (लगभग १२) वर्ष हो गये। एक दिन वसन्त ऋतु के जोर पकड़ने पर रोग जाग उठा तथा चिकित्सा करने पर भी राजा के प्राण स्वर्ग * सञ्चारी हो

---

* कई लोग राजा की मृत्यु को व्यभिचार से वर्णन करते हैं, पर उन्हें उस समय यह स्मरण नहीं रहता कि इतना विजयी, जितेन्द्रिय, वेदज्ञ, तपस्वी, वृद्ध राजा ऋषियों की तपोभूमि में, तप कृश होने की अवस्था में, इस कलंक का

गये । जिसे सुन दुःख तो सब आश्रम वासियों को हुआ, पर इन की छोटी राणी माद्री को तो इतना असह्य दुःख हुआ, कि वह उसे न सह कर उसी दिन पतिलोक वासिनी हो गई। जिस से महाराणी कुन्ती को बालकों के पालने का एक और भार प्रतीत होने लगा, जिसे उस ने बड़ी धीरता से उठाया, तथा सम्भाला ।

राजा का देह राजधानी में

सब ऋषियों ने विचार कर महाराजा पांडु तथा राणी माद्री का शव पालकी में रख युधिष्ठिरादि सहित हस्तिनापुर में पहुंचा दिया † और कुछ तपस्वियों ने साथ जाकर, सारा वृत्तान्त सुना दिया। जिसे सुन भीष्म आदि ने राज्य ऋषियों के अर्पण कर दिया। और फिर अर्पित राज्य को ऋषियों की सम्मति से ऋषियों के प्रधान ने वह राज्य चन्द्रवंश के भावी प्रतापी राजकुमार युधिष्ठिर के नाम पर, भीष्म आदि को ही सौंप दिया। और युधिष्ठिरादि का जन्म, पालन, पोषण, रक्षण, शिक्षण, वेदाध्ययन, आदि बता कर ऋषि तत्काल वहां से अपने आश्रमों को चले गये। और भीष्म आदि पीछे से महाराज पांडु के अन्तिम संस्कार करने के विचार में लग गये।

भागी नहीं बन सकता । यह केवल विरोधियों की क्रूर कल्पना है ॥

† हिमालय से हस्तिनापुर आने में ऋषियों को १७ दिन लगे, हस्तिनापुर देहली के पूर्वोत्तर की ओर ५० मील पर है (देखो आदि० १२६ । २६)

पांडु का दाहसंस्कार

भीष्म, विदुर, आदि वृद्ध पुरुषों, याज्ञिक ब्राह्मणों, प्रजा के मंत्रियों, तथा पांडु माता कौशल्या, और वृद्ध माता (दादी) सत्यवती ने शोकातुर होने पर भी शोक त्याग राजोचित विधि से वेद मंत्रों द्वारा, सुगंधित द्रव्य, और घृत से राजा पांडु तथा राणी माद्री का * दाहसंस्कार किया। और उसकी पुण्य कीर्ति के स्मरण में बहुत प्रकार के दानों से देश के विद्यालयों दीन गृहों आतुरालयों और पथिकाश्रमों के लिये दान किया। और

---

* कई लोग माद्री का सती होना मानते हैं। हमारे विचार में सती की रीति की कल्पना पौराणिक काल की रंगत का फल है, कारण १ यह रीति वेदादि शास्त्रों में विहित नहीं, २ यजुर्वेद अ० ४० मं० ८ में आत्म हत्या को नरक दायक बताया है। ३ कौरव वंश में यह प्रथा प्रतिष्ठित न थी, यदि होती तो महाराजा शान्तनु के साथ सत्यवती और विचित्र-वीर्य के साथ अम्बिका अम्बालिका, महाराज पांडु के साथ कुन्ती भी सती होती। और अगारी को महाराज जरासंध, दुर्योधन, कर्ण, वीर अभिमन्यु, गुरु द्रोण के साथ उन की स्त्रियें भी सती हो जातीं। ४ पुत्रवती को गर्भवती के तुल्य सन्तान पालन पुराणानुसार भी है। ५ रामायण में दशरथ मरण पर कोई स्त्री सती नहीं हुई, यद्यपि राणी केकई राजा की अति प्रिय थी। ६ श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त प्राचीन सभ्यता के १ भाग के पृ० ५७ पर लिखते हैं "सती होने की निष्ठुर रीति को प्रमाणित करने के लिये उत्तर काल में उसको बदल कर उलटा किया गया है। इस महा निष्ठुर आधुनिक हिन्दू

१२ दिन तक सारी प्रजा के सब वर्णों ने पांडुपुत्रों के साथ शोक में बिताये। और इस काल में सब जगह व्रतियों की भान्ति उपनिषद् तथा वेद की कथायें होती रहीं।

तीन देवियों का बानप्रस्थ

पौत्र पांडु के मृत्यु से शोकातुर देख, व्यास मुनि ने, एक दिन माता सत्यवती से कहा— माता! सुख का काल गुजर गया है, अब बन में जाकर तपस्वियों की भान्ति आप योगमार्ग का, अवलंबन करें! पुत्र के इस आश्रम सूचक उपदेश को, माता ने तत्काल अपनी स्नुषा (अम्बिका अम्बालिका) को भी बानप्रस्थ का उपदेश किया। और जब सब ने सहमति प्रकाश की, तब माता सत्यवती—

तथेत्युक्त्वा त्वं विकया भीष्म मा मंत्र्यसुव्रता।
वनंययौ सत्यवती स्नुषाभ्यां सह भारत॥

२७। १२

राष्ट्रपति भीष्म की, व्यवस्था लेकर दोनों पुत्रवधुयों के साथ बन को योग के लिये चली गयी। पाठक! धन्य था वह समय जब राजस्त्रियों तक आश्रम व्रतों को स्वयं पाला करती थीं।

रीति का ऋग्वेद में कोई प्रमाण नहीं। ७ हमारे विचार में यवनकाल में कुल रक्षा वा मान रक्षा के लिये इसको चलाया गया था॥

दूसरा भाग।

राजगृह वास

(शिक्षा खंड २)

१ मातृमान् पितृवान आचार्यवान् पुरुषोवेद।

२ ब्रह्म आयुष्मत् तद् ब्राह्मणै रायुष्मत्तेन-त्वाऽऽयुषा युष्ममन्तं करोमि ॥

आयुषे दीर्घायुत्वाय बलाय ब्रह्मवर्चसे।

ब्रह्मचर्य प्रवेश

बन में पैदा हुए, बन में पले, बन में बढ़े, तथा बनवासियों से ही आरम्भकी शिक्षा पाये, राजकुमार (पांडव) अब राजधानी में, राजकीय प्रबन्ध से, दूसरे दुर्योधन, युयुत्सु, आदि राजपुत्रों के साथ. शिक्षा पाने लगे, और उन्हीं के साथ विहार, क्रीडा, व्यायाम, आदि करने लगे। अब ये गुरु कृपाचार्य की अध्यक्षता में, सब प्रकार की विद्या सीखने में दीक्षित, हो कर पूर्ण रीति से, ब्रह्मचर्य के नित्य धर्मों का सब वर्णों के छात्रों के संग पालन करने लगे।

युधिष्ठिर की धारणा शक्ति

पहले दिन, सब नये ब्रह्मचारियों को गुरु ने, आश्रम नियम अनुसार यह पढ़ाया, १ धर्मं-चर, माऽधर्मम्। २ सत्यंवद, मा अनृतम्। ३ दीर्घं पश्यमाह्रस्वम्। दूसरे दिन गुरु ने, विद्यार्थियों से

पूछा पाठ स्मरण कर लिया है । तब सब ने कहा जी हां । फिर गुरु ने कहा तब आगे पढ़ो, तब और सब तो पढ़ने को आ गये, पर युधिष्ठिर न आये । गुरु ने पूछा तुम क्यों नहीं पढ़ते । युधिष्ठिर ने उत्तर दिया मुझे कल का पाठ दृढ़ नहीं हुआ, गुरु ने पूछा किस पद का अर्थ नहीं आता । शिष्य ने कहा, पद के अर्थ तो आगये हैं, पर आपने इनके आचरण की शिक्षा दी है, अभी मेरा आचरण दृढ़ नहीं हुआ, और जब तक मैं पढ़े को अनुष्ठान में नहीं ले आता, तब तक आगे नहीं पढ़ना चाहता । यह सुन गुरु बड़े प्रसन्न हुए, और दूसरे शिष्यों को भी ऐसी धारणा शक्ति बनाने की प्रेरणा की । इस दिन से युधिष्ठिर को प्रायः लोग "धर्म" के नाम से पुकारने लग गये । इन दिनों विद्यार्थियों को केवल पाठ्य पुस्तकें ही रटाई न जाती थीं किन्तु जिन विद्याओं से शिष्यों का मन, आत्मा, शरीर, उन्नत हो, तथा जिन से वे सुख दुःख में,आपत्ति संपत्ति में, अपने को, अपने देश,जाति, तथा धर्म को रक्षित रख सके, वे सब लौकिक पारलौकिक शिक्षायें वेद वेदांग इतिहास और गंधर्ववेद, धनुर्वेद, आयुर्वेद, अर्थवेद, आदि द्वारा दी जाती थीं । जैसे ब्राह्मण केवल धर्मशास्त्र के ही वेत्ता न होकर धनुर्वेद, आदि के भी आचार्य होते थे, वैसे क्षत्रिय केवल शस्त्रधारी न होकर संगीत, नृत्य, वादित्र कला, तथा वेद धर्म के, तत्वों के ज्ञाता, और शिक्षक भी होते थे । इसी नियम अनुसार युधिष्ठिर आदि ने सब विद्याएं यथा विधि सीखी हुई थीं ॥

भीम का बल

माता के संस्कारों ऋषियों के उपदेशों, हनुमान् (बज्रांगबली) के सम वीर्य होने, तथा नित्य के व्यायामों, से भीम का देह न केवल पत्थर की शिला से भी दृढ़ था (यहां तक कि एक वार भीम सहसा एक शिला पर गिर गये उससे शिला टूट गई) किन्तु उसका पराक्रम, स्फुर्ति में भी दूसरों से अधिक था। भागने, वस्तु उठाने, मट्टी फैंकने, खाने, पचाने, मल्ल युद्ध में भी दूसरों को पीछे, छोड़ जाया करता था। कई बार फल लेने को वृक्षों पर चढ़े लड़कों को वृक्ष को पाऊं की ठोकर से झुंझला कर नीचे गिरा देता। कई बार दश २ बालकों को भुजाओं में दबा कर, जल में न्हाने के लिये, ले जा कर जल मध्य में ही दबाये रखता, और व्याकुल होने पर बाहर निकालता। इस बल का सामुख्य न कर सकता हुआ दुर्योधन भीम के साथ कुछ द्वेष सा करने लग गया।

भीमादि की जलक्रीड़ा

एक दिन दुर्योधन ने, युधिष्ठिर से बनविहार, और जल क्रीडा आदि के, लाभ बता, गंगा तट पर जाने की, अनुमति मांगी, जिसे उन्होंने "बहुत अच्छा" कह कर स्वीकार कर लिया। तब पहले बड़े२ सुन्दर तम्बू, आसन, कम्बल, वस्त्र, विचित्र २ खेलने के साधन भोजन के नाना विध रस वा साधन, सेवक, भृत्य, वैद्य, आदि सहित भेज दिये। पीछे से आप सब बड़े २ दिव्य रथों, पर बैठ कर वहां हंसते, खेलने, गाते, बजाते, चले गये।

कुछ रमण करने के पीछे दुर्योधन ने भीम को भोजन में विष दे दी। जिस के प्रभाव से भीम गंगा तट पर ही निश्चेष्ट हो कर सोगया। तब दुर्योधन के साथियों ने, लता पाशों से.

भीम को बांध, गंगा में फेक दिया, जब गंगा वेग में बहते हुये उसे सर्पों ने डसा जिसका एक फल यह हुआ कि भीम का विष वेग कम होगया, और वह गंगा के पार जा निकला वहां से उसे नागराज* मिल गया, जो मातृ पक्ष से, भीम का नाना

---

१८ * नागराज को कई लोग सर्प जाति विशेष मानते हैं पर यह उनकी भूल है? क्योंकि महाभारत आदिपर्व अध्याय ३५, ३६ और ५७ में आये नाग वंश के मुखिया लोगों के नाम, और कामों से प्रतीत होता है ये नाम, वा काम, मनुष्यों के हैं तिर्यक्योनि, (पशु पक्षी सरीसर्प) के नहीं।

मुख्य २ नाम जैसे १ शेष २ वासुकि ३ धनंजय ४ वामन ५ नील ६ शबल ७ आर्यक ८ सुमना ६ आप्त १० शंख ११ नहुष १२ बाह्यकर्ण १३ कालीयक १४ संवर्तक १५ पूर्णभद्र १६ अपराजित १७ श्री वह १८ कौरव्य १९ धृतराष्ट्र २० सुबाहु २१ प्रभाकर २२ कर्दम २३ अनन्त २४ मानस २५ ऋषभ २६ पराशर २७ स्कन्ध २८ पूर्ण २९ पाल ३० सुकुमार ३१ हिरण्य बाहु ३२ शंकुकर्ण ३३ शकुनि ३४ सुषेण ३५ अव्यय भैरव ३६ वेदांग ३७ प्रमोद ३८ सर्व सारंग आदि हैं जो प्रायः ऋषि मुनि और आर्य राजाओं के नामों में आते हैं।

२—इनमें से शेष का ब्रह्मा के साथ वार्तालाप, और वासुकि, का इन्द्र के साथ मैत्री भाव लिखा है, जो सर्पों में होना असम्भव है।

३—आदिपर्व अ० ३६ श्लोक ५, १७ में शेष का जटा, चीर, धारण कर मुनि वेश में, तप तपना, तथा ब्रह्मा से धर्म बुद्धि रहने का, वर मांगना लिखा है।

लगता था। उसने अपने पास रक्खा तथा विषघ्न औषध और अन्न रस से इस का इलाज किया। इधर भीम को ढूंढने पर भी जब कुछ पता न चला तब माता कुन्ती ने विदुर से कहा

जटाचीर धरं मुनिम् ५ धर्मे मे रमतां बुद्धिः शमे तपसि चेश्वर १७

जो बिना उत्तम मनुष्यों के पशुओं में नहीं होसकता।

४—इसी पर्व के ३७। २५ में लिखा है नागोंने, सभा करके कहा राजा का अन्न विगड़े, तथा कई एक ने कहा हम वहां चल कर ऋत्विग् बनें और यज्ञ में विघ्न डालें।

अपरेत्वब्रुवंस्तत्र ऋत्विजोऽस्य भवामहे। यज्ञविघ्नं करिष्यामो दीयतां दक्षिणा इति॥ ये विचार भी मानुषी ही हैं

५—अ० ४३ श्लोक २३–२७ में लिखा है नागों को, तपस्वियों के रूप में, तक्षक ने राजा के पास भेजने को कहा, और वे फल फूल लेकर वहां गये।

ततस्तापस रूपेण प्राहिणोत्स भुजंगमान्॥ २३

फल दर्भोदकं गृह्यगाञ्जे नागोऽथ तक्षकः॥ २४

गतेषुतेषु नागेषु तापसच्छद्म रूपिषु॥ २७

६ अ० ४७ श्लोक १–२५ में लिखा है वासुकि नाग ने, अपनी बहिन, जरत्कारु ऋषि को पत्नीरूप से दी, और उस से 'आस्तीक' नाम ऋषि पैदा हुआ, जिसने अपने मातृकुल की रक्षा की। नाग कन्या का यह विवाह वेद मंत्रों से हुआ।

जग्राह पाणिं धर्मात्मा विधि मंत्र पुरस्कृतम्। ४७। ५

विदुरजी ! मालूम देता है, भीम को दुर्योधन ने मरवा दिया है, इस लिये मेरा मन व्याकुल हो रहा है। इस पर सब बात जानते हुये, विदुरने कहा कल्याणि ! ऐसा मत कहो, तुम्हारे

७—अर्जुन का, नागराज की कन्या उलोपी, से भी विवाह हुआ था। म० भा० आदिपर्व।

८—कालीयदमन के पीछे, कृष्ण की स्तुति, नागवधुओं ने, पुरुषवाणी में की थी।

९—पुराणों में नाग कन्या का विवाह श्रीकृष्ण से भी लिखा है। देखो भागवत पु०

१० आदिपर्व में दुष्यन्त के, वृद्ध प्रपितामह "ऋक्ष" तक्षक नाग की पुत्री ज्वाला से विवाहे गये थे, उस से उनका पुत्र, महाराज मतिनार, हुआ।

ऋक्षःखलु तक्षकदुहितर मुपयेमे ज्वालांनाम तस्यां पुत्रं मतिनारं नामोत्पादयामास। ९५

११—भीम को विष देने पर, उन के नाना (कुन्तिभोज के नाना) नागराज ने हो इलाज किया था। २५

१२—नागवंशी पितृ पक्ष से इन्द्रादि के पिता, कश्यप के वीर्य से, तथा मातृपक्ष से, विनता की बहिन कद्रू के पुत्र हैं। देखो आदिपर्व अ० ६५। इन संबंधों से नाग मनुष्य थे।

(प्रश्न) यदि नाग वंशी सर्प नहीं, और मनुष्य हैं, तो ये किस वर्ण में से हैं ? तथा कहां के रहने वाले हैं ?

(उत्तर) नाग लोग क्षत्रिय हैं, पहले ये भारत के भिन्न २ स्थानों यथा यमुना नदी, के इर्द गिर्द, सिन्धुनद (अटक) के आर वार, विन्ध्याचल (मध्य भारत) के मैदानों में, रहते

पुत्र दीर्घायु होंगे। भीम शीघ्र आजावेगा। इस बात के फैलने से कहीं दुष्ट दुर्योधन, और अनर्थ न कर देवे। कुछ दिनों पीछे पूरी शक्ति लाभ कर अरोगता दायक, जलों से स्वास्थ्य स्नान,

---

थे। मध्य प्रदेश की राजधानी नागपुर इन्हीं का नगर है वहां का राजा अब भी नागवंशी ही है।

२ रावलपिंडी के पास, भूगर्भ से निकला नगर, तक्षशिला (Taxila University) इन्हीं का, विश्वविद्यालय था।

३ ताशकन्द (सरहद्द) में इन्हीं के राजा, तक्षक का, तक्षखंड (राज्य भाग) था। ये लोग वर्ण के विचार से क्षत्रिय थे।

४ रूप सौंदर्य में इनकी कन्यायें, देवांगना, वा अप्सराओं के, समान होती थीं, इस का वर्णन, प्रायः सब इतिहास, काव्य, पुराण ग्रन्थों में आता है।

उदाहरण के लिए, देखो आदिपर्व अ० ६७ श्लोक ३१, ३२ में महाराजा शान्तनु, श्रीमती गंगा को, देखकर कहते हैं—

देवी वा दानवी वा त्वं गन्धर्वी चाथ वाऽप्सराः ॥ ३१

यक्षी वा पन्नगी वापि मानुषी वा सुमध्यमे ॥ ३२

सुन्दरि ! तू देवकन्या, दानव कन्या गंधर्व कन्या, यक्ष कन्या, नाग कन्या। अथवा मनुष्य कन्या है ? इत्यादि

दमयन्ती, जब वनक्रीडा में खेलती, थी तो उसे पक्षी (मनुष्य) शची वा घृताची अप्सरा ही, अनुभव किया करते थे। देखो नैषध काव्य सर्ग २ श्लोक १०६

अनुभवति शचीत्थं सा घृताचीमुखाभि-

र्न सह सहचरी भिर्नन्द नानन्दमुच्चैः।

कर भीम हस्तिनापुर में आगया, और उसने सब वृत्तान्त युधिष्ठिर से कहा परं उन्होंने इस वृत्त को फिर आगे न बढ़ा कर शान्ति का ही आश्रय लिया ॥

इति मतिरुदयासीत्पक्षिणः प्रेक्ष्यभैमीं,
विपिनभुवि सखी भिस्सार्धं मावद्धखेलाम् ॥

इस प्रमाण उद्धरण से मनुष्य कन्या, अप्सरा, की एक आकृति बताना है ।

१३ श्रीयुत वैद्य का मत है कि द्राविड लोग नागवंशी है, तथा श्रीकृष्ण, द्रौपदी, व्यास, के कृष्ण वर्ण, होनेका कारण भी, नाग वंशियों के वंश का कहीं से संमिश्रण ही है ।

१४ भारत के प्रायः सभी समालोचक, विद्वान् यही मानते हैं, देखो ? पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी कृत, कृष्णचरित्र, हिन्दी २ प्रोफेसर राजाराम जी शास्त्री संपादक आर्षग्रन्थावलि लाहौर कृत, महाभारत की, भूमिका । ३ लोकमान्य बालगंगाधर जी के भिन्न २ अनुसंधान वा लेख । ४ महाभारत मीमांसा हिन्दी पृ० १५१ । ५ बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान, धीरेन्द्र नाथ पाल, कृत श्रीकृष्ण चरित्र ।

१५ हरिवंश के आधार पर महाभारत मीमांसा में लिखा है कि सह्याद्रि की समतल भूमि में यदु के चार बेटोंने, राज्यस्थापन किया ये चारों बेटे नाग कन्यायों के गर्भ से पैदा हुये थे ।

१६ देवराज (इन्द्र) की अमरावती की भान्ति नागों की 'भोगवती' नगरी भी इसी देश में प्रसिद्ध है ।

परस्पर गुप्त रक्षा

इस के पश्चात् फिर भी, दुर्योधन ने, भीमादि पर प्रहार किये परं विदुर जी की सम्मति से, इन्होंने इसे प्रगट न कर आपस में ही, एक दूसरे की रक्षा, का पूरा प्रबंध कर लिया। जिस से सदा बढ़ती की ओर ही चलन गये।

गुरु द्रोण आचार्य का आगमन

ऊपर कहे अनुसार, कृपाचार्य्य से सब पांडव, कौरव, यादव, तथा कर्ण आदि सूत पुत्र, जब विद्या सीख चुके तो, इन्हें और ऊंची विद्या सीखने का ध्यान रहने लगा।

इतने में एक दिन राजकुमार, जब बाहर के मैदान में अभ्यास के लिए गुल्ली डंडा खेल रहे थे सहसा गुल्ली साथ के कुए में गिर गई। उसे ऊपर निकालने का, उन्होंने सब प्रयत्न कर डाला, परं फल कुछ न हुआ।

द्रोण दर्शन

तब वे निराश से हुये, एक दूसरे के मुख की, ओर देखने लगे। इतने में वहां एक बृद्ध ब्राह्मण (द्रोणाचार्य्य) आ निकला। उसने सब वृत्तान्त देखा, और सुना, तब वह बालकों को, संबोधन कर बोला "तुम सब कौरव वंश में और क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुये हो? और अस्त्र विद्या भी सीखे हो i तो भी तुम कुये से गुल्ली नहीं निकाल सकते। तुम्हारी सब विद्या व्यर्थ है। इस प्रकार की निर्भर्त्सना करके, द्रोणने, अपने हाथ की अगुंठी कुये में डाल दी! और यह कहा देखो गुल्ली, और अंगूठी, मैं दोनों बाहर निकालताहूं यह कह कर उन्होंने वन से मुठीभर इषिका (नलीदार घास)

ली और ऐषिक अस्त्र से मंत्रित कर ज्योंही उन्होंने कुये में फैंकी, त्यों ही चमत्कार यह हुआ, कि पहले घास की एक नाली कुये में जा घुसी, फिर उसमें दूसरी फिर दूसरी में, तीसरी, इस प्रकार जब कुये के ऊपर तक, इषिकाओं की पंक्ति बन्ध गई, तब द्रोण ने गुल्ली सहज ही ऊपर निकाल ली। पश्चात् एक बाण ऐसी फुर्ती से कूये में मारा कि अंगूठी लेकर बाहर आगया। यह हस्तकौशल देख, राजपुत्रों को बहुत ही आश्चर्य तथा आनन्द हुआ। और उन्होंने शीघ्र ही, जाकर महाराज भीष्म को, इनका पता दिया।

कौरव द्रोण की शिक्षा में

भीष्म राजकुमारों की उच्चतम शिक्षा के लिये पहले ही गुरु द्रोणाचार्य की, बाट देख रहे थे अतः उनका आगमन सुन, उन्होंने अपने भाग्य को सराहा। और फिर सब मंत्रियों, से विचार कर राजकीय ठाठ से, धनुर्वेद के आचार्य को राजमंदिर में लाने का यत्न किया। उन के आने पर अर्घ्य आदि से पूजन कर, आने का कारण पूछा, तिस पर द्रोण ने द्रुपद की मैत्री, और* दुर्व्यवहार का वर्णन कर, कुरुवंश का अभ्युदय करने का संकल्प प्रगट किया।

---

१६ * आदि पर्व अ० १३१ में लिखा है राजा द्रुपद, द्रोण के पिता, भरद्वाज आश्रम में, जब विद्या सीखते थे, तब द्रोण के साथ खान, पान, शिक्षण तथा अन्योन्य अनुकूलाचरण से गूढ़ मित्र बन गये। तथा चलते समय द्रोण से उन उपकारों के फल में, कह आये कि जब मैं राजा हूंगा तो आधा राज्य आप को दूंगा क्योंकि गुरु पुत्र होने के कारण आप मेरे पूज्य

गुरु द्रोण का वचन सुन भीष्म ने कहा-ब्रह्मन् !

कुरुणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम् ।
त्वमेवपरमोराजा सर्वे च कुरवस्तव ॥

१३१ । ७८

कौरवों का यह सारा धन, राज्य, राष्ट्र, सब आप के अधीन है, यही नहीं किन्तु आप इस के मुख्य राजा हैं, और सब कुरुवंशी आपकी आज्ञा में होंगे। इस प्रकार पूजा सत्कार से, प्रसन्न कर, द्रोणाचार्य को, विद्या दान के लिये प्रेरणा की

भ्राता, तीर्थ और परम मित्र हैं। और जब इस प्रतिज्ञात धन (राज्यभाग) को लेने के लिये द्रोणाचार्य ने जाकर प्रतिज्ञा स्मरण कराते हुए, कहा कि आप मेरे मित्र हैं, मित्र कार्य कीजिये। तब धन मद से, अन्ध हुए, द्रुपद ने कहा ब्रह्मन्।

नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा । ७१।
ना राजा पार्थिवस्यापि सखि पूर्वं किमिष्यते ।
अहं त्वया न जानामि राज्यार्थे संविदं कृताम् ॥ ७२॥

जैसे वेद विहीन, वेद वेत्ता का, अरथी, रथी का, मित्र नहीं होता, वैसे अराजा, राजा का, भी मित्र नहीं होता। तुम भूल से मुझे, पूर्व मित्र समझ रहे हो। और मैंने कभी तुम से आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी यह मुझे तो याद नहीं। हां यदि तुम्हें भूख हो तो एक दिन का भोजन ले जावो। इस व्यवहार से अप्रसन्न हो द्रोण कुरुराज्य में चले गये थे। और यही भीष्म को कह सुनाया था।

जिसे स्वीकार कर लेने पर समस्त राजकुमार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सूत, आदि अद्भुत विद्या, सीखने के लिये, दूर २ देशों से आ गये, और खान पान का प्रबन्ध राज्य की ओर से, होता रहा ॥

सब राजपुत्रों को, धनुर्विद्या, अस्त्र विद्या, सिखाते हुए भी, अर्जुन की गुरु भक्ति, बुद्धिमत्ता, ग्राहक शक्ति, तथा चतुरता को, देख गुरु की उस पर विशेष कृपा रहती । एक बार गुरु ने सब शिष्यों को जल लाने के लिये पात्र दिये, और कहा, इन्हें शीघ्र पानी से भर लाओ । तब और सब तो नदी पर, पानी लेने गये, पर अर्जुन ने वहीं वारुणास्त्र से, कमंडलु जल से भर दिया, जिसे देख, गुरु बड़े प्रसन्न हुए । एक बार भोजन करते, अर्जुन का दीपक हवा से शान्त हो गया, तब अर्जुन ने अंधेरे में ही भोजन किया, तब उस ने विचारा कि अंधेरे में. हमारा हाथ भूल कर भी दुसरी ओर न जाकर, ठीक मुंह की ही तर्फ जाता है, यह केवल दृढ़ अभ्यास ही का फल है । इस से जान पड़ता है, कि ऐसा ही दृढ़ अभ्यास, करने पर, हम अंधेरे में, निशाना भी, लगा सकते हैं ! इस प्रकार सोच कर उसी दिन से अर्जुन, रात को अंधेरे में निशाना मारने का अभ्यास करने लगे । इसी अभ्यास से वह पूर्ण शब्दवेधी * बन गये । इसी प्रकार अर्जुन की, क्रान्ति का,

---

*अर्जुन का यह शब्द वेध, कवि कल्पना ही नहीं किन्तु एक घटना है, और अनेक, लक्ष्यवेधी, भारतीय क्षत्रियों ने इस घटना को दुहरा कर संसार को चकित कर दिया है। गजनी में शहाबुद्दीनगौरी के दर्बार में चन्द्र कवि और पृथ्वीराज का साका प्रसिद्ध है। जब पृथ्वीराज को पकड़ कर शहाबु-

एक वृत्त लिखा है, कि एक दिन गुरु द्रोण सब शिष्यों को संबोधन कर, बोले हमारा एक कार्य है, कौन करेगा। तब और शिष्य तो चुप रहे अर्जुन झट बोल उठे, कि मैं प्रतिज्ञा करता

शहाबुद्दीन गज़नी में, लेगया। पृथ्वीराज की दोनों आंखे निकाल दीं। १०० मन का लोह जंजीर पांवों में डाल दिया। इस दुरावस्था में उन्हें, मिलने चन्द कवि गये, ज्योंही मित्र की बाणी सुनी १०० सौ मन का जंजीर लेकर खड़े होगये। उस पीछे कहते हैं जंजीर और भी वज़नी कर दिया गया। इस पृथ्वीराज, के लक्ष्यवेधन, विषय में इतिहासकार लिखते हैं, कि सौ२ मन के सात लोह तवे, बेधने का विज्ञापन दे कर, एक भारी दरबार किया गया। और सामने, बड़ी रक्षा में, तन छुपाये बादशाह बैठा। चन्द कवि ने शाह को कहा जब आप शिर ऊँचा कर शब्द निकालोगे तभी राजा तवों को बेंधेगा। जब सब लोग अपने २ स्थानों पर बैठ गये, तो चन्द्र कवि ने नीचे की कविता पढ़ी।

दोहा—चार वांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
एते पर सुलतान है, मत चूको चहुआन ॥१

और भी] इही बाण चहुं आन ! राम रावण उत्थप्यो।
इही बाण चहुं आन ! कर्ण शिर अर्जुन कट्यो ॥२
इही बाण चहुं आन ! शम्भु त्रिपुरासुर थप्यो।
इही बाण चहुं आन ! भ्रमर लछमन से वेध्यो ॥३
सो बाण आज तो कर चढयो, चढ़े विरद सांचो चवे।
चहुंआन राज संभर धनी, मत चूके मोटे तवे ॥ ४ ॥

इस संकेत पर निश्चय कर ज्योंही शहाबुद्दीन ने, शिर

हूं, कि गुरु कृत्य, सर्वतो भाव से करूंगा। यह सुन आचार्य और भी प्रसन्न हुए।

ऊँचा कर, "शाबाश" कहा, झट पृथ्वीराज चहुँआन ने, बाण से बादशाह का शिर उड़ा दिया। दरबार में हाहाकार, और आर्यों की लक्ष्य वेध, विद्या का, चमत्कार होगया।

२—वर्तमान में भी पाठकों ने, धनुर्विद्या विशारद, राणा सुलतान सिहजी, का नाम सुना होगा। आप क्षत्रिय हैं, आप का वंश संबंध लीमडी के राजकुल से मिलता है आप का जन्म १९२० वि० में हुआ १० वर्ष की आयु में आप के चचा, केसरीसिंह, इन्हें गोद में बिठा बन्दूक चलाना, निशाना, लगाना, सिखाते थे। अभ्यास से आप ३०। ३५ प्रकार के शस्त्र प्रयोग करने लग गये। जैसे इषिकास्त्र प्रयोग, भयानकवेध, अदृश्य वेध, चल लक्ष्यवेध, मत्स्य वेध, शब्दवेध आदि २ आपके पुत्र शूरसिंह भी लक्ष्यवेधी हैं। हमने एक बार आप के दर्शन ला० लाजपतराय जी की कोठी में लाहौर किये थे।

३—राणा सुलतान सिंह की तरह, एक और भी आधुनिक अर्जुन हैं,। आप का नाम लल्लू भाई कल्याण जी शाह है, आप भावनगर (काठियावाड़) के रहने वाले स्वेताम्बरी जैन वैश्य हैं। आप का जन्म सं० १९३२ में हुआ था।

जिन प्रयोगों को राणा जी करते हैं। उन सब को आप भी करते हैं। हमने भी येवत माल (बरार) में १९०७ में आप के दर्शन किये हैं।

४—दक्षिण के एक लक्ष्यवेधी का, पता "सरस्वती" के आधार पर "भारतभारती" में लिखा है, कि वह बन्दूक भर कर

विचित्र वेध

उस समय बाणों का वेध, इतना विचित्र था, कि आजकल के विद्वान् समझने में भी असमर्थ हैं। एक बार का जिकर है, कि गुरु द्रोण शिष्यों सहित, गंगा स्नान को, गये। ज्यों ही वे गंगा में, स्नान करने लगे, उनका पाऊँ एक मगरने, पकड़ लिया। यह देख गुरुने शिष्यों को पुकारा। तब झट अर्जुन ने जल में मग्न, मगर के मुख में, शब्दवेधी बाण ऐसी सावधानी से छोड़ा कि मगर मर गया, पर गुरु के पाऊं में कोई चोट न आई। एक और समय का वृत्त है, कौरव पांडवों सहित गुरु द्रोण वन विहार को गये, वहां इन के शिष्य* एकलव्य (निषाद जाति के) भी शिकार

अपने भाई, और पुत्रों से, जब अभ्यास करता है। दोनों ओर से दोनों फायर करते थे, पर दोनों तरफ ही गोलियां बीच में परस्पर टकरा कर लड़ जाती थीं, और चिपटी हो कर दाहने बाएं गिर पड़ती थीं। इस प्रयोग में कभी गलती नहीं हुई। अर्जुन आदि जो बाणों से बाणों को बीच में ही काट देते थे यह उसी का अनुकरण है।

२१ * पौराणिक कथा के, आधार पर, कहा जाता है, कि एकलव्य को अति शूद्र जान, गुरु द्रोण ने, विद्या देने से इनकार कर दिया था? हमारे विचार में उस समय के विद्वानों तथा आर्यसभ्यता को बदनाम करने के लिये, यह मिथ्या कलंक, विरोधियों ने घड़ा है। क्योंकि जो द्रोण कर्ण से, सूतपुत्र, युयुत्सु से वैश्यापुत्र, संजय से सूतों, को पूर्ण शिक्षा देता है, तथा जिस समय दासीपुत्र, विदुर और संजय का राजा और राजसभा में अखंड मान हो, उस समय विद्यार्थी को विद्या से निराश करना कहना "निर्मूल घडन्त ही है॥

खेल रहे थे। कौरवों का कुत्ता उसे भौंकने लगा उसने सात बाण कुत्ते के खुलते मुख में ऐसी सफाई से मारे कि उस के जखम कोई न हुआ पर बोलना बन्द होगया। तब से यह विद्या भी अर्जुन ने सीख ली।

२—धनुर्धारी एक लव्य का, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में, भेंट लेकर, आना और उसे आदर सहित, महाराज का स्वीकार करना, बतलाता है, कि तब तक आर्यजाति में दूसरों से संकोच न था। देखो सभापर्व

३—सभापर्व अ० ३७। १४ तथा ४४। २१ में शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की पूजा का विरोध करते हुये एकलव्य को कृपाचार्य, द्रुपद. भीष्म. (रुक्मणी पिता) आदि वृद्ध और महारथियों की, पंक्ति में गिना है, जिससे सिद्ध है, जाति के कारण उस समय, किसी से द्वेष न किया जाता था।

शंका-हो सकती है एकलव्य को, उपरोक्त मान, उसके बढ़ जाने के कारण, पीछे से मिला होगा ? यह मिथ्या है कारण जाति मानने वाले, पुरुष बल के सामने नहीं झुका करते, जैसे लंबे यवन राज्य में, यवनों तथा इस चौड़े फरंगी राज्य में फरंगियों की, किसी जाति अभिमानी ब्राह्मण ने कभी चौका में बिठा कर पूजा नहीं की।

२—यह भी शंका की जाती है कि आदि १३२। ५६ में लिखे अनुसार एक लव्य का, दक्षिण अंगुष्ठ, गुरुद्रोण ने क्यों कटवा लिया ? उत्तर में कहा जाता है, यह गुरुदक्षिणा की, परिपाटी है, इस में शिष्यभक्ति जानने के लिये, गुरु को कड़े से कड़े, परीक्षण, का भी अधिकार है। इस परीक्षा में पूरे

विद्या समाप्ति

जब गुरु ने, देखा ये सब, धर्म विद्या, नीति-विद्या, वेदांग विद्या, पशुशिक्षा, पशुरक्षा, अश्व चालन विद्या, पाक विद्या, संगीत विद्या, इन्द्रिय संयम विद्या, राष्ट्र वर्धन विद्या, शस्त्र निर्माण, शस्त्र प्रयोग आदि विद्याओं में निपुण होगये हैं। तब सब विद्याओं की अपने तौर पर सब को परीक्षा ली, और लक्ष्य वेध परीक्षा के लिये, एक बनावटी (काठ का) भासपक्षी रख कर, उस का शिर काटने को कहा जिस के काटने में अर्जुन सब से प्रथम रहे और गुरुने "ब्रह्मशिर" नामक अस्त्र इनाम में दिया। भीम दुर्योधन गदा युद्ध में, कर्ण धनुष चलाने में, हमारे चरित्र नायक, म० युधिष्ठिर रथ युद्ध में, और उन के भाई अर्जुन, सब विषयों में निपुण रहे। अब एक प्रकार से इनकी विद्या सीखने की समाप्ति होगई।

——

उतरने वालों को, गुरु विद्यादान से, कृतकृत्य भी कर दिया करते थे।

३ – क्या यह सत्य नहीं उसका दाहना अंगूठा काटकर उसे दूसरे के सामने निर्बल कर दिया? नहीं २ यह कदापि, सत्य नहीं, किन्तु उसे विशेष विद्या सिखा कर सव्य साची बना दिया। पाठकों को स्मरण होगा, अर्जुन सदा बाएं हाथ से धनुष चलाता था, पर किसी से निर्बल तो, क्या सब से अधिक बलवान्, धनुर्धारी था। इसी प्रकार एकलव्य निषाद था। आजकल भी निषाद, बिना अंगूठा लगाये पूरा निशाना लगाते हैं।

परीक्षा खंड ३

(रंगभूमि निर्माण)

॥ स्नातक दर्शन ॥

१ आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणंकृणुते गर्भमन्तः । तं रात्रीस्तिस्रः उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टु मभिसंयन्ति देवाः । अथर्व ११।५।३

२ योवैतां ब्रह्मणो वेदामृते नावृतांपुरम् ।
तस्मै ब्रूह्म च ब्राह्माश्च चक्षुप्राणं प्रजांददुः ॥

अथ० १० । २ । २९ ।

जब युधिष्ठिर, और उसके साथी, वेद ज्ञान, ब्रह्मचर्य, तथा शस्त्र अस्त्र विद्या, के सब अंगों में, निपुण होगये, तब आचार्य ने इनकी स्नातक परीक्षा, लेने के लिये राज्य के मुखिया, धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह, आदि को परीक्षार्थ, एक बहुत भारी क्षेत्र (जो कई मीलों में था) तयार कराया, जिसमें ऊंचे, नीचे; भूभाग मिटा कर, भूमि समतल की गई । चारों ओर से धूल दबाने के लिये, जलकला, लगाई गयी । उसमें एक विशेष स्थान, रंगभूमि के, नाम से बनाया गया, जिस में बैठ कर, सब नर, नारी, ऊंच, नीच, ब्राह्मण से शूद्र पर्यन्त, वीरों का कर्तव्य, देख सकें । रंग भूमि में हर एक नारी नर की प्रतिष्ठा के अनुकूल ही आसन, मंच, पीठ, शय्या,

स्थंडल आदि सोने, चान्दी, रत्न, मोती, फूल, पत्रों, से सजे हुये, बनाये गये। बीच में सब से ऊंचा, एक विशेष स्थान प्रेक्षागार, बना हुआ था, जो मणि मुक्ताओं से, सुवर्ण पत्रों, द्वारा बड़े २ शिल्पियों ने तयार किया था।

गांधारी च महाभागा कुन्ती च जयतांवर।
स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः सप्रेष्या स परिच्छदाः॥
ब्राह्मणक्षत्रियाद्यश्च चातुर्वर्ण्यं पुराद्द्रुतम्।
दर्शनेप्सु समभ्यगात्कुमाराणां कृतास्त्रताम्॥

१३३।१६

नियत समय पर चारों वर्णों के पुरुष, तथा महारानी गान्धारी, वीरमाता कुन्ती, राज घरों की स्त्रियें, तथा उन की दासीयें, और देश की अन्य स्त्रियें, पुरुषों की भान्ति* अपनी२ कक्षा (विभागों) में बैठ गई।

---

२२ * स्मरण रहे, पूर्व समय में आर्य लोग, वर्तमान की तरह, स्त्रियों को कैद में, बन्द न रखते थे। श्री रमेशचन्द्र दत्त, इस पर आर्यन सभ्यता १ भाग पृ० १६४ में लिखते हैं स्त्रियें, यज्ञ और धर्मों के काम में, सम्मिलित होती थीं, वे बड़े २ अवसरों पर, बड़ी सभाओं में जाती थीं। वे खुल्लमखुल्ला, आम जगहों में, जाती थीं, वे बहुधा उस समय के शास्त्र, और विद्या में, विशेष योग्यता पाती थीं, और राजनीति तथा शासन में भी, उनका अधिकार था। आगे लिखा है तीनहजार वर्ष पहले, भारतवर्ष में, स्त्रियों का, जितना अधिक मान्य था, उतना ग्रीस वा रोम में सब से सभ्य समय में भी कभी नही था।

आचार्य का आगमन

जब सब लोग, नियम पूर्वक बैठ गये, ठीक वक्त पर, अपने विद्वान्, तथा बली पुत्र अश्वत्थामा सहित, गुरु द्रोणाचार्य, रंग भूमि में पधारे, जिन्हें देख सारे जनसमूह ने, हृदय से प्रणाम कर, कौतुहल देखने की उत्कण्ठा की। जैसे आजकल विश्व विद्यालयों में, कार्यक्रम सुनाया जाता है, सुनाया गया और कार्य आरम्भ हुआ। सबने प्रथम तलवार, पकड़ने, चलाने, शत्रु खड्ग तोड़ने, अपने पर वार सहारने, अनेक शत्रुओं से, अकेले को बचाने के तथा धनुषवाण के भिन्न २ दृश्य दिखाये गये। फिर घोड़े, हाथी रथ आदि की सवारी की, नाना विद्यायें दिखाई गई, अर्थात् दौड़ते घोड़े से, उतरना, चढ़ना, शत्रु को गिराना अपने को गिरने से, बचाना, घोड़े के थकने पर, जल्दी में घोड़ा बदलना, शत्रु का वाण आने पर, घोड़े पर, लेटजाना, या घोड़े के नीचे होकर शत्रु के प्रहार से बच कर झट ऊपर आ, शत्रु पर प्रहार करना आदि २ कौतुक दिखाये।

अर्जुन का हस्त लाघव.

इस के बाद गदायुद्ध में, भीम, दुर्योधन का, द्वन्द युद्ध हुआ, और क्रोध बढ़ने पर अश्वत्थामा ने, गुरु आज्ञा से, उन्हें अलग २ कर दिया। इस के बाद सोने का कवच, पहने, हुये, धनुष बाण लेकर अर्जुन जयघोष के साथ रंगभूमि में उपस्थित हुए। तथा जयघोष के शान्त होने पर करतब दिखलाने लगे।

आग्नेयेनासृजद्वह्निं वारुणेना सृजत्पयः।
वायव्येनासृजद्वायुं पार्जन्येना सृजद्घनान्॥

१३५। १९

भौमेन प्राविशद्भूमिं पार्वतेना सृजद्गिरीन्।
अन्तर्धानेन चास्त्रेण पुनरन्तर्हितोऽभवत्॥ २०
क्षणात्प्रांशु क्षणाद्भ्रस्वः क्षणाच्च रथधूर्गतः।
क्षणेन रथमध्यस्थः क्षणेनावतरन्महीम्॥ २१
भ्रमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम्।
पञ्चबाणान संसक्तान्संमुमोचैक बाणवत्॥२३
गव्ये विषाणकोषे च चले रज्ज्व बलंविनि।
नि च खान महावीर्यः सायकानेक विंशातिम्॥२४

अर्जुन ने, अग्नि अस्त्र से, अग्नि, वारुण अस्त्र से जल, वायव्य से वायु, तथा पार्जन्य से बादलों को, पैदा किया। वह कभी भूमि में, कभी पर्वतों में, प्रविष्ट हो जाता। कभी रंगभूमि में, कृत्य दिखाता २ अन्तर्धान हो जाता। क्षण में अपने शरीर को छोटा, क्षण में बड़ा कर लेता। क्षण में रथ के धुरे में आ जाता, क्षण में अन्दर चला जाता, क्षण में रथ से उतर भूमि में ठहर जाता। उसने लोहे के चक्रवत् घूमने वाले सूअर के मुख में एक ही बाण के समान अलग २ पांच बाण एक ही बार छोड़ दिये।

इस महापराक्रमी ने, गाय के सींग में, जो रस्सी के सहारे घूम रहा था, एक ही बार २१ बाण भर दिये। इसी प्रकार अनेक प्रकार के शस्त्र, अस्त्रों के, प्रयोग दिखाए। इस के पीछे

कर्ण ने भी अर्जुन वाले सारे ही, कर्म करके दिखलाए। जिन्हें देख दुर्योधन ने उस की प्रशंसा करते हुए, उस को मित्र बना लिया। और पूछा अब तुम मित्र हो चुके हो कोई इच्छा हो तो कहो, मैं पूर्ण करूंगा।

मैत्री में राज्यदान

न स सखा यो न ददाति सख्ये ॥

ऋ० १०।११७।४

दुर्योधन का विश्वास देख, कर्ण ने कहा "मैं अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूं"? यह सुन राजपुत्र अर्जुन ने, कर्ण को कुछ अभिमान सूचक शब्द सुनाए। उसका जवाब देते हुए सूतपुत्र कर्ण ने इस रंगभूमि पर अपना समान अधिकार जताते हुए कहा।

रंगोऽयं सर्व सामान्य किमत्र तव फाल्गुणा !

१३६।१६

अर्जुन ! यह रंग (विद्या परिचायक क्षेत्र) सब साधारण का है। इस में तुम्हारा क्या विशेष अधिकार है *? हां यदि बल है, तो अभी गुरुजनों के सामने दिखाओ।

इस पर अर्जुन पक्ष के, किसी पुरुष ने कहा अर्जुन राज पुत्र है, यह "अराजा से द्वन्द्व युद्ध नहीं करेगा"। यह सुन झट दुर्योधन ने, खड़े हो कर कह दिया "यदि अर्जुन अराजा से द्वन्द्व युद्ध नहीं कर सकता, तो मैं आज से ही कर्ण को,

---

* इस से प्रतीत होता है, उस समय, प्रजा का हरएक पुरुष, सार्वजनिक स्थानों में, राजकुमारों के समान ही अपना अधिकार समझता था।

अंगदेश, का राज्य देकर, अंगराज बनाता हूं, अब यह अंग राजा से युद्ध करे । और यह कह कर नियम पूर्वक, अंगदेश के सारे अधिकार दुर्योधन ने उसे दे दिये । इस सारे अनुष्ठान को करते २ सूर्य अस्त होने, और कलह भेद, से द्वन्द्व युद्ध तो न हो सका, पर कर्ण की दुर्योधन से मैत्री, और कर्ण अर्जुन का विरोध सदा के लिये दृढ हो गया । पांडव कौरवों की विद्या को देख, भीष्म, धृतराष्ट्र आदि ने और देश वासियों ने गुरु द्रोण को विद्या, तप, और उदारता की बड़ी प्रशंसा वा प्रतिष्ठा की ।

गुरु की दक्षिणा

शिष्यों को, युद्ध विजयी गुरु ने, गुरु दक्षिणा मांगते हुए कहा " पञ्चालराज द्रुपद को, युद्ध में जीत कर मेरे पास लाओ, यह मेरी गुरु दक्षिणा है " आचार्य का, गुरुदक्षिणा रूपी ऋण, चुकाने के लिये रथ, घोड़े आदि की चतुरंगिणी सेना लेकर, कौरव तथा पांडव, पञ्चाल देश में गये । तथा देर तक युद्ध, करते रहे । अन्त को भीम गदा लेकर, सेनाग्रणी बन, और अर्जुन धनुष धारण कर आगे बढ़े, और कुछ दिनों में ही राजा को मंत्रि मंडल के साथ कैद कर, और पञ्चाल राज्य को जीत गुरु दक्षिणा में राजा और राज्य को, आचार्य के चरणों में, भेंट धर, बोले पूज्य गुरु जी ! आप की आज्ञानुसार पञ्चाल राज उपस्थित है ?

इसे देख गुरु ने अपने शिष्यों को जयाशी दी ।

* राजा को (प्राण) वर दान *

अर्जुन आदि वीरों से घिर कर डरे हुए, राजा द्रुपद को, गुरु द्रोण, हंस कर बोले—

मा भैः प्राणभयाद्वीर ! क्षमिणो ब्राह्मणा वयम् ॥
२३८ । ६६

वरं ददामि ते राजन् ! राज्यस्यार्ध मवाप्नुहि ॥६८

अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति ।
अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन ! मयातव ॥ ६९

वीर ! आप प्राणों का भय न करें, हम ब्राह्मण क्षमा वाले होते हैं । मेरी आश्रम वास से, ही आप से प्रीति थी । समय पर आप ने कहा "अराजा राजा का मित्र नहीं हो सकता" ! इस लिये हे यज्ञसेन ! मैंने राज्य प्राप्ति के लिये, यत्न किया । अब मैं तुम्हें * वर देता हूं, तू इस वर में, मुझ

---

* वर और शाप के सम्बन्ध में, लोगों की भिन्न २ धारणा हैं । जैसा कि कई मानते हैं, कि देव वा गुरु जन, अनुकूल आचरण करने से, प्रसन्न हो कर वर और अपराध से रुष्ट हो कर "शाप" देते हैं । उस के अनुसार ही "वर शाप" भुकना पड़ता है । पर महाभारत आदि इतिहास ग्रंथों में, हमारा निश्चय है, कि समर्थ पुरुष वा स्त्री अपने से, हो सकने वाले, कार्य के प्रतिज्ञा वचन को वर कहते हैं । और शक्ति अनुसार उसे पूरा भी कर देते हैं, यदि वर देने के योग्य न हो तो, इनकार भी कर देते हैं । और किसी के अपराध, वा पाप कर्म के, बदले में, दुःखी हृदय से, दी हुई गाली, या धिक्कार शब्द को, शाप कहते हैं । जिस का प्रभाव अपराधी के आत्मा पर, बड़ा भयंकर होता है । और उस को मानसिक

से, आधा राज्य प्राप्त कर, अर्थात् आज से गंगा के दक्षिण पार तेरा, और गंगा के उत्तर ओर मेरा राज्य रहा ! तथा हे राजन् ! मुझे मित्र जान ! यह सुन द्रुपदराज ने, ब्राह्मण बल

अवस्था अपने को बंधे पुरुष की भान्ति शापग्रस्त हो मानती है ॥

उदाहरण के लिये देखो आदि १०० । ५५,५७ । जब शान्तनु ने, सत्यव्रती की इच्छा की, तब सत्यव्रती के, पिता ने कहा तुम सत्य प्रतिज्ञ हो कर वर, देने की प्रतिज्ञा करो । तो मैं अपनी कन्या प्रसन्नता से आप को विवाह सकता हूं । तब शान्तनु ने कहा-" श्रुत्वा तव वरं दाश व्यवस्येय महंतव " तेरा वर सुन कर मैं इस का उत्तर दूंगा । फिर सत्यवती के पिता ने कहा " जो इस के गर्भ से पुत्र हो वह राजा हो यह मेरा वर है " तब उत्तर में राजा ने ना कामयत तं दातुं वरं दाशाय शान्तनुः " कहा यह वर मैं देना नहीं चाहता ।

जब द्रोणाचार्य ने, शिष्यों के बल से, राजा द्रुपद के, राज्य को, जीत लिया, तब कहा-

वरं ददामि ते राजन् राज्यस्यार्धं मवाप्नुहि ॥ आदि० १३८।६८

अर्थात् हे राजन् ! मैं तुम्हें वर देता हूं, तू इस राज्य से आधा राज्य ले ले ।

जब जूआ में, हारी हुई, द्रौपदी, कौरव सभा में लाई गई, तथा सभा के विद्वान् इस कर्म की घोर निन्दा करने लगे, तब लोक मत को ठीक करने के लिये, महाराज धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से कहा " वरं वृणीष्व पाञ्चाली " सभा० ७१ । २७

की प्रशंसा करते हुए, राज्यर्ध सम्भाल, मैत्री करने का वचन दिया। इस के पीछे सब लोग अपने २ निश्चित कर्मों में, नियम पूर्वक लग गये। इस दिन के पीछे द्रोण, पञ्चालराज होने के, भिन्न बढ़े हुए कुरुराज के, भी प्रधान संचालकों (विशेष कर धनुर्विद्या प्रचार) में मुख्य पद पर प्रतिष्ठित हो गये। आर्यवर! अब तक हम इच्छा न रखने पर भी कुछ ऐसे वृत्तान्त लिखने में विवश हुए हैं, जो सीधे तौर से हमारे आदर्श चरित्रनायक से सम्बन्ध नहीं रखते, पर आगे चल कर, प्रसग समझने के लिये, इन का उल्लेख जरूरी था, इस लिये लिख दिया है. पाठक क्षमा करें।

हे द्रौपद! वर मांग। तब द्रौपदी ने कहा—

दद्रासि चेद्वरंमह्यं वृणोमि भरतर्षभ!
सर्वधर्मानुगःश्री मानदासोऽयं युधिष्ठिरः॥ २८॥

यदि वर देते हो यह दो, कि श्रीमान् धर्मात्मा युधिष्ठिर, दासता से मुक्त हो जाय। इस वर को पूर्ण कर देने पर फिर धृतराष्ट्र ने कहा—"द्वितीयं ते वरं भद्रे ददामि वरयस्वह ३१ भद्रे दूसरा और वर देता हूं मांग! तब द्रौपदी ने कहा—

सरथौ स धनुष्कौच भीमसेन धनंजयौ।
यमौ च वश्ये राजन्न दासान्स्ववशानहम्"।

दूसरे वर से भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, शस्त्रास्त्रों सहित, और रथों सहित स्वतंत्र हो जाएं।

कठोपनिषद्—में नचिकेता ने, यम ऋषि से, जब कहा वर मांग तब ऋषि ने कहा "अन्यंवरं वृणीष्व" इन प्रमाणों से, वर का अर्थ बहुत कुछ स्पष्ट होता है, इसी प्रकार शाप का भी समझना चाहिये। वर शब्द श्रेष्ठ वा जामाता आदि का भी वाचक है। यह मैंने प्रत्यक्ष विषय लिखा है, परोक्ष में कुछ और होता हो तो उसका विचार विद्वान् लोग अलग करें।

* राजसी खंड ४ *

राज्यासन संकट, वनयात्रा, उत्कर्ष, द्रौपदी-वरण, सज्जन दुर्जन परीक्षा, दैवी रक्षा ।

आत्वा गन् राष्ट्रं सहवर्चसोदिहि प्राङ् विशाम्पतिरेकराट् त्वं विराज । सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥ अथ० ३।४।१

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवा विचाचलिः ।
इन्द्र इवेह ध्रुवास्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय ॥ ऋ० १०।१७३।२

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ऋ० ८।६४।३

विद्या समाप्ति के १ वर्ष पीछे सब से बड़े, तथा श्रेष्ठ, गुणधारी युधिष्ठिर को, धृतराष्ट्र ने, राज्य आसन पर, अभिषिक्त कर दिया। और युधिष्ठिर ने राज्यासन पर बैठ—

धृतिस्थैर्य सहिष्णुत्वादानृशंस्यात्तथार्जवात् ।
भृत्यानामनुकंपार्थं तथैवास्थिर सौहृदात् ॥ १३८।२

ततोऽदीर्घेण कालेन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
पितुरन्तर्दधे कीर्तिं शीलवृत्त समाधिभिः ॥ ३

थोड़े ही दिनों में, धैर्य, गम्भीरता, सहन शीलता, दयालुपन, सेवकों पर कृपा, स्थिर मैत्री, शील, तथा सदाचार से, पिता की कीर्ति को अन्तर्धान कर दिया। इस काल में भी युधिष्ठिर ने, भीम अर्जुन आदि भाइयों की शस्त्रविद्या, यादव श्रेष्ठ बलभद्र से बहुत अंगों में बढ़ाई। इसी विद्याबल से, अर्जुन भीम ने सौवीर, यवनाधिपति, आदि अनेक मदान्ध राजे जीत कर, वश में कर लिये। और पश्चिम तथा दक्षिणादि देशों के बहुत राजे ऐसे भी जीते जिन्हें महाराज पांडु न जीत सके थे। तथा देश में, सब प्रकार से, कल्याण वृद्धि हो गई। तथा चारों ओर पांडु पुत्रों की धीरता विद्वत्ता शूरता आदि की कथा फैल गई॥

धृतराष्ट्र को दाह

पांडु पुत्रों के बढ़े हुए यश को सुन कर, धृतराष्ट्र के हृदय में दाह पैदा होगया। और वह लगातार सोचने लगा, कि किस तरह पांडु पुत्रों का यश हट कर, मेरे पुत्रों का मान बढ़े। जब उसे और कोई उपाय न सूझा तो, उसने कुटिलनीति के पंडित कणिक मंत्री को अपना दुःख कहा। इस के उत्तर में कणिक ने जो विचार कहे वे कणिक* नीति के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन का कुछ सार हम पाठकों को सुनाते हैं। कणिक ने कहा शत्रु के छिद्र सदा ढूंढता रहे, अपने छिद्रों को प्रगट न होने दे। वैरी का नाश कभी अधूरा न करे किन्तु जड़ मूल से उस का नाश करे। अन्यथा वही शत्रु, इस प्रकार दुःख देता है, जैसा

---

* कणिकनीति हम अलग छपाने का विचार रखते हैं। जिस में ऊपर मूल श्लोक नीचे भाषा टीका होगी।

अधूरा निकाला हुआ देह का कांटा । यदि अंधा या बहरा बनने से काम बनता हो, तो अंधा तथा बहरा बन जाना चाहिये । यदि विश्वास देने से शत्रु मरे तो शिकारी की तरह विश्वास में लाकर वध कर देना चाहिये ।

अग्नयाधानेन यज्ञेन काषायेण जटाजिनैः ।
लोकान् विश्वासयित्वैव ततो लुंपेद्यथावृकः ॥
१४७ । १९

आनाम्य फलितांशाखां पक्वं पक्वं प्रशातयेत् ॥२०
फलार्थोयं समारंभो लोके पुंमां विपश्चिताम् ।
वहे दामित्रं स्कंधेन यावत्कालस्य पर्यय: ॥ २१
ततः प्रत्यागते काले भिंद्याद्घटमिवाश्मनि ॥ २२

कणिक के दुर्मंत्र

अग्निहोत्री, यज्ञकर्ता, भगवे वस्त्र, पहन कर जटा बढ़ा, मृगछाला ओढ़, लोगों को विश्वास में लाकर, मौके पर वाघ की तरह झपट पड़े। फलदार वृक्ष को नमाकर, पक्के २ फल सब उतारले, क्योंकि फल के लिये ही संसार का यत्न है । मौका देख कर शत्रु को, सिर पर उठाले, परं अपना दाव देख कर, ऐसा फैंके जैसे पत्थर पर मट्टी का घड़ा । शत्रु पर दया कभी न करनी चाहिये । शत्रु पर दया कभी न करे, चाहे वह दयापात्र भी हो । भीरु को भय से, शूर को हाथ जोड़ कर, लोभी को धन देकर, सम वा न्यून को बल से नाश करे । शत्रु के पक्ष में खड़ा हुआ,

पुत्र हो, सखा हो, भाई पिता वा गुरु हो, शत्रु समान ही नाश कर देना चाहिये। चाहे शत्रु पर, प्रहार करना हो, वा प्रहार कर चुके हो सदा मीठा बोलो, अपने हाथ से शत्रु का सिर काट कर भी ऊपर से, दया दिखानी चाहिये, शोक भी करना चाहिये तथा रोने तक लग जाना चाहिये।

वाचाभृशं विनीतः स्याद्धृदयेन तथाक्षुरः।
स्मितपूर्वाभिभाषीस्यात्सृष्टो रौद्रेण कर्मणा॥

४० । ६६

बाणी से सदा मीठा रहे, और हृदय से, छुरे की तरह काटने वाला। रुद्र कर्म करता भी, हंसता सा दिखाई दे। आप किसी पर विश्वास न लावे, दूसरों को विश्वास में ले आवे।

जासूसी कर्म

शत्रु मित्र का कर्म जानने के, लिये, अच्छी प्रकार परीक्षा लिये, पुरुष, वा स्त्री, चार कर्म (जासूसी दल) में करना चाहिये। पाखंडी, तथा तापसों, के वेष में, वा धर्मोपदेशक, बना कर तो दूसरे राज्यों में, जासूस (गुप्तचर) भेजने चाहिये। बगीचे, विहारस्थलों, देवता मंदिरों, और जंगल की छबीलें, मदिरापान आदि के स्थानों, गलियों कूचों हरएक प्रकार के जन समूह स्थानों, समजों, बड़े चौरास्तों पर गुप्तचरों को निश्चित करे। तथा कूप, तालाब, नदी, पर्वत, वन, उपवन, तथा सर्व* तीर्थों में गुप्त दूतों को

---

१४ * तीर्थ शब्द से भारत के प्रसिद्ध टीकाकार नील-कंठ जी ने, आगे लिखे १८ अठारह स्थान लिखे हैं, वर्तमान

जय प्राप्ति के लिये नियत करे। यह कुटल नीति सुना मंत्री ने कहा, महाराज ! आप के भतीजे, इस समय, अपने प्रभाव से देश में दृढ़ होरहे हैं। आप उपरोक्त नीति उपायों से, अपनी रक्षा करें। मालूम देता है यह कणिक किसी अनार्य, वा

गंगा, गोदावरी, अमरनाथ, बद्रीनारायण आदि स्थान नहीं लिखे। हमारे ख्याल में उन दिनों इन का तीर्थ न कहते होंगे, वा इन का बोध जनसमूह स्थान से होजाता है।

मंत्रीपुरोहितश्चैव युवराजश्चमूपतिः।
पञ्चमोद्वारपालश्च षष्टोऽन्तर्वेशिकस्तथा ॥ १
कारागाराधिकारी च द्रव्य संचयकृत्तथा।
कृत्या कृत्येषु चार्थानां नवमो विनियोजकः ॥ २
प्रदेष्टा नगराध्यक्षः कार्यनिर्माण कृत्तथा।
धर्माध्यक्षः सभाध्यक्षो दंडपालस्त्रि पञ्चमः ॥ ३
षोडशो दुर्गपालश्च तथा राष्ट्रान्तः पालकः।
अटवी पालकान्तानि तीर्थान्यष्टा दशैवतु ॥ ४

अर्थात् मंत्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल (राजा का दर्बान) राजा के महलों में वस्त्रादि पहनाने वाला, कारागाराधिकारी (सुपरिंटेंडेंट जेल) धन संचयकर्ता (कलैक्टर) कोश मंत्री, मुख्य मंत्री, नगराध्यक्ष, नगरमंत्री, धर्माधिकारी, सभाध्यक्ष (प्रेसीडेंट कौंसिल) दंडपाल (मजिष्ट्रेट) दुर्गपाल (गवर्नर फार्ट) परराष्ट्र मंत्री, मंत्री वन विभाग, (फारेस्ट कंस्ट्रवेटिव)

म्लेच्छ देश, का वासी होगा, क्योंकि यह नीति आर्यावर्तीय न हो कर पश्चिमी भासती है।

जासूसी कर्म

इन पर शत्रु कृत्य जानने के लिये योग्याति योग्य दूतों को लगावे। आज कल के राज्य भी इस कर्म को, जय पराजय में, कारण मानते, तथा इस (C. I. D.) विभाग को सदा बढ़ाते रहते हैं।

१—जर्मनी ने १८६६, ६७ में फ्रांस देश में, हजारों नर नारी, गुप्त भेद जानने को भेजे थे। जिन में लगभग ६००० हजार केवल स्त्रियें थी, ४६ अति सुन्दर ' युवतियां) जासूसी काम पर भेजी, जो वहां के उच्चाधिकारी वा सेनापतियों को फंसा कर भेद जानती थीं, वहां इस काम पर प्रति वर्ष लाखों नहीं, करोड़ों रुपैये, खर्च किये जाते थे।

२—सन् १६०८ में तीस हजार जासूस (नारी नर), जर्मनी की ओर से फ्रांस में थे।

३—गत योरूपीय, महायुद्ध के समय, सैंकड़ों गुप्तचर, इंगलेंड में जर्मनी के भेजे हुये जाने गये। और यह भी मालूम हुआ, कि इंगलैंड में जो युद्ध के विरुद्ध सभायें होती रही, उनका खर्च जर्मन जासूस देते थे।

४—अफ़ग़ानस्थान में कई अंग्रेज़, मुल्ला बन कर मसजिदों में रहे, वहां निकाह कर, बाल बच्चों के, बाप भी बने, परं किया सब कुछ अपने देश के लिये।

५—अब भी अंग्रेजी सरकार इस विभाग को खूब बढ़ा रही है, मन्दिर, मसजिद, सभा, समाज, स्कूल, कालिज, पाठशाला, सबमें जासूस छोड़े हैं। परं वे परीक्षित न होने के कारण सरकार तक सच्ची खबरें, नहीं देते। इस लिये सरकार को बहुधा धोखा खाना पड़ता है।

संकट में लोक सहाय ।

भोजायाश्वं संमृजन्त्याशु
भोजायास्ते कन्या ३ शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म
परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् ॥

भोजमश्वा सुष्टुवाहो वहन्ति
सुवृद्रथो पर्वते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवताभरेषु । भोजः
शत्रून्त्समनीकेषु जेता ॥ ऋ० १०।११७।३

स इद्भोजो योगृहवेददात्यन्नकामाय चरतेकृशाय
ऋ० १० । ११७ । ३

दुशंसो मर्त्योरिपुः । ऋ० २ । ४१ । ८

युधिष्ठिर के, युवराज होने, पर उस के कर्मों से, सब लोग प्रसन्न हो कर, सभा, समाजों तथा चौराहों पर, उसी के गुण की गाथा, करने लग गये । जिसे सुन दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ । तब उस ने अपने साथी, दुःशासन, कर्ण, शकुनि को साथी बना, एक दिन एकान्त में राजा धृतराष्ट्र से पांडवों को देश से बाहर करने के लिये कहा-इस पर धृतराष्ट्र बोले, यह काम मेरे वश का नहीं, इन के पिता ने, सारे देश

को अनुरागी बनाया हुआ है । मन्त्री लोग भी इन के पक्ष में हैं, विशेष कर राज सभा के, प्रधान संचालक, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, तथा महात्मा विदुर, इन का देश निकाला कैसे मानेंगे! क्योंकि भीष्म को तो हम और वे बराबर ही हैं। पुत्र ! यदि मैंने कुछ स्वयं कर दिया, तो जगत के लिये हम वध के योग्य हो जायेंगे। यह सुन दुर्योधन बोले, पिता जी। भीष्म तो मध्यस्थ हैं हीं, द्रोणपुत्र मेरा साथी है, इस लिये जिधर पुत्र इधर ही पिता । और कृपाचार्य भी अपने भानजे को न छोड़ेंगे । रहा विदुर सो प्रथम तो अर्थ वश, इधर ही रहेगा, न रहा तो वह अकेला पांडवों के, लिये हमें, तंग न कर सकेगा, अतः जैसे कैसे इन्हें माता सहित वारणावत (प्रयाग) में भिजवादें।

धृतराष्ट्र ने, इस विचार के अनुसार, थोड़े ही दिनों में, युधिष्ठिरादि पांच पांडवों, तथा उनकी माता कुन्ती को, वारणावत के लिये तय्यार कर दिया । चलने के वक्त सब राजा प्रजा के, प्रतिनिधि और सर्व साधारण स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध एकट्ठे हो गये। युधिष्ठिर ने, प्रस्थान समय पहले, भीष्मपितामह, गुरु द्रोण, कृपाचार्य, राजा धृतराष्ट्र महात्मा विदुर, और सब वृद्धों को पाद ग्रहण पूर्वक अभिवादन किया, फिर बराबर वालों को आलिंगन छोटों को आशीर्वाद दे कर सब स्त्रियों का सत्कार किया । तथा देश के, हर एक वासी को कुशल पूछ जब चलने लगे, तो महात्मा विदुर, तथा अन्य बहुत से पुरुष, पीछे चलते २ राजा की निन्दा कर कहने लगे, "हम इस अनर्थ को पसन्द नहीं करते, हम तो घरों को छोड़

वहां ही जाएंगे "जहां हमारा राष्ट्रवर्धक राष्ट्रपति सत्यवादी युधिष्ठिर जा रहा है।

प्रजा वचन सुन, धर्मपुत्र ने कहा—बन्धुओ !

पिता मान्यो गुरु श्रेष्ठो यदाह पृथिवीपतिः।
अशंकमानैस्तत्कार्य मस्माभिरिति नो व्रतम्॥
यदाहि कार्य मस्माकं भवाद्भिरूप पत्स्यते।
तदा करिष्यथास्माकं प्रियाणि च हितानिच॥

१४५। १५,१७।

मान योग्य राजा, जो कहता है, उसे बिना शंका के करते जाएं, यह हमारा व्रत है। आप हमारे सुहृद् हैं, जब आप की सहायता की जरूरत हुई, तब आप हमारा प्रिय और हित करें। अब आप नगर को जाएं। यह सुन और तो चले गये, पर विदुर जी युधिष्ठिर को कुछ बताने के लिये साथ चलते गये। चलने २ विदुर जी ने म्लेच्छ भाषा में दुष्ट दुर्योधन के, दुष्ट उपायों से, सावधान रहने के लिए, सूचनायें दीं और धर्मपुत्र ने भी * म्लेच्छ भाषा में ही उस के समझ लेने सूचना दी। तब विदुर जी भी चले गये। म्लेच्छ भाषा को महाभारत में संस्कृत में लिखा है, जिस का सार यह है। "बिना लोहे के शस्त्रों से सावधान रहना, और बन नाशक,

* उस समय आर्यावर्त में राजपुत्रों तथा योग्य विद्यार्थियों को म्लेच्छ देशों की भी भाषायें, सिखाई, पढ़ाई, जाती थीं।

हिम नाशक, पदार्थ (अग्नि) से, स्यार की तरह (जमीन में विवर बना कर) अपनी रक्षा करना। आंख खोल कर विचार पूर्वक, धैर्य से विचरना। नक्षत्रों से दिशा और घूमने से मार्ग मिल जाता है। विदुर जी के चले जाने पर, माता कुन्ती के पूछने से, इस सन्देश का तात्पर्य माता तथा भाईयों को भी, धर्मपुत्र ने बता दिया, और सावधान रहने की ताकीद कर दी। वारणावत में पहुंचने पर, नगर के सब वर्ण वालों ने धर्मराज का सत्कार किया और नगर, गली, बाजार, सभा, समाजों में, धूम से उत्सव वा शुभ कामनाएं की गईं।

पुरोचन का शिव भवन

धर्मराज को वहां भेजने से, पूर्व पुरोचन नामी शिल्पी को, बहुत सा लालच देकर, दुर्योधन ने वहां एक ऐसा गृह बनाने के लिये भेज दिया था जो गृह देखने में दृढ़, सुन्दर, राज भवन से भी रमणीक हो, पर उस तरह अग्नि ग्राहि पदार्थों (लाख आदि) से बना हो, जिस में पांडवों तथा माता कुन्ती को भस्म करने का, निश्चय किया हुआ था। पुरोचन ने वह भवन घृत, तेल, चरबी, राल, शण, लाख, मट्टी के मिलान से बना कर इन ही पदार्थों के रंगदार लेपनों से ऐसा अलंकृत और चित्रित किया था, जिसे देख बुद्धिमानों की, बुद्धि भी, चक्कर खाजाती थी।

इसी पुरोचन को, महाराज युधिष्ठिर के खान, पान, वस्त्र, भूषण, वा क्रीड़ा विहार का, प्रबन्ध करने के लिये भी नियुक्त किया गया था।

यो जागार तमृ चः कामयन्ते यो जागार

तमु सामानि यन्ति । यो जागार तमयं सोम आह तवाऽहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥

ऋ० ५ । ४४ । १४

लाक्षागृह प्रवेश वा त्याग

वारणावत के पुराने, राजभवनों में रहते जब दश दिन हुए, तब पुरोचन ने इस नये "शिव भवन" नामक पर अशिव रूप महल (लाख के घर) में वसने के लिये, धर्मराज को, कहा। धर्मराज, उसी दिन वहां चले गये; उन्होंने जाते ही दीवारों की गंध से जान लिया, यह आपदाओं का घर है, और विदुर की बताई विधि से, सावधान रहने लगे। दिन में शिकार के बहाने दूर २ के मार्गों को देख आते, रात को उसी दिन से सुरंग बनाने की फिकर में लग गये। थोड़े दिन पीछे विदुरजी ने अपना विश्वस्त मंत्री "खनक" पांडवों की सहायता अर्थ भेजा। और जाहरी तौर से उसे राज्य की ओर से, खाई बनाने के लिये नियुक्त कर दिया। वह समय २ पर दुर्योधन के विचारों से सूचित करता रहता। पांडवों को जब वहां रहते एक वर्ष हो गया, तब पुरोचन इन को कृष्ण चतुर्दशी में दग्ध करना ही चाहता था; भीमसेन ने उस आयुधों के घर आग अर्थात् इस लाख के घर से जुड़े हुए जिस "शस्त्रागार" में वह सोया करता था, बत्ती लगा दी। और स्वयं सब भाईयों, और माता सहित सुरंग से रातो रात बाहर निकल गया। दैवयोग से उसी दिन भोजन खाकर, सोई हुई एक निषादी अपने ५ पुत्रों सहित उसी भवन में, सारे महल के जलने से जल कर खाक हो

गई। इधर लोगों को पता होने पर और ६ शरीरों की हड्डियां देख पांडव तथा कुन्ती मरण का दुःख हुआ। नगरवासियों ने धृतराष्ट्र की निन्दा की, धृतराष्ट्र दुर्योधन ने पता लगने पर कणिक की बताई नीति अनुसार (ऊपर से) भारी शोक मनाया। केवल विदुर जी को सच्चा हाल मालूम था।

बन यात्रा में देवाश्रय।

माभेम मा श्रमिष्मोग्रस्यसख्ये तव।

ऋ० ८।४।७

स न इन्द्रः शिवः सखाऽश्वावद्गोमद्यवमत्।

ऋ० ८।६३।३

सुनावमारुहेय मस्रवन्ती मनागसम्।
शतारित्रांस्वस्तये॥ यु० २१।७

लाख घर से निकल पांडव बन में से होते हुए, गंगा तट पर पहुंचे, वहां एक और विश्वासी मल्लाह विदुर जी ने "सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम्"॥ १४६।५

मशीनवाली, सब प्रकार के तूफानों में न डोलने वाली, नौका देकर भेज रखा था। जिस का प्रसिद्ध काम, राज्य की ओर से गंगा का जल मापना, आदि था। उस ने धर्मराज को विदुरजी का बताया विश्वास सूत्र, सुना कर अपने को विश्वासी बता सेवा के लिये पेश किया। उस की सहायता से धर्मराज भाईयों सहित गंगा पार हो गये, पार जाकर प्यास लगने पर "भीम ने" सब को पानी पिलाया, वहां एक वृक्ष छाया

में सब थकावट के कारण सो गये, पर भीम इन देव समान भाईयों और पूज्य माता के बन कष्टों को स्मरण कर, जागता रहा, और दुर्योधन समान धर्म हीन जातीय बन्धु की, निन्दा करता रहा।

घटोत्कच का जन्म, कर्म

जब वन में पांडव सो रहे थे, तब वहां हिडिंब नामी मनुष्य मांस खाने वाले राक्षस* ने, इन्हें जानने के लिये, अपनी हिडिंबा बहिन को भेजा, हिडिंबा वहां जाकर भीम पर मोहित होगई, और विवाह की इच्छा करने लगी। इतने में वहां हिडिंब गया और भीमसेन से युद्ध कर मर गया। इस कोलाहल में, धर्मपुत्र, और कुन्ती भी जाग पड़े। हिडिंबा ने उन से भीमरूप पुत्र प्राप्ति के लिये, भीम

---

*२५ राक्षसाश्च पुलस्तस्य वानरा किन्नगास्तथा।
यज्ञाश्च मनुजव्याघ्र पुत्रास्तस्य च धीमतः १। ६६। ७
यत्र माणिवरोयक्षः कुबेरश्चैव यक्षराट्। ५।
कुबेरसचिवश्चान्ये रौद्रा मैत्राश्च राक्षसाः। १०
असंख्येयास्तु कौन्तेय यक्षराक्षसकिन्नराः।
नागासुपर्णा गन्धर्वा कुबेर सदनं प्रति ॥ १२

१ इन वनपर्व १३६। ५, १०, १२ श्लोकों से जाना जाता है, यक्ष तथा राक्षस मनुष्य जाति के ही अन्दर हैं इन में यक्ष सौम्य, और राक्षस क्रूर प्रकृति के, होते थे। इन का राजा कुबेर, बड़ा धनी था। कैलाश पर्वत, उसका निवास स्थान था। कभी २ सेना सहित नीचे भी आता था।

समागम की 'याचना' की। इस पर धर्म पुत्र ने, राक्षसी को केवल पुत्र प्राप्ति काल तक, भीम संगम को, गंधर्व विवाह से, आज्ञा दी, उस में भी भीम को रात्रि समय, राक्षसी के, पास न रहने देते। इस सम्बन्ध से 'घटोत्कच' पुत्र हुआ। जिसने माता कुन्ती की आज्ञानुसार पांडवों की समय २ पर भारी सेवा की। और वीरता दिखाई।

२-भगवद्गीता १०।२३ में भी " वित्तेशो यक्षरक्षसाम् " से समान जातिता दर्शाई गई है।

३-धर्म पुत्र युधिष्ठिर और यक्ष का सम्बाद वन पर्व के अन्त में धार्मिक वा मनुष्योचित ही है।

४-राक्षस यातुधान एक ही हैं, इनका ऋग्वेद ७।१०४। १६ वा २४ में भी वर्णन आता है।

५-रामायण के समय में जितनी इनकी आबादी थी, उतनी भारत समय में न थी। अब तो अंडेमन और अफ्रीका के जंगलों में ही पाए जाते हैं।

६-इन का खान, पान, मद्य मांस अधिक होता था। "यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांस सुरासवाः। मनु० अ श्लो०

७-भीमपुत्र घटोत्कच राक्षसी हिडिंबा के पेट से था। दुर्योधन सेना में अलंबुष भी राक्षस ही था।

८-ये लोग निर्भय लड़ाके तथा मायावी होते थे। इन में कुछ विभीषण से सज्जन तथा पाप भीरु भी थे।

९-श्रीयुत वैद्य भा० मी० पृ० १६२ पर लिखते हैं राक्षस नर मांस भोजी थे।

१०—अथर्व वेद तथा आयुर्वेद में भयंकर तथा घातक रोगों का नाम भी राक्षस लिखा है।

व्यासाज्ञा से एक चक्रावास

तपस्वियों के वेश में, वन में विचरते, तथा मातृ-सेवा में लगे, निरन्तर वेद पाठ, नीति शास्त्र का मनन करने वाले, पांडवों को आश्वासन देने के लिये एकचक्रा नगरी के पास वन में " श्रीवेदव्यास जी " मिले। आपस में प्रणाम आशीर्वाद के पीछे पुत्रस्नेह प्रकाश करते हुये व्यासजी ने कहा यहां समीप ही एकचक्रा नगरी है, मेरे आने तक गुप्त रूप से यहां वसो ! और कुन्ती से कहा—देवि तेरे ये पुत्र अपने वीर्य, और यज्ञीय जीवन, से संसार का उपकार करते हुये, सारी पृथ्वी का शासन करेंगे। और सुख पूर्वक स्वराष्ट्र में स्वराज्य भोगेंगे !

बक बध और नाग रक्षा

व्यास की आज्ञा से धर्मपुत्र माता, और भाइयों सहित, एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण के घर ठहरे। वहां नगरी के बाहर बक नाम राक्षस नित्य नर बलि लिया करता था। उस दिन उस ब्राह्मण की बारी थी, ब्राह्मण के १ पुत्री १ पुत्र तथा ब्राह्मणी थी। वे सब शास्त्र प्रमाण से अपने २ बल पूर्वक बलि के लिये तयार कर रहे थे। निश्चय था कि उस दिन ब्राह्मण खाया जाता, दूसरे दिन किसी और की बारी आती। इस हत्याकाण्ड को सदा के लिये मिटाने की इच्छा से भीम को भेजने का निश्चय किया और भीम ने स्वीकार भी कर लिया।

कुन्ती के उदार भाव

जब युधिष्ठिर को इस का पता लगा, उसने माता से कहा माता ! यह तैने क्या सोचा ?

एतावानेव पुरुषः कृतं यस्मिन्न नश्यति।

यावच्चकुर्यादन्योस्य कुर्याद्बहुगुणं ततः ॥
योब्राह्मणस्य साहाय्यं कुर्यादर्थेषु कर्हिचित् ॥
क्षत्रियः स शुभांल्लोकानाप्नुयादिति मे मतिः ॥

१६२, १५, २२

कुन्ती ने कहा—बेटा धर्म ! धर्म शास्त्र में लिखा है कि मनुष्य का मनुष्यत्व यही है कि वह कृतघ्न न हो किन्तु जितना कोई इस पर उपकार करे, उस से बहुगुण उसका भला करे। और क्षत्रिय को तो सर्व प्राणियों के लिये अपने प्राण लगा देना धर्म है, विशेष कर मेरा मत है जो क्षत्रिय ब्राह्मण की सहायता करता है, वह उत्तम लोकों को प्राप्त होता है। इस लिये पुत्र ! मैंने यह काम अज्ञान लोभ, वा मोह से नहीं किया, इस में दोनों और फल है ब्राह्मणगृहवास का बदला हो जायगा, क्षत्रिय का धर्म पालन भी हो जायगा। इन विचारों का धर्म-पुत्र ने आदर कर माता को प्रणाम किया और भीम की जय कामना की, रात्रि को भीमसेन गये, राक्षस को युद्ध में मार, उसके देह को नगर के प्रधान द्वार पर फैंक आकर सोगये। प्रातः नगर वासी प्रसन्न हो, आये हुए ब्राह्मणों की सिद्धि करने लग गये।

गन्धर्व विजय

एकचक्रा में, बसते हुये एक बार, फिर व्यास जी गुप्तरूप से आए और द्रौपदी स्वयंवर का, जिकर कर चले गये। एकचक्रा से चल कर पांडव, गंगा किनारे जारहे थे, तो अंगारपर्ण नाम गन्धर्व (जो स्त्रियों सहित वहां क्रीड़ा कर रहा था) से अर्जुन की

तकरार होगई। बात बढ़ते २ शस्त्र चल गये, तब अर्जुन ने अपनी वीरता से उसे जीत लिया, और कैद करके धर्मपुत्र के पास ले आये। तब उसकी स्त्री कुम्भीनसी ने धर्मपुत्र से, पति के छुड़ाने की प्रार्थना की! धर्मपुत्र ने ततक्षण उस पराक्रम हीन, जीते हुये, स्त्रीनाथ शत्रु को, क्षात्रधर्म समझ, अर्जुन को छोड़ने की आज्ञा दी। जिसे सुन अर्जुन ने कहा गंधर्व! महाराज युधिष्ठिर तुम्हें अभय करते हैं, शोक न करते हुये तुम स्वतंत्र विचरो इस उदार वर्ताव से गंधर्व और अर्जुन की मैत्री होगयी, अर्जुन ने उसे आग्नेयास्त्र दिया, उसने गन्धर्वास्त्र सौ जाति वन्त घोड़े तथा "चाक्षुषी विद्या" दी जिस विद्या से पुरुष दूर की वस्तु को स्पष्ट देख सकता था।

पुरोहित वरणम्।

१ पुनन्तु मांदेवजनाः पुनन्तुवसवोधिया
विश्वेदेवापुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥

ऋ० ९।६७।२७

२ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे।
त्वं पोता विश्ववार। प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम्॥

७।१६।५

३ संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्र मजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः

अ० ३।१९।१।

४ एषामहमायुधा संस्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेइषां चित्तं विश्वे-
ऽवन्तु देवाः ॥ अथ० ३।१९।७।

५ सत्या सन्तु यजमानस्य कामाः ऋ० १०।११५।८

पुरोहित की महिमा बताते हुये गन्धर्व ने, अर्जुन से कहा, वेद वेदांग जानने वाले जितेन्द्रिय, सत्यवादी, धर्मात्मा, परोपकारी, अन्दर बाहर से पवित्र, व्याख्यान देने में कुशल, ब्राह्मण राजाओं के पुरोहित होने चाहिये। राजा को सदा पुरोहित की सम्मति से व्यवहार करना योग्य है।

नहि केवल शौर्येण, तापत्याभिजनेन च-
जयेद ब्राह्मणः कश्चिद् भूमिं भूमिपतिः क्वचित् ॥
आदिपर्व।

ब्राह्मणप्रमुखं राज्यं शक्यं पालयितुं चिरम् ॥
१७०।७९।८०

हे पांडुपुत्र ! कोई राजा, केवल शूरता, तथा मनुष्यों के बल से पृथ्वी को नहीं जीत सकता, जब तक ब्राह्मण बल साथ न हो। ब्राह्मणों की सहायता से, राज्य चिर तक बढ़ता रहता है। गन्धर्व का वचन सुन, पांडुपुत्र ने ऐसे पुरोहित का पता पूछा। तब गन्धर्व ने गंगातीर पर उत्कोचक नामक स्थान पर, देवल ऋषि के बड़े भाई, धौम्य ऋषि, का पता बताया। वहां से धर्म पुत्र उस सर्व वेदवेत्ता धौम्य के पास गये। और विधि

पूर्वक धौम्य को पुरोहित रूप से वरा, तथा पुरोहित ने भी, पांडवों को यजमान, वा शिष्यरूप से, स्वीकार किया। अब से पुरोहित ने पांडवों को यज्ञ याग आदि कर्म और स्वधर्म से स्वराज्य प्राप्त करने का साधन बताना, आरम्भ किया। और पांडव गुरु की आधीनता में, स्वस्तिवाचन शान्तिपाठ करने लगे।

१ स्वस्तिपन्था मनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददता घ्नता जानता संगमेमहि ॥

२ स्वस्तिनोऽस्तु अभयं नो अस्तु।
नमो ऽहोरात्राभ्या मस्तु ॥

३ यत इन्द्र भयामहे ततो नोऽभयं कुरु।

४ शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी
शान्तमिद मुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वती रापः शान्ताः नः सन्त्वोषधीः
अथर्व १६।६।१

५ शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तंनो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥
अथर्व १६।६।२

———

उदय खंड ५

स्वयंवर तथा विवाह।

भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयंसामित्र वनुते जनेचित्॥ ऋ० १०।२७।१२

२ प्रतितिष्ठ विराडासि विष्णुरिवेह सरस्वाति॥

अथ० १४।२।१५

धौम्य पुरोहित के साथ, पांडव तथा कुन्ती, द्रौपदी का स्वयंवर देखने पाञ्चाल की राजधानी में गये। वेद पाठ करने वाले, पवित्र मधुभाषी, ब्राह्मणों के रूप में वहां जाकर और सब कुछ देख भाल।

कुम्भकारस्य शालायां निवासं चक्रिरे तदा॥

आदि १।१८५।६

एक * कुम्हार के घर में रहे। और समय पर स्वयंवरार्थ तय्यार की रंगभूमि में, उत्तम दिशा और उत्तम आसनों पर ब्रह्मचर्य से जाज्वल्यमान तेज वाले, बड़े आत्म-सम्मान के साथ बैठ गये। यह रंगभूमि सात २ मंजिले ऊंचे भवनों, सोने

---

* प्रतीत होता है उन दिनों ब्राह्मणों और कुम्भकार आदि शूद्रों में रहन सहन का इतना भेद न था जितना अब है। और तब के कुम्हार अब की तरह टूटे मटी के बर्तनों के गृहपति ही न होते थे, किन्तु बड़े धनी शालापति राजकुमारों के वास योग्य महलों के मालक होते होंगे।

चान्दी मणि मुक्ता से सजे मंचों, और सैंकड़ों जगत के प्रसिद्ध राजाओं से अलंकृत और मीलों में विस्तृत थी।

सब से पहले, द्रुपद राजा के, पुरोहित ने यज्ञवेदि में हवन, स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ, किया। फिर मंगल वाजे वजे इतने में अपनी बहिन द्रौपदी के, हाथों में सुवर्ण की जयमाला, देकर वीर धृष्टद्युम्न, आगे आया। उसके आते ही सारा जन घोष और वाजे बन्द कराये गये। राजा की आज्ञा से धृष्टद्युम्न हाथ में एक दृढ़ धनुष, और ५ बाण लेकर, ऊपर को रखे हुये यन्त्र की ओर इशारा कर कहा—राजवर्ग! इन बाणों से जो कुल, रूप, और बलयुक्त वीर, इस लक्ष्य को वेधेगा उसे मेरी बहिन द्रौपदी, पतिरूप से वरेगी! आप बल दिखाएं। वारी २ राजा लोग उठते, और उन का कुल गोत्र उच्चारण कर लक्ष्य-वेध की आज्ञा मिलती। जब बहुत राजे हताश हुये, तब वीर कर्ण उठे, और उन का कुल गोत्र भी सुनाया गया। ज्यों ही कर्ण ने धनुष को हाथ लगाया, द्रौपदी जोर से बोल उठी "नाहं वरयामि सूतम्" यह सुन कर्ण लज्जित हो बैठ गये।

ब्राह्मण रूप में अर्जुन

कर्णादि के पीछे ब्राह्मणरूप में अर्जुन खड़े हुये उसे देख कई लोग आशा भरी, कई निराशा जनक, सम्मति प्रकाश करने लगे। कइयों ने कहा यह बली क्षत्रियों का काम है, वेदपाठी विप्रों का नहीं, कई बोले संसार का कोई काम नहीं, जिसे ब्राह्मण न कर सके, ब्राह्मण दुबले भी, तेज से महां बली होते हैं। यह क्षत्रियों से कभी पीछे नहीं रहते। इस बातचीत में ही अर्जुन ने देव को प्रणाम कर ऐसा तीर मारा की तत्क्षण वह लक्ष्य

नीचे आ गिरा। गिरते ही ब्राह्मणों ने पुष्प वर्षा की, द्रौपदी ने उत्साह से जयमाला पहना दी। दुर्योधन आदि राजे मन में कुढ़ने लगे। राजा द्रुपद ने प्रसन्न हो कर, मंगल बाजे बजने की आज्ञा दी। और धर्मपुत्र ने उस समय, स्वयंवरा द्रुपदपुत्री और भाईयों सहित अपने आश्रम में चले जाना उचित समझ, सब को उठने की आज्ञा दी। चलने पर कुछ राजा, द्रुपद राजा पै क्रोध करने लगे। कुछ ने इन ब्राह्मणों पर हमला कर दिया, हमला करने वाले शत्रुओं का, जब पांडवों ने मान मर्दन कर दिया, तब पीछे आते श्रीकृष्ण ने (जो धनुष उठाते ही अर्जुन को पहचान गये थे) बड़े भाई राम (बलभद्र) से कहा जो यह शेर की तरह गति वाला धनुष चढ़ा कर जीता है निश्चय से अर्जुन है और—

योऽसौपुरस्तात्कमलयताक्ष
स्तनुर्महासिंहगति र्विनीतः।
गौरः प्रलंबोज्ज्वल चारुघोणो
विनिः सृतः सोऽच्युत धर्मपुत्रः॥
१८९।२

जो आगे जाने वाला, कमलनेत्र, गौर वर्ण, लम्बा शरीर, सुशील स्वभाव, उज्वल नासा तथा सुन्दर नाक वाक् वाला, कोमल शरीरी है, वह धर्मपुत्र युधिष्ठिर है। इनका लाख भवन से बच जाना मैंने, पहले सुन लिया था। वहां से जब पांडव अपने वासस्थान में गये, तब भी एक बार कृष्ण राम वहां गये। और बात चीत में निश्चय कर बधाई दे राज कैंप में आ गये॥

१ गृभ्णामितेसौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। ऋ० १०।८५।३६

२ अक्ष्यौनौ मधुसंकाशे अनीकं नौसमञ्जनम्। अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति॥

अथ० ७।३६।

द्रौपदी विवाह

पाठकों को स्मरण होगा इतना बल वीर्य, ऋद्धि, सिद्धि, होने पर भी हमारे चरित्र नायक, और उनके सब भाई, कुमार ब्रह्मचारी ही हैं। द्रौपदी को जीत अर्जुन ने माता के संमुख, महाराज का द्रौपदी से, विवाह करने की प्रार्थना की।

त्वयाजिता फाल्गुण याज्ञसेनी त्वयैव शोभिष्याति राजपुत्री। प्रज्वाल्यता मग्निरामित्रसाह! गृहाण पाणिं विधिवत्त्वमस्याः॥ १।१९०।७।

धर्मपुत्र ने कहा अर्जुन ! द्रौपदी तुमने ही जीती है, तुम्हारे से ही इस की शोभा है। यज्ञ रच कर विधिपूर्वक इस से तुम ही विवाह करो।

राजा द्रुपद ने, यह जानने के लिये कि कौन द्रौपदी का भर्ता बना है, पुरोहित को कुम्भकार के घर में भेजा, तब युधिष्ठिर जी ने, उसे कहा, राजा को कह दो द्रौपदी अच्छे स्थान में गई है थोड़ी देर पीछे राजा ने, जनेत को भोजन के लिये

बुलाया, साथ कुन्ती द्रौपदी भी आई, राजमहल में बहु विध शस्त्र, अस्त्र, तथा वस्त्र, भूषण, तथा पदार्थ धरे थे। पांडवों की दृष्टि उनमें से शस्त्र अस्त्रों में ही विशेष पड़ी। यह देख राजा ने निश्चय किया ये ब्राह्मण वेश में क्षत्रिय ही हैं। स्पष्ट करने के लिये धर्मपुत्र से पूछा सत्य २ कहिये आप की जाति कुल क्या है? तब धर्म ने कहा हम पांचों पांडु के पुत्र हैं, दुर्योधन आदि से राज्य भ्रष्ट किये, गुप्त रूप से विचर रहे हैं। तेरी पुत्री को वीर अर्जुन ने प्राप्त किया है। यह सुन द्रुपद बड़े प्रसन्न हुये, और दबाये हुये राज्य के लौटाने की प्रतिज्ञा की। और धर्मपुत्र ने द्रुपद का धन्यवाद किया। इसके बाद पुष्य नक्षत्र में वेद विधि से पांडव पुरोहित ऋषि धौम्य ने अर्जुन* से विवाह

---

२७ * कई लोग द्रौपदी के पांच भर्ता बताया करते हैं पर यह ठीक नहीं द्रौपदी का केवल अर्जुन ही भर्ता था क्योंकि लक्ष्य वेधन की शर्त को अर्जुन ने ही पूर्ण किया था।

उसके पिता भ्राता भी लक्ष्यवेधी को ही उसे विवाहना, चाहते थे।

३ युधिष्ठिर ने भी अ० १९१।७ में अर्जुन को ही विवाह की आज्ञा दी है। तथा महाप्रस्थान पर्व श्लो० ६ युधिष्ठिर ने द्रौपदी को 'अर्जुन पालिका' बताया है।

४ युधिष्ठिर पत्नी महाप्रस्थान में साथ नहीं गयी घर में रही। देखो महाप्र० १।२८। पर नीलकंठी टीका।

५ म० भा० स्वर्गारोहण ५। ५७ तथा आदि ६२। १६ में लिखा है, यह इतिवृत वेदानुकूल है—

कराया। विवाह के पोछे राजाने अपने योग्य रथ, हाथी, घोड़े,

इतिहास मिमं पुण्यं महार्थं वेदसंज्ञितम् ॥ इदं हि वेदैः संमितम् ॥

परं अनेक पति एक समय होना, वेद विरुद्ध है, देखो ऋग्वेद मंत्र १० सू० ८५ मंत्र ३६ तथा मंत्र १० सू० १४५ मंत्र२ "पतिंमे केवलं कुरु" और अथर्व कां० १४ और अ० ७।३६।३७ "अहंगृह पतिस्तव" ॥

६ उस समय भी अनेक पति की मर्यादा न थी, इसी लिये सारे कुरुवंश में किसी स्त्री के अनेक पति का वर्णन नहीं।

७ माता कुन्ती भी आदि० १९१॥ २-१ में बहुपति को अधर्म मानती है। इस श्लोक की टीका में नीलकंठ ने लिखा है "अधर्मो बहुभर्तृतारूपः"

८ उद्योग १३।२४ में इन्द्राणी ने " एक भर्तृत्व मेवास्तु सत्यं यद्यस्तित्वामयि" कह कर पुण्य फल में एक भर्ता की ही कामना की है। इस से भी ५ भर्तत्व की निन्दा ही है।

शंका-यदि ऐसा ही है तो क्यों द्रौपदी के पांच भर्ता प्रसिद्ध होगये ?

उत्तर-१ वाम मार्गियों की लीला से, महाभारत में कुछ श्लोक इस अर्थ के मिला देने से।

शंका-क्या माता कुन्ती के कहने से, कि " पांचों बांट लो " पांच विधान नहीं करता ?

उत्तर-नहीं कारण एक तो, माता कुन्ती ने यह विचार

रत्न, हीरे, वस्त्र भूषणों का भारी दहेज दिया, जिसे आदर सहित धर्मपुत्र आदि ने स्वीकार किया।

कर नहीं, कहा प्रमाद से कहा होगा, और विना विचार कहा आदेश माननीय नहीं होता। और यदि विचार पूर्वक भी कहा हो तो वेद विरुद्ध मानने योग्य नहीं, वेदज्ञ ऋषियों ने उपनिषदों में साफ २ कहा है—

यान्य न वद्यानि कर्माणि तानि त्वया सेवितव्यानि नो इतराणि।

अर्थात् माता पिता गुरु का धर्मानुसार ही वचन मानने योग्य है धर्म विरुद्ध नहीं॥

३ जो लोग पूर्वजन्म का वर मानते हैं, उन्हें स्मरण रखना चाहिये, देव वर धर्म विरुद्ध नहीं होते। और पूर्वजन्म की कथा का वर्णन, कल्पना मूलक ही होता है यथार्थ नहीं।

४ आदि० ३।८५-८२ की उत्तंक की कथा भी बताती है, धर्म विरुद्ध आचरण, गुरु वा गुरु पत्नी आदि का कहा भी, नहीं करना चाहिये।

५ कई कहेंगे यदि द्रौपदी का एक अर्जुन ही पति था तो महा भारत के अनेक स्थलों में पांच पांडवों को भर्ता वा पति क्यों कहा है? पांचों को भर्ता गौण रूप से, सन्मानार्थ कहा है मुख्य रूप से नहीं, यह परिपाटी स्मृतियों में भी विद्यमान है जैसे मनु में लिखा है—

पतिभिर्देवरैस्तथा। पूज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याण मीप्सुभिः॥ अ० ३ श्लो०

कुन्ती का आशीर्वाद

स्योनाभवश्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशेस्योना पुष्टायैषां भव ॥

अथ० १४।२।२७।

अर्थात् पति के भाई होने के कारण पति कहा है। इसी प्रकार पिता के भ्राता होने से पांडव धृतराष्ट्र को पिता कहते थे, अपने को उसका पुत्र। देखो आश्रमवासी पर्व अध्याय ३ श्लो० ५१, ८३।

वयं पुत्राःहि भवतो यथा दुर्योधनादयः ॥ ५१ ॥
धर्मपुत्रः स्वपितरं परिष्वज्य महाप्रभुम् ।
शोकजंवाष्प मुत्सृज्य पुनर्वचनं मब्रवीत् ॥ ८३ ॥

और माता कुन्ती, पति से बड़ा होने के कारण, महाराज धृतराष्ट्र को श्वशुर और गांधारी को सास कहती थी। देखो आश्रम वासी पर्व १८। २० तथा १६।१६।

६ आश्चर्य है श्री० पं० आर्य मुनि जी, तथा वैद्य महोदय ने अपने ग्रन्थों में किस आधार पर द्रौपदी के पांच भर्ता होना माना है जब कि उपरोक्त प्रमाण इस के विरोधी हैं।

७ बलायती पंडित भी, द्रौपदी के पञ्च भर्तृत्व को हिन्दूरीति के विरुद्ध तथा पीछे से, इस मज़मून पर कलई चढ़ाई गयी मानते हैं। देखो टाडका हिन्दी राजस्थान १ भाग

८ विराट् पर्व अ० २२ श्लो० ७६ में भीमसेन द्रौपदी को भाबी कहते हैं पत्नी नहीं—

जीवसूर्वीरसूर्भद्रे ! बहुसौख्यसमन्विता ।
सुभगा भोगसंपन्ना यज्ञपत्नी पतिव्रता ॥

अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुर्भार्यापहारिणम् ।
शान्तिं लब्धास्मि परमां हत्वा सैरंध्रि कंटकम् ॥

आज मैं अनृण होकर शान्ति ले रहा हूं जो भाई (अर्जुन) की स्त्री के हरने वाले कीचक को मार आया हूं ।

९ कवि कालिदास विवाह पुष्पांजलि में " द्रौपदी पांडवे यथा " एक पति ही मानते हैं ।

१० उद्योग ८१।४४ में महाराज युधिष्ठिर ने, कर्ण के, द्रौपदी विषयक कहे, कटु शब्दों का 'संजय' को स्मरण कराते हुये द्रौपदी का पतिभाव अर्जुन में ही जाहर किया है ।

शंका होसकती है कि जब द्रौपदी युधिष्ठिर की धर्मपत्नी न थी, और उस का पति अर्जुन राजा न था, तथा वह सब से बड़ा भी न था, तो क्या कारण द्रौपदी को इतनी प्रधानता थी, पांडवों के साथ सब समय उसी का वर्णन है । महाप्रस्थान में भी वही साथ जाती है ?

उत्तर-द्रौपदी की वीरता, विद्वत्ता और उदारता ही इस प्रधानता का कारण है-और आर्यावर्त में प्रायः गुणों की पूजा होती है । छुटाई बड़ाई वा स्त्री पुरुष विचार की नहीं । जैसा कि-महाभारत के पाठ से मालूम है—परशुराम, जमदग्नि के चारों पुत्रों से छोटा था । विष्णु इन्द्र आदि देवों से छोटा था,

अतिथीनागतान्साधून् बालान्वृद्धांस्तथा गुरून्।
पूजयन्त्याः यथान्यायं शश्वद्गच्छन्तु ते समाः ॥

आ० १६६ ७।८।

विवाह से उठ कर, वृद्ध गुरुजनों के साथ ही द्रौपदी ने माता कुन्ती को, पाद वन्दन किया। जिस के उत्तर में कुन्ती ने आशीर्वाद दिया—भद्रे! तू दीर्घजीवी वीरों की जननी, यज्ञ करने वाली, और सुख भोग से सम्पन्न हो, सुवीरे! तेरे सैंकड़ों वर्ष अतिथि, वृद्ध, गुरु, ब्राह्मण तथा बाल आदि की यथायोग्य पूजा सत्कार करते २ व्यतीत हों। कल्याणि! तू अपने श्वशुर कुल, गृहपति तथा सारे देश की सारी प्रजा के लिये कल्याण वाली हो।

दुर्योधन के दुष्ट विचार

स्वयंवर के पीछे ज्यों हो यह बात देश में फैली कि पांडव जीते हैं" अर्जुन द्रुपद राजा के जामाता होगये हैं। तब से ही दुर्योधन कर्ण के साथ इस विचार में लग गये, कि जैसे कैसे पांडवों को,

---

इसी लिये उसे उपेन्द्र कहा है! श्रीकृष्ण भी वसुदेव के (बलभद्र से) छोटे पुत्र थे। अर्जुन, जिसे श्रीकृष्ण सब से ज्यादा प्यार करते थे, यादवों को विश्वास, कौरवों को भय जिस से था वह भी, युधिष्ठिर भीम से छोटा कुन्ती पुत्र था। इसी प्रकार पुरु, भीष्म, आदि के अनेक इतिहास हैं। जिन से स्त्री पुरुषों की प्रसिद्धि का गुणों के आश्रय से पता लगता है। द्रौपदी के वीरोचित गुण कर्मों का पता पाठक स्थान २ पर पावेंगे।

अधिकार च्युत कर दिया जाय। इन्होंने धृतराष्ट्र को भी कुछ प्रेर लिया। जब युधिष्ठिर आदि के जीने का पता विदुर को लगा उन्होंने राजा धृतराष्ट्र को बधाई दी, और उन्हें हस्तिना पुर बुलाने और राजाधिकार देने पर एक सभा बुलाई।

भीष्मादि का भाषण

सहना ववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
तेजास्विना वधीतमस्तु माविद्विषा वहै॥

उपनिषद्।

सभा में सब से पहले भीष्म पितामह ने कहा--मुझे जैसे धृतराष्ट्र है वैसे ही पांडु हैं। जैसे गांधारी पुत्र हैं वैसे ही कुन्तीपुत्र हैं। इसी प्रकार अन्य कुरुवंशी राजाओं को दोनों समान प्रिय हैं। दुर्योधन की तरह पांडु पुत्रों का भी, इस राज्य पर पैतृक अधिकार है। जैसे राज्य दुर्योधन चाहता है, वैसे वे भी चाहते हैं। इस लिये प्यार से ही उनको "आधा राज्य" दे देना चाहिये इसी में सर्वसाधारण का हित और हमारा यश है। स्मरण रहे वे वीर हैं, विद्वान् हैं धर्मात्मा हैं, लोकमत उनके पीछे है, उनके जीते उनका हक कोई दबा नहीं सकता। हमारा सौभाग्य है जो वे जीते हैं। और पापी पुरोचन अकाम ही मर गया, अन्यथा हमारे पर कलंक रहता और कुरुवंशी कभी किसी जन समुदाय में आंख ऊंची कर न देख सकते। अतः यह सब कुछ हमारे भाग्य से ही हुआ है। उन्हें "आधा राज्य" आदर पूर्वक दे देना चाहिये।

द्रोण की वक्तृता

उपरोक्त भाषण के पीछे, गुरु द्रोणाचार्य उठे, उन्होंने कहा—राष्ट्र हित के लिये जो महात्मा भीष्म जी ने कहा है, मेरा भी यही मत है, कि राज्य कुन्ती पुत्रों को बांट कर सौंप देना चाहिये, क्योंकि बांट कर खाना ही सनातन (वैदिक) धर्म है। इस लिये अभी कोई प्रियंवद, सज्जन, बहुत से रत्न भूषण द्रौपदी और पांडवों के लिये देकर पंचालराज्य में भेजना चाहिये, जो द्रुपदराज, धृष्टद्युम्न को, प्रिय तथा उचित वचनों से सन्मानित करें और इस विवाह सबंध की महिमा को बतावे। और कुन्ती पुत्र तथा माद्री पुत्रों को सान्त्वना दे। तथा कुरुराज की ओर से उन को यहां बुलाने का निमंत्रण दे। और आने का निश्चय होने पर, बड़ी भारी सेना सहित दुःशासन, विकर्ण, उन को राजधानी में लिवालायें। इत्यादि के पीछे कर्ण ने दुर्योधन के स्वार्थ भरे विचारों का समर्थन और भीष्म द्रोण, आदि पर छुपे २ वार किये, और पांडवों को साधन हीन बताते हुए, राज्य को बल से रक्षा करने की सम्मति दी।

विदुर का बलवान भाषण

कर्ण आदि का विचार सुन, अन्त में महात्मा विदुर बोले, राजन्! महात्मा भीष्म, और गुरु द्रोण ने, जो कहा है वह ही ठीक है यह मेरी सम्मति है। क्योंकि ये दोनों बुद्धि, आयु, धर्म, सत्याचरण, वेदाध्ययन, समता, सर्व हितैषिता में, सब से बड़े हैं, इन्हें दोनों पक्ष समान हैं, जो यह कहते हैं, दम्भ, पाप, मोह आदि से रहित है। इन्हें कोई लोभ, क्रोध, भय भी छू नहीं

सकता। इस लिए, पांडवों को, आधा राज्य ज़रूर ही दे देना चाहिये। और जो पांडवों को साधन हीन शीघ्र जीत लेने योग्य, समझते हैं, उन्हें सुन लेना चाहिये।

यस्मिन्न धृतिरनुक्रोशः क्षमा सत्यं पराक्रमः।
नित्यानि पांडवेज्येष्ठे स जीयेत रणेकथम् ॥१९
येषां पक्ष धरोरामो येषां मंत्री जनार्दनः।
किंनुतैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सात्यकिः॥२०
द्रुपदः श्वशुरो येषां येषां स्यालाश्च पार्षताः।
धृष्टद्युम्न मुखावीराः भ्रातरो द्रुपदात्मजाः।
२०५।२१
श्रुत्वा च जीवितः पार्थान्पौरजान पदा जनाः।
बलवद्दर्शने हृष्टास्तेषां राजन् प्रियं कुरु॥२८

जिस धर्मपुत्र युधिष्ठिर में, धैर्य, सर्वभूत दया, क्षमा; सत्य और पराक्रम, नित्य विद्यमान हैं, वह युद्ध में, किस तरह जीता जा सकता है? और जिन पांडवों का पक्ष धर, महाबली राम, मंत्री श्री कृष्ण, सहायक यदुकुल श्रेष्ठ सात्यकि, हैं, वे किस से जीते जा सकते हैं? और द्रुपद जिन का श्वशुर, धृष्टद्युम्न वीर शिखंडी, आदि साले हों, वे किस प्रकार साधन

हीन हो सकते हैं ? तथा यह भी विचार योग्य बात है, कि इस देश, और नगरों के पुरुष, पांडवों में बलवती, भक्ति रखते हैं, यदि पांडवोंने युद्ध किया तो देशवासी किधर होंगे? और बिना प्रजा के, प्रजापति किस के बनोगे ? इत्यादि भाषण सुन, सब ने पांडवों के लिवाने के लिये, राजसी ठाठ के साथ महात्मा विदुर को द्रुपद नगर भेजा । और उन्होंने वहां जा कर वहां के सब पूज्य पुरुषों को अपनी ईश्वरदत्त मीठी बाणी से, सन्मानित किया, और पांडवों को, तथा द्रुपद राजा के परिवार को, कुरुराज सभा की ओर से, सत्कृत किया। और राजा धृतराष्ट्र और कुरुवंश की स्त्रियों की ओर से द्रौपदी सहित कुन्ती पुत्रों के लिवाने को कहा ।

राजा द्रुपद ने, महात्मा विदुर का यथा योग्य सत्कार तथा महाराज धृतराष्ट्र के प्रेमोपहार का उचित उत्तर देते हुए पांडवों के हस्तिनापुर जाने के, सम्बन्ध में कहा-महात्मन् ! इन के जाने के लिये वीर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, तथा धर्मज्ञ राम, कृष्ण, जैसा चाहें, वही ठीक है । इस पर धर्मपुत्र बोले-पञ्चालराज ! हम सब साथियों सहित आप के अधीन है, जैसे आप आज्ञा करेंगे, वैसा ही होगा। श्रीकृष्ण ने भी इसी की पुष्टि की, तब महाराज द्रुपर ने राजधानी में जाना ही उचित समझा ।

---

* प्रजा प्रेम प्रकाश खंड ६ *

देश से निकाले गये प्रजापालकों का पुनः राजधानी में प्रवेश।

अयं स पुरुषव्याघ्रः पुनरायाति धर्मवित्।
यो नः स्वानिव दायादान् धर्मेण परिरक्षति ॥
२०७। १७

अद्य पांडुर्महाराजो वनादिव जनप्रियः।
आगतः प्रियमस्माकं चिकीर्षुर्नात्र संशयः।१८
किंनु नाद्य कृतं तात सर्वेषां नः परं प्रियम्।
यन्नःकुन्ती सुताः वीराः नगरं पुनरागताः।१९
यदिदत्तं यदिहुतं विद्यते यदिनस्तपः।
तेनतिष्ठन्तु नगरे पांडवाः शरदः शतम्।२०

महाराजा द्रुपद की आज्ञा से धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भाईयों, श्रीकृष्ण, तथा माता कुन्ती और देवी द्रौपदी, सहित हस्तिनापुर को बड़े समारोह,और उत्साह से चले। इन्हें आगे लेने, तथा स्वागत के लिये, बड़े, बलवान् सैनिकों घुड़सवारों सहित, विकर्ण, महा धनुर्धारी चित्रसेन, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य आदि माननीय पुरुष गये। तथा नगर के समीप, सारे नगर

वासी, राज्यभ्रष्ट देश से कुटिल नीति वा नीच मंत्र से निकाले हुए, राजपुत्र वास्तव में सच्चे राजा को अपने हृदयासन पर बैठाने, और प्रेमाश्रुओं से नहलाने के लिये खड़े थे। तथा नगर, अन्दर बाहर से, अपूर्व उत्साह बोधक अलंकारों से, अलंकृत था। इस समारोह के आगे २ आनन्द वाद्यों के शब्दों, जयघोषों के नाद में शनैः २ महाराज युधिष्ठिर; पूज्यवर्ग सहित स्वराज्य प्राप्त, राष्ट्रपति के समान, हस्तिनापुर में दाखल हुए। इस दिन कुछ एक पाप बुद्धि, वेद विरोधी, पुरुषत्व हीन, पुरुषों के बिना, सारे नगर के जीवों में अमृत छिड़का गया था। पशुओं की शालाओं, पक्षियों के घोंसलों, और वृक्षों के फलों में भी उत्साह, आनन्द, उत्सव, उमंग, वा उत्कर्ष, पाया जाता था, केवल वे पापी अपने पाप से जल भुन रहे थे।

देश वासियों की वाणी

जिस समय महाराज युधिष्ठिर, जलूस में जा रहे थे, तब नगर वा पुरों में रहने वाले, देश-वासी, उन के पहले कर्मों को, स्मरण कर कह रहे थे। "यह राजधर्म जानने वाला, सिंहनर, फिर आ गया है, जो अपने पुत्रों के तुल्य चारों ओर से, हमारी रक्षा, किया करता था! आज यह हमारा ही हित करने को आया है, जैसे देशवासियों का प्यारा महाराजा पांडु (इसका पिता) बन से आया करता था। हे देव! आज तैंने हमारा कौन सा, हित नहीं किया? जो कुन्तीपुत्र फिर नगर में आ गये हैं। परमेश्वर! यदि हम ने कोई दान किया हो, यज्ञ वा तप किया हो, तो उस का फल यह दो कि हमारा हित करने वाला, धर्मपुत्र अपने भाइयों सहित सैंकड़ों वर्ष हम पर राज करें"।

धर्मराज का विवाह ।

प्रजापते ! श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमाधेहि दशमे मासि सूतवे ॥
अथर्व० ५ । २४ । १३

उत्पादन मपत्यस्य जातस्यपरिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः साक्षात्स्त्री निवन्धनम् ॥
मनु० ६

युधिष्ठिरस्तु गोवासनस्य शैव्यस्य
देविकां नाम कन्यां स्वयंवराल्लेभे ।
तस्यां पुत्रं जनयामास यौधेयं नाम ॥
आदि० ६५ । ७६

कुछ दिन, हस्तिनापुर, रहने पर, धर्मराज युधिष्ठिर ने, शैव्य के राजा, गोवासन की * ' देविका ' नाम सुशीला सुवीरा कन्या से, स्वयंवर विवाह (वेद रीति से) किया । और इस से " यौधेय " नाम एक बड़ा बलवान् पुत्र पैदा हुआ ।

इस स्वयंवर विधान से भीम का "बलंधरा" से, नकुल का " करेणुमती " से, सहदेव का " विजया " से विवाह हुआ । और सब के पितृ अनुरूप, चिरायु पुत्र, उत्पन्न हुए ।

---

* इस से स्पष्ट है कि धर्मराज की स्त्री ' देविका ' थी द्रौपदी न थी ।

विवाह समय महाराजा युधिष्ठिर की आयु ४० वर्ष के लगभग और भोमादि की ३० वर्ष से ऊपर अर्थात् सब का ब्रह्मचर्य आश्रम पूर्ण हो चुका था ।

चेत् आजकल के श्रीमान, बलवान्, धनवान्, बुद्धिमान् भी अपने और अपने पुत्रों पौत्र के विवाह शास्त्र अनुसार समय पर करना सीखें ।

---

* तृतीय भाग *

राजधानी निर्माण खंड १

अध्वपते ! प्रमातिर स्वास्तिमेऽस्मिन् पथिदेव याने भूयात् । यजु० ५ । ३३

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतनाजयेम । अथर्व० ५ । ३ । १

कुछ वर्षों के, पीछे महात्मा भीष्म, आदि की सम्मति से, राजा धृतराष्ट्र ने, यह विचार कर कि दुर्योधन आदि से, पांडवों का, नित्य कलह (झगड़ा) न हो, धर्मराज को बुला कर, खांडव प्रस्थ में रहने; और वहां से ही अपने आधे राज्य की व्यवस्था करने का हुक्म दे दिया, जिसे मान पांडव, खांडवप्रस्थ को चले गये ।

इन्द्रप्रस्थ की शोभा

धर्मराज ने, खांडवप्रस्थ में, जाकर ऐसा सुन्दर हवादार, विशाल भवन बनाया कि इसकी शोभा को देख लोग इसे " इन्द्रप्रस्थ " के नाम से पुकारने लग गये। इस के ऊंचे २ सुफेद महल, इस के बारा मास फूल लाने वाले सुगन्धि भरे वृक्ष, इस को शान्त तथा निर्मल करने वाली, नगर कुल्या (नहरें) इस की रक्षक कोट और खाई, इसके व्यापारियों का सत्य भाषण, इसके वासियों की शुद्ध जीवनो से, नागों की भोगवती समान संसार में इस की महिमा फैल गई।

तल्पैश्चाभ्यासिकैर्युक्तं शुशुभे योधरक्षितम्।
तीक्ष्णांकुश शतघ्नी भिर्यन्त्र जालैश्च शोभितम्॥
२०७। २४

आयसैश्च महाचक्रैः शुशुभेतत्पुरोत्तमम्।
सुविभक्तं महारथ्यं देवतावाध वर्जितम् ॥३५॥
तत्रागच्छन्द्विजा राजन् सर्ववेद विदांवराः ।३७
निवासं रोचयान्तिस्म सर्वभाषा विदस्तथा।
वणिजश्चाय युस्तत्र नाना दिग्भ्यो धनार्थिनः ३९
सर्वशिल्प विदस्तत्र वासायाभ्यागमंस्तदा ॥४०

इस के बड़े २ द्वारों पर, शस्त्राभ्यासी, रक्षा के लिये

आठों पहर, खड़े रहते, इस के कोट और बुर्जों पर * तोपें, और कला से चलने वाले, लोह चक्र विद्यमान थे। तेज अंकुश और शत्रु नाशक यंत्रों से ही, इस के झरोखे बने हुए थे। सारांश यह, यह नगर, अन्दर बसने वालों के लिये, अकुतो भय, धन धान्य पूर्ण दुर्ग था। इस के मध्य में धर्मराज का, सुन्दर विशाल एकान्त, गुप्त सुरक्षित मंदिर था। जिस में देश प्रतिनिधियों सहित, राजा देश पालन किया करते थे। इसकी गली बाजार, बड़े चौड़े, जिन में से महारथियों के रथ निकल

---

* जो लोग समझते हैं, कि पुराने आर्य लोग तोप बन्दूक का प्रयोग तथा उन का बनाना नहीं जानते थे, वे नीचे लिखे शुक्रनीति के श्लोकों को अर्थ सहित विचारें।

नालीकं द्विविधं ज्ञेयं बृहत् क्षुद्रविभेदतः।
तिर्यगूर्ध्वं छिद्रमूलं नालं पञ्च वितस्तिकम् ॥१॥
मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदि तिलं बिन्दु युतं सदा।
सुकाष्टोपांगबुध्नश्च मध्यांगुलि बिलान्तरम् ॥२॥
स्वान्तेऽग्नि चूर्ण संधातृ शलाका संयुता सदा।
लघु नालीयकं ह्येतत् प्रधार्यं पत्तिसाधिभिः ॥३॥
यथा यथातु त्वक्सारं यथा स्थूल बिलान्तरम्।
यथादीर्घं बृहद्गोलं दूरभेदि तथा तथा ॥४॥
बृहन्नालीक संज्ञंतं त्काष्ट बुध्न विवर्जितम्।
प्रवाह्यं शकटाद्यैस्तु सुयुतं विजय प्रदम् ॥५॥ (शुक्रनीति)

तथा देखो बालमीको रामायण बालकांड सर्ग। ५।

जाय। और मकान सूर्यातप, और वायु देवता, के आने जाने के लिये, हर ओर से स्थान रखते थे। दूर २ देशों के वेदवेत्ता, ब्राह्मण, सर्व भाषा जानने वाले, यात्री, हर एक प्रकार के शिल्पी (इञ्जनीयर) दशों दिशाओं के व्यापारी, तथा गुणी ज्ञानी, आकर वसना चाहते थे। और वहां वसने वाले पर कभी पक्षपात न किया जाता था। सब का सम अधिकार था।

अर्जुन का देश भ्रमण।

ततोनिमित्ते कस्मिंश्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः।
वनं प्रस्थापयामास तेजस्वी सत्य विक्रमः॥
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं स्थिरात्मानं गुणैर्युतम्।
सवै संवत्सरं पूर्णं मासं चैकं वने वसन्॥

आदि० ६१। ४०-४२

इन्द्रप्रस्थ में, उत्तम व्यवस्था चल जाने पर, धर्मराज ने अपने दृढात्मा, गुणवान्, भाई, अर्जुन को किसी राज कार्य के, अर्थ वनादि की यात्रा के लिये भेजा, उधर उसे १३ महीने लगे। इस भ्रमण में अर्जुन ने अंग, वंग, कलिंग, केरल, आदि प्रान्तों की यात्रा की। रास्ते में मणिपूर के चित्रवाहन, नामक गंधर्व राजा के भी ठहरे। और उस की चित्रांगदा नामक कन्या से, उसके पितृ कुल को, वृद्धि के लिये, नियोग किया। चित्रांगदा का पुत्र बभ्रुवाहन प्रसिद्ध राजा अर्जुन के ही वीर्य से था। उसे ही वहां का राज्य मिला। अब तक भी केरल में पुत्री के पुत्र को ही वंश का स्वत्व मिलता है।

सुभद्रा विवाह †

वहां से चल कर अर्जुन, अपने मित्र कृष्ण की द्वारवती, नगरी में गये। वहां कृष्ण भगिनी, सुभद्रा को, अपने समान सुवीरा, जान विवाह की इच्छा की, और कृष्ण तथा धर्मराज की आज्ञा से, क्षात्र धर्म से, रैवत पर्वत पर गयी सुभद्रा को, अपने अधीन कर लिया।

---

† सुभद्रा विवाह अनेक लोग शास्त्र विरुद्ध, लोक विरुद्ध, नीति विरुद्ध, कहते हुए इसे अर्जुन की कामेच्छा, पर निर्भर बताते हैं। इस लिये इस पर विचार करना जरूरी है।

शास्त्र विरुद्ध कहने वाले कहते हैं, सुभद्रा मामा की बेटी होने से अर्जुन को अप्राप्त थी? इस के उत्तर में विवेदन है, कि अर्जुन आदि कुन्ती पुत्र थे, और कुन्ती कुन्तीभोज की कन्या थी, इसी लिये उसका नाम कुन्ती था। जैसे सीता का नाम जानकी, कृष्णा का द्रौपदी, आदि ये देश वाचक नाम हैं। निज नाम नहीं। "मातुलोभवतः शूरः पुरुजित्कुन्तिवर्धनः" सभा० १४। १७ अर्थात् श्री कृष्ण पांडुपुत्र को कहते हैं, तेरा मामा कुन्तीभोज तेरे पक्ष में है।

लोक विरुद्ध मानने वाले कहते हैं, इस प्रकार बलात् कन्या का ले जाना एक क्षत्रियवीर को सजता नहीं? इस पर निवेदन है, कि आठ प्रकार के विवाहों में यह भी एक विवाह है, शास्त्र में इसे राक्षस विवाह कहा है "राक्षसोयुद्धहरणात्" याग्य० मनु० ३। ३३ और राक्षस विवाह, क्षत्रिय के लिये विरुद्ध नहीं। राक्षसं क्षत्रियस्यैकम् ॥ मनु ३। २४। गान्धर्वो-राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रियस्य तौ स्मृतौ ॥ मनु० ३। २६। गन्धर्व

इस पर पहले तो यादव वंश बड़ा क्षुब्द हुआ, और सुधर्मा सभा में, अर्जुन पर कोप प्रकाश किया, पर पीछे से कृष्ण के समझाने पर उस का विवाह विधि पूर्वक कर दहेज दे इसे सुभद्रा सहित इन्द्रप्रस्थ भेज दिया।

(स्वयंवर) और राक्षस क्षत्रिय के लिये धर्मानुकूल है। माघ-काव्य की टीका में मल्लीनाथ ने भी इसे शास्त्र सम्मत वा लोक सम्मत कहा है। लोक में ऐसे विवाह, उन दिनों क्षत्रियों में होते भी थे। जैसे १ भीष्म ने,काशीराज की कन्याओं को,उठा कर घर में ला चित्रांगद और विचित्रवीर्य,से ब्याहा। २ श्रीकृष्ण जी ने रुक्मणी को, उस के पिता भ्राता के घोर विरोध में, बलात् रथ में बिठा घर में ला विवाह किया।

द्रौपदी को लक्ष्य वेधन के पीछे युद्ध द्वारा ही, अर्जुन भीम आश्रम में लाये थे।

नीति विरुद्ध इस लिये नहीं, कि सुभद्रा को, अर्जुन मनमानी रीति से घर नहीं लाये, किन्तु यदुकुलभूषण, महा नीतिज्ञ, श्रीकृष्ण की, सम्मति तथा धर्मपुत्र युधिष्ठिर की आज्ञा से लाये। और विवाह तो सारे यादवों की एक मति से हुआ था। और दहेज, आदि राजकुल के योग्य ही दिया गया था! देखो महा० आदि० २१८। २४, २५।

ततोऽर्जुनश्च कृष्णश्च विनिश्चित्येतिकृत्यताम्।
शीघ्रगान्पुरुषानन्यान्प्रेषयामासतु स्तदा ॥ २४ ॥
धर्मराजायतत्सर्वं मिन्द्रप्रस्थ गताय वै।
श्रुत्वैवच महाबाहु रनुजज्ञेसः पांडवः॥ (युधिष्ठिर)

*और देखो अ० २२०

इन्द्रप्रस्थ में, जाकर सुभद्रा, सारे परिवार में, अपने गुणों से पूजित हो, सानन्द रहने लगी।

धनुर्वेद शिक्षण

महाराज युधिष्ठिर ने, जिस प्रकार संस्कार करने, और वेदाध्ययन के लिये, वेद विद्यालय खुलाये हुए थे। इसी प्रकार क्षत्रिय आदि वर्णों को धनुर्वेद, की शिक्षा के लिये भी एक शस्त्र, अस्त्र, सम्पन्न भारी धनुर्वेद का विद्यालय था। इस के आचार्य वीर अर्जुन स्वयं थे। द्रौपदी पुत्र, युधिष्ठिर पुत्र यौधेय, भीम नकुल सहदेव पुत्र और यादव कुल के, प्रद्युम्न आदि वीर बहुत से गन्धर्व कुमार यहां शिक्षा पाते थे। महाभारत, युद्ध का महारथी वीर अभिमन्यु श्रीकृष्ण के प्रबन्ध से वेद वेदांग पढ़ कर धनुर्वेद के, स्नातक, अपने पिता, अर्जुन के शिक्षणालय से ही हुये थे। यहां सब राजकुमार वा विद्यार्थी ब्रह्मचर्य के नियमों से ही रहते थे।

अर्जुनंये चसं श्रित्य राजपुत्रा महाबलाः ॥३३॥
अशिक्षन्त धनुर्वेदं रौरवाजिन वाससः।
तथैव शिक्षिताराजन् कुमारा वृष्णिनन्दनाः ३४
धनञ्जय सखा चात्र नित्यमास्तेस्म तुंबरूः ।३६
उपासते महात्मानं मासीनं सप्तविंशतिः।
चित्रसेनः सहामात्यो गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥

सभा० ४। ३३-४०

अर्जुन ने अपने विद्यार्थियों को * चार पाद युक्त † दश विध धनुर्वेद बड़ी अच्छी प्रकार पढ़ाया था। यहां के पढ़े लोग वीर ही न होते थे किन्तु धर्मात्मा भी होते थे।

राजा के तीन गुण।

अध्येतारं परं वेदान्, प्रयोक्तारं महाध्वरे।
रक्षितारं शुभांल्लोकान्लेभिरे तं जनाधिपम्॥

आदि० २२२

धर्मराज युधिष्ठिर में, और उत्तम गुणों के साथ, तीन गुण विशेष थे। १ वे नित्य वेदों को पढ़ते, और पढ़ाते थे।

---

* सूत्र, शिक्षा, प्रयोग, और रहस्य ये धनुर्वेद के चार पाद हैं॥

† १ आदानं (बाण का भत्थे से लेना) २ संधानं (चिल्ला में चढ़ाना) ३ मोक्षणं (निशाने पर छोड़ना) ४ विनिवर्त्तनं (कमजोर निशाने से अस्त्र को लौटाना) ५ स्थानं (धनुष और चिल्ले का ग्रहण योग्य स्थान जानना) ६ मुष्टिः (तीन वा चार अंगुलि का बांधना) ७ प्रयोग (तर्जनी मध्यमा वा मध्यमा अंगुष्ट से बाण का जोड़ना) ८ प्रायश्चित्तं (अपने वा दूसरे से छुटे वा छुट रहे अस्त्र से बचाऊ के लिये कंठ त्राण अंसत्राण, तल त्राण, आदि प्रत्यस्त्रों का धारण करना। ९ मंडलानि (चक्र बांध घूम रहे, रथ से चक्र समान चल रहे लक्ष्य का बेंधना) १० रहस्य (शब्दादि वेधन, एक ही समय में अनेक लक्ष्यों का वेधन) ये दश विध धनुर्वेद कहाता है, इस के और भेद भी हैं।

२ सारे देश वासियों को * महा यज्ञों में लगाये रखते, और ३ नेक आदमियों की सदा रक्षा करते और दुष्टों को दंड देते थे ॥

खांडव दाह और मय रक्षा

इन्द्रप्रस्थ के निकट, यमुना किनारे, कुछ नाग और असुर, आदि लोग वसते थे। पावक नाम ब्राह्मण के कहने, पर देश हित के लिये धर्मराज की आज्ञा से श्रीकृष्ण और अर्जुन ने उन्हें क्रोधाग्नि से दग्ध करना आरम्भ किया, और इन में से जो साम्हने लड़े, उन्हें युद्ध से जीता । नागों का † मुखिया तक्षक तो वहां से

---

* १ ब्रह्मयज्ञ-संध्या, २ देवयज्ञ-होम, ३ पितृयज्ञ-श्राद्ध तर्पण, ४ भूतयज्ञ-बलि वैश्व देव, नृयज्ञ अतिथि पूजन, पंच महा यज्ञ कहाते हैं, विस्तार के लिये पञ्च-महायज्ञ विधि ग्रन्थ देखें।

† पिछले नोट में हम आदि पर्व ९५। २५ के आधार से सिद्ध कर चुके हैं, कि तक्षक, मनुष्य जाति में से था । उस की बेटी " ज्वाला " चन्द्रवंशी महाराज ऋक्ष से, ब्याही गई थी। यहां तक्षक और उस की जाति के, विषय में कई एक विदेशी विद्वानों की सम्मतियें देते हैं ।

प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता ' डीगायन ने तक्षक को तक्युक मुगल नाम से लिखा ।

ग्रीक के इतिहास लेखकों ने " तक्षक स्थान " को तकारिस्थान वर्तमान ' तुर्कस्तान ' लिखा है । देखो टाड का राजस्थान हिन्दी पृ० २१ ।

अबुलग़ाज़ी ने उक्त तक्षक को, तुर्क का पुत्र तनक, कहा

कुरुक्षेत्र में चला गया । और असुरों के मुखिया 'मय' को जब कृष्ण सुदर्शन से मारने लगे तब उस ने अर्जुन की शरण में आ प्राण बचाये ।

सारांश थोड़े दिनों (१५) में यह प्रदेश नागों तथा असुरों से शुद्ध कर दिया ।

है, इस जाति के वीर गण शाकद्वीप से, भारतवर्ष में, आये। चीन वाले इसे 'तुक शूक' कहते हैं ।

ग्रीकों ने लिखा है, तक्षक जाति, तकारी थी, इसी ने ग्रीक के प्रसिद्ध राज्य बख्तियार को, नष्ट भ्रष्ट कर, एशिया मंडल में तुर्कस्तान बसाया । देखो टा० रा० हिन्दी पृ० ६७ ।

व्यास के कथनानुसार, इसी तक्षक जाति की क्रूरता से, परिक्षित का मरण हुआ ।

राजस्थान के लेखक टाड महाशय लिखते हैं, गिल्हटों के पहले चित्तौड़ में तक्षकों का राज्य था । २ गिल्हटों पर, जब मुसलमानों ने, चढ़ाई की तब असीरगढ़ (खानदेशी के राजा आर्य राजाओं के साथ, आर्य भूमि की रक्षा के लिये, सहायक रूप से आये थे ' ३ दिल्ली नरेश, पृथ्वीराज की सेना का, प्रधान तक्षक वंशी वीर था । ४ फिर 'शिहरण' नामी तक्षक मुसलमान हो गया, उस की १४ वीं पीढ़ी का मुजफर नामी वीर जब मरा, तब से, इस वीर जाति का मूल, सदा के लिये (असली नाम से) उखड़ गया । टा० रा० पृ० ६९

एक स्थान पर टाड साहब, भविष्यपुराण की, भविष्य बाणी, बताते हुए लिखते है । सूर्य और चन्द्रवंश के, प्राचीन

गांडीव प्राप्ति वा मय मैत्री

इस युद्ध की दो बातें चिरस्मरणीय रहेंगी एक पावक देव ने प्रसन्न हो कर कुन्ती पुत्र अर्जुन को " गांडीव धनुष " दिया जिस के सहारे धर्मराज के राज्य में शत्रु नहीं आ सकते थे। दूसरी मयनामी प्रसिद्ध असुर (दानव) से अर्जुन की दृढ़ मैत्री हो गई जो युद्ध का उत्तम फल होता है।

भीम की गदा और (अर्जुन का) देवदत्त शंख भी इसी से मिला था।

सभा निर्माण वा प्रवेश खंड २।

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्। समानं मंत्र मभिमंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥

सभायाश्च वैससमितेश्च सेनायाश्च।
सुरायाश्च प्रियंधाम भवति य एवंवेद॥

अथर्व १५। ६

वैरी, तक्षक लोग तथा यवनादि, दूसरे विदेशीय अनार्य, भारत वर्ष के राजा होंगे। इसके आगे लिखा है, कि बादशाह तक्षक जाति का था, और शाकद्वीप से आया था। देखो टाड का राजस्थान हिन्दी १ भाग पृ० २४६।

एक विद्वान् यह भी लिखते हैं, कि तक्षक जाति राजपूतों की थी, इनका किला अजेय था। टा० रा० हिन्दी १ भाग

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्या सभासदः ॥ श्रुति

एक दिन * मयासुर ने, अर्जुन से, कहा—आपने मेरी

---

* मय असुर जाति में पैदा हुआ एक शिल्प विद्या का पंडित था, इस की जाति के विषय में श्रीयुत वैद्य लिखते हैं, महाभारत मीमांसा पृ० १५५ । ऋ० १० । ३८ । ३ । और उपनिषदों में भी लिखा है, असुर तथा सुर एक ही जाति के हैं, इन में असुर बड़े हैं, (पूर्व जन्मे हैं) क्योंकि पहले सब असुर अविद्वान् होते हैं, फिर सुर (विद्वान्) ।

पञ्जाब में अविवेकी, मलिन, निद्रालु, नवयुवकों को अब भी अस्सर (असुर) कहा जाता है ।

लो० तिलक "अर्टिक होम इनदी वेदाज" में इरानी और पारसियों को, आर्यों से पराजित् असुर मानते हैं ।

असुराजज्ञिरेक्षेत्रे राज्ञांतुमनुजेश्वर ।
जज्ञिरेभुविभूतेषु तेषुतेष्वसुराः विभो ॥ आदि० ६४।२७

महाभारत के इस श्लोक से असुर क्षत्रिय माताओं के ही पुत्र मर्त्यलोक वासी जाने जाते हैं ।

असुरों की तरह म्लेच्छ भी देश भेद, आचार भेद, वा भाषा भेद से, आर्यों से भिन्न गिने जाते थे ।

समुद्रवासिनी सर्वाः म्लेच्छजातीर्विजिग्यतुः ॥ आदि० २१० । ८ मनुस्मृति में भी म्लेच्छदेशस्त्वतः परः । आदि से म्लेच्छों को मनुष्य ही माना है । देखो मनु० ।

प्राणरक्षा की है, कोई सेवा मुझे बताइये। इस पर अर्जुन ने, कहा यदि मेरा उपकार करना चाहते हो तो "जो श्रीकृष्ण कहे करो" श्रीकृष्ण से, पूछने पर उन्होंने, महाराज युधिष्ठिर के लिये एक अनुपम "सभागृह" बनाने की आज्ञा दी। तब मय ने, दश हजार हाथ, घेरे की जमीन, नाप कर, दूर २ देशों के स्फटिक शिला, सोना, वैदूर्य, मणि, रत्न, आदि से निर्मित, वा खचित सभा १४ महीनों में बनाई। सभागृह के मध्य में, एक छोटा सा कृत्रिम सरोवर बनाया। उस में कमल मछलियां, और पक्षी, आदि सब स्वर्ण तथा रंग बिरंगे रत्नों से बनाये थे। चारों ओर जलवत् निर्मल, स्फटिक की सीढ़ियां थीं। आस पास के घाट, फर्श, तथा खिड़की, द्वार, फर्श, भी

आर्या म्लेच्छाश्च कौरव्य सैर्मिश्रा पुरुषाविभो।

(भीष्मपर्व ६। ११३)

अर्थात् इस देश में आर्य म्लेच्छ, मिश्र, तीन प्रकार के पुरुष थे॥

नार्या म्लेच्छन्ति भाषाभिः। म्लेच्छामाभूम इति अध्येयं व्याकरणम्॥ (पातंजल महाभाष्ये)

आर्य लोग म्लेच्छों की तरह नहीं बोलते। हम बोलने में म्लेच्छ न हो जायं, इस लिये व्याकरण पढ़ना चाहिये। इस से साफ है, कि म्लेच्छों की भाषा भ्रष्ट होती थी। कहीं २ आचार हीन को भी म्लेच्छ कहा गया है। अधिकतर ये सब भेद, आचार, विचार, देश, भाषा भेद से ही थे, जन्म, वा भिन्न योनि से नहीं॥

मणि रत्नों को, बड़ी शिलाओं से बनाये गये थे। सारांश यह मय रचित सभागृह अद्भुत ही बना था। इस सभा के जल भाग, स्थलवत् और स्थल भाग जलवत्, प्रतीत होते थे।

तांसभामभितो नित्यं पुष्पवन्तो महाद्रुमाः।
आसन्नानाविधालोलाः शीतच्छाया मनोरमाः॥
जलजानांच पद्मानां स्थलजानां च सर्वशः।
मारुतोगन्धमादाय पांडवान् स्मनिषेवते॥

सभा० ३। ३५,३६

इस सभा के इर्द गिर्द, हर ऋतु में, फूलने वाले, जल स्थल के, वृक्ष सभा को सुगन्धित किया करते थे।

धर्मराज का सभा में प्रवेश

सभा के तयार होने पर, वेद रीति से, शाला प्रवेश संस्कार, करा कर, और दश हजार ब्राह्मणों को, भोजन जिमा, युधिष्ठिर महाराज ने प्रवेश किया। सभा को देखने के लिये, अनेक ऋषि, और राजे, तथा राजकुमार, आये जिन में से कुछक नाम ये हैं। असित, देवल, सत्य, सर्पि, माली, महाशिरा, अर्वावसु, सुमित्र मैत्रेय, शुनक, बलि, वक, दाल्भ्य, स्थूलशिरा, कृष्णद्वैपायन, शुक, सुमंत, जैमिनि, पैल, वैशम्पायन, तित्तिरि, याज्ञवल्क्य, लोमहर्षण, धौम्य, अणीमांडव्य, कौशिक, त्रैबलि, पर्णाद, मौंजायन, वायुभक्ष, पाराशर्य, सारिक, बलिवाक्, सत्पाल, कृतश्रम, शिखावान्, पारिजातक, पर्वत, महामुनि मार्कंडेय,

पवित्रपाणि, भालुकि, गालव, जंघाबन्धु, रैभ्य, भृगु, हरिबभ्रु, कौंडिन्य, काक्षीवान्, औशिज, नाचिकेत, गौतम, पैंग्य, वराह शांडिल्य, कालाप और कठ, प्रभृति वेदज्ञ,धर्मज्ञ, विद्वान् ऋषि और मुंजकेतु, विवर्धन, संग्रामजित्, उग्रसेन, कक्षसेन, क्षितिपति, क्षेमक, कम्बोजराज, कमठ, कंपक, जटासुर, कुन्ति, पुलिंद, अंग, बंगाधिपति, पुंड्र, पांडय, अंध्रक, शत्रुनाशक, शैब्य (युधिष्ठिर का श्वशुर) सुमना, यवनराजा, चामरूर, देवरात, भोजराज, भीमरथ, श्रुतायुध, कलिंगराज, मगधपति जयसेन सुकर्मा, चेकितान, केतुमान, वसुदान, वैदेह, कृतक्षण, सुधर्मा, अनिरुद्ध, श्रुतायु, दुर्धर्ष, क्रमजित्,सुदर्शन, पुत्र सहित शिशुपाल, वृष्णिकुमार, प्रसिद्ध यादव आहुक, विपृथु, गद, सारण, अक्रूर, कृतवर्मा, सत्यक भीष्मक, द्युमत्सेन, केकयराज, सोमकवंशी यज्ञसेन (द्रौपदी के पिता) केतुमान्, आदिराजा, रुक्मणी पुत्र प्रद्युम्न, सांभ, युयुधान, सात्यकि, आदि अर्जुन के शिष्य तथा मित्र और गीत वादित्र में कुशल तुंबरू, आदि २७ गंधर्व भी सभा में दर्शनार्थ पधारे थे।

महाराजा युधिष्ठिर की शासनरीति।

ऋषि शासन खंड ३

(नारद आदि पञ्च ऋषियों की ओर से जांच)

यत्र ब्रह्म च क्षत्रंच सम्यञ्चौ चरतः सह ।

तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्रदेवा सहाग्निवा ॥

यजु० २२५

नाक्षत्रं ब्रह्म ऋध्नोति नाब्रह्मक्षत्रं वर्धते ॥ मनु० ॥

महाराज युधिष्ठिर की, शासनरीति, वा देश दशा, कैसी थी, उस का पता नीचे के प्रश्नों से लगेगा, जो पड़ताली कमेटी के ढंग, पर सभा में, राजा से पूछे गये हैं। एक दिन भरी सभा में, वेद, उपनिषद्, नीति, धर्म, इतिहास, युद्ध विद्या, अर्थशास्त्र और राजनीति के सम्पूर्ण अङ्गों के जानने वाले, वक्ता, मेधावी, कवि लोक दर्शी और सर्व भूत हितैषी सर्वत्र बिना रोकटोक पहुंचने वाले, १ महर्षिनारद * २ पारि-

* ददाति नारं ज्ञानञ्च बालकेभ्यश्च बालकः ।
जातिस्मरो महाज्ञानी ते नायं नारदाभिधः ॥ शब्दकल्पद्रुमे

महर्षि सनत्कुमार के पूछने पर ऋषि नारद ने कहा कि मैंने यह विद्याएं पढ़ी हैं :—

सहोवाचऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेद१७ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्य१७राशिंदैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां१७ सर्पदेवजनाविद्यामेतत् भगवोऽध्येमि।

(छान्दोग्योपनिषद)

अर्थात् हे भगवान् ! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, वेदों के अर्थ विधायक ग्रन्थ, पितृविद्या, राशिविद्या, दैवविद्या, निधिविद्या, वाकोवाक्य विद्या, एकायनविद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्र-

जात, ३ पर्वत ४ सुमुख और ५ सौम्य ऋषियों, सहित धर्म-राज को, देखने पधारे। कुशल प्रश्न, तथा उचित पूजा सत्कार हो जाने पर, महर्षि नारद ने पूछा।

विद्या, नक्षत्रविद्या, और सर्पदेवजन विद्याओं का अध्ययन किया है।

इन विद्याओं की व्याख्या भारतवर्ष के इतिहास में इस तरह की है—

" इतिहास, पुराण " (History), " वेदातां वेदम् " अर्थात् वेदों के अर्थ जिन विद्याओं से जाने जायें यथा व्याकरण, निरुक्तादि (Grammer and Philology, etc), "पित्र्यम्" पित्रों को प्रसन्न रखने की विद्या (Anthropology), " राशिम् " गनित विद्या (Methematics), " दैवम् " उत्पातविद्या, यथा भूकम्प, जलप्लावन, वायु कोप (Physical Geography), "निधिम्" खातों की विद्या (Minerology), " वाकोवाक्यम् " तर्क शास्त्र (Logic), "एकायनम्" नीति विद्या (Ethics), " देवविद्याम् " ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता, कि यहां ' देव ' शब्द का क्या अभिप्राय है। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में जो आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, बिजली और हवन यज्ञ को तेतीस देव माना है। यदि उन की व्याख्या देव विद्या में हो तो निःसन्देह यह विद्या बहुत बड़ी होगी, जिस के अन्तर्गत सम्पूर्ण तत्वविद्या यथा रसायन शिल्पादि सभी होंगे और साथ ही मेटर (Matter), वा तत्व के भिन्न चेतन जीव की भी व्याख्या होगी, (Physical Science), " ब्रह्मविद्याम् " जिस में ब्रह्म की व्याख्या हो

राजन्! आप के सब अर्थ समय पर सिद्ध होते हैं? मन धर्म में लगता है? आप राजसुख भोगते हैं? कभी मन व्याकुल तो नहीं होता? राजन्! आप पूर्वजों की, उदार नीति का, आश्रय लेकर ही, धर्मार्थ की वृद्धि करते हो? हे वरद! तुम ने धर्म, अर्थ, काम, रूपी पुरुषार्थ त्रय को, प्राप्त करने के लिये अपने समय का, विभाग किया हुआ है? पाप रहित राजा के ६ छः गुण[1] ७ सात उपाय[2] बलाबल तथा चौदह दोषों[3]

(Brahma Vidya), "भूतविद्याम्" प्राणियों की विद्या अर्थात् प्राणियों के प्रकार वर्णन तथा उनकी रचनादि (Zoology, Anatomy etc), "क्षत्रविद्याम्" धनुर्विद्या तथा राज शासन विद्या (Mibtary Science and art of Government), 'नक्षत्र विद्याम्" ज्योतिष (Astronomy), सर्पदेवजनविद्याम्" का तात्पर्य ठीक २ नहीं ज्ञात होता। परन्तु सम्भव है कि इस में सर्पों के विष दूर करने की विद्या तथा देव और जन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक प्रकार की विद्याओं को वर्णन हो (Scientific treatmentof Venomous reptiles,etc) ॥

सम्भव है कि इस व्याख्या में कहीं कहीं विद्वानों का मतभेद है॥

१ छः गुण १ व्याख्यान शक्ति २ शत्रु दबाने में प्रगल्भता ३ मेधावी ४ स्मृतिमान् ५ नीतिज्ञ ६ कवि।

२ सात उपाय १ साम २ दान ३ दंड ४ भेद ५ मन्त्र ६ औषध ७ और बलाबल विवेक।

३ चौदह दोष– नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्।

की परीक्षा करते रहते हो ? तथा अपना और शत्रु का विचार कर ४ आठ कर्मों का सेवन करते हो ?

राजन् ! सात* प्रकृति आप की ठीक है ? धनी वा

अदर्शनं ज्ञानवता मालस्यं पञ्चवृत्तितां ।
एकचिन्तन मर्थाना मनर्थज्ञैश्च चिन्तनम् ।
निश्चितानामनारंभं मंत्रस्या परिरक्षणम् ।
मंगलाद्य प्रयोगंच प्रत्युत्थानंच सर्वतः ॥

१ नास्तिकता २ झूठ बोलना ३ क्रोध ४ प्रमाद ५ दीर्घ सूत्रता ६ ज्ञानवतों का अदर्शन ७ आलस्य ८ विषयवृत्ति ९ देश दशा का एक मंत्री से विचार १० अर्थ के न जानने वालों के साथ विचार ११ सभा से निश्चितों का आरम्भ न करना १२ मन्त्र की रक्षा न करना १३ उत्सव आदि का न करना १४ एक ही बार अनेक शक्तियों से, लड़ाई आरम्भ करना । अथवा १ देश २ दुर्ग ३ रथ ४ हस्ती ५ वाजी ६ योधाओं के अधिकारी ७ अन्तपुर ८ अन्न गणक ९ शास्त्र १० लेख्य ११ धन १२ आसन आदि के अधिकारियों की परीक्षा करें ।

४ आठ कर्म १ कृषि, खेती का प्रबन्ध, २ सड़कें बनवाना ३ किले बनाना ४ पुल बनाना ५ हाथियों का रक्षण पोषण ६ खानों का प्रबन्ध ७ शून्य देशों का बसाना और व्यापार का सुरक्षित प्रबन्ध करना ।

* १ सेनापति २ अमात्य ३ सुहृद ४ कोष ५ राज्य ६ दुर्ग और ७ सेना ये राजा की सात प्रकृति कहलाती हैं ।

निर्धन, आप के प्रबंध से, सन्तुष्ट हैं ? आप के गूढ मंत्र को तुम्हारे विश्वासी मनुष्य, बनावटी दूत, तुम खुद, तुम्हारे मंत्री प्रगट तो नहीं कर देते ? अपने मित्र, उदासीन, शत्रु, मनुष्यों के संकल्पों को काल के अनुसार जानते हो वा नहीं ? संधि विग्रह के समय को ठीक २ विचारते रहते हो ? तुम्हारे कुलीन, राज्य भक्त, वीर तथा मंत्र रक्षक तो हैं ? आप समय पर जाग कर, देश रक्षा, का चिन्तन करते हो। जागने के समय तो सो नहीं जाते।

कच्चिन्मंत्रयसे नैकः कच्चिन्नबहुभिसह ॥

सभा० ५ । ३० ।

आप राष्ट्र कार्य को अकेले ही, वा बहुत (अनिश्चित) पुरुषों से तो विचार नहीं करते ! थोड़े परिश्रम से बहुत फल वाले, कार्यों के करने में, देर तो नहीं करते ? राजन् ! क्या आप ऐसा करते हैं, कि आप के कार्य को पूर्ण होने वा पूर्ति निकट होने पर ही दूसरे जान सके, उस से पूर्व नहीं। आप केवल इच्छानुसार ही शास्त्राज्ञा छोड़ तो शासन नहीं कर रहे ? मानप्रद ! आप के राज्य में जो मान योग्य कार्य प्रजा पुरुष वा राजभृत्य, करते हैं, उन्हें मान (इनाम) वा अधिक वेतन देते हो ?

कच्चित्कारणिकाधर्मे सर्वशास्त्रेषु कोविदाः।
कारयन्ति कुमारांश्च योधमुख्यांश्च सर्वशः ५।३४
कच्चित्सहस्रैर्मूर्खाणामेकं क्रीणासि पंडितम् ॥३५

कच्चिद्दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्ययुधोदकैः ।
यंत्रैश्च परिपूर्णानि तथाशिल्पिधनुर्धरैः ॥ ३६

धर्मरक्षक ! सर्वशास्त्र वेत्ता, आचार्य, देश के नवयुवकों को विद्या, तथा योधाओं, को युद्ध विद्या ठीक २ सिखाते हैं ? हजार मूर्ख से एक पंडित को अच्छा समझते हो न ? राष्ट्र-रक्षक ! आप के किले, धन धान्य जल शस्त्र, अस्त्र, आयुध यंत्र, धनुर्धारी, योधाओं से और शस्त्र बनाने वाले, शिल्पियों से भरपूर रहते हैं ? राजन् ! आप का पुरोहित यज्ञादि की विधि और काल जानने वाला, कुलीन, सरल, मतिमान्, विनयसम्पन्न, प्रवक्ता, अनुसूय, बहुश्रुत आप से नित्य सत्कार पाकर आप के पास रहता है ? क्या ज्योति शास्त्र का जानने वाला, दैवज्ञ, आप के साथ है ? राजन् ! आप उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, पदों पर विचार पूर्वक यथायोग्य उत्तम, मध्यम, और निकृष्ट पुरुषों को ही नियत करते हो न ?

आप पिता पितामह से, चले आते पवित्र विद्वान् मंत्रियों को मान करते हो ?

कच्चिन्नोग्रेण दंडेन भृश मुद्विजसे प्रजाः ।
राष्ट्रं तवानुशासन्ति मंत्रिणोभरतर्षभ ॥ ५। ४४
कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।
सम्प्राप्तकालेदातव्यं ददासि न विकर्षसि ॥ ४८

कच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्रा प्रधानतः ।
कच्चित्प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति सदायुधि ॥ ५०

प्रजापते ! आपके मंत्री लोग, उग्र दंड देकर, शासन के बहाने, कहीं प्रजा को पीड़ित तो नहीं करते ? प्रजावर्ग आप को करों (टैक्सों) द्वारा, लूटने वाला समझ अपमान तो नहीं करता ? आप का सेनापति, तथा अन्यान्य सेना नायक, बुद्धिमान्, शुद्ध, शूरवीर, जितेन्द्रिय, युद्ध प्रवीण तो हैं ? और आप उन का उचित मान करते हो ? राष्ट्रपाल ! आप के योधा तथा राजकर्मचारियों को, भोजन (राशन) और वेतन समय पर तो मिल जाता है ? क्योंकि भोजन से पीड़ित भृत्यभक्ति हीन हो जाते हैं। आप के योधा कुलीन, और देश रक्षार्थ, युद्ध में प्राण देने वाले तो हैं ?

राजन् ! क्या विद्वान् ज्ञानी, सदाचारी, धर्म प्रचारकों का दान और मान से पूजन करते हो तुम्हारे लिये मरे हुये, वा विपद् में पड़े, पुरुषों की स्त्रियों बच्चों की पालना (पिनशन देकर) करते हो ? राजन् ! क्या डर से, वा क्षीण भाव से, अथवा पराजित होकर शरण में, आए शत्रु की पुत्र सम रक्षा करते हो ?

कच्चित्त्वमेव सर्वस्याः पृथिव्याः पृथिवीपते !
समश्चानभिशंक्यश्च यथामाता यथापिता ॥

पृथ्वीनाथ ! क्या तुम सारी पृथ्वी के, लिये माता पिता समान, शंका रहित आश्रय हो। राजन् ! क्या तुम शत्रु

को व्यसन* युक्त देख, अपना त्रिविध† बल विचार कर, उस पर चढ़ाई करते हो ? और अपनी सेना को, पेशगी वेतन, दे कर, लड़ाई पर ले जाते हो ? तथा क्या तुम, पर राष्ट्र के सत्ताधारियों को, गुप्त रत्न देकर, अपने अनुकूल कर लेते हो न ? क्या तुम पहले अपने इन्द्रियों को जीत, उन प्रमादी और विषयी लोगों को जीतते हो ? क्या आप के परराष्ट्र में, जाने से, पहले ही आप के (साम दान भेद दंड) चार गुण वहां चले जाते हैं न ? तुम अपनी जड़ दृढ कर, शत्रु पर आक्रमण कर जीतते और जीत कर उस की रक्षा करते हो न ? आपकी अष्टांग‡ सेना उत्तम सेनापतियों के द्वारा शत्रु का मान मर्दन करतो है न ? राजन् ! आप का भक्ष्य भोज्य, शय्या, वस्त्र, और सूंघने के सुगन्धित पदार्थ, विश्वासी पुरुषों के अधीन तो हैं ? अपने और दूसरे देशों में, आप के योग्य, अधिकारी, तो स्थित रहते हैं, जो वहां की सब दशा आप को बताते रहें ? विद्वन् ! तुम अन्दर और बाहर के आक्रमणों से अपनी रक्षा कर, प्रजा जनों की अन्दर बाहर, तथा उन की आपस की विषमता से, रक्षा करते रहते हो न ?

---

* १ द्यूत २ स्त्री ३ मृगया ४ मद्य ५ नृत्य ६ गीत ७ वाद्य ८ वृथाटन ९ निन्दा १० दिवास्वाप ॥

† १ मंत्र बल २ कोश बल ३ भृत्य बल राजा का त्रिविध बल कहाता है ।

‡ १ रथ २ हस्ती, ३ घोड़ा ४ योधा ५ पैदल ६ कर्मकर्ता ७ गुप्तचर और देश के मुख्य २ पुरुष यह राजा की अष्टांग सेना है ।

धर्मराज ! तुम्हारा कोई भृत्य, दिन के पहले पहर, अर्थात् संध्या अग्निहोत्र आदि के समय, कोई विघ्नरूप, भक्ष्य पानादि तो नहीं ला देता ?

धर्मपते ! आप का खर्च आमदनी के चतुर्थ, तृतीय, वा अर्धभाग, से पूर्ण हो जाता है कहीं सारा खर्च कर, कोश हीन तो नहीं, हो बैठते ? आप के आय व्यय का लेखा गणक लेखक, नित्य प्रातःकाल कर लेते हैं न ? और आप कभी हिसाब में चतुर हितैषो, राज्यभक्तों को, बिना अपराध तो, पदों से भ्रष्ट, नहीं कर देते हो ?

कच्चिद्ज्ञातीन्गुरून् वृद्धान् बणिजःशिल्पिनः श्रितान् । अभीक्ष्णमनुगृह्णासि धन धान्येन दुर्गतान् ॥ ५ । ७१ ॥

कच्चिन्नलुब्धाश्चौरा वा वैरिणो वा विशांपते ! अप्राप्तव्यवहारा वा तव कर्मस्वनुष्ठिताः ।५।७५

कच्चिन्न चौरैर्लुब्धैवा कुमारैः स्त्री बलेन वा । त्वया वा पीडयतेराष्ट्रं कच्चित्तुष्टा कृषी बला ॥७६

राष्ट्रवर्धन ! क्या सजातीय, गुरु, वृद्ध, वणिक्, शिल्पि, और आश्रित लोगों की मन्द दशा में धन धान्य से, सहायता करते हो ? और क्या तुम लोभी, चोर, बैरी, काम धन्दे से, खाली लोगों को राज्य की ओर से, काम पर लगाते रहते

हो ? जिस से खाली बैठे और वृत्ति (आजीविका) से पीड़ित वे प्रजा को * पीड़ा न दें ?

---

* वर्तमान में डाकू प्रजा को कितना कष्ट देते हैं, नीचे के चित्र से प्रतीत होगा।

	सन्	बंगाल में	संयुक्तप्रान्त	पञ्जाब में
१	१९१३	५१०	६३१	१३६
२	१९१४	३५६	८२१	१२८
३	१९१५	७५७	८८२	६७२
४	१९१६	५६२	९२३	११०
५	१९१७	५२५	८७८	४७
६	१९१८	६६०	२०१७	६५
७	१९१९	७४८	१५४९	१५३
८	१९२०	५११	७५६	१४३
९	१९२१	७८९	१३३०	२२७
१०	१९२२	नामालूम	नामालूम	३७०

ये वह संख्या है, जो आरम्भ सन् २३ में पार्लिमिंट लन्डन में, सर जानहीवट के प्रश्न पर, नायब वजीर हिन्द ने, कुछ वर्षों में भारत के ३ प्रान्तों के डाकों की बताई है। हमारे ख्याल में वास्तविक संख्या इस से बहुत होगी, क्योंकि प्रायः चोर डाकू रुपया खर्च कर अपने को बचा लेते हैं।

कच्चिद्राष्ट्रे तडागानि पूर्णानिच वृहन्ति च ।
भागशो विनिविष्टानि न कृषिर्दैव मातृका ॥७७

कच्चिन्नभक्तं बीजं च कर्षकस्यावसीदति ।
प्रत्येकंच शतंवृद्धया ददास्यृण मनुग्रहम् ॥७८॥

कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ताते साधुभिर्जनैः ।
वार्तायां सं श्रितस्तात लोकोयं सुखमेधते ॥७९

कच्चिच्छूराः कृतप्रज्ञाः पंच पंचस्वनुष्ठिताः ।
क्षेमंकुर्वन्ति संहृत्य राजन् जनपदे तव ॥८०॥

राजन् ! तेरे राज्य में स्थान २ पर, शुद्ध जल से, भरपूर तालाब और खेतियों के लिये सब स्थानों पर नहरें चलती हैं कहीं खेतियें वर्षा के ही भरोसे तो नहीं ? किसानों को, भोजन छादन, तथा बोने के लिये बीज की, तंगी तो नहीं रहती ? प्रजावासियों को व्यवहार चलाने के लिये बैंकों का प्रबन्ध, जहां एक रुपया सैंकड़ा, पर प्रेम के साथ रुपया मिलता हो, चल रहा है ? पाठकों को स्मरण रहे कि युधिष्ठिर के राज्य में जमीन के मालक जमीदार ही होते थे, राज्य नहीं "स्थाणु छेदस्यकेदारम्" यह योरूपीय यात्री भी मान चुके हैं इसलिये जायदाद जब्त नहीं हो सकती थी ।

प्रजानाथ ! आप के राज्य में खेती, व्यापार, पशु पालन,

और लेन देन, का धन्दा, श्रेष्ठ जनों के हाथ में तो है ? न्याय-मूर्ते ! आप के राष्ट्र में शूरवीर, विद्वान, पक्षपात हीन, पांच २ पुरुषों की * "पञ्चायत" तो अच्छी प्रकार चल रही हैं ? अर्थात् सब का झगड़ा, न्याय पूर्वक, निपटा, देश का कल्याण कर रही हैं ? ।

राजन् ! क्या आपने नगर, ग्राम, प्रान्त वा बनखंड-वासियों, तक के सुख, आरोग्य, शिक्षा आदि का, प्रबन्ध किया है ? तथा आप की पुलीस ऊंचे, नीचे, गहरे स्थानों में छुपे हुए चोरों को, पकड़ कर चोरों को नष्ट कर रही है ? और आप के देश की स्त्रियें, अन्दर वा बाहर के, नीच पुरुषों वा वस्त्र, भूषण, आदि से सुरक्षित, तथा सन्तुष्ट हैं ? और तुम देश के दुःख को सुन कर उसका उपाय किये बिना राजमहलों में तो नहीं सो जाते ? मनोरञ्जन (व्यसन) के लिये स्त्रियों से, गुह्य भाषण तो नहीं करते रहते ? रात को पहले दो पहर सो कर रात के तीसरे पहर उठ कर धर्म, अर्थ का, नित्य विचार करते हो न ?

---

* इस विषय पर कि भारत मे पञ्चायतों से जितना न्याय होता था उतना अब ऊंचे २ न्यायालयों से नही हो रहा अनेक अंग्रेज जज्जों की राय है, कारण साक्षी वा वादी प्रति-वादी नगर पञ्चायत में झूठ नहीं बोलते थे । शायद इस लिये राष्ट्रीय सभा की पञ्चायतपद्धति देखकर "पञ्चायत का कानून" पञ्जाब सरकार जारी करना चाहती है । पाठकों को मालूम होगा कि भारत में कचहरियों के स्टैंप पर इक्कीस करोड़ रुपया प्रति वर्ष खर्च होता है । सारे भारत का भूमि कर इस से अधिक नहीं ।

राजन् ! तैने अपनी रक्षा के लिये, लाल वस्त्रों वेषी शस्त्र-धारी पुरुष हर समय नियत किये हुए हैं ? और क्या शरीर का रोग, औषध और नियम पालन से, मानसी चिन्ता वृद्ध सेवा से दूर करते हो ? और * अष्टांग चिकित्सा में चतुर वैद्य, सुहृदता तथा अनुराग से तेरे कल्याण में रहते हैं ? न्यायकारिन् ! क्या दंड देते समय तुम मित्र शत्रु को समान ही देखते हो ? और कभी अर्थी, प्रत्यर्थी, को लोभ, मान और मोह से, तो नहीं देखते ? और तेरे न्यायकर्ता, धनी, तथा निर्धन के विवाद में, धन के लालच, वा किसी की सिफारश से, धनवान् का, अकारण पक्ष तो नहीं ले लेते ? तेरे राज्य में बिना अपराध, चोरी आदि के दोष में, सजा तो नहीं पाते, और चोर, चलाकी से, छूट तो नहीं जाते ? तेरे आश्रितों को वृत्ति कष्ट तो नहीं रहता ? तेरे जीते हुए राजा लोग, युद्ध में तेरा साथ देने को तय्यार हैं ? तेरे गृह में, ब्राह्मणों को सत्कार पूर्वक स्वादु भोजन, मिलता है । तुम अपने बड़ों से पाले हुए वेद धर्म में दृढ हो, नित्य, एक चित्त, हो कर यज्ञ याग करते रहते हो ? तेरे नागरिक लोग तुम से प्रेम रखते हैं । तुम उन की बात आदर से सदा सुनते हो ? तेरे राज्य में व्यापार, अर्थ व्यापारियों को कोई कष्ट वा भय तो नहीं मिलता ? भूपाल ! किसानों को, जरूरत पड़ने पर, बीज तथा मधु घृत आदि वस्तु मुफ्त दे देते हो ? उद्योगशील शिल्पियों को, काम

---

* १ निदान २ पूर्व रूप ३ रूप ४ उपशय ५ संप्राप्ति ६ औषध ७ रोगी और सेवक ये आठ अंग हैं ।

चलाने के लिये पूञ्जी, साधन और भोजन आदि नियत काल तक देते रहते हो ? देश के अहित, हित, काम करने वालों को, जानते रहते हो न ? और जान कर कल्याण कर्ताओं की प्रशंसा और उचित मान करते हो ? शत्रुनाशक ! तुम सब सूत्र (युद्धोपयोगी) और अस्त्रों को, अपने हाथ में रखते हो ? और तेरे घर में धनुर्वेद सूत्र तथा नागर यंत्र सूत्रों और शत्रु नाशक विष योगों का अभ्यास किया जाता है ? अर्थात् तुम स्वयं युद्ध कर्म अभ्यासी हो न ?

कच्चिदाग्निभयाच्चैव सर्वं व्यालभयात्तथा ।
रोगरक्षोभयाच्चैव राष्ट्रं स्वं परि रक्षसि ।५।१२३।
कच्चिदंधांश्च मूकांश्च पंगून्व्यंगानबांधवान् ।
पितेवपासि धर्मज्ञ ! तथा प्रव्राजितानपि ॥१२४॥

राष्ट्र रक्षक ! क्या आप अग्नि भय, सिंह, सर्प, जल, जन्तु भय, * और रोगरूपी राक्षसों † के भय से राष्ट्र की रक्षा

---

* भारत सरकार की ओर से जो १९२१ की रिपोर्ट निकली थी उस से जान पड़ता है कि २१२२५ मनुष्य सर्प आदि से मरे, अर्थात् भेड़ियों से ४५४ तेन्दुओं से ५२ शेरों से ५५६ रीछों से ६६ हाथियों से ७० सूअरों से १५ घड़ियालों से १५२ मगरमच्छों से ४०४ सांपों से १६३९६ एक वर्ष में मरे॥

† अनुमान है कि सौ वर्ष के युद्धों में सारे संसार में जितने नर मरे हैं उस से चतुर्गुण केवल दश वर्ष में भूख से भारत में मरे हैं। तथा इसी अन्दाज से २० वर्ष की प्लेग और

करते और अन्ध, मूक, लंगड़े, अंग हीन, सम्बन्धी हीन, दीन, अनाथ और वृद्ध नारी, नर, कुष्टी, आदि ग्राम त्यक्त तथा विरक्तों की पिता समान रक्षा करते हो ?

एतया वर्तमानस्य बुद्धयाराष्ट्रं न सीदति ।
विजित्य च महींराजा सोऽत्यन्तं सुखमेधते ॥

पीछे बताई नीति को, कह कर तथा युधिष्ठिर की, बुद्धि तदनुकूल देख, नारद ने कहा इस बुद्धि से वर्तमान करते हुए राजा का देश कभी दुःखी नहीं होता और राजा भी जगत् विजयी हो कर सुख पूर्वक बढ़ता रहता है ।

* पांडव दिग्विजय *

राजसूयेष्टि खंड ४

ऋता वाना निषेदतुः साम्राज्याय सुक्रतु धृत-
व्रता क्षत्रिया क्षत्र माशनुः ॥ ऋ० ८।२५।८

महत्त इन्द्रवीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु
स्वराज्यम् ॥ ऋ० १ । ८० । ८

त्वमग्ने व्रतया असि देव आमर्तेष्वा । त्वं

एक वर्ष के इन्फ्लूअञ्जा (युद्ध ज्वर) से मरे हैं । यह सब प्रबन्ध की कमी है ।

यज्ञेष्वीडयः ॥ ऋ० ८ । ११ । १

सत्वमस्मदपद्विषो युयोधिजातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥ ऋ० ८ । ११ । ३

अयं सहोतो यो द्विजन्मा ॥ ऋ० १।१४९।५

युधिष्ठिर राज्य में देश दशा } जब से धर्मराज ने, गद्दी सम्भाली, तब उन का सब से बड़ा काम यह था, कि देश का भला किस में है । उन के समय, अग्नि, जल, रोग, भय या चोर, डाकू, सिंह, सर्प भय, न रहा था । राजा की ओर से, और कष्ट तो क्या होना था, किन्तु पिछले साल का कर और वर्तमान काल का कर भी छोड दिया जाता था। सब लोग पिता समान इन पर विश्वास रखते थे । और यह उन्हें, पुत्रवत् स्नेह से, बिना किसी पक्षपात के, हर एक से मिलते थे । खेती, व्यापार, पशु पालन, लेन देन धर्मानुष्ठान सब स्वतंत्र रूप से होते रहते थे। वेद प्रचार, यज्ञयाग, विद्या प्रचार, स्वास्थ्यरक्षा, परस्पर प्रेम में राजा का बड़ा ध्यान था ॥

कामंववर्ष पर्जन्यः सर्वकाम दुघामही ।
सिषिचुः स्मव्रजानूगावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥
नाधयो व्याधयः क्लेशाः देवभूतात्म हेतवः ।
अजात शत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥

भागवत पुराण १।१०।४।६

न तत्र कश्चिद्दुर्वर्णो व्याधितो वापि दृश्यते ।
कृशोवादुर्बलो वापि दीनो भीतोपिवा पुनः ॥

बन० ५० । ८

वहां कोई कुरूप, कृश, दुबला, दीन, दुःखिया, वा भय भीत न था, सब लोग हृष्ट पुष्ट थे ।

न तस्य विद्यते द्वेष्टा ततोऽस्याजातशत्रुता ॥

सभा० १३ । ६

राजसूय यज्ञ विचार } नारद ऋषि ने, आप के श्रेष्ठ वीर्य गुण तथा भ्रातृ प्रेम को, देख कर सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा की पदवी, पाने के योग्य, जान राजसूय यज्ञ की, सलाह दी, जिसे आपने मंत्री मंडल, प्रजा प्रतिनिधि गण, निज पुरोहित धौम्य, पितामह वेदव्यास, आदि की सम्मति तथा महा विद्वान् श्रीकृष्ण की पुष्टि से, भाईयों के भरोसे करने का कृष्ण मतानुकूल करने का निश्चय कर लिया ॥

जरासंध का वध } कृष्ण ने, राजसूय यज्ञ की सलाह देते हुए कहा मगधदेश का राजा "जरासंध" बड़ा प्रतापी और क्रूर है, हम यादव उसी की क्रूरता से, तंग आकर, द्वारका में जा बसे हैं । जब से मैंने कंस को मारा है, तब से वह मेरा कट्टर शत्रु हो गया है, कारण कंस उस का जामाता था । उसने ८६ राजाओं को निरपराध कैद में डाल रखा है, अतः पहले उसे वध करना चाहिये, क्योंकि वह यज्ञ

मार्ग में कांटा है, वध उपाय पूछने पर कृष्ण ने कहा, भीम, अर्जुन को मेरे साथ दे दें। हम तीनों उस का वध कर लेंगे। इस पर पहले तो धर्मराज सहमत न हुए, पीछे से समझा पर सम्मत हो गये। धर्मराज की आज्ञा पा कृष्णादि तीनों ब्राह्मण स्नातकों के वेश में पुष्पमाला पहन, गंडकी, सरयू, शोण, नदियां, उतर कर मगधराज के, राजमहलों में नियमित द्वार छोड़ मन माने मार्ग से जा पहुंचे। उन्हें ब्राह्मण समझ, जरासंध ने पूजन सत्कार के पीछे पूछा आप कौन हैं? और मार्ग छोड़ विमार्ग से क्यों आए हैं? कृष्ण ने कहा हम तीनों स्नातक हैं और मार्ग से इस लिये नहीं आए कि शत्रु के घर में उस के मार्ग से आना निषिद्ध है। जरासंध ने पूछा मैंने आप का कब क्या विगाड़ा है, जो मुझे शत्रु कहते हो? और मुझ से अब आप का क्या कार्य है।

त्वयाचोपहृता राजन् क्षत्रियालोकवासिनः।
तदागःक्रूर मुत्पाद्य मन्यसे किं मनागसम् ॥

सभा० २२।८

ते त्वां ज्ञातिक्षयकरं वयमार्तानुसारिणः।
ज्ञातिवृद्धि निमित्तार्थं विनिहन्तुमिहागताः ॥१४
मुञ्चवानृपतीन्सर्वान्गच्छवा त्वंयमक्षयम् ॥२६॥

कृष्ण ने कहा—तुम ने बहुत से, क्षत्रिय राजाओं को, कैद कर बड़ा पाप किया है, और यह पाप, जाति क्षय करने

वाला है, हम दुःखियों के सहायक हैं, इस लिए जातीय कार्य जान, तुम्हें नष्ट करने आए हैं, सो या तो, तुम, सब राजाओं को, कैद से छोड़ निष्पाप हो जाओ, अन्यथा यमलोक की तय्यारी करलो !

इस के बाद जरासंध ने कहा, डर कर कैदी छोड़ना, क्षत्रियपन के विरुद्ध है, तुम में से जो भी चाहे युद्ध करे। सारांश यह जरासंध,ने राजप्रबन्ध अपने पुत्र सहदेव,को संभाल भीम से * मल्ल युद्ध शुरु किया । यह युद्ध कार्तिक प्रतिपदा से १४ दशी तक होता रहा अन्त को उस के थक जाने पर भीम ने उसे मार डाला। अगले दिन प्रातः, पहले सब कैदियों को, बंध मुक्त किया, फिर युवराज सहदेव को विधि पूर्वक मगधदेश के, राज्य पद पर, अभिषिक्त कर, कैद से निकाले हुए राजों और सहदेव से युधिष्ठिर यज्ञ में, सहायता का वचन ले तीनों विजयी वीर जरासंध के सुवर्ण रथ में बैठ कर इन्द्रप्रस्थ में लौट आए । और कुछ दिन पीछे उसी रथ से कृष्ण जी द्वारका चले गये ।

पांडवों की दिग्विजय ।

कृधिरत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ॥

ऋ० ७ । १६ । ६

---

* सभापर्व अ० २३ मल्लविद्या के बहुत सूत्रों की व्याख्या नीलकंठ जी ने विस्तार से की है, क्या अच्छा हो यदि वह सचित्र, भाषा में छप जाय ।

राजा समुद्रंनद्यो विगाहतेऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषुश्रितः ॥ ऋ० ९ । ८६ । ८

सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ऋ० ९।९५।५

जरासंध का, विघ्न काट धर्मराज की, आज्ञा से सेना सहित अर्जुन उत्तर दिशा की ओर गये, और कुलिन्द, प्राग्ज्योति उलूक, त्रिगत, श्वेत पर्वत, उत्तर कुरु, तथा गन्धर्व, किन्नर, गुह्यक, आदि देशों को नम्रता वा वीरता से, करदाता कर, अनन्त रत्न, वस्त्रादि ले, इन्द्रप्रस्थ को विजय से लौट आया ॥

एवंसः पुरुषव्याघ्रो विजित्यादिशमुत्तराम् ॥
संग्रामान् सुबहून् कृत्वा क्षत्रियैर्दस्युभिस्तथा ।
सविनिर्जित्य राज्ञस्तान् करेचानिवेश्य तु ॥
सभा० २८ । १७

इसी प्रकार पूर्व दिशा की ओर, सहदेव ने, पांचाल, कोसल, मत्स्य, विदेह, सुम्ह, शक, बर्बर, म्लेच्छ, आदि देशों के राजाओं को विनय, तथा विजय से कर दाता बना, यज्ञ सहायक किया ।

स सर्वान् म्लेच्छनृपतीन् सागरा नूप वासिनः ।
कर माहारयामास रत्नानि विविधानि च ॥
सभा० ३० । २७

दक्षिण दिशा की ओर, सहदेव ने, पुलिन्द, शूरसेन, किष्किन्धा, माहिष्मती के राजाओं, म्लेच्छ, केरल, आन्ध्र लंका के अधिपतियों, तथा समुद्र मध्य में बसने वाले, निषाध पुरुषाद, म्लेच्छ, राक्षसों को जीत, कर देने वाला कर लिया।

सागरद्वीपवासांश्च नृपतीन् म्लेच्छयोनिजान्।
निषादान्पुरुषादांश्च कर्ण प्रावरणानपि ॥

सभा० ३१। ६६

येचकालमुखानाम नरराक्षस योनियः ॥६७॥
करदान्पार्थिवान्कृत्वा प्रत्यागच्छदरिन्दमः ।७७

इसी प्रकार पश्चिम दिशा के, दशार्ण, मरूदेश, पञ्चनद हूण, शिवी, त्रिगर्त, अम्बष्ट, सिन्धूतट वासी, आभोर, पहलवी, बर्बर, किरात, यवन, शक, अर्थात् बलखबुखारा, ईरान, अफगाणस्थान और अरब सागर के मध्यवर्ती राजाओं को जीत, उन्हें करद बना, उन से धन रत्न लेकर नकुल इन्द्रप्रस्थ को सकुशल लौटा ॥

ततः सागरकुक्षिस्थान् म्लेच्छान्परम दारूणान्।
पल्हवान् बर्वरांश्चैव किरातान् यवनान् शकान् ॥
ततो रत्नान्युपादाय वशे कृत्वा च पार्थिवान्।
न्यवर्तत कुरुश्रेष्ठो नकुलश्चित्रमार्गवित् ॥

सभा० ३२। १७

सब भाईयों ने, जित धन बड़ी नम्रता से, धर्मराज की सेवा में, सविनय अर्पण कर दिया। सच पूछिये तो पांडवों के जगत् विजयी होने का यह मूल मंत्र था, जो इतने २ वीर भाई सर्वतो भाव से, अपने योग्य तथा परोपकारी, बड़े भाई के हाथ में, अपना सर्वस्व दिये रखते थे। और उस की आज्ञा बिना कोई कुछ न करता धरता था॥

व्रतेनदीक्षा माप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणां।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते। यजु०

यज्ञ दीक्षा वा निमंत्रण } दिग्विजय से, उपयोगी सामग्री, तथा सहाय मंडल हो जाने पर, धर्मराज ने, श्रीकृष्ण से कहा आप की कृपा से अब सब कुछ यज्ञ के लिये तयार है, आप मुझे और यज्ञकर्ता, ब्राह्मणों को, नियुक्त कीजिये! इस विचार के पश्चात् पुरोहित धौम्यजी की, आज्ञानुसार यज्ञ सामग्री को, एकत्र कर पूज्य ब्राह्मणों को सत्कृत कर, धर्मराज को दीक्षा दी गयी। और वेदव्यास जी को १ ब्रह्मा। धनंजय गोत्री, सुसाभा को २ सामगान कर्ता। ब्रह्मनिष्ठ योगी याज्ञवल्क्यजी को ३ अध्वर्यु। वसुपुत्र पैल पुरोहित धौम्यजी के साथ होता। इन के अनेक शिष्य तथा पुत्र, होत्रगा नियत किये गये। ब्राह्मणों के रहने के लिये, सब ऋतुओं में सुख देने वाले महल, और अनुकूल भोजन, वस्त्र, आदि उपस्थित किये गये।

आमंत्रयध्वंराष्ट्रे ब्राह्मणान् भूमिपानथ।

विशश्चमान्यान् शूद्रांश्च सर्वानानयतेति च ॥

सभा० १३ । ४१

यज्ञ में शामल होने के लिये धर्मराज ने विश्वस्त मित्रों द्वारा देश विदेशों के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा मान योग्य * शूद्रों, तथा अति शूद्र आदि सब पुरुषों को, नम्रतापूर्वक, निमंत्रण देकर बुलाया । और हस्तिनापुर में पूज्य पितामह भीष्म, गुरु द्रोण, तथा कृपाचार्य, महात्मा विदुर, धृतराष्ट्र और सुयोधन आदि भाइयों को बुलाने के लिये विशेषरूप से नकुल को भेजा ।

आए हुए राजा लोग } धर्मराज के बुलाने से, सभा देखने, और यज्ञ में भाग लेने के विचार से, नीचे के प्रसिद्ध २ राजा, राजपुत्र और सहस्रों नर विदेशों से आए । भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, गान्धारराज सुबल, उस का पुत्र शकुनि, गुरु द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, अचल, वृषक, कर्ण रथी, महाबली शल्य, बाल्हीक, सोमदत्त, भूरिश्रवा, शलराजा यज्ञसेन उस के पुत्र धृष्टद्युम्न शिखंडी आदि, शाल्व, प्राग्ज्योतिष्पति, चीन का भगदत्त अनेक समुद्रवासी म्लेच्छ राजाओं सहित, बृहद्बल आदि पहाड़ी राजे, पौंड्रक बंग, कलिंग, आन्ध्र आकर्ष, कुन्तल, द्रविड, सिंहल, काश्मीर, आदि के पृथ्वीपति पुत्रों सहित विराट् , पुत्र सहित शिशुपाल, कुन्तिभोज, यादव सब ही जिन में मुख्य २ राम, अनिरुद्ध, गद, सांब, कंक,

---

* इस से प्रतीत होता है शूद्रों को यज्ञादि का अधिकार न देना उन्हें दुतकारना भारत के पीछे की रचना है ।

सारण, चारुदेष्ण, उल्मुक, आदि अनेक महाराज आए, और सब का सत्कार आदर धर्मराज स्वयं प्रेम से करते रहे।

विलक्षण भवन } जो भवन, धर्मराज ने, सभागत राजबन्धुओं के, ठहरने के, लिये बनाये थे, वे बड़े सुंदर, दृढ़, मनोहर, रत्नजटित, सुवर्ण मौक्तिक आदि की मालाओं से, विभूषित थे। इर्द गिर्द उन के सुगन्धित पुष्पवाटिका और छायादार वृक्ष थे। वे मकान, पर्वत शिखर समान अनेक मंजिलों से ऊंचे, हिमालय की चोटियों की तरह सुफेद थे॥

सुखारोहण सोपानान् महासन परिच्छदान्॥

सभा० ३४। २२

चढ़ने के लिये कलदार सीढियें, बैठने के लिये नाना विध सुखदायक आसन थे।

काम की बांट छांट } आर्यनीति का वचन है, कि "उपकार करने वालों से जो साधु व्यवहार करता है, उस का साधुपन क्या है? साधु तो वह है जो बार २ अपकार (बुराई) करने वालों से भलाई करे। सो इस के अनुसार, हमारे चरित्रनायक में यही साधुता जीवन के प्रत्येक अंग में पाई जाती है, अर्थात् दुर्योधन आदि कौरव, जो अनेक बार धर्मराज, उन के भाई, माता, आदि को दुःख दे चुके थे, अब जब समय आया तो राजकीय ठाठ, रत्नों के भंडार, मान के मन्दिर की, चाबियां उन्हें ही सौंप दीं। अर्थात् कौरवों के आने पर, यज्ञ में दीक्षित धर्मराज, युधिष्ठिर ने बड़े नम्रभाव

से अपना सर्व धन, यश, कीर्ति स्थान, भोगसाधन, उन के हाथ दे दिया । भक्ष्य भोज्य (सर्व प्रकार का भोजन) का अधिकार दुःशासन को २ दानाधिकार गुरुपुत्र अश्वत्थामा को ३ राजाओं की प्रति पूजा करने का संजय को ४ काम की देख भाल करना महामति भीष्म तथा द्रोणाचार्य को ५ सुवर्ण आदि धातु और सर्व विध रत्नों की पड़ताल तथा दक्षिणा का देना कृपाचार्य को दिया ६ बाल्हीक, ७ धृतराष्ट्र ८ सोम-दत्त और ९ जयद्रथ नकुल के साथ, घर के मालकों की तरह यथा रुचि करते थे। १० सर्व धर्म का ज्ञाता महात्मा विदुर हर एक प्रकार के खर्च करने पर, और राजा दुर्योधन, बाहर से आए हजारों राजाओं से भेंट पूजा में लाये धन, रत्न, तथा बहुमूल्य संसार के पदार्थ, लेने में लगाये गये थे। इस यज्ञ में ऋद्धि ऐश्वर्य की बढ़ती, देख धर्मराज को, दर्शक वरुण कुवेर की उपमा देते थे। इस यज्ञ में आए हुए, हर एक पुरुष को धर्मराज हर प्रकार से, तृप्त, प्रसन्न, कर रहे थे । यज्ञ में जिस प्रकार वेदध्वनि होती थी। बाहर " दीयतां भुज्यतां " की पुकार रहती थी यज्ञ से जैसे देवता प्रसन्न हो रहे थे, सत्कार से ब्राह्मण आदि चारों वर्ण प्रसन्न थे।

कृष्ण का काम।

चरण क्षालनेकृष्णो ब्राह्मणानां स्वयं ह्यभूत् ॥

सभा० ३५ । १०

पाठक विचारते होंगे ! यज्ञ के प्रेरक, यज्ञ सहायक, पांडव मित्र, श्रीकृष्ण ने क्या काम लिया होगा ! सो हम

बताते हैं, कि कृष्ण ने वह काम लिया, जहां अभिमान चूर हो कर, मान बढ़ता है, अर्थात् कृष्ण ने स्वयं अपने लिये ब्राह्मणों के पाऊं धोने का काम लिया, जिसे देख लोग धन्य २ करते थे ॥

यज्ञावभृथ स्नान और अर्घ्यदान ।

यज्ञेन यज्ञम यजन्तदेवास्तानि धर्माणि प्रथमा न्यासन् ॥ यजु० ३२

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदेनाश्चकृमावयं यदे कस्याधि धर्मणि तस्यावयजन मसि ॥ यजु० २०।१७

प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्मा- ऽमृता अभूम ॥ यजु० ९ । २१

अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयोरेतो- ऽस्मासुधत्त ॥ यजु० १९ । ४४

तीक्ष्णेनाग्ने । चक्षुषारक्षयज्ञं प्राञ्चंवसुभ्य प्रणय प्रचेतः ॥ ऋ० १० । ८७ । ९

कई दिन लगातार यज्ञ करने के पीछे, अभिषेक का दिन आया, नारदऋषि, वेदी के अन्दर बैठे थे, बाहर युक्त

आसनों पर, यज्ञ में आए सब राजगण, विराजमान थे।

यज्ञसूत्रों के अनुसार, यज्ञान्त में पहले एक महात्मा को सर्वश्रेष्ठ समझ "अग्रपूजा" की रीति से * अर्घ्य दिया जाता है, फिर सब को यथा स्थान, अर्घ्य आदि से सत्कृत किया जाता है। इस अवसर पर सर्व श्रेष्ठ अर्घ्य किसे दें? यह पूछने पर, कुरु वृद्ध भीष्म ने, धर्मराज से कहा "तेज, बल पराक्रम आदि गुणों में सब से श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ही, इस मान के योग्य है" भीष्म के इस अभिप्राय के, अनुसार इस पूजा कार्य के अधिकारी, सहदेव ने, श्रीकृष्ण की, यथा विधि, अग्रपूजा की और उन्हों ने भी उस पूजा को सत्कार पूर्वक स्वीकार किया।

---

* दुष्ट दमन खंड *

रंग में भंग } यह देख, चेदि देश का राजा शिशुपाल, जल उठा, और युधिष्ठिर, भीष्म, तथा श्रीकृष्ण की मनमानी, निन्दा करने लगा। जिस के रूखे और द्वेष भरे, वा अपमान कारक, वचनों से एक प्रकार से, रंग में भंग सा पड़ गया। शिशुपाल बोला—यह बिलकुल, अनुचित है जो पांडवों ने, श्रीकृष्ण की, अग्रपूजा की। कृष्ण कहीं का अभिषिक्त राजा, नहीं है। इतने राजाओं के होते, अराजा को, पूजा का करना, राजाओं का, अपमान करना है। यदि कृष्ण

---

* ऋत्विग्गुरुर्विवाह्यश्च स्नातको नृपतिः प्रियः।
षडर्घ्योयं गणः प्रोक्त नीतिज्ञैः शास्त्र सम्मतः॥

को वृद्ध समझ, पूजा की हो, तो उस के भी पिता वसुदेव बैठे हैं, उन की करनी थी, तथा वृद्ध, राजा द्रुपद की करते। यदि आचार्य समझ, पूजा की हो तो गुरु द्रोणाचार्य की करनी थी। वीर की करनी थी तो सर्व विद्या विशारद गुरु पुत्र, अश्वत्थामा की करते, योधा की करनी थी, तो महाबली कर्ण की करते। ऋत्विज समझ की तो, श्री वेदव्यासजी यज्ञ के ब्रह्मा विराजमान हैं। आश्चर्य है, भीष्म, कृपाचार्य, भीष्मक, (कृष्ण के श्वसुर) मद्रपति शल्य (नकुल के मामा) धनुर्वीर * एकलव्य, किंपुरुषाचार्य, द्रुम, महाराज दुर्योधन आदि के होते पांडवों ने, कृष्ण को इतना मान क्यों दिया?

नैवर्त्विङ्नैवचा चार्यो न राजा मधुसूदनः
अर्चितश्चकुरुश्रेष्ट ! किमन्यात्प्रिय काम्यया ॥

हां युधिष्ठिर ने, अपनी किसी विशेष प्रीति से, इस की पूजा की है, तो हम राजाओं, को क्यों बुलाया था? घर में, बैठ पूजा नहीं महा पूजा कर लेता।

हमने जो इन्हें कर भरा है, वह डर कर नहीं, और ना हीं, अपमान कराने के लिये, किन्तु हमने तो सोचा था, यज्ञ

---

* नृपेचरुक्मणिश्रेष्टे एकलव्ये तथैव च।
शल्येमद्राधिपे चैव कथं कृष्णस्त्वयार्चितः॥

सभा० ३७। १४

इस से यही सिद्ध होता है, उस समय शूद्रों का तो क्या निषादों तक का यज्ञों में मान था।

वेदोक्त कर्म और हमारा धर्म है, इस का फल संसारमात्र को शुभ ही होगा ! धर्म के काम में, विघ्न अच्छा नहीं, होता अपने से, इतना बड़ा, यज्ञ न होता हो, तो दूसरों को करने में, मदद देना भी, धर्म करना ही है। और भीष्म की, सम्मति पर क्या कहें वह तो बुढापे के कारण मति भ्रष्ट हो गया है, हमारी राय में तो, आज से धर्मपुत्र का धर्मात्मा नाम ही, उलटा हो गया है, जिस ने, जरासंध जैसे महात्मा राजा को, अन्याय से मारने वाले धर्म हीन कृष्ण को बिना विचारे अग्रपूजा की॥ फिर श्रीकृष्ण को लक्ष्य रख वह बोला—

कृष्ण को कुवाक्य — मधुसूदन ! मालूम होता है, पांडवों का कोई अपराध नहीं, वे कृपण डर गये हैं, तुम्हें ही चाहिये था, कि जिस सन्मान के तू योग्य न था, उस से इनकार कर देता, तेरे लिये तो यह पूजा ऐसे ही है, जैसे नपुंसक को, स्त्री समागम, अन्ध को रूप दर्शन। ठीक है आज जनता को पता लग गया, कि भीष्म, युधिष्ठिर, कैसे हैं ? और वासुदेव कैसा है ?

धर्मराज की शान्त नीति — ऊपर के, शब्द कह कर, अपने साथियों को, लेकर शिशुपाल जब सभा मंडप से चल पड़ा। तब, झट धर्मराज, अपना आसन छोड़, उस के पास गये, और उसे पकड़, बड़ी शान्ति युक्त मीठी वाणी से बोले—राजन् ! यह उचित नहीं, जो आप कह रहे हैं। महात्मा भीष्म को, ऐसे कड़े और रूखे, शब्द कहना अधर्म है। वे कुरु-वंश के, पूज्यतम वृद्ध हैं। आप इन बड़े २ प्रतापी राजाओं को

देखिये ! जो आप से भी, अति वृद्ध हैं, वे श्रीकृष्ण पूजन को सह रहे हैं । आप इस यज्ञ कार्य में विघ्नरूप न, हो कर, श्रीकृष्ण पूजा को सहन कीजिये ।

भीष्म की खरी २ बातें } यह सुन भीष्म बोले, धर्मराज ! इस उद्धत को, सान्त्वन, न दीजिये, यह इस योग्य नहीं है। यह नहीं समझता क्षत्रियों में, वही सर्व श्रेष्ठ होता है, जो युद्ध में, क्षत्रियों को जीत, फिर इन्हें स्वतन्त्र कर देता है । क्या इन राजाओं में, कोई ऐसा है, जिसे श्रीकृष्ण ने किसी तरह न जीता हो । जाने दो, इस को, हम सब वृद्धों के होते भी, इसी का पूजन करेंगे । हम बृद्धों के तेज और इस के जन्म प्रभृति किये पूज्य कर्मों को सब से ज्यादा जानते हैं। इसे कह दो, हम कामदृष्टि, वा संबन्धि भाव से, श्री कृष्ण को अर्घ्य, नहीं दे रहे, किन्तु संसारभर के, प्राणियों को सुख देने वाले, वासुदेव के शौर्य, यश, विजय, संयम, आदि गुणों को देख पूज रहे हैं । इस सभा में बैठे, बृद्धों के गुणागुण को हम जान रहे हैं । पूजा के लिये ब्राह्मणों में, ज्ञान बृद्ध, क्षत्रियों में, बलाधिक, वैश्यों में, पुष्कल धनवान्, शूद्रों में, आयुवान, निश्चित है, यहां बैठे अनेक बृद्धों की, हमने संगति की है, वे प्रायः सारे ही, वासुदेव की, गुण गाथा गायन किया करते हैं अतः अर्घ्य दान में हम ने कोई भूल नहीं की । सारांश यह अच्युत पूजा में दो बड़े हेतु हमने देखे हैं ।

पूज्यतायांचगोबिन्दे हेतूद्वावपि संस्थितौ ।

वेद वेदांग विज्ञानं बलं चाभ्यधिकत्तथा ॥

सभा० ३८ । १९

एक वेद वेदांगों का विशेष ज्ञान, दूसरे अधिक बल। इन के बिना, अच्युत में दान, दक्षता, श्रुत, शौर्य, लज्जा, कीर्त्ति उत्तम मेधा, श्रेष्ठ सन्तति, श्री, धैर्य, सन्तोष, और पुष्टि आदि भी नियम पूर्वक रहते हैं । इसी लिये, इस अर्घ्य को, और सब, पसन्द करते हैं। यह शिशुपाल तो, सदा से श्रीकृष्ण में दोषारोपण कर, पाप भागी बनता रहा है । सो यह अपने कर्मों का फल पा लेगा । आप अपना कार्य नियम पूर्वक जारी रखें ॥

शिशुपाल से असहयोग } भीष्मजी, ज्यों ही अपना खुला मत प्रकाशित कर बैठे, झट वीर प्रकृति, सहदेव, बोले-मैंने; केशव का पूजन किया है, जो उसे असह्य समझते हैं, वे इन बातों का उत्तर दें । आज निश्चित रूप से, उन के विचारों का फल दिखा दूंगा, जो सर्व विद्याचार्य, नीति गुरु, कृष्ण को सम्मानित नहीं देखना चाहते। सहदेव के. इस वीर भाव का, चारों ओर से मान होने लगा। और अन्तिम निर्णय के लिये सर्व संदेह नाश वा, महामुनि नारद ने, खड़े हो कर कहा—जो लोग अच्युतात्मा कृष्ण को पूजना नहीं चाहते वे जीवन मृतक हैं । उन से किसी प्रकार का, संभाषण (बोल चाल) आदि भी, नहीं करना चाहिये । इस के बाद सहदेव ने, सब का यथा योग्य, पूजन, सत्कार, कर कार्यारम्भ रखा ।

कार्य को होते देख शिशुपाल ने अपनी मडली से यज्ञ में विघ्न डालने का चिन्तन किया ॥

युधिष्ठिराभिषेकं च वासुदेवस्य चार्हणम् ।
नस्याद्यथा तथा कार्य मेवंसर्वे तदा ब्रुवन् ॥

सभा० ३६ । १५

युधिष्ठिर का, अभिषेक और वासुदेव का पूजन, जैसे न हो, वैसा करना चाहिये । इस विचार द्विविधता से, उस सर्व भूपति मंडल, में ऐसा क्षोभ हो गया, जैसा क्षोभक वायु से, महा सागर में, भयानक क्षोभ, हो जाता है ।

यज्ञ रक्षा का चिन्तन ।

यज्ञोपितस्यै जनतायै कल्पते फलश्रुति-र्थवाद एव ॥ मीमांसा

यज्ञस्य न विघ्नः स्यात् प्रजानांच हितम्भवेत् ॥

सभा० ४० । ४

राजमंडल में, क्षोभ, देख धर्मराज ने, भीष्म जी से, कहा जिस प्रकार यह ईश्वर आज्ञा रूप यज्ञ, में विघ्न न हो, और प्रजा का हित हो ऐसा करना चाहिये ? इस पर भीष्म ने कहा–धर्मपुत्र ! तुम इस की चिन्ता न करो, ये तो सोये, हुए शेर पर, कुत्तों की भान्ति भौंक रहे हैं, वृष्णि सिंह के, जग जाने, पर इन की वाणी बंद हो जायगी । यह सुन कृष्ण की ओर देख बलभद्र जी बोले—

यजतां पांडवः स्वर्ग मवत्विन्द्रस्त पत्विनः।
वयं हनाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते॥

माघकाव्ये २। ४६

तुल्ये पराधे स्वर्भानुर्भानु मन्तंचिरेण यत्।
हिमांशु माशुग्रसते तन्म्रादिम्नः स्फुटं फलम्॥
उपाय मास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्था प्रमाद्यतः।
हन्ति नोपशयस्थोपि शयालुर्मृगयुर्मृगम्।२।८०

युधिष्ठिर महाराज, यज्ञ करें, इन्द्र स्वर्ग की रक्षा करे इन (सूर्य) तपे, हम वृष्णि लोग, शत्रुओं को ठीक कर देंगे। क्योंकि, सब लोग, अपने २ काम को ही ठीक २ कर सकते हैं। एक सा अपराध होने पर भी राहु, सूर्य को कभी और चन्द्रमा को शीघ्र २ ग्रसता है, मालूम देता है, यह नरमी का ही फल है। प्रमादी पुरुष के साधनसम्पन्न होने पर भी कार्य नष्ट हो जाते हैं, जैसे कि सोये हुए, शिकारी के, पास से शिकार, नहीं मरता। इत्यादि सुन फिर शिशुपाल ने श्री कृष्ण के पूतना वध, शकटोद्धरण, गोवर्धन धारण, कंस वध, शकुनि वध, जरासंध वध, आदि कर्मों को आक्षेपरूप में वर्णन कर, भीष्म के अखंड ब्रह्मचर्य, तथा अनपत्यता, पर बहुत कुछ अंडबंड कहा। जिस पर भीम, क्रोध में आ, उसे मारने लगा। तब भीष्म जी ने उसे थाम लिया। थामने पर भी शिशुपाल ने, अपना दुर्वृत्त न बदला।

श्रीकृष्ण का बल वा धैर्य } इस क्षोभ को शान्त न होते, देख धर्मराज ने, ऋ० १० । ८७ । ६ के ऊपर लिखे मंत्रा-नुसार अग्नि सम तेजस्वी, श्रीकृष्ण से यज्ञ रक्षा की प्रार्थना की। तब * पञ्च अस्त्री मधुसूदन ने, कहा धर्मराज ! मैं यह अनर्थ, प्रलाप, सुन कर भी जो चुप हुं यह मेरी प्रकृति ही, मितभाषण की है, मैं डर कर चुप नहीं। और यज्ञ रक्षा के

एतद्दृढ गुरुभार ! भारतंवर्ष मद्य मम वर्ततेवशे ।

माघ० १४ । ५

यस्तवेह सवने न भूपतिः कर्म कर्मकरवत् करिष्यति । तस्य नेष्यतिवपुः कबन्धतां बन्धु-रेष जगतां सुदर्शनः ॥ मा० १४ । १६

लिये, हाथ में सुदर्शन चक्र, उठा कर कहा धर्मराज ! आपने संसार हित का बड़ा बोझ, अपने ऊपर उठाया है, हर एक सज्जन, का धर्म है, कि इस परोपकार में, सहायता दें। आज सारा भारतबर्ष मेरे वशमें है, मैं इसी विश्वास से कहता हूं इस महासत्र में जो भी राजा कर्मचारियों की भान्ति काम न करेगा, उस का शिर शरीर से यह जगत् बन्धु सुदर्शन चक्र मिटा देगा ! आप निश्चिन्त हो कार्य करते जाइये ।

---

* १ सुदर्शन चक्र २ कौमोदकी गदा ३ नन्दक खड्ग ४ शार्ङ्ग धनुष ५ पांचजन्य शंख ये श्रीकृष्ण के सदा सहायक पांच शस्त्र अस्त्र थे ।

शिशुपाल वध } कृष्ण भाषण के बाद, एक बार भीष्म जी ने, उन्हें शान्त करना चाहा। पर इस पर उन अभिमानियों ने, भीष्म का वध ही करना चाहा, तब भीष्म ने, बल पूर्वक कहा. जिन्हें कृष्ण पूजा, अच्छी नहीं लगती वे आंख खोल कर देख लें, कि यह पूजित कृष्ण विराजमान हैं! जिन्हें बल का अभिमान हो, वे युद्ध के लिये एक बार कृष्ण को बुला देखे, ताकि उन के शरीर से, उड़ते शिर ही, श्रीकृष्ण की वीरता की साक्षीभूत हो जायें। इस पर, शिशुपाल ने, युद्धार्थ मधुसूदन को, बुलाया। मधुसूदन, खड़े हो कर बोले—बन्धुगण! यह हत्यारा, आरम्भ से मेरा विरोध करता रहा है, एक बार हम प्राग्ज्योतिष देश में गये थे, तब इसने पीछे से द्वारका को आग लगा दी। २ रैवत पर क्रीडा करते, भोजराज को मार और बांध कर, बिना अपराध, अपने नगर ले गया। ३ अश्वमेध यज्ञ में, इस ने विघ्न डाला। ४ सौवीर देश को जा रही बभ्रु (यादव) की स्त्री, को बल से इसने हरा, ५ विशाला नगरी के राजा की कन्या भद्रा, को हत्यारों की भान्ति, इस ने हरा। ६ रुक्मणी ने इस में इच्छा न होने से, इस के अनेक यत्न, करने पर भी, जब इसे अयुक्त पात्र,समझ परे फटकार, दिया तब से अनेक अपराध इसने मेरे किये, पर मैंने अपनी (फूफी) भूया का, ध्यान करते हुए सब क्षमा किये। अब यह नीच ७ कुरुवृद्ध, आदित्य ब्रह्मचारी, भीष्म जी तथा ८ सर्व हितैषी अजातशत्रु धर्मराज की, घोर निन्दा कर रहा है, और ९ संसार हितार्थ * किये यज्ञ में

* जो लोग शिशुपाल बध को, कृष्ण के पारस्परिक

विघ्न डालना चाहता है, अतः आर्यवीरो ! अब मैं इस राक्षस के अपराध को क्षमा न कर, इसे इस के किये का फल दिखाऊंगा ॥

न हृये सात्वती सूनुर्यन्मह्यमपराध्यति ।
यत्तु दंदह्यते लोकमदो दुःखाकरोतिमाम् ॥

माघ० २ । १०

यह कह झट सुदर्शन चक्र से, शिशुपाल का सिर काट दिया । शिर कटते ही सब लोग कृष्ण की वन्दना करने लगे । और यज्ञ विघ्न का, जो वृक्ष बढ़ रहा था उस की जड़ें ही उखड़ गईं । और सब एक चित्त हो कार्य में प्रवृत्त हो गये ।

मरणान्तानिवैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम् ।

बाल्मकीय रामायणे

शिशुपाल का देह संस्कार — जिस प्रकार, रावण वध के पीछे, श्रीराम ने रावण का संस्कार, वेद रीति से विभीषण को, आज्ञा देकर, कराया था, वैसे ही श्रीकृष्ण ने भीमादि को आज्ञा दे, वैदिक मंत्रों से उस का देह संस्कार करा कर उस के पुत्र को चेदि (चन्देरी) का महाराज बना दिया ।

द्वेष का, शिकार मानते हैं, वे ऊपर के संवाद और माघकाव्य के २ । ११ के श्लोक को पढ़ें, ताकि पता लगे कि यह राक्षस वध जगत् हितार्थ ही था ।

॥ यज्ञावभृथस्नान और राजा की प्रार्थना ॥

कृष्ण का उपदेश और ब्राह्मणों का आशीर्वाद ।

इन्द्र ! क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ॥

ऋ० ७ । ३२ । २६

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वे शया महे ॥

अथ० ६ । १०८ । ५

बलंधेहि तनूषुनो बलमिन्द्रा न लुत्सुनः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वंहि बलदा असि

ऋ० ३ । ५३ । १८

रुचं नोधेहि ब्राह्मणे षुरुचं राजसुनस्कृधि ।
रुचंविश्येषु शूद्रेषु मयिधेहि रुचारुचम् ॥

यजु० १८।४८

प्रियं माकृणुदेवेषु प्रियंराजसु माकृणु ।
प्रियं सर्वस्यपश्यत उतशूद्रे उतार्ये ॥

अथर्व १९ । ६२

कृष्ण द्वारा पूर्णाहुति पर्यन्त, यज्ञ की रक्षा होने से, यज्ञ, सब अंगों में, निर्विघ्न, समाप्त हुआ । ब्राह्मण तथा वेद की आज्ञानुसार, धर्मराज का यज्ञावभृथस्नान, कराया गया । राजा

ने ऊपर लिखे मंत्रों से, अपने, बल, बुद्धि, वैभव, वा सारे वर्णों के हित की प्रार्थना की, और ब्राह्मण आदि आगत अतिथियों का फिर विशेष आदर और पूजन किया, ब्राह्मणों ने नीचे के मंत्र से आशीश दी।

अयमस्तु धनपतिर्धना नामयं विशां विशपतिरस्तु राजा। अस्मिन्निन्द्र महिवर्चांसिधेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य॥ अथ० ४।२२।३

सब राजाओं ने, वधाई देकर, बिदाई मांगी, धर्मराज की आज्ञा से, सब राजाओं को, कुरुराज्य की सीमा तक पहुंचाने के लिये, धृष्टद्युम्न, धनंजय, भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदीपुत्र, तथा अभिमन्यु, आदि राजबन्धु तथा राजकुमार गये। और सारा यज्ञ, सानंद पूर्ण हुआ।

कृष्ण का राजा को उपदेश

अगले दिन, स्नान संध्या, अग्निहोत्र, स्वस्तिवाचन, आदि कर्म कर, श्रीकृष्ण ने पहले धर्मराज तथा माता कुन्ती को वधाई दी, द्रौपदी और सुभद्रा को मान देकर, द्वारका जाने की आज्ञा मांगी इन्हें स्वयं धर्मराज पैदल बाहर छोडने गये, चलते समय, सारी प्रजा के सोम्हने, कृष्ण ने, धर्मराज को नीचे का राजा के जीवन के सफल करने वाला, उपदेश, दिया।

अप्रमत्तः स्थितो नित्यं प्रजाः पाहि विशांपते।

पर्जन्यमिवभूतानि महाद्रुम मिवद्विजाः ॥
स० ४५ । ६५

बांधवास्त्वोपजीवन्तु सहस्राक्षमिवामराः ।
कृत्वापरस्परेणैवं संविदं कृष्ण पांडवौ ॥ ४५।६६

प्रजापते ! आप प्रमाद रहित, सावधान हो कर, प्रजा की पालना करें, क्योंकि आर्यजाति की, नीति और वेद की शिक्षा के अनुसार राजा का, यही धर्म है, कि वह सारी प्रजा की पालना करे, इसी लिए उस का नाम प्रजापति वा सर्व पिता है । तेरे जीवन को, प्राणिमात्र, समय पर तृप्ति पूर्वक वर्षने वाले, मेघ, और सदा फलने वाले छायावान् वृक्ष को पक्षियों की भान्ति, अपना जीवन वर्धक, वा आश्रय स्थान समझें। संबन्धी लोग इन्द्र के समान आप की उपासना करें।

धर्मराज की स्वीकृति } अहमृभ्णामि मनसा मनांसि ॥
अथ० ३ । ८ । ६

धर्मराज ने श्रीकृष्ण का उपदेश, ध्यान से सुन कर, प्रतिज्ञा की, कि मैं सदा पुराने राजाओं की भान्ति अपने धर्म को, सावधानी से पालना, करता हुआ, राष्ट्र की वृद्धि करूंगा। और कभी दमन नीति से, नहीं किन्तु हित नीति, से प्रजा के मनों को, मन से, ग्रहण किया करूंगा, इस प्रकार चेतावनी दे, प्रतिज्ञा ले, श्रीकृष्ण द्वारका को चले गये।

चक्रवर्ती की दिनचर्या } आज कल के भारतीय जन, थोड़ी सी सम्पत्ति होने पर, आलसी, प्रमादी, तथा धर्म आचरण में, निपट नादान बन, नास्तिकों सा मिठास शून्य जीवन गुजारने लग जाते हैं, नीचे हम अति संक्षेप से, महाराज युधिष्ठिर की, साम्राज्य पद, पाने पर भी कैसी अनुकरण योग्य दिनचर्या थी, दर्शाते हैं।

रात्रि के, पिछले पहर नर्तक, गायक, और सुन्दर, स्वर के मधुर बाजे, बजाने वाले, सूत, मागध, मीठे, पुरुषार्थी राजाओं के उत्तेजक गीत, स्वर, तालों से, तथा बाजों की हर्षकध्वनि से महाराज को जगाते। उठ कर महाराज शौच व्यायाम दन्त धावन स्नान चन्दन लेपन कर सुवस्त्र 'सादे और खुले' पहन पुष्पमाला धारण कर, सन्ध्या भवन में जाते।

जजाप जप्यंकौन्तेयः सतांमार्गमनुष्ठितः।
तत्राग्निशरणंदीप्तं प्रविवेश विनीतवत्॥

द्रोण० ८२।१३

समिद्भिः सपवित्राभि रग्नि माहुतिभिस्तथा।
मंत्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात्ततः॥१४
ततो वेदाविदो वृद्धानपश्यद्ब्राह्मणर्षभान्॥१५

सन्ध्या कर, पूर्वाभिमुख बैठ, गायत्री से ईश्वर का जप करते, फिर अग्नि शाला में जा, वेद मन्त्रों से अग्निहोत्र करते, पीछे से वेद मन्दिर में, वेदज्ञ वृद्ध शम, दम, सम्पन्न ब्राह्मणों

से बड़ी, श्रद्धा के साथ, वेदवाणी का, उपदेश लेते। पीछे ब्राह्मणों को गोदान, मधु घृत, स्वादु फल, तथा वस्त्र भूषणों से पूजा कर, क्षत्रिय वेश पहन, प्रजापालन का काम, आरम्भ करते। न्यायासन पर बैठ, कभी पक्षपात का व्यवहार न कर, सत्याचरण से प्रजा हित किया करते थे। इस समय धर्मराज की आयु ५४ वर्ष से ऊपर थी।

---

* तृतीय भाग *

मायाजाल खंड ६।

॥ एक विदेशी द्वारा पुण्यभूमि में अनर्थ बीजारोपण ॥

ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्चिगत्यां जगत्।
तेनत्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

यजु० ४०। १

जायातप्यते कितवस्यहीना, मातापुत्रस्य चरतः क्वस्वित् ॥ ऋ० १०। ३४। १०

अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्तेरमस्व बहुमन्यमानः ॥ १३ ॥

पर संपत्ति दाह } सब नृपालों के, चले जाने पर, भी दुर्योधन, शकुनि सहित, कुछ दिन यहां और

ठहरे। एक दिन मय सभा को, इन्हों ने विशेष रूप से देखा।
भीम, अर्जुन, के साथ जाते हुए, दुर्योधन एक स्थान को, जो
स्फटिक मणियों से बना था, जलस्थान समझ, कपड़े संकोच
ने लगे। एक स्थान में प्रवेश करते हुए, आप के वस्त्र जल में
भीग गये, कारण वह जलस्थान होने पर भी कारीगर की,
चतुरता से, जल होन मंडप दिखाई देता था। आगे चल कर
आप, एक द्वार के चौखट को, हाथ से खोलने लगे (जो बन्द
दिखाई पड़ता था) तो धड़ाम से, अन्दर गिर पड़े, यहां पर
भीमसेन * हंस पड़े, उन्हें देख कुछ अन्य पुरुषों की भी हंसी
खुल गई। आगे को, यहां की रचना, विलक्षणता, बता भी
दी, पर आगे चल कर एक द्वार को खुला समझ जब अन्दर
बढ़ने लगे, तो बल्लौरी फाटकों से माथा फूट गया। अनुचर,
यहां भी, हंसी न रोक सके। दूसरे दिन आप ने उस सम्पत्ति
भंडार, को देखा, जो राजाओं की दी हुई भेंटों से भरा वा
सजा हुआ था। इस सब दृश्य को देख, दुर्योधन, चकित,
लज्जित, और ईर्ष्याग्नि से दग्ध, हो गया। और अन्दर ही
अन्दर जलता भुनता वहां से चला गया।

जलन की औषध } इस जलन से दीन, मलीन देख शकुनि ने कहा
राजन्! घबराएं नहीं, मैं यह सारी संपत्ति
तेरे वश में करदूंगा? दुर्योधन ने पूछा, जीत कर? शकुनि ने

---

* अन कथाओं में इस मौके पर द्रौपदी के हंसने का,
और "अन्धस्य अन्धोवैपुत्रः" के असभ्य शब्दों का, प्रचार
देखा जाता है पर महाभारत में उस का मूल भी नहीं है।

कहा पांडवों को जीतने वाला अब कौन है । मैं एक और ही उपाय से जीत दूंगा । दुर्योधन ने, कहा वह क्या और कैसे ? शकुनि बोला मैं जूआ (द्यूत) बहुत अच्छा जानता हूं । राजा युधिष्ठिर साधु प्रकृति हैं । हम उन्हें बुला कर, ऐसे ढंग से ललकारेंगे, जिस से वह पीछे न हट सकेगा । दुर्योधन ने कहा देर क्या है ? शकुनि आप ज़रा, महाराज धृतराष्ट्र की, आज्ञा ले दीजिये । दुर्योधन महाराज से तो आप ही पूछें ? इस पर शकुनि ने, दुर्योधन को, साथ लेजाकर धृतराष्ट्र से कहा, राज सूय यज्ञ के बाद से, युवराज, महा व्याधि से पीड़ित है इस का शरीर कृश, रंग पीला, चित्त व्याकुल, मन अधीर, रहता है कुछ उपाय कीजिये, राजा के उपाय, रोग निदान, पूछने पर, खुद ही राज्य श्री से पैदा हुए डाह और जूए से, उसे अपने वश करने का इलाज भी, बड़े गंभीर शब्दों में दुर्योधन से कहला कर महाराज से, पांडवों के साथ, राजनियमानुसार, जूआ खेलने की आज्ञा मांगी ।

मंत्री से विचार } शकुनि से प्रेरित, दुर्योधन की बात, सुन राजा ने कहा, मैं महात्मा विदुर की आज्ञा में शासन कर रहा हूं । वह बृहस्पति समान नीति का पंडित है, उससे पूछ कर बताऊंगा । इस पर दुर्योधन ने, कहा विदुर जी ने, इस की आज्ञा देनी नहीं * मेरा इस के बिना, जीना

---

* इस प्रसंग में धृतराष्ट्र, विदुर, दुर्योधन, युधिष्ठिर के द्यूत विषयक विचारों से पता लगता है, आर्य लोग द्यूत

कठिन है । अतः मेरे मरने पर, आप विदुर जी से ही राज्य करें । इतना हठ, युवराज का देख, देश २ के कारीगरों को, बुला, एक ' मय सभा ' के तुल्य सभा, बनवानी आरम्भ की, करीब दो वर्ष में यह सभा बनी इस का विस्तार एक कोस का था, बड़ा भवन इस का १००० एक हजार खंभे का था, सभा बनने पर, शकुनि के प्रेरने पर कि " युधिष्ठिर को सभा देखने के बहाने बुला कर, सुहृद् द्यूत, कह कर, द्यूत खिला लें, फिर हम सर्वस्व हर लेंगे " धृतराष्ट्र ने, द्यूत को वेद विरुद्ध, समझते हुए भी, विदुरजी को बुला कर इस विषय पर संमति ली, जिस पर विदुर ने, इस का घोर विरोध करते हुए कहा राजन् ! यह द्यूत भाई २ में विरोध डाल देगा, श्रुति स्मृति में इस की निन्दा है । हंसी के रूप में इस का खेलना भी निषिद्ध है । राजाओं के लिये तो यह नाशकारी व्यसन है !

धृतराष्ट्र ने विदुर जी से सर्वथा सहमत होते हुए भी, दैव हत पुरुष के समान कहा विदुर जी ! आप धर्मराज को, सभा दिखाने के मिष से, बुला लावें । दुर्योधन का हठ निबाहने के लिये, एक बार सुहृद् द्यूत हो जायगा । बीच में आप, द्रोण, भीष्म जी, और मैं, बैठे होंगे, सब के बैठे अनर्थ कैसे होगा इत्यादि सुन कर भी विदुर जी ने कहा जो आज्ञा हो कर लाऊंगा । पर द्यूत शास्त्र विरुद्ध, कलहकारी, भेद डालने वाला, निन्दनीय पाप है ।

से बहुत डरते थे । केवल विदेशी राजपुत्र शकुनि की संगत का यह फल हुआ जो यहां अनर्थ हो गया ।

युधिष्ठिर का आना } राजा की आज्ञा पा, विदुरजी रथ में बैठ, इन्द्रप्रस्थ में गये, राज्य की ओर से, उचित मान, सत्कार, होने पर, धृतराष्ट्र का कुशलक्षेम बता सभा देखने, वा द्यूत खेलने के लिये राजा का संदेश, (आदेश) विदुरजी ने धर्मराज को सुनाया, द्यूत का नाम सुनते ही चौंक कर, विस्मित से वाक्य से धर्मराज बोला—

द्यूते क्षत्तः कलहो विद्यतेनः,
कोवैद्यूतं रोचते बुध्यमानः ।
किंवा भवान् मन्यते युक्तरूपं,
भवद्वाक्ये सर्वएव स्थिताः स्म ॥

सभा॰ ५८ । १०

पूज्य महात्माजी ! द्यूत में सदा क्लेश होता है, कोई भी समझदार, इसे पसन्द नहीं करता, आप ही कहें, क्या यह अच्छा काम है । हम सब आज्ञा में विद्यमान हैं ।

विदुरजी ने कहा—धर्मराज मैं बलात् भेजा गया हूं, उन का संदेश, आप को सुना दिया है, आप शास्त्रवित् हैं, विचार कर जो उचित समझें करें ।

धर्मराज द्यूत सभा में } उस दिन विदुरजी को वहां रख, धृतराष्ट्र संदेश को, राज आज्ञा, गुरु आदेश, मान दूसरे दिन धर्मराज सपरिवार (स्त्री पुत्र भाईयों को साथ ले) हस्तिनापुर पहुंच गये । पहले सब भाई बन्धु, वृद्ध, स्त्री, पुरुष,

माता गांधारी, भीष्म आदि को शिष्टाचार अनुसार पूज उस दिन सानन्द भ्रमण करते रहे। दूसरे दिन नित्य कर्म तथा कुछ भोजन कर विवश हुए से, डरते, सकुचाते, हुए उस सभा में पहुंचे जहां कितनों ने, मायाजाल, साधु प्रकृतियों को बांधने के लिये, दृढ़ रज्जुओं से तन रखा था।

शकुनि युधिष्ठिर संवाद — सभा के जुड़ जाने पर, एक सुन्दर, चौपट और पासे (इदल) रख, शकुनि ने, धर्म-राज से कहा-राजन्! देखिये, ये आप के लिये, तयार किये गये हैं। यह सुन, धर्मराज बोले—

निकृतिर्देवनं पापं, न क्षात्रोऽत्र पराक्रमः।
न च नीति ध्रुवाराजन् किं त्वं द्यूतं प्रशंससि॥

५९।५

राजन्! किसी को ठगना, वा जूआ खेलना, पाप है, इस में कोई क्षत्रियोचित बल परिचय, नहीं मिलता, और न ही, यह धर्म नीति है, आप इसे क्यों पसंद करते हैं।

शकुनि—धर्मराज! इस में ठगी और पाप क्या है, बुद्धि का परीक्षण है। जैसा कि द्वन्द्व युद्ध में, शीररबल परीक्षण, और शस्त्रास्त्र संग्राम में, धनुर्वेद परीक्षण, होता है।

धर्मराज—शकुनि जी! इस मायाचार को, हम आर्या-वर्ती जन पसन्द नहीं करते। और न ही इस के दाव, घात, वा टेढ़ापन को, सरल स्वभाव आर्य जानते हैं। हम तो युद्ध जानते हैं। जिस में न छल, न कपट, दो हाथ किये, मैदान साफ॥

शकुनि—धर्मराज ! इस में टेढ़ा, तिरछा पन कौनसा है' गिने हुए घर, गिनी हुई नरदें, स्पष्ट दीखने वाले, खाली हाथ से फैंके जाने वाले पासे, दिन में, सब के साम्हने, फैंकने, सब ने देखने, नियत चाल पर लगा, दाऊ जीत लेना, कुछ छल नहीं कोई कपट नहीं । क्षत्रिय को युद्ध प्रिय सब ने कहा है, युद्ध कई प्रकार का होता है, शस्त्र युद्ध, गदा युद्ध, मल्लयुद्ध, धनुषबाण युद्ध, यहां भी पासे बाण, और दाऊं, धनुष समझो यह अक्षयुद्ध है । हां यदि निर्बलता आदि दोषों से अपने को असमर्थ मानते हो तो, साफ़ तौर से, मैदान छोड़ कायर पुरुषों की भान्ति घर चले जाओ, हम भागतों के पीछे तो जाया ही नहीं करते, संसार में विद्या हीनों को विद्वान, मेधा शून्यों को मेधावी, कायरों को वीर, ज्ञोता ही करते हैं, कायर क्षेत्र से टलते ही हैं, आप भी पीछे हट जायें ।

आहूतो न निवर्तेय मितिमे व्रत माहितम् ॥

सभा० ५६ । १८

धर्मराज—मायावी शकुनि के, इस वाक्जाल को न जान, द्यूत क्रीड़ा को ही अक्षयुद्ध, समझ, झट बोल उठे, यदि मुझे युद्धार्थ निमन्त्रण देते हो, तो मैं सब प्रकार के युद्ध के लिये तयार हूं " क्योंकि ललकारने पर, मैं पीछे नहीं हटा करता, यह मेरा जीवन व्रत है * ॥

---

* जो लोग उपरोक्त विवाद को पढ़ कर भी यह समझते हैं, कि धर्मराज ने जूआ खेला, वे जुआरी थे, और उस समय के, आर्य भी जुए से प्यार करते थे । वे हमारी नीचे

कहिये ? मेरे साथ कौन खेलेगा, कौन दाऊ लगायेगा ? इस पर पूर्व निश्चय अनुसार, झट दुर्योधन बड़ी दिलेरी से बोले, राजन् ! दाऊ में धन मेरा होगा और खेलेंगे मेरी ओर से मेरे मामा, गान्धारपति, महाराज सुबल के पुत्र अक्ष क्रीड़ा निपुण, शकुनि।

लिखी पाद टिप्पणि, जरूर पढ़ें। हमारा विश्वास है धर्मराज ने जुआ नहीं खेला, किन्तु अक्ष युद्ध स्वीकार किया था।

(१) धर्मराज की, सभा पर्व के अ० ५८ श्लो० ६, १०, अ० ५९। श्लो० ५, १०,१३, १८ अ० ६८। श्लो० ९,१० से स्पष्ट द्यूत में अरुचि, धर्म विरोधिनी क्रिया, प्रतीत होती है।

(२) अक्ष युद्ध स्वीकार करते, बुलाने पर भागना कुल धर्म के, विरुद्ध समझ भी, धर्मराज द्यूत खेलने को, सभा० ५६।१८ में अपनी विवशता ही बताते हैं।

(३) सभा० ७६। ४, ६, में भी युधिष्ठिर ने पर वशता ही दिखाई है।

(४) सभा० ६८। ९ में अर्जुन ने भी, इस कर्म को (अक्षयुद्ध को) क्षात्रधर्म समझ खेलना लिखा है, और वह भी परवशता के कारण।

(५) विदुर, धृतराष्ट्र, द्रोण, भीष्म, दुर्योधन, तक इस कर्म के विरोधी थे, भीष्मादि सभा में गये तो भी डरते २ और द्रौपदी के हाथ, पर तो वे लज्जा वा भय से स्वेद पूर्ण हो गये देखो ६९। ४१।

(६)आर्यराजा, और राजसभा के सभासदों को भय होना, आवश्यक भी था क्योंकि "अक्षैर्मादीव्यः" ऋ० १०। ३४।

इस पर धूर्तों से घिरे हुए, साधु समान, साधु प्रकृति, इन की धूर्तता न समझ, अपनी अपार तथा अटूट संपत्ति के भरोसे खेलने लगे।

---

१३ और मनु० अ० ७ श्लो० ४६, ५०, ५३ के लिखे अनुसार इसे श्रुति, स्मृति, विरुद्ध अधर्म समझते थे, तथा अधर्म का फल, दुःख ही होता है।

(७) और मनु० ६। २२७ में।

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत्।

तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥

हंसी के लिये भी जूआ खेलना, वैर कर, बतला कर, इस के खेलने का निषेध किया है। और एक श्लोक में तो जुआरी, को देश से निकाल देने की आज्ञा है, इन्हीं संस्कारों से, प्रभावित, हो कर न केवल धर्मपुत्र, विदुर, धृतराष्ट्र आदि द्यूत की निन्दा करते थे, किन्तु आरम्भ में दुर्योधन को भी यह कर्म रुचा नहीं। अन्ततः जो जूआ खेला ही गया, वह सब अनार्य देश (कंधार अफगानस्थान) के राजकुमार, अनार्य स्वभाव "मायायुक्त" शकुनि की, माया का कुफल था। यदि द्यूत आर्य प्रिय कर्म होता, तो पांडव वा कौरव कभी पहले भी, खेलते, तथा दुर्योधन को भी, आता होता, और उस की, जगह शकुनि पासे न गेरता। तथा धर्मपुत्र, भी इतनी जल्दी सर्वस्व न दे बैठता। इससे सिद्ध है हस्तिनापुर का, नाशकारी, जूआ, विदेशियों की कृपा थी, अब भी आर्य लोगों को विदेशियों की चालों से बचना चाहिये। चेत धर्मराज विदेशी के वाकजाल से आच्छादित अधर्म को धर्म न समझ बैठते॥

अनर्थकारी द्यूत।

(कुछ पलों में संसार के धन की भस्म)

नश्रियस्तत्रातिष्ठन्ति द्यूतं यत्र प्रवर्तते ॥

जूये के पहले १४ दाऊ } सब से पहले, धर्मपुत्र ने, एक मणियों का हार, दाऊ में रखा और दुर्योधन ने भी इतने मूल्य का दाऊ, मुकाबले में लगाया। तब जुआरी शकुनि ने पासे फैंकते ही कहा मैं जीता। और कुछ लगाओ! फिर धर्मराज ने १००० एक हजार मोहरें लगाईं। वह भी पासा फैंकते ही जीत ली। इसी प्रकार तीसरे दाव में आठ घोड़ों वाला, व्याघ्र ध्वजा सहित, जैत्र रथ। ४ चौथे में एक लाख विभूषित, सेवा निपुण, दासियें। ५ पांचवें मे एक लाख सुशिक्षित दास। ६ छठे में एक हजार सिधाये और सिगारे हुए, हाथी, तथा आठ उत्तमवंश की हथनियें। ७ सातवें मे एक हजार तयार (साधन सहित) रथ। ८ आठवें में चित्ररथ, गन्धर्व के दिये जातिवन्त घोड़े। ८ नवमे में दश हजार यात्रा शकट, जिन मे ६० साठ हजार सवार सुख पूर्वक बैठ सकें। १० दशवें में सुवर्ण की चार पेटियें, जिन में एक २ में दो २ मन (अस्सी २ सेर) सुवर्ण मोहरें थीं। ११ वें में कोटि धन १२ वें में असंख्य गाय, घोड़े, भेड, बकरी, १३ वें में ब्राह्मण धन तथा ब्राह्मण वर्ण के बिना, सारी प्रजा, और नगर देश

सब। १४ वें में सात पुत्र अर्जुन के, दो भीम के, तीन नकुल सहदेव और अपने कुल १२ राजकुमार।

१५ और दाऊ } इतना होने पर शकुनि बोला बस! कि कुछ और भी है? यह सुन जुये की हार की गर्मी में आये युधिष्ठिर बोले, अभी बहुत कुछ है, शकुनि ने कहा फिर धरो तब १५ वें में नकुल १६ वें में पंडित पदधारी सहदेव १७ वें में अर्जुन १८ वें में महा बली भीमसेन और १९ वें में युधिष्ठिर महाराज ने अपने आप को दाऊ पर रख दिया रखते ही पासे फैंके, और कहा मैं जीता! यह सुनते ही संसार भर के राजाओं को जीतने वाला, दिग्विजयी भाईयों का, गुरु समान पूज्य, भ्राता, राजा, श्रीकृष्ण से योगियों का बन्धु, आत्मविजयी, इन्द्रियेश्वर, केवल एक छली कपटी कितव को, कुचाल में, आकर धर्म समझ कर भी वेद विरुद्ध अधर्म 'द्यूत कर्म' करने से एक सामान्य जन के हाथ, भाईयों सहित, द्रव्य क्रीत दासों, की भान्ति किंकर बन गया है। और जो संपत्ति, विभूति, ऐश्वर्य कोश, रत्नमाला संसार के महीपालों ने लाखों वर्षों में, एकत्र कर, बल से, प्रेम से, पुण्यभाव से, इसे राजसूय यज्ञ में भेंट की थी, वह आज कुछ पलों में इस के लिए खाक हो रही है। जिन खजानों को, अटूट, अनन्त वर्षों में न जलने वाले, सदियों में न खतम होने वाले, धर्मराज खुद समझता था, वह द्यूताग्नि की प्रचंड ज्वाला में अपने हाथों कुछ पलों में, हाथ मिटियाने के भी काम न आने वाली खाक बन गये हैं।

---

* पांडवोद्धरण खंड ७ *

अन्तिम दाऊ शीलवती स्त्री } युधिष्ठिर को, जीत लेने पर भी, शकुनि ने पाप बुद्धि से कहा राजन्! अभी आप के पास एक भारी दाऊ है, उसे लगाओ, और फिर सब कुछ हारा हुआ जीतो? यह सुन व्यसनाच्छादित मेधा, युधिष्ठिर ने, बिना इस विचार के कि मैं अब स्वयं हर चुका हूं, मेरा किसी पुरानी, वस्तु पर, अधिकार है भी, या नहीं? और बिना यह सोचे, कि स्त्रियें जूये का दाऊ बन भी सकती हैं या नहीं! कह दिया मैं "धर्मात्मा सर्व गुण सम्पन्ना सुवीरा सुशीला विदुषी राज्य प्रबन्धकर्त्री यज्ञप्रिया, यज्ञसेन की पुत्री वीर जननी, द्रौपदी को दाऊ में लगाता हूं!

धिग्धिगित्येव वृद्धानां सभ्यानां निःसृता गिरः

सभा० ६५। ४०

चुक्षुभेसा सभा राजन् राज्ञांसंजज्ञिरे शुचः।
भीष्मद्रोणकृपादीनां स्वेदश्चसमजायत ॥४१॥
जहर्ष कर्णोतिभृशं सह दुःशासनादिभिः।
इतरेषां तु सभ्यानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम्।४४।

युधिष्ठिर के, उपरोक्त वचन को, सुन कर उन के इस अनधिकार चेष्टा युक्त कर्म को देख तथा आर्यावर्त में, आर्य स्त्रियों की पूज्य स्थिति और द्रौपदी जैसी सुशीला देवी पर

चांडाल मंडली से होने वाली नीच चेष्टाओं का, विचार कर चारों ओर से, धिक्कार ! धिक्कार ! अनर्थ ! ! महा अनर्थ ! ! ! के द्योतक शब्द होने लगे। और सारा राजमंडल, इस अनार्य व्यवहार से, क्षुब्ध हो गया। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि के शरीरों से लज्जा के मारे स्वेद बहने, लग गया, विदुर जी, माथे पर हाथ धर, नीची गर्दन कर, गत जीवन की तरह हो गये। हां केवल कर्ण, दुःशासन, आदि की चांडाल चौकड़ी, खुश हो रही थी। और सब सभ्यों के नेत्रों से शोकाम्बु धारा बन कर बह रहा था।

पाठक ! इन श्लोकों के चित्रित दृश्य को, दिखा कर, उन नवशिक्षित, अध शिक्षितों से पूछिये जो कहा करते हैं पुराने चन्द्रवंशी, राजपुत्र, तथा तत्कालीन सभ्य, द्यूत प्रिय होते थे। क्या कभी अभिरुचित विषय पर बैठे विषयियों के, शरीर से पसीना, नेत्रों से जल, और वाणी से धिक् २ शब्द निकला करते हैं। निदान शीलवती, याज्ञसेनी का, दाऊ भी पासे फैंकने सार ही " जितम् " कह कर जीत लिया गया। यह सुनते ही सारे सभामंडल में कृष्णारात्रि के, काल समान निश्चेष्ट सन्नाटा छा गया। केवल पुत्रमोह मुग्ध, बाह्य चक्षुओं की तरह अन्तः से भी दृष्टि विहीन, धृतराष्ट्र इधर उधर मुंह फिरा कर कह रहा था " किं जितम् , किं जितम् "।

दुर्योधन का दुष्ट आदेश — सारे समारोह के, निश्चेष्ट होने पर, दुर्मति राजा दुर्योधन ने, विदुर जी से कहा—विदुर जी ! जाइये द्रौपदी को ले आइये, और उस

पापिन को अन्य दासियों के साथ घर की सफाई, का काम सम्भाल दीजिये !

विदुर—मंदात्मन् ! क्या बक रहे हो, कूवे में लटके हुये, आशी विषों से वेष्टित हुये भी, क्यों हित, अहित, नहीं विचारते ? मृग होकर, प्राण संहारी व्याघ्रों को असमय क्यों कुस करे है ? अच्छे, भले बैठे, क्यों मृत्यु घर में, कूदने के लिये छलांगे लगा रहे हो ? पढ़ कर भी नीति शास्त्र क्यों विसार बैठे हो ? अपने आप को हराये, हुये भी कभी किसी दूसरे के स्वामी सुने हैं यदि नहीं तो

नहि दासीत्वमापन्ना कृष्णाभवितु मर्हति ।
अनीशेन हि राज्ञैषा पणेन्यस्तेति मेमतिः ॥

स० ६६ । ४

सर्वस्व से हाथ धोये, पर हाथ बिके, राजा के दाव लगाने पर, द्रौपदी दासी नहीं होसकती यह मेरी सम्मति है व्यर्थ, पाप मय बाण रूप तीखी बाणी से दुःख न बढ़ाइये ।

दुर्योधन—विदुर जी का फटकारा हुआ, उनकी निन्दा करता २ प्रातिकामी सूत से बोला प्रातिकामी ! विदुर तो पाडवों से डरता हुआ झगड़ रहा है, तुम जाओ द्रौपदी को ले आओ । तुम्हें पांडवों का कोई भय नहीं है ।

प्रातिकामी—द्रौपदी के भवन में डरता २ (जैसे कुत्ता शेरनी के घोंसले में जाता है) जाकर बोला द्रौपदि ! द्यूतमद

से मस्त, युधिष्ठिर ने, जूये में तुम्हें हार दिया है, इस लिये तू धृतराष्ट्र के घर चल ! मैं तुम्हें वहां पहुंचा देता हूं ।

द्रौपदी—ने कहा दूत ! क्या कह रहे हो कभी स्त्रियें भी दाव में लगाई गई है ! और कोई वस्तु ही उनके पास न थी।

प्रातिकामी—हां द्रौपदी ! जब कोई वस्तु न रही, वह स्वयं भी हर गये तब तुम्हें लगाया था ।

द्रौपदी—सूतपुत्र ! सभा में जाकर पूछो व्यसन मूढ, राजा ने, अपने को हराकर मुझे हारा है, या पहले मुझे हार कर, स्वयं पीछे द्यूत वेदि की बली बने हैं ?

प्रातिकामी ने सभा में जाकर, द्रौपदी का वचन, (प्रश्न) दुहराया, जिसे सुन सभासद, तथा स्वयं धर्मपुत्र, तो अच्छा बुरा कुछ न बोले पर

दुर्योधन बोले अरे ! उसे कहो कि यहां आकर ही प्रश्न पूछ लो, तुम्हारा और तुम्हारे धर्मराज का, उत्तर मिल जायगा

प्रातिकामी राजपुत्रि ! सभासद तुम्हें ही वहां बुलाते हैं, मालूम होता है तेरे प्रश्नों से कौरवों को संशय पैदा हो गया है ।

द्रौपदी—दूत वर ! मुझे दुःख, सुख, की परवाह, नहीं, वह तो बाल वृद्ध सब को ही मिलता है, पर धर्मवेत्ता कौरव वंशी क्या मेरे प्रश्न का धर्मानुसार उत्तर नहीं देते ? कौरव श्रेष्ठों से उत्तर लेकर आओ ।

प्रातिकामी—को अब दुबारा आने पर, दुर्योधन ने, सभा में लाने को ही कहा, तब उसने दुर्योधन का मान छोड़,

कुरु वृद्धों से ऊंचे से पूछा " द्रौपदी को आप की ओर से क्या कहूं ? तब दुर्योधन ने, दुःशासन को, बुला कर कहा—दुःशासन ! सूतपुत्र भीमसेन से भय खाता है, तुम स्वयं जा कर, द्रौपदी को ले आओ, ये परवश शत्रु, तुम्हारा क्या कर सकते हैं ?

दुःशासन—जब अन्तःपुर में रुद्र रूप में घुसा, तब द्रौपदी जो एक वस्त्र में थी, वृद्ध स्त्रियों की ओर गई, वहां दौड़ कर, द्रौपदी के कोमल काले, चिकने, लम्बे, सुगन्धित और घूगरू वाले पवित्र केशों को पकड़ सभा में चलने को कहा—और यह भी कहा कि तू जूये में जीती गई है। खैंची हुई, और बलात् झुकाई गई, नरेन्द्र कन्या द्रौपदी ने, धीरे से कहाः—

रजस्वलास्मि । एकं च वासो मम मन्दबुद्धे! सभांनेतुं नार्हसि मा मनार्य ॥ ६७ ॥ ३२

मन्द बुद्धे मैं रजस्वला हूं । और एक वस्त्र में हूं, इस दशा में सभा में ले जाना, तेरे लिये योग्य नहीं ।

रजस्वला वा भव याज्ञसेनि एकांबरा वाऽप्यथवा विवस्त्रा । द्यूतेजिता चासि कृतासि दासी दासीषु वासश्च यथोप जोषम् ॥ ६७। ३४ ॥

दुःशासन—द्रुपद पुत्रि ! चाहे ऋतुमती हो या एक वस्त्र में हो, अथवा सर्वथा वस्त्र हीन हो, जूये से जीत कर,

दासी बनाई गई हो, दासियों में दासी की भान्ति रहना पड़ेगा। यह कर क्रूर स्वभाव, नीचात्मा, दुःशासन, निरपराध द्रौपदी को, बलात्* घसीट कर सभा में ले आया, जिसे देख बिना ३।४ नीचों के सारे मनुज समूह के शिर नीचे, मन लज्जित, वाक् बद्ध, आत्मा भाराक्रान्त, होगये। उस समय का दृश्य देखने वाले लिखते हैं, कि राज्य हरने धन नष्ट होने, रत्नों के शत्रु हाथ चले जाने, से जो दुःख द्रौपदी को न हुआ था वह दुःख, इस प्रकार सभा में, लज्जा हीन करने से दिखाई पड़ता था।

जिस भीमसेन को, शस्त्र अस्त्र, धन धान्य, सवारी, सुखसाधन, राज्य और स्वयं (भीम को) पर हाथ में बेत्र देने से, जिस धर्मराज पर क्रोध न आया था, क्योंकि वह ' अपने सर्वस्व का ईश ' धर्मराज को समझता था। उस भीमने द्रौपदी को बेइज्जत होते, देख सहदेव से कहा भाई ! लाओ अग्नि ताकि मैं उन युधिष्ठिर के हाथों को जला दूं, जिन हाथों ने शीलवती देवी द्रौपदी का, दाव लगा कर, पासे फैंके थे। निकट था कि ऐसा हो जाता यदि अर्जुन यह कह कर भीम को शान्त न करता कि ' राजा युधिष्ठिर ने शत्रु के बुलाने पर क्षात्रधर्म की रक्षा के लिये ऐसा किया है, लोभ वश जूआ नहीं खेला, और यह हमारे लिये कीर्तिकारी है।

---

* इस प्रसंग पर, कई लोग कहा करते हैं, दुःशासन ने द्रौपदी की साढ़ी खींची, और द्रौपदी ने, श्रीकृष्ण को पुकारा उन्होंने आकर अपनी सत्ता से द्रौपदी के वस्त्र बढ़ा दिये, यहां तक कि दुःशासन उतारते २ थक कर बैठ गया, और वस्त्रों का

वैषम्य मपि सम्प्राप्ता गोपायन्ति कुलस्त्रियः ।
आत्मानमात्मना सत्यो जितः स्वर्गो न संशयः॥

ढेर लगगया, इत्यादि२ । इस पर विचार करने से, प्रतीत होता है, कि वर्तमान महाभारत में ढेर लगने की कोई बात नहीं । यहां सभापर्व अ० ६७ और ६८ में इस का वर्णन अनमिला सा वर्णन है, जो पीछे का मिलाया हुआ स्पष्ट दिखाई पड़ता है । जैसा ६७।३२ के पीछे द्रौपदी ने दुःशासन को कहा है अनार्य ! मैं ऋतुमती और एक वस्त्र में हूं सभा में मत लेजा । इस का उत्तर दुःशासन ने द्रोपदी को केशों से पकड़ कर दिया कृष्णे ! चाहे तू रजस्वला है वा एक वस्त्र में है वा वस्त्र हीन (नंगी) है तू जूये में जीती गई है, दासियों में रहना पड़ेगा । ऐसा पाठ है । परं आश्चर्य है मिलावट करने वाले ने इसी वाक्य को तोड़ कर बीच में आधा श्लोक यह लिख दिया कि " कृष्णं च जिष्णुं हरिं नरं च त्राणाय विक्रोशती याज्ञसेनी ॥ ३३ ॥ दूसरे मौके पर ६८ । ४१-४८ तक इस का वर्णन है । मिलावट वहां भी साफ २ दीख पड़ती है । १ कृष्ण के सम्बोधन पुराणों की शैली के हैं, इतिहास के नहीं, जैसा कि श्लोक ४४ में कृष्ण को ' त्रिभुवनेश्वर ' कहना । २ श्लोक ४५ में शय्यासन त्याग, पैदल द्वारका से आना । ३ श्लोक ४६ में कृष्ण अर्जुन के स्थान कृष्ण विष्णु को पुकारना । ४ श्लोक ४६ में कृष्ण ने बहुत वस्त्र देना ४७ में उसी के समान अनेक ढंग से दूसरे (एक) वस्त्र का प्रकट होना श्लोक ४८ में धर्म के पालन प्रभाव से, नाना रंगों के वस्त्रों का स्वयमेव प्रादुर्भाव होना । ५ श्लोक ५५ में

रहिता भर्तृभिश्चापि न क्रुध्यन्ति कदाचन।
प्राणांश्चारित्र कवचान् धारयन्ति कुलस्त्रियः॥

वन ७४। २५,२६

वस्त्रों के ढेर लगाने से, और दुष्ट दुःशासन की चारों ओर से निन्दा होने से, दुःशासन का थक कर, तथा लज्जित होकर बैठ जाना, आदि ऐसे वृत्तान्त हैं, जिन से पुरुष संदेह में पड़ कर, इसी निश्चय तक पहुंचता है, कि द्रौपदी को दुःखी देख कर कुल वृद्ध, दुःशासन को धिक्कारने लग गये, और वह बैठ गया। वा कुछ सज्जन वृद्धोंने, उसे अपने वस्त्र ओढ़ने को देदिये और वह बैठ गया।

२ अनेक विद्वान् यह मानते हैं श्रीकृष्ण वहां पहले ही विद्यमान थे क्योंकि ऐसे समारोह में उनका होना सखाभाव वा सम्बन्धि भाव से ज़रूरी था।

३ हमारा विश्वास है कि इस प्रसंग पर श्री कृष्ण न पहले न मौके पर आ ही नहीं सके कारण उन दिनों उन की सौभपति से लड़ाई छिड़ी हुई थी देखो वनपर्व सौभ आक्रमण प्रसंग में श्रीकृष्ण की उक्ति (न आसकने के हेतु में) वहां केवल द्रौपदी को खैंचते देख, जब लोगों ने, स्त्री जाति का सभा में अपमान, न सह कर हाहाकार किया तब दुःशासन लज्जा तथा श्रम का मारा बैठ गया और राजा धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को वर देकर समय सम्भाल लिया।

४ सभापर्व के अन्त में विषय सूची दी है वहां इस प्रसंग

सत्य की विजय } इस दुरावस्था में भी द्रौपदी ने सभासदों के सामहने वही प्रश्न रक्खा, जो उसने अपने जय सम्बन्ध में दूत से किया था, द्रौपदी ने कहा, कुरु-वंशियो ! आप वेद, शास्त्र, न्याय नीति के पंडित हो, मुझे एक मत से बता दो कि राजा ने अपने को शत्रुओं के हाथ बेच कर और अकिंचन होकर मुझे हराया है, वा पहले मुझे हार कर, फिर अपने को हराया है ? पाठक ! उस व्याकुल कारी वायु मंडल में, बैठे हुये, भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, में से साफ २ किसी ने भी उत्तर न दिया । कोई कहता इस का उत्तर युधिष्ठिर ही दे सकते हैं ? कोई कहता भीमादि से ही क्यों नही पूछती और कुछ २ विचार दुर्योधन पक्षीय विकर्ण, और कर्ण आदि में, भी इसी विषय पर हुये । इस समय विवश होते हुये भी, भीमने दुःशासन, और दुर्योधन को

को ' वस्त्र वर्धन ' नाम से नहीं लिखा किन्तु द्रौपदी प्रकर्षण से ही लिखा है।

५ आदिपर्व अ० २ श्लोक ३८-३९ में स्पष्ट लिखा है कि—

यत्र द्यूतार्णवेमग्नां द्रौपदीं नौरिवार्णवात् । धृतराष्ट्रो महाप्राज्ञः स्नुषां परम दुःखिताम् । तारयामासताम् ॥ जब द्रौपदी जूये के समुद्र में डूब रही थी, तब महा बुद्धिमान धृतराष्ट्र ने, अपनी दुखिया पुत्र वधू को, नौका बन कर (वर दे कर) पार उतार दिया । इत्यादि विचारों से सिद्ध है कि वस्त्र देने वा बढ़ाने की बात कल्पित और पीछे की मिलावट है ॥

बदला लेने का शाप दिया, और सभा में ही कई प्रकार के उत्पात दिखाई देने लगे, जिन्हें देख वृद्ध, स्वस्ति २ कहने लगे और गान्धारी तथा विदुर ने, भावी अनर्थ की सूचना धृतराष्ट्र को दी।

तब धृतराष्ट्र ने देश, काल, हिताहित, विचार, दुर्योधन को इन शब्दों में फटकारा—

हतोसि दुर्योधन मंदबुद्धे ! यस्त्वं सभायां कुरुपुंगवानाम् । स्त्रियं समाभाषासि दुर्विनीत विशेषतो द्रौपदीं धर्मपत्नीम् ॥ स० ७१।२५

हे मन्दबुद्धि विनयहीन दुर्योधन ! नष्ट हो जायगा। जो तू कुरुवंशियों की पुण्य सभा में, एक देवी को, पापवचन, कह रहा है ! विशेष कर धर्म की पालना, करने वाली, शीलवती द्रौपदी को। और द्रौपदी को नाना विध सन्तोष, शान्ति दिलाने वाले, शब्दों को कह कर कुल रक्षा के लिये देवी कोपको, शान्त करने के लिये बोला।

वरं वृणीष्वपांचालि ! मत्तोयदाभि कांक्षसि । वधूनां हि विशिष्टामे त्वं धर्म परमा सती ७१ २७

हे याज्ञसेनि ! तू मुझे सब पुत्रबधुओं में प्रिय है। क्योंकि तू धर्मवती, तथा सती धर्मनिष्ठ है इस लिये, मेरे से इच्छित वर मांग ? मैं उसे पूर्ण करूंगा। द्रौपदी ने कहा—

सर्व धर्मानुगो श्रीमान दासोऽस्तु युधिष्ठिर:७१२८

यदि वर देते हो तो, यह दो कि सब धर्मों का पालन करने वाला श्री युधिष्ठिर "अदास" हो धृतराष्ट्र ने द्रौपदी के कथनानुसार धर्मपुत्र को, सर्व दासकृत बन्धनों से स्वतंत्र कर कहा पुत्रि ! मैं प्रसन्न हूं दूसरा वर मांग।

सरथौ सधनुष्कौ च भीमसेन धनंजयौ।
यमौच वरये राजन्नदासान् स्ववशानहम् ॥

भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, रथों और शस्त्रों सहित दासता से मुक्त हो कर स्वतंत्र हों, यह मैं दूसरा वर मांगती हूं, फिर धृतराष्ट्र ने तीसरे वर के लिये कहा तब द्रौपदी ने यह कह कर, लोभ धर्म का नाश कर देता है, और स्त्री को दो वर से अधिक मांगने का अधिकार भी नहीं, इस लिये मैं और कुछ नहीं चाहती। इस प्रकार द्रौपदी की बुद्धिमत्ता से पांडव आज़ाद हो गये, और लोग द्रौपदी के उदार विचारों की प्रशंसा करने लग लये।

पर उपदेश कुशल वहुतेरे, जे आचरहि ते नर न घनेरे।

धृतराष्ट्र का शान्त उपदेश } द्रौपदी द्वारा स्वतन्त्रता लाभ करने पर, कर्ण आदि ने, कुछ कठोर शब्द कहे, उन का, जब भीम आदि उत्तर देने लगे, तो धर्मराज ने शान्ति करा दी। स्वतंत्र हो कर युधिष्ठिर, अपनी शान्त प्रकृति के अनुसार राजा धृतराष्ट्र के निकट जाकर बोले—महाराज ! हमें क्या आज्ञा है और कोई आप शिक्षा भी दीजिये। पांडुपुत्र की, सभ्यता से, लज्जित, और अपने पुत्र के नीच कर्मों को स्मरण

कर कुल रक्षा, पुत्र रक्षा, के विचार से धृतराष्ट्र बोला—

अजातशत्रो ! आप का कल्याण हो, आप बाधा रहित, स्वस्ति सहित, सर्व संपत्संपन्न हो कर "स्वराज्य" का अनुशासन कीजिये । तथा हे धर्मज्ञ ! महाप्राज्ञ ! वृद्धोपासक ! मुझ बूढे को कुछ बातें याद रखना ये तेरे लिये पथ्य तथा श्रेयस्कारी होंगी । भारत ! जहां बुद्धि होती है, वहां शान्ति होती है । इस लिये तुमने सदा शान्ति का आश्रय लेना । धर्मपुत्र ! उत्तम पुरुष वैरभाव को, कभी प्रदीप्त नहीं करते, दूसरों के अवगुणों को भूल, गुणों का ग्रहण करते हैं । सत्पुरुष परोपकार का चिन्तन करते हैं, बदला लेने का नहीं। साधु लोग कहे हुए, या न कहे हुए, अहितकर, रूखे, कड़े, शब्दों को याद नहीं करते, हमारे कुल में तुम मर्यादा पुरुष हो, इसलिए मैं आशा करता हूं, तुम में वा तुम्हारे होते किसी दूसरे में, अनार्यों के से व्यवहार न होंगे। पुत्र ! तुमने दुर्योधन के कहे, कठोर शब्दों को, हृदय में न रखना । तुमने उसे भूल कर, अपनी मा गांधारी, और मुझ अन्धे बूढे, पिता की ओर, हर समय ध्यान रखना, कुरुकुलनन्दन ! कुरुवंश की प्रतिष्ठा के लिये, तेरे पास आकर, मैं ये दुःख रो रहा हूं । बेटा ! ये द्यूत कर्म मैंने ही बलाबल देखने को कराये जानना । किसी पर रोष न करना, कुरुश्रेष्ठ ! क्या मैं समझूं, कि आप से धर्मराज के धर्मभाव महाविद्वान, बुद्धिमान्, वेदवित् विदुर से मंत्री अर्जुन के धैर्य, भीम के पराक्रम, के भरोसे कुरुवंश अकुतोभय रहेगा । इस प्रकार उपदेश ले धर्मपुत्र द्रौपदी तथा सर्व परिवार सहित इन्द्रप्रस्थ चले गये ।

॥ अनुद्यूत खंड ८ ॥

युधिष्ठिर का वृद्ध आज्ञा पालन ।

(१) धर्मान्न प्रमदितव्यम् (२) सत्यान्न प्रमदितव्यम् (३) देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्॥ व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्तिमायाविषुये न मायिनः ॥ भावविकृते किराते१।३०

पापियों की पाप बुद्धि } धर्मराज को सपरिवार, इन्द्रप्रस्थ गये, अभी थोड़ा ही, समय हुआ होगा कि दुर्योधन आदि चांडाल चौंकड़ी ने, धृतराष्ट्र को फिर जूआ कराने के लिये, प्रेर लिया । अब कि हारने वाले के लिये १२ वर्ष वनवास, १३वां वर्ष अज्ञात वास रखा । मन में यह सोचा कि जूये में, हम ही जीतेंगे, और उनके १३ वर्ष राष्ट्र से अलग होने से राष्ट्रवासियों को. अपने अनुकूल कर, पांडवों को सदा के लिये, हीन सत्व वा दीन कर देंगे. इस जुये के विचार के लिये सभा बुलाई गई, सभा में द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाल्हीक, कृपाचार्य, विदुर, अश्वत्थामा, युयुत्सु, भूरिश्रवा, भीष्मपितामह और महारथी विकर्ण, ने कहा यदि देश का, कुरुवंश का, भला चाहते हो, तो जूआ मत खिलाओ ! और माता गांधारी ने, तो यहां तक कहा, कि मुझे विश्वास है दुर्मति दुर्योधन, अब तक जीता है, इस कुल का नाश करावेगा, मुझ से भूल

हुई, जो मैंने इसे पाला पोसा। निदान इतने विद्वानों के विरोध पर भी, जूआ खिलाना स्वीकार हो गया। यदि कोई साधारण नीति का, मनुष्य होता तो, छलियों के छल से अपने को बचा कर इन्हें दुष्टता का फल, किसी उपायान्तर से चखा देता। पर यहां तो "असाधु साधुनाजयेत्" की नीति को मानने वाले धर्माचरण, सत्यानुष्ठान, देव पितृ आज्ञा पालन, को प्राण पण से भी न जाने देने का व्रत लिये हुए, धर्मराज थे। जो एक बार कह देते थे, उसे लौटाना जानते ही न थे।

धर्मराज का धर्मातिरेक } ठगों, वा जुआरियों के, दूत, प्रतिकामी ने, इन्द्रप्रस्थ में जाकर जब कहा—धर्मराज! सभा लगी हुई है, आप के पिता धृतराष्ट्र, जूआ खेलने के लिये बुला रहे हैं, शीघ्र चलिये। तब धर्मराज ने कहा—

अक्षद्यूते समाऽह्वानं नियोगात्स्थविरस्य च।
जानन्नपि क्षयकरं नातिक्रमितुमुत्सहे॥

सभा० ७६। ४

मैं यह जानता हूं, जूआ राजा के लिये, व्यसन, संसार के लिये क्षयकारी कर्म है, पर मुझे (क्षत्रिय को) बुलाया गया है, और वह भी मेरे बड़ों के नाम से, इस लिये, इस से हटना मेरे लिये व्रत तोड़ना है, अतः मैं जरूर जाऊंगा। निदान परिवार सहित राजा वहां चले गये। उन के द्यूत सभा में, पहुंचते ही राजसभासद् बड़े दुःख, शोक, वा क्रोध से, जूए के अनिष्ट फलों को सोचते २ कहने लगे धिक्कार है, इनके भाईयों

को, जो विद्वान् होने पर भी इसे इस पाप से नहीं रोकते, अपने आप कभी विचारता है, कभी नहीं भी विचारता, निश्चय है, कुरुवंशियों का अब नाश, निकट आ गया है, जो ये वेद विरुद्ध कर्म में बार २ रूचि किये हुए हैं।

छलियों से सहायता का फल } प्रायः यह देखा जाता है, छलियों से सच बोलने वाले, सर्वस्व देकर, दुःख, निरादर उठाया करते हैं। वही यहां हुआ, अर्थात् जब शकुनि ने, कहा धर्मराज! आइये! दाव लगाइये। और दाव में १२ वर्ष का वनवास, १३ वें का अज्ञातवास, बता दिया। तब पाप समझते हुए, और लोगों की आवाजों से लज्जित हुए, तथा पिछले द्यूत के कड़े फलों को स्मरण करते हुए भी, धर्मराज ने, बड़ों की आज्ञा और "आहूतो न निवर्तेय मिति मे व्रतमाहितम्" के क्षात्रधर्म को निबाहने के लिये युधिष्ठिर ने, कहा शकुनि! अवश्य द्यूत खेलूंगा क्योंकि मुझ जैसा धर्मपालक, कभी पीछे नहीं हट सकता। यह कहते ही पासे फैंके गये और कुछ पलों में आर्यावर्त का सर्व श्रेष्ठ, दिग्विजयी, सार्वभौम, चक्रवर्ती राजा १२ वर्ष के लिये वनवासी बन गया। और १३ वां वर्ष अपराधियों की भान्ति, छुप कर बिताना भी, स्वीकार किया गया। पर सब कुछ देकर भी, इस उदार महापुरुष ने, अपना धर्म नष्ट न होने दिया। आज के अदूरदर्शी लोग चाहे महाराज युधिष्ठिर को निर्बुद्धि, भीरू, नीतिशून्य, राजा पद के अयोग्य कहें, चाहे जुआरी, तथा अधर्म को धर्म समझ कर, वीरभाइयों शीलवती भावजों, सत्यवती, वीर जननी कुन्ती को संकट नद में डुबो देने वाला विरहानल में पुत्रों और उन की माताओं को

जलाने वाला, शत्रुओं के आनन्द बढ़ाने वाला, देव पशु ही कहें पर विवेकदृष्टि से, देखने से पता लगेगा, कि धर्मराज ने उसी मार्ग को ग्रहण किया था, जिसे सूर्यवंशी प्रातःस्मरणीय महाराज दिलीप ने, अपने को सिंह के आगे रख, गौ को बचा कर किया था। या राजा दशरथ ने पुत्र त्याग, प्राण छोड़, सारी प्रजा को १४ वर्ष के लिये, भूपति हीन कर, परं सत्य की पालना से, किया था। वा सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने राज्य पाट त्याग रानी बेच, स्वयं दास बन कर जो व्यापार किया वही धर्मराज ने किया। वा भीष्म आदि ने, राज्याधिकारी होने पर भी, किंकरवत् सारा जीवन, बिताने में, जो लाभ लिया वही धर्मराज ने लिया।

सच पूछिये तो, जो धर्म संसार की, रक्षा करने, लोक मर्यादा बांधने में, प्रसिद्ध है, वह इन्हीं महापुरुषों, तपस्वियों का पाला हुआ, बहुविध कठिनाइयों से पार हो कर सम्भाला हुआ ही है, न कि वह नित्य धर्म जो स्नान, संध्या, भोजन, शयन और बन्धुसहभोज के साथ ही सस्ता सा पूर्ण हो जाता है। हमारा तो अब भी विश्वास है, कि जिस तरह राजपूताने की महाराणियें यदि आग में से न गुजरतीं, तो भारत की ज्योति बन उजाला न कर पातीं, इसी तरह यदि धर्मराज, इस छलियें से सत्य व्यवहार कर, परिवार सहित अनन्त कष्ट न पाते, तो संसार में धर्मपुत्र, वा धर्मराज ही न कहलाते। और न कोई अब तक व्रत का गौरव समझ सकता।

दुःशासन प्रलाप पर भीम प्रतिज्ञा } जब पांडव बनवासी वेश में, द्रौपदी और धौम्य सहित वन को चलने लगे, तब दुःशासन ने कहा—

नरकं पातिता पार्था दीर्घकाल मनन्तकम् ।
सुखाच्च हीना राज्याच्च विनष्टाः शाश्वतीःसमाः

स० ७७ । ५

कुन्तीपुत्र लम्बे काल के लिये, सुख और राज्य से हीन कर के, ' नरक* ' में डाल दिये हैं । और द्रौपदी को भी कुछर

---

*नरक स्वर्ग के विषय में विद्वानों के भिन्न २ मत हैं—
कई नरक स्वर्ग को, लोकान्तरगत कई दुःख सुख भोग, मानते हैं । हम महाभारत, तथा पुराणों से, इस का कुछ परिचय देते हैं ।

१—भा० आदि० ९० । ४ और ७ में " इमं भौमं नरकं ते पतन्ति " लिख कर, भूमि में होने वाला, नरक ही माना है।

२—इसी तरह आ० ६३ । १० के " गन्तारो नरकं वयम् " की टीका में नीलकंठ जी " नरकं भूलोकम् " लिख कर, पृथ्वी पर ही, नरक मानते हैं ।

३—आदि ९० । १९ " पुण्यां योनिं पुण्यकृतो व्रजन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति " की टीका में नील कंठ जी " श्वयोनिं वा सूकरयोनिं चांडाल योनिं पापयोनिं भजन्ति ।

अपशब्द कहे, जिन्हें सुन भीमने, उन का युक्त उत्तर देकर, प्रतिज्ञा की कि दुष्ट ! यदि तेरी छाती को फोड़ कर तेरा खून

ब्राह्मण योनिं वा क्षत्रिय योनिं वेति पुण्यां योनिं भजन्ति ।
इस से भी, नरक भूलोक में ही सिद्ध है । क्योंकि ये योनि भूलोक की ही हैं ।

४—भागवत में, माता देवहूतिके, पूछने पर, कपिलदेव जी कहते हैं " अत्रैव नरकः स्वर्गः इति मातः प्रचक्षते " माता जी, विद्वान् लोग, नरक स्वर्ग, यहां ही बताते हैं । संसार में हम इसी अनुसार कहते, सुनते, हैं। सुखी को स्वर्गी जीव । दुःखी को नारकी जीव ।

५—ला० लाजपत राय जी विष्णुपुराण के अ० २६ के प्रमाण से, आसाम के राजा, नरक को मार कर १६ हजार स्त्रियों को छुड़ाना कृष्ण चरित में लिखते हैं । इस से भी मालूम होता है, उस समय, उस देश को, नरक कहते थे ।

६—कुमार संभव में, देवर्षि नारद ने, तप के लिये जा रही पार्वती को, कहा है—" पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः " तेरे पिता हिमाचल के प्रदेश, देवभूमि (स्वर्ग खंड) है फिर तप किस लिये तपती हो ।

७—नरकासुर नरक का राजा इसी भूमि पर था, जिस पर, श्रीकृष्ण ने, चढ़ाई की थी, देखो माघ काव्य सर्ग २ श्लो० ३६ " त्वयि भौमं गते जेतु मरौत्सीत्स पुरीमिमाम् "

८—जब जूये में हार कर, पांडव वन को चल पड़े, तब दुःशासन ने, इन के दुःखों को लक्ष्य में रख कर, यही

न पीऊं, तो मुझे सुकृतियों के लोक प्राप्त न हों। और यह भी कहा—

अहं दुर्योधनं हन्ता, कर्णहंता धनञ्जयः।
शकुनिं चाक्षकितवं सहदेवो हनिष्यति।७७।२६।

मैं दुर्योधन को, अर्जुन कर्ण को, सहदेव जुआरी शकुनि को, मारेगा। इस के पीछे अर्जुन नकुल सहदेव ने भी इसी की पुष्टि की।

शान्ति रूप की रून यात्रा } बार २ कष्टों से पीड़ित, होने पर भी, धर्मपुत्र की शान्ति, धैर्य, क्षमा, कभी चलायमान नहीं हुई। बिना अपराध लंबे काल तक, दुःख में भेजने वाली सभा को, प्रणाम करने के लिये शान्तमय होकर, युधिष्ठिर धृतराष्ट्र, बाह्लीक, सोमदत्त, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, द्रोण, विदुर से, बोले श्रीमानो! आज्ञा दीजिये, और प्रणाम लीजिये, मैं सपरिवार १३ वर्ष के लिये स्वदेश और स्वराज्य से बाहर होता हूं। इस शान्तरूप के साम्हने और तो लज्जित हो नीचे मुख कर चुप रहे विदुर जी बोले—

कहा था कि कुन्तिपुत्र लंबे नरक में डाल दिये हैं। देखो सभापर्व अ० ७७ श्लो० ४ नरकं पातिताः पार्था दीर्घकाल मनन्तकम्॥

१—स्वर्गपति, इन्द्र को, अर्जुन का मिलने जाना, वहां से अस्त्रादि प्राप्त करना, इन्द्र का, कवच कुंडल मांगने, कर्ण पास आना, स्वर्ग को भूभाग ही बताता है। देखो वनपर्व।

विदुर का आशीर्वाद } धर्मपुत्र ! दो बातें मैं कहता हूं १ देवी कुन्ती वृद्धा और दुःखों से कृश होरही है, इसे वन में न ले जाइये। ये मेरे घर में रहेगी । २ धर्मपुत्र ! तुम धर्मज्ञ हो और अधर्म से जीते गये हो। अधर्म से जीते हुये धर्मात्मा लोग, कभी दुःखी न होंगे । ईश्वर आप को नीरोग रक्खे, आप का मार्ग कल्याणमय हो । देवों के गुण तुम में, आवें। तुम सबने आपस में मिल कर, एक दूसरे के प्रियकारी, वा प्रियवादी, बन कर रहना। ताकि तुम में कोई भेद न डाल सके, पुत्र ! अपनों का मिलाप, परम समाधि जानो, इस में, इन्द्र भी जय नहीं पा सकता। तथा हरएक धार्मिक कृत्य में पुरोहित धौम्य की आज्ञा पालन, करना, पुरोहित वालों का, लोक, परलोक, कभी नष्ट नहीं होता। विदुर की बातों को, पिता की आज्ञा के समान, सादर स्वीकार कर, धर्मराज जब माता कुन्ती से विदाई मांगने लगे, तब कुन्ती ने कहा--पुत्र शास्त्रों में लिखा है, धर्म करने वालों, को कोई दुःख नहीं होता, और मैं जानती हूं, तुमने विशेष कर धर्मचारिणी, यज्ञसेन की पुत्रीने, कभी पाप मन से भी, नहीं देखा, फिर किस के पाप से, महा दुःख में डाले गये हो। बेटा जिन नीति और धर्म के आचार्य भीष्म, द्रोण, कृप के होते, किसी पर अन्याय नहीं हो सकता था फिर इन के होते द्रौपदी देवी पर, यह आपत् कैसे ? बेटा कहीं मेरे पापों से तुम दुःख नहीं भोग रहे। अस्तु बेटा जाओ वह सत्यधर्म तुम्हारी, सदा रक्षा करे, जिसे तुम सब से अधिक प्यार कर रहे हो। इस वार्तालाप के पीछे सब को प्रणाम कर पांडव वन को चले गये।

संजयादि का संकेत } पांडवों के चले जाने, पर धृतराष्ट्र ने, पूछा अब क्या होगा? तब संजय, विदुर, नारद आदि सब ने यही कहा राजन्! ये सब लक्षण, कुरुवंश के, नाश के हैं। भाइयों को, छल से, अधिकारच्युत करना, सुशील पतिव्रता देवी द्रौपदी, का सभा में निरपराध खैंचना, वा अपमानित करना, ऐसे कर्म हैं, कि जिन से यह जाना जाता है "कुरुवंश का नाश काल आगया"।

न कालोदंडमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित्।
कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थ दर्शनम् ॥८१।११

क्योंकि काल, कभी डंडे से तो, शिर नहीं फोड़ता, बुद्धि बिगाड़ देना, ही काल का प्रहार है। इन समाचारों को सुन, कुरु स्त्रियों में, शोक, पुरुषों में मोह, भृत्यों में आलस्य, पैदा हो गया। और घरों में वेदाध्ययन, अग्निहोत्रादि, लोप हो गया, पाप संताप से सारा वंश तपने लग गया। दुर्योधनादि भयभीत हो कर, गुरु द्रोणाचार्य से यह कहने लग गये—पाहिब्रह्मन्! त्रायस्व ब्रह्मन्!

———

चतुर्थ-भाग

(प्रजा स्नेह प्रकाशन खंड १)

हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रावसाना स्वरवो न आगुः । उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवाः देवाना मपियन्ति पाथः ॥

ऋ० ३।८।९.

प्रजा का अनुगमन } पांडव, निश्चय के अनुसार, शस्त्र धारण कर, 'वर्धमानपुर' को लक्ष्य रख कर उत्तर दिशा में चल पड़े। और जब प्रजा को, पता लगा, तो प्रजा के सब ही वर्णों के मुखिया, धर्मराज के गुणों को स्मरण करते हुए, साथ ही बसने के लिये चल पड़े।

साधुगच्छामहे सर्वे यत्र गच्छन्तिपांडवाः ।
सानुक्रोशाः महात्मानो विजितेन्द्रियशत्रवः ।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च धर्माचार परायणाः ॥

वन० १।१८

कुराजाधिष्ठिते राज्ये न विनश्येम सर्वशः ।१।२२

और पांडवों को मिल कर, बोले महात्मन ! जहां आप जाते हो, हमें भी साथ ले चलें, क्योंकि दुर्योधन जैसे, दुष्ट

राजा के राज्य में रह कर, हम सर्वनाश नहीं करना चाहते। शास्त्रानुसार संगति का प्रभाव, पुरुष की ऊंच, नीच, गति पर पड़ता है, अतः वास वहां करना ही, सुखदायी है, जहां विद्या योनि तथा कर्म, शुद्ध हो, आप में सब गुण हैं, अतः दया कर के हम सब की, रक्षा कर, सच्चे प्रजा रक्षक बनिये।

युधिष्ठिर का उत्तर } देशबन्धुओ ! मैं अपने को भाग्यवान् समझता हूं, जो ब्राह्मणादि चारों वर्ण मुझ निर्गुण, साधारण जन को, मान देते हैं। जो साथ चलने के लिये मैं अपने भाइयों की भी इच्छा से निवेदन करता हूं, कि आप हस्तिनापुर में, लौट कर राजा भीष्मपितामह, महात्मा विदुर, मेरी पूजनीया माता कुन्ती की, सेवा करो। वे मेरी ओर से आप का कर्तव्य है। स्नेह वश. वन में घूम कर, क्या करोगे ? जब पुरवासी राजाज्ञा से लौट गये, तब युधिष्ठिर, जान्हवी के किनारे 'प्रमाण' नामी बड़े बट वृक्ष के नीचे संध्या समय जा ठहरे। वहां, उन्हें कुछ वेदपाठी, और अग्निहोत्री, ब्राह्मण मिले, जिन्हों ने इन से मिल खूब वेद गायन किया। और ब्रह्मगीतों से दुःखरात्रि को आनन्द रात्रिवत् विताया।

प्रातः होते ही, जिस धर्मराज के, हां लाखों नर, नारी, भोजन किया करते थे, उन में आज कतिपय, वेदज्ञ, ब्राह्मणों के भरण, पोषण, का सामर्थ्य नहीं, रहा, इसी ध्यान से शोकातुर हो, ब्राह्मणों से निवेदन किया, भूदेवो ! हम आज राज्य, ऐश्वर्य, धन, धान्य से, हीन हैं, फल, मूल, से अपना निर्वाह करेंगे, आप को हमारे संग कष्ट होगा, अतः निज

आश्रमों को लौट जाइये । ब्राह्मणों ने कहा, हम भोजनार्थ तुम्हारे पीछे नहीं आए, किन्तु गुणों के कारण, आप के संगी बने हैं, जो आप का हाल सो हमारा भी होगा । शोक आदि न कीजिये । फिर धर्मराज ने अपनी दशा को दीन शब्दों में, प्रगट कर कहा ब्राह्मणों में मेरी भी आरम्भ से भक्ति है, पर इस अवस्था में मेरे साथ रह कर, ब्राह्मण कष्ट पायेंगे, और ब्राह्मणों के दुःखी होने से, देश वासियों को पाप लगता है । इस लिए कह रहा हूं ।

धनेच्छा लोभवश नहीं } धर्मराज के, शब्दों को, शोक, लोभ युक्त, समझ, अध्यात्मरत शौनक, ने शोक की व्यर्थता पर, एक उपदेश दिया । इसके उत्तर में धर्मराज बोले-

नार्थोपभोगलिप्सार्थ मियमर्थेप्सुता मम ।
भरणार्थंतु विप्राणां ब्रह्मन् कांक्षेनलोभतः ॥
वन० २ । ५१

ब्रह्मन् ! धनभोग की इच्छा से, मैं धन की लालसा नहीं कर रहा, किन्तु विद्वान् विप्रों की पूजा, के लिये उपयुक्त साधन की कथा कह रहा हूं । मुझे धनादि का लोभ नहीं है । इस के पीछे धौम्यपुरोहित की प्रेरणा से, सूर्य द्वारा एक पाक स्थाली तथा कुछ पाक विद्या के तत्त्व प्राप्त हुए, जिन से धर्मराज नित्य समय पर, अतिथि पूजन करते ।

मोघ मन्नंविन्दते अप्रचेता सत्यं ब्रवीमि-
वध इत स तस्य । नार्यमणं पुष्याति नोसखायं,

केवलाघो भवति केवलादी ॥ ऋ० १०।११७।६॥

धर्मराज का वनभोग } वन में जाकर भी धर्म, संध्या, अग्निहोत्र, वेदपाठ, वृद्ध पूजन, के पीछे अतिथियों बन्धुओं को जिमा कर पीछे स्वयं भोजन खाते, और सब के पीछे देवी द्रौपदी भोजन करती। आप की भोजन शाला की, उन दिनों यह प्रसिद्धि हो गई थी, कि जब तक द्रौपदी भोजन न करले, तब तक भोजन अटूट रहता है। कुछ भी हो, यह सब इन के सत्संकल्पों और सुप्रबंध का फल था। इसी दिन वट वृक्ष से, उठ कर धर्मराज 'काम्यक' वन में जा बसे।

विदुर का निर्वाचन } युधिष्ठिर के, चले जाने पर, जनता की सर्व विश्रुत बाणी से, घबराये धृतराष्ट्र ने विदुरजी से पूछा महात्मन्! आप नीति में. शुक्राचार्य के सम हैं और कौरव पांडवों के हितैषी, राज्य के शुभचिन्तक हो, कोई उपाय बताओ जिस से बिगड़ा हुआ, लोकमत, ठीक हो जाय, तथा समय पर, पांडव दुर्योधन, आदि का उन्मूलन न कर सकें। विदुर ने कहा राजन्! यह संसार धर्ममूल है, विशेष कर राजा तो, सर्वथा ही धर्म पर ठहरता है। राजा का सब से प्रधान धर्म, यह है, कि वह किसी का स्वत्व न दबाये, और पुत्रवत् सब को पालें। देशनाशकों को दंड वा निर्वासन दे। अतः आप शकुनि को दंड दें, पांडुपुत्रों और द्रौपदी से क्षमा लें, दुर्योधन को सदा के लिये त्याग दें, तब कुरुवंश का कल्याण है। ऐसा न करोगे तो पछताना पड़ेगा।

धृतराष्ट्र इस सत्य; पर कड़े सत्य को, सुन कर आग बबूलः हो गया, उसने पुत्र स्नेह में न केवल पुत्र के अपगुणों को न देखा, किन्तु मोहान्धता से गुणागार, सर्व हितैषी, धर्मवित् भाई में शत्रु पक्ष का दुराग्रह, अनुभव किया। अतः दूसरे दिन उठ कर, महात्मा विदुर को राज्यपद से, अलग कर कह दिया आप की राजा को जरूरत नहीं, आप चाहे जहां रहें। अथवा पांडुपुत्रों के पास चले जायें। यह सुन विदुर जी रथ जोड़ पांडुपुत्रों के पास चले गये।

विदुर की वापसी } विदुर ने, जाकर धर्मराज को, देखा वह भाइयों, तथा ब्राह्मणों, से घिरे हुए आनन्दमग्न हैं। विदुरजी को देख एक बार तो युधिष्ठिर के मन में आया, कि कहीं हमारे शस्त्र जीतने के लिये, दुबारा जूआ खेलने को बुलाने, विदुर जी आये हैं। पर विदुर जी के, सब वृत्तान्त, बताने पर, उनका सन्देह मिट गया। इधर विदुरजी के चले जाने पर, पीछे लोकमत बिगड़ता, और पांडव बल बढ़ता, देख धृतराष्ट्र ने संजय को भेजा, कि जाओ विदुरजी को कहो धृतराष्ट्र तुम्हारे वियोग में बेचैन है। उसे रात को भी नींद नहीं आती, यदि तुम शीघ्र न लौटे तो वह जान दे देगा, शीघ्र चलकर उसे जीवनदान दो। संजय ने, जब काम्यक बन, में जा पांडवराज का यथायोग्य सत्कार कर विदुरजी से सब कुछ कह दिया। जिसे सुन युधिष्ठिर की, सम्मति से, विदुर जी, हस्तिनापुर लौट आये। और धृतराष्ट्र का स्नेह प्रलाप सुन कर, तथा उस के क्षमा मांगने, पर बोले। राजन्! मैंने सब कुछ पहले ही, क्षमा किया हुआ है। आप मेरे बड़े

भाई, गुरु समान हैं । मुझे आप के और पांडु के पुत्र समान हैं, केवल वे चक्र में पड़ जाने से, दीन, हीन, हो रहे हैं, इस लिये उन का ध्यान कुछ, विशेष रखना होता है ।

धर्मपुत्र की सत्यता शत्रु दृष्टि में } विदुर के आने पर, दुर्योधन को, सन्देह हुआ कि कहीं विदुरजी की प्रेरणा से राजा पांडवों को फिर न बुला ले । और यही सन्देह इसने शकुनि से, जब प्रगट किया, तब वह बड़े विश्वास से बोला—भरत श्रेष्ठ !

सत्यवाक्ये स्थिताः सर्वे पांडवाभर्तर्षभ ।
पितुस्तेवचनं तात न ग्रहीष्यन्ति कर्हिचित् ॥

वन० ७ । ८

पांडु पुत्र, प्रतिज्ञा करके गये हैं, वे सारे सत्यव्रती हैं, इसलिये, तेरे पिता के वचन को कभी भी ग्रहण नहीं करेंगे ॥

व्यास और मैत्रेय का उपदेश } धर्मराज का १३ वर्ष का देश निर्वासन, सुन कर, ऋषि व्यास, धृतराष्ट्र के, पास गये, और उनसे इस परिवर्तन का कारण पूछा । तब धृतराष्ट्र ने कहा भगवन् ! इस कर्म को न मैंने, न भीष्म, द्रोण, विदुरादि ने, और न गान्धारी ने पसन्द किया, किन्तु यह सारा अनर्थ, दुर्योधन का है, जिस के विरुद्ध, मैं पुत्रस्नेह वश कुछ नहीं करता, आप इसे शिक्षा दें । इतने में वहां पांडवों का वृत्त सुन कर, महर्षि मैत्रेय, आगये । इन्हें देख व्यासजी ने कहा, यह दुर्योधन को उपदेश देंगे । और उन्होंने सब को हितकर,

उपदेश, देते हुए, पांडवों का बल भी, बतलाया, तथा अपने २ अधिकार पर, रहने की शिक्षा की।

यादवों का वन गमन } पांडवों की, इस विपद् कहानी, को सुन कर, यादव, श्रीकृष्ण को अगारी करके, तथा द्रौपदी भ्राता धृष्टद्युम्न, करेणुमती का भाई धृष्टकेतु, आदि सब सम्बन्धी, समवेदना प्रगट करने वा यथार्थ दशा जानने के लिये, काम्यक वन में गये। कुशल क्षेम के अनन्तर सबने दुःख सुख के भाव कहे, देवी द्रौपदी ने कृष्ण जी को दिल खोल कर अपना अपमान दुर्योधन आदि का भीम को विषदान, आदि से आरब्ध दुर्व्यवहार पांडवों का शस्त्रधारी, क्षत्रिय होने पर भी, समय २ पर कायरों की तरह, सब कुछ अपनी आंखों में देख कर भी सहना, करुणा भरे शब्दों में सुनाया।

धर्मराज ने श्रीकृष्ण से द्यूत समय, हस्तिनापुर न पहुंचने का कारण पूछा ! इस बात का उचित शब्दों में स्नेहयुक्त भावों पूर्ण उत्तर देते हुये, श्रीकृष्ण ने, द्यूत पर न आसकने का सबब सौभका युद्ध बताया, जिस के कारण इन्हें बहुत देर, द्वारका से बाहर सपरिवार युद्ध करना पड़ा था, और जिस युद्ध की विजय पर सौभ को मार शाल्व को जीत, सहस्रों स्त्रियों के बन्धन काट, सज्जनों में आनन्द होगया था। अन्त में कहा—

तदेतत्कारणं राजन् यदहं नागसाह्वयं।
नागमं परवीरघ्न ! नहि जीवेत्सुयोधनः॥

मय्यागतेऽथवावीर द्यूतं न भविता तथा।
अद्याहं किं करिष्यामि भिन्नसेतुरिवोदकम् ॥

वन० २२। ४२,४३

धर्मराज ! मेरे हस्तिनापुर, न आने का यह कारण है। मुझे विश्वास है, यदि मैं वहां होता तो जूआ ही न होता, यदि जूआ होता, तो दुर्योधन जीता न रहता। अस्तु जो हुआ सो हुआ, अब आप कहें मैं क्या करूं ?। इत्यादि विचार विनमय के पीछे कुछ आशायें बन्धा कर, द्रौपदी को 'स्वराज्य' का विश्वास दिला श्रीकृष्ण परिवार सहित, द्वारका चले आये।

संबन्धियों का समागम — यादवों की भान्ति, पांडवों के सब सम्बन्धियों ने, सत्कार सांत्वना के पीछे उनके दुःख में सहानुभूति प्रगट कर समय पर 'स्वराज्य' प्राप्त करने का विश्वास दिलाया। तथा धर्मराज की आज्ञा ले, सब घरों को चले गये।

द्वैत वन प्रवेश — इधर धर्मराज ने अर्जुन आदि की सम्मति से काम्यक वन छोड़, फल, फूल, कन्द, मूल, से पूर्ण जल स्रोत, पर्वत कन्दराओं से अनुकूल, वेदपाठी, अग्निहोत्री, ब्राह्मणों के साथ श्री धौम्य पुरोहित की आज्ञा से द्वैतवन में प्रवेश किया। और पुण्य सर के निकट आश्रम बना काल बिताने लगे। और धर्मराज एक भारी कदम्ब वृक्ष के नीचे रहने लगे।

(ब्राह्मण संसृष्ट शासन खंड २)

ना ब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्मवर्धते ॥ मनु०

दाल्भ्य का उपदेश } अद्वैत वन, में परस्पर पूजित हो कर, जब पांडव रहने लगे, तब महा तेजस्वी धौम्य उन की पुत्रवत्, देखभाल करते । एकवार, वहां ऋषि मार्कंडेय, ने धर्मराज को रामचन्द्र, आदि का चरित सुना, सन्तोष, वा आश्वासन दिया। एक दिन, प्रातःकाल, सन्ध्या, अग्निहोत्र के पीछे ब्राह्मण उच्च स्वर से ऋग्, यजु, साम, आदि का हृदयंगम, ब्रह्मघोष कर रहे थे, दूसरी ओर, क्षत्रियवर वैदिक नित्य कर्म से निश्चिन्त हो, अभ्यास के लिये ज्याघोष (धनुषटंकार) कर रहे थे । उस समय ब्रह्म कर्म, तथा क्षात्रकर्म, का मिला रूप अति सुन्दर, प्रतीत हो रहा था । धर्मराज, तब भी ऋषि मंडल में बैठे, सन्ध्या और होम, में लगे हुए थे। तब धर्मराज के, इर्द गिर्द भृगु, अंगिरस, वसिष्ट, कश्यप, अगस्त्य, अत्रि, गोत्री और अन्यान्य, जगत् श्रेष्ट ब्राह्मण बैठे थे।

तब ऋषि दाल्भ्य ने कहा—

ब्रह्म क्षत्रेण संसृष्टं क्षत्रं च ब्रह्मणासह ।
उदीर्णौ दहतः शत्रून्, वनानी वाग्नि मारुतौ ॥

वन० २६ । १०

ना ब्राह्मणं भूमिरियं सभूतिर्वर्णं द्वितीयंभजते

चिराय । समुद्रनेमिं नमते तु तस्मै यं ब्राह्मणः शास्ति नयैर्विनीतम् ॥ २६ । १४

अलब्ध लाभाय, च लब्धबृद्धये, यथार्हतीर्थे प्रतिपादनाय । यशास्विनं वेदाविदं विपश्चितं, वहुश्रुतं, ब्राह्मणमेव वासय ॥ १९ ॥

राजन् ! ब्राह्मण, तथा क्षात्रधर्म, मिल कर, शीघ्र शत्रु को दग्ध कर देते हैं, जैसे अनिल और अनल, मिल कर, बन को दग्ध कर देते हैं । बिना ब्राह्मण की सहायता के किसी क्षत्रिय को, राज्य श्री चिरकाल के लिये नहीं वरती । और जिस राजा को, ब्राह्मण, नीति अनुसार, शासन करता है, उस के लिये समुद्र पर्यन्त भूमि झुक जाती है । अतः भूपाल ! अलब्ध लाभ और लब्ध की वृद्धि के लिये, वा यथेच्छित शक्ति प्राप्त करने के लिये, विद्वान् बहुश्रुत वेदवेत्ता, यशवान्, ब्राह्मणों का सहवास किया कर । इत्यादि उपदेश लेकर, राजा ने ब्राह्मणों की स्तुति की, और उनसे मिल कर, संसार के पालन की प्रतिज्ञा की । तथा नारद, जामदग्न्य, पृथुश्रवा, इन्द्रद्युम्न भालुकि, कृतचेता, सहस्रपात्, कर्णश्रवा, मुंज, लवण, काश्यप हारीत, स्थूलकर्ण, अग्निवेश्य, शौनक, कृतवाक्, सुवाक्, बृहदश्व, विभावसु, ऊर्ध्वरेता, वृषामित्र, सुहोत्र और होत्रवाहन, आदि ब्राह्मणों ने अजातशत्रु के गुणों का वर्णन कर उस का पूजन किया । और उत्तम कथा वा कर्मों में काल गुजारने लगे ॥

* द्रौपदी भीम युधिष्ठिर का संवाद *

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव सचस्वा नः स्वस्तये । ऋ० १ । १ । ९

अग्निं मन्ये पितर मग्निमापि मग्नि भ्रातरं सद मित्सखायम् । ऋ० १० । ७ । ३

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे॥

यजु० अ० ४० । २

युधिष्ठिर का धर्मेश्वर विश्वास } वन दुःखों से दुखित द्रौपदी ने, एक दिन धर्मराज से कहा–राजन् ! आप कहा करते हैं, कि संसार को सुख दुःख देने वाला विधाता है ? सो मालूम देता है, कि विधाता जो सुख दुःख देना है, माता पिता की भान्ति स्नेह से नहीं, और ना ही न्यायकारी विभाजक की तरह, पुण्य पाप देख कर, देता है, किन्तु साधारण जन वत्, डंडे के डर से बलवानों को सुख, भलेमानसों को दुःख, देता रहता है और कुछ नहीं, एवमेव धर्म अधर्म भी, पुरुष को सुखी दुःखी नहीं करते, किन्तु वे भी जहां बलवानों के भय से, सुख । वहां दुःख, दीन दरिद्र शान्त स्वभावों को दे जाते हैं । यदि मेरा विचार ठीक न होता, तो दुर्योधन आदि पापी, नास्तिक, सुखी, और आप सर्व प्रकार के सुख, वा सुखसाधनों

से, लंबे काल के लिये वंचित न होते ? यह सुन धर्मराज बोले देवी ! आर्य हो कर, धर्म ईश्वर पर, शंका मत कर, क्योंकि जो धर्म पर शंका करता है, उस का कोई प्रायश्चित्त नहीं । देवि ! धर्म स्वर्ग जाने के लिये विमान भवसागर तरने के लिये दृढ़ नौका है । यदि, धर्म निष्फल हो तो, इतने २ बड़े ऋषि मुनि, राजे, महाराजे, क्यों सेवन करें । धर्म के बिना, यह सारा जगत्, पाप समुद्र में, क्षण में डूब-जाय । धर्म का करना पुरुष का कर्तव्य है, यह समझ धर्म करना चाहिये ।

नाहं कर्मफलान्वेषी राजपुत्रि ! चराम्युत ।
ददामि देयमित्येव यजे यष्टव्य मित्युत ॥

वन० ३१ । २

धर्मएव मनः कृष्णे ! स्वभावाच्चैव मेधृतम् ।
धर्म वाणिज्य को हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम्।५

राजपुत्रि ! मैं फल इच्छा से नहीं, किन्तु कर्तव्य समझ दान, यजन, आदि कर्म करता हूं । धर्म को सौदे के, ढंग पर करना, धर्मवादियों में, निन्दित कर्म, कहा है । कृष्णे ! धाता पर, भी आक्षेप मत कर, किन्तु उसे प्रणाम कर, उस की वेद शिक्षा का, पाठ कर, क्योंकि उस अमृत पुरुष की, कृपा से मर्त्य स्वभाव मनुज भी "अमृत" हो जाता है । इस उत्तर को सुन, कृष्णा तो, शुद्ध संकल्प से, ईश्वर, धर्म, की महिमा करने लग गई । पर भीमसेन बोल उठे—उन्हों ने कहा—राजन् ! यदि कर्तव्य पर ही, आप की धारणा है, तो आप

अपने वर्ण धर्म, (क्षात्र कर्म) को ग्रहण कीजिये। भिक्षा मागना वैश्य और शूद्रों की भान्ति, लुक छुप कर दिनों को बिताना, किस कर्तव्य सूत्र का वचन है ? हम ने तो सुना है, क्षत्रिय का उदार धर्म, बल, पौरुष, दिखाना है। इस लिए कायरता छोड़, मेरी और अर्जुन की सहायता से, शत्रु वन को भस्म कर, तेज प्रकाश कर। और यह संबन्धियों को मित्रों को और अपने को कष्ट देने वाला, कर्म कहां का धर्म है ? यह तो हमारे ख्याल में कुधर्म (पाप) ही कहलाने के योग्य है इसे छोड़ो ?

भीम के उत्तर में धर्मराज ने कहा-वीर ! तुम सत्य कहते हो, यह वनवास क्षत्रियोचित नहीं, पर हम यहां एक सत्य प्रतिज्ञा, रूपो धर्म पालने के, लिये आए हैं। अब इस धर्म को त्याग, पृथ्वी का शासन करना, आर्यत्व के, विरुद्ध ही, नहीं, किन्तु मरने से भी बुरा है।

आर्यस्य मन्ये मरणाद्गरीयो यद्धर्ममुत्क्रम्य महीं प्रशासेत ॥ ३४ । १५

और मेरी प्रतिज्ञा तो धर्म, और सत्य के पालन संबन्ध में यह है।

मम प्रतिज्ञांच निवोध सत्यां वृणे धर्म ममृता ज्जीविताच्च। राज्यं च पुत्रांश्च यशोधनं च सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति ॥ ३४।२२

जीवन, और अमृत, से भी मैं तो, सत्य धर्म को अही-

दूंगा, क्योंकि मैं समझता हूं, राज्य, पुत्र, यश, धन, आदि सर्व पदार्थ, सत्य की अंश कला को भी प्राप्त नहीं हो सकते। इत्यादि विचारों से सब को, सन्तुष्ट करते २ जब कुछ काल व्यतीत हो गया। तब धर्मराज ने यह कह कर, कि एक स्थान का, अधिक वास, लाभ कर नहीं होता, सारे बन्धु मंडल को

काम्यक वन गमन

"काम्यक बन" में चलने की आज्ञा दी। जब वहां आये, अभी कुछ महीने व्यतीत हुए तो दुर्योधनादि का लोभी भाव, और भीम आदि का, पराक्रमी स्वभाव, विचार धर्मराज ने भावी युद्ध के लिये, अस्त्र प्राप्ति की चिन्ता की।

* इद्रलोक गमन खंड ३ *

अर्जुन विद्यार्थी बनते हैं

चिन्तन करते २ प्रतीत हुआ ब्राह्म, ऐन्द्र, आदि अस्त्र, इस समय, इन्द्रलोक में इन्द्र के पास हैं। अतः उनको लेने और सीखने के लिये, वीर अर्जुन को तय्यार किया, और वे गुरु धौम्यादि की सम्मति, ले तय्यार हो गये। चलते समय जब वे कृष्णा के पास गये, उन्हों ने इन की वीरता की प्रशंसा, कर माता कुन्ती की आशाओं, और अपने दुःखप्रद जीवन का स्मरण करा, इन्हें सच्ची वीरांगनाओं की भान्ति लंबे काल के लिये स्वस्तिवाचन के साथ विदा किया, स्मरण रहे, इस यात्रा (अस्त्र प्राप्ति) में अर्जुन को पांच वर्ष लगे थे।

द्रौपदी कृत स्वस्तिवाचन ।

सविता पश्चात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरा-त्तात्सविताऽधरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥ ऋ० १० ३६ । १४ ।

बलवद्भिर्विरुद्धं न कार्यमेतत्त्वयानघ ।
प्रयाह्यविघ्नेनैवाशु विजयाय महाबल ॥३७।३२
स्वस्तितेऽस्त्वां तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भारत ।
दिव्येभ्यश्चैव भूतेभ्यो ये चान्ये परिपंथिनः ॥

पाशुपत अस्त्र प्राप्ति } काम्यक वन से चल हिमालय, गन्धमादन पार कर अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर पहुंचे, वहां मुनिवेश में इन्द्र से भेंट कर, जब अपना अभिप्राय अर्जुन ने प्रगट किया, तब इन्द्र ने पशुपति को प्रसन्न कर, अस्त्र प्राप्ति की सलाह दी, जिसे प्रसन्न कर अर्जुन ने 'ब्रह्मशिर' नामक अस्त्र प्राप्त किया । वहां से इन्हें इन्द्र सारथी रथ में बैठा* इन्द्रपुरी में ले गये । इन्द्रपुरी में पहुंचते ही इन्हें देवराज

---

* इन्द्र के संबन्ध में इस समय, कई प्रकार के विचार हैं, इस लिये इन्द्र और उस के परिवार का, कुछ परिचय दे देते

ने अपने सिंहासन पर बैठा अभिनन्दन किया। और कुछ दिनों आनन्द मंगल के उत्सव दिखाये।

शिक्षा प्रबन्ध } कुछ दिनों बाद, अर्जुन की इच्छानुसार, अस्त्रविद्या सिखाने का प्रबन्ध कर दिया।

इस शिक्षालय में, अर्जुनने अन्य अस्त्रों के साथ प्रसिद्ध "वज्रास्त्र"

हैं, ताकि भारतीय इन्द्र का, लोगों को पता लग जाय। १ इन्द्र अर्जुन का वीर्यदाता पिता, कर्ण का शक्तिदाता, कवच कुंडल ग्रहीता, अमरावती का (भारतीय) राजा था। २ गन्धर्व उस के मित्र, और अप्सरा अनुकूल प्रजा थी। देखो वन० ४३।२८–३१। ३ अंगिरस गोत्री, बृहस्पति आचार्य, उस के कुलगुरु थे। ४ शची उन की पट्टरानी, जयन्त पुत्र, तथा मातलि सारथी था, जो कि रथ चलाने में, निषधदेश के राजा, नल और शालिहोत्र के समान प्रसिद्ध था। वन ७१।२६ तथा ४२। २॥ ५ इन्द्र की अप्सरा उर्वशी, पुरुरवा की स्त्री, तथा पुरुवंश की जननी थी, इन्द्रलोक की यात्रा में, अर्जुन ने उसे इसी लिये ध्यानपूर्वक देखा और मातृसम कहा था। वन० ४६। ४०—४६॥ ६ रावण के पुत्र, मेघनाद का नाम 'इन्द्रजित्' भी था, जो इसे इन्द्र के जीतने पर मिला था॥ ७ सरस्वती के पार तप कर रहे दधीच ऋषि से असुर वध के लिये, वज्र बनाने को, अस्थि मांग कर उन से जो अस्त्र बना, वह असुर वध कारी इन्द्र का प्रसिद्ध वज्रास्त्र था। वन० १००। इन घटनाओं से सिद्ध है इन्द्र लोक, भूलोक का ही भाग है।

भी सम्पादन किया। इस के बाद इन्द्र की आज्ञा से, अर्जुन ने, चित्रसेन गंधर्व से नृत्य, गान, तथा वाद्य, कला को भी सीखा। विद्या सीख लेने पर, स्वर्ग सुख भोगते हुये भी अर्जुन को वन वासी भाइयों की याद, दुर्योधन, दुःशासन का दुष्ट व्यवहार

२–देवजाति । इन्द्र, देवराज भी, कहलाते हैं, इस लिये देव विषयक भी कुछ लिखते हैं ।

१—देव दिव्य गुणों के कारण, ज्ञानी तथा विद्वान् पुरुषों का नाम है, भिन्न जाति नहीं । जैसा निरुक्त में लिखा है देवो दानात् दीपनात् द्योतनात्० अर्थात् दाता, प्रकाशक और उपदेशक होने से, विद्वान् देव होते हैं । शतपथ ब्राह्मणों में भी लिखा है " विद्वांसो हि देवाः " ॥

२—भारत के प्रसिद्ध ऋषि नारद 'देवर्षि' थे एवं बृहस्पति आचार्य 'देवगुरु' थे जो भारतीय ब्राह्मणों के, गोत्र कृत हुये हैं । जिनके गोत्रीय विप्र, अब भी विद्यमान हैं ।

३—इन की कन्याओं का रूप, वेश, मनुष्य जाति के इतर भेद, गन्धर्व, दानव, पन्नग, नाग, यक्ष आदि के समान ही होता था । देखो म० भा० आदि० ६७ । ३१, ३२ ।

४ इसी लिये बहुत लोग गुरू वा राजा को, स्त्रियें पति को 'देव' तथा पति पत्नी को वा अन्य सद्गुण वती स्त्री को 'देवी' कह कर बुलाते हैं । वा० रामायण में श्री रामचन्द्र जी ने सीता को देवी कहा है । दे० अयोध्याकांड वन प्रस्थान समये ।

स्मरण आता रहता, जिस के कारण महाराज इन्द्र से लौटने को कई बार आज्ञा मांगी।

अर्जुन का इन्द्रिय संयम } परं इन्द्र, उस के इन्द्रिय संयम की, परीक्षा लिये बिना उसे भेजना न चाहते थे।

अतः एक दिन इन्द्रसभा में अप्सराओं का नृत्य, गीत कराया, तब इन्द्र ने देखा अर्जुन की दृष्टि, उर्वशी की ओर विशेष रूप से बिंध गई है। इस लिये इन्द्र ने चित्रसेन को एकान्त में सूचना दी, कि अर्जुन को इस "स्वर्गफल" का आस्वाद देने के लिये उस के पास उर्वशी को भेजना चाहिये। यह संदेश, जब उर्वशी को मिला, तब उसने उत्कंठा भरे मन से माना, क्योंकि वह अर्जुन को देख पहले ही मोहित हो रही थी। निदान चान्दनी रात के मोहक समय में दिव्यालंकार युत नन्दन वन

५—देवों को सस्कृत में अमर (अमर्त्य) और मनुष्यों को मर्त्य (मरने वाला) कहा है और वेदों में अनेक स्थलों पर १ अमृतास्याम २ अमृतंक्राधि ३ अतिमृत्युमेति मर्त्यो अमृताभवति। लिख कर अमरत्व अवस्थान्तर का ही नाम प्रगट किया है।

६—संस्कृत नाटकों में अब भी ब्राह्मणों को 'भूदेव' और राजा को 'नरदेव' कहा जाता है।

७—कालकेय आदि दानव, महेन्द्र, आदिदेव, एक ही लोक में रहने वाले थे। आपस में लड़ा भी करते थे। देखो वन १०० । श्लोक ३४। इत्यादि प्रमाणों तथा कार्यों से सिद्ध है कि देव यहां के ही निवासी थे।

के उत्तमोत्तम गन्ध भरे पुष्पों से केश संस्कार कर चिकनी, बारीक, शुभ्र साढी पहन कर, तथा आसमानी रंग की बेलदार चमकती हुई शाल ओढ़, वह अर्जुन के महल में गई। इतनी रात को सजसजा कर, अपने शयनागार में आई, उर्वशी को देख कुन्तीपुत्र, बहुत ही शरमाये। तथापि उस के आते ही पूज्य भाव से, उसका स्वागत किया। उसने काम विह्वल कान्ता की भान्ति, अपना मनोर्थ पूर्ण करने की, लजाते २ विनती की। परन्तु अर्जुन ने अपने मन में चंचलता को घुसने न देकर, वीर आर्यों की भान्ति, दिलेरी से कहा—

यथा कुन्ती च माद्री च शचीचेह ममानघे।
तथा च वंशजननीत्वं हि मेद्य गरीयसी॥
गच्छमूर्ध्ना प्रपन्नोस्मि पादौते वरवर्णिनि।
त्वं हि मे मातृवत्पूज्या रक्ष्योहं पुत्रवत्त्वया॥

वन० ४६।४६

पुण्ये! जिस प्रकार मुझे माता कुन्ती, माद्री और शची हैं वैसे तू मेरी पूज्य वंश जननी है, मैं तुम्हें शिर से पाद वन्दन करता हूं, क्योंकि तू मातृवत् पूज्य है, तू भी मुझे पुत्र समझ रक्षा कर। यह सुन कांपती २ उर्वशी ने, कुछ मदनबाण, चला कर, उस आर्यवीर को डिगाना, और अपना संकल्प पूरा करना चाहा, पर धन्य है, वह आर्यवीर जिसने, पापको निकट तक न आने देकर, स्वर्गोत्तम सुखलाभ किया। दूसरे दिन यह वृत्तान्त सुन इन्द्र बड़े प्रसन्न हुये और अर्जुन को आशीर्वाद दी

वनकी जीवन पद्धति

अर्जुन के अस्त्र प्राप्ति निमित्त, चले जाने पर धर्मराज काम्यक वन में रहें। इन के साथ परिवार के बिना अनेक ब्राह्मण तथा इतर जन भी रहते थे। सब के भोजन का प्रबंध, बिना खेती किये वन्य, कन्द, मूल, फल शाक पत्र आदि से तथा क्षत्रियोचित आखेट द्वारा, वन के मेध्य पशुओं से जो अपने पुरुषार्थ तथा शस्त्रादि से होता था। भोजन ऋतु अनुकूल, दोषगुण, विचार कर बनाया जाता था। जिस से न कोई कृश, दुर्बल, व्याधिग्रस्त तथा भूखा दिखाई पड़ता था। भोजन लेने जैसे दक्षिण दिशा में भीम, पश्चिम में नकुल, उत्तर में सहदेव, जाते ठीक वैसे ही आलस्य त्याग, कर्तव्य समझ, अपना हिस्सा लेने धनुर्धारी होकर पूर्व दिशा में धर्मराज स्वयं जाते। पकाने, परोसने का, सारा काम, देवी द्रौपदी करती। धर्मराज भाईयों को पुत्रसम, क्षत्रिय बन्धुओं को सहोदर भाई सम, ब्राह्मणों को देव सम प्रसन्न रखते।

तथा तेषां वसतां काम्यके वै,
विहीनानामर्जुने नोत्सुकानाम्।
पञ्चैव वर्षाणि तथा व्यतीयु-
रधीयतां जपतां जुह्वतां च ॥ वन० १०।१२

धर्मराज की तपश्चर्या

सारांश अर्जुन के बिना पढ़ते, ईश्वर जप करते, और होम करते, हुये धर्मराज के पांच वर्ष वहां व्यतीत होगये। इन पांच वर्षों में सब भाइयों ने

विद्या, ज्ञान, तप, बहुत बढ़ाया, काम्यक वन से, भ्रमण इच्छा से धर्मराज कुछ दृढ़ साथियों को संग ले और लोगों को यथा स्थान लौटा, लोमश, आदि ऋषियों के संकेत से नैमिषारण्य, गयशिर पवन, अगस्त्याश्रम, भृगुतीर्थ, हेमकूट पर्वत, वैतरणी नदी, महेन्द्राचल, पयोष्णी नदी, गन्धमादन, बद्रिकाश्रम आदि स्थानों को देखते, तथा तपश्चर्या में काल बिताते २ प्रभास तीर्थ में पहुंचे । और यहां आकर, और भी उग्र तप तपने लगे । धर्मराज तो बारह २ दिन जल, और वायु भक्षण करके ही गुजार देते । इस तप वा यात्रा से धर्मराज आदि के, शरीर बहुत कृश, होगये । तथा इस उग्रतपस्या की चर्चा भारत के समुद्रान्त कोणों तक फैल गई । अब तक बन में आये लगभग ११ वर्ष होगये ।

---

* यादव मिलन खंड ४ *

यादवों का आगमन } प्रभास में, धर्मराज का, आगमन, तथा तपोनुष्ठान, सुन यादव श्रेष्ठ १ बलराम २ श्रीकृष्ण ३ सात्यकि आदि, धर्मराज, और द्रौपदी को, देखने आये । आकर कुशल क्षेम, तथा योग्य पूजा सत्कार, के पीछे धर्मराज के, चारों ओर सब बैठ गये । पहले पांडवों के भूख प्यास, मार्ग गमन, से कृश शरीरों को देख कर सहानुभूति से, नेत्रों में, जल, भर लाये । और पश्चात् पांडवों के सुकर्मों का चिन्तन कर, चिकने केशवान्, तेजवान्, गौर वर्ण वाले,

* हलायुध बलदेव, कमलनेत्र श्रीकृष्ण को बोले—

बलदेव का भाषण } कृष्ण ! प्रतीत होता है, धर्म अभ्युदय, और अधर्म ह्रास के, लिये नहीं रहा जो तपस्वी रूप में, महात्मा युधिष्ठिर बन में दुःख पा रहे हैं, और पापी दुर्योधन, राज्यानन्द भोग रहा है । इस परिवतन को देख कर, साधारण अल्पबुद्धि नर तो यह कहने लग गये हैं, कि अधर्म धर्म से श्रेष्ठ है । तथा प्रजा इस हेरा फेरी को देख, दुःख अनुभव करती हुई, सोच रही है, कि हम क्या करें क्या न करें । लोक विस्मित हैं कि सत्य व्रती धैर्यवान् दाता राज्य और सामान्य सुख से भ्रष्ट है, अधर्मी बढ़ रहा है । लोक यह भी कर रहे हैं, कि कुरुवृद्ध भीष्म, राज्य संचालक विप्रवर, द्रोण, कृपाचार्य, तथा राजा धृतराष्ट्र, किस प्रकार सुख से, रहते होंगे, इन राजपुत्रों को देश निकाला देकर । नेत्र हीन, पर ज्ञानचक्षु, धृतराष्ट्र पितृलोक में, पितरों को क्या उत्तर देगा,

---

* हलायुध, वा हली शब्दों से कई लोग समझते हैं, कि बलदेव हलवाह, जाट, से थे क्रोध समय हल से ही लड़ा करते थे, इसलिये उनके ये नाम हैं। पर वास्तव में यह बात नहीं, किन्तु उनके रथ की ध्वजा हल के चिन्ह की थी जैसे श्रीकृष्ण की गरुड़ की । तथा उन के आयुध का नाम हल था, जैसा कि कृष्ण का सुदर्शन चक्र, इस लिये उनका नाम हली प्रसिद्ध हुआ, जैसे कृष्ण का चक्री । खेती के लिये हल चलाना वैश्य कर्म है, क्षात्र नहीं, इस लिये उन से विशेष रूप से नहीं जुड़ सकता ।

जब उसे पूछा गया कि राज्याधिकारी, धर्मात्मा और विद्वान् पांडुपुत्रों को क्यों देश से निकाला था । दुर्योधन के भाग्य, देखो जिस भीम के शब्द को सुन कर शत्रुओं का मल मूत्र बह जाय वह भीम, भूख, प्यास, नित्य के पथ गमन, और तपश्चर्या से, बनवास में समय बिता रहा है । जो पांडुपुत्र, किसी समय, दश दिशाओं को जीत कर यज्ञ करते थे, आज बनवासी बन रहे हैं । कृष्ण ! वीर राजा यज्ञसेन की पुत्री, वीर भाइयों (धृष्टद्युम्न शिखंडी आदि) की बहिन वीर स्वभावा सती याज्ञसेनी सुखों के योग्य होने पर भी चिर से वन दुःख भोग रही है ।

सात्यकि का उत्तररूप भाषण

बलदेव का भाषण, सुन कृष्ण अभी कुछ कह न सके थे, कि बीच में से वीर बुद्धि कर्मवीर, सात्यकि बोला—बलदेव जी ! यह समय, दुःख गाथा गायन करने का नहीं है । धर्म का इस प्रकार, जो अनादर वा व्यत्यय हो रहा है, उसके उत्तर में जो कुछ करना चाहिये, वह हम लोगों को कर डालना चाहिये, चाहे धर्मराज मुंह से कुछ न कहें, पर आप क्या नहीं जानते ? इस समय हमें कि कर्तव्य है ? क्या देखते नहीं हो, ग़ैर मकान के, मालक, बने हुए हैं । और मकान वाले, मकान से बाहर खड़े हैं, शीत, आतप, की पीड़ायें सहार रहे हैं । मेरी राय में, राम, कृष्ण, प्रद्युम्न, और मेरे साथ साम्ब, अपने भाइयों सहित, वन में क्यों काल नष्ट कर रहे हो ? चलो आज ही वीर यादवों की सेना रणाभिमुख कर धृतराष्ट्र के पुत्रों, तथा तन्मित्रों से, पृथ्वी को खाली कर दो । बलदेव जी ! क्या यह सच नहीं कि यदि, आप अकेले

खड़े हो जाय, तो भी पृथ्वी को रिपु विहीन करदें। शार्ङ्गधन्वा चाहे घर ही बैठा रहे। क्या यह सच नहीं, आप के भतीजे, प्रद्युम्न के बाण वर्षण को कृप, द्रोण, विकर्ण, कर्ण के तप्त हृदय क्षेत्र, इन्द्र धारा को कुक्षेत्र के समान देर तक नहीं सह सकेंगे। सांब से दुःशासन बच न सकेगा। कृष्ण के, सशस्त्र हो, रण में पांचजन्य, शंख को बजा देने से, कोई भीष्म आदि है, जो जीता घर लौट जाय। इसी प्रकार अनिरुद्ध की बहु कृति भी आप से छुपी नहीं है। अतः शूरसेन का यश, मित्रों का, काम दोनों हो जायेंगे देर न कीजिये।

दिक्कत का हल।

ततोऽभिमन्युः पृथिवीं प्रशास्तु, यावद्व्रतं धर्म भृतां वरिष्ठः। युधिष्ठिरः पारयते महात्मा, द्यूते यथोक्तं कुरुसत्तमेन॥ वन० १२०। २१

वक्तृता को जारी रखते, हुए सात्यकि ने; कहा "आप कहेंगे राज्य लेकर क्या करेंगे, जब कि सत्य व्रत पालक युधिष्ठिर, अपने निश्चय अनुसार १३ वर्ष से पूर्व स्वराज्य लेने को तय्यार नहीं।" इस का उत्तर मैं देता हूं, या इस दिक्कत का हल मैं बताता हूं। वह यह है, कि महात्मा युधिष्ठिर, व्रत पूरा करते रहें, पृथिवी का शासन तब तक उन्हीं का कुलधर, सुभद्रानन्दन, अभिमन्यु कर लेगें?

आर्यवीरो! विचार करो, अपने बड़ों के व्रत निबाहने के स्वभाव को, जिन्हें स्वराज्य जैसी; स्वर्गीय वस्तु, यावत्

जैसी वीर जाति भी बदल नहीं सकती । आज हम भी व्रत रखते हैं, जो हर महीने, हर साल, नया ही जीवन व्रत होता है। तिस पर आश्चर्य यह कि प्रतिष्ठा और फल चाहते हैं, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर का सा।

श्री कृष्ण के विचार।

असंशयं माधव ! सत्यमेत दुगृह्णीमते वाक्य मदीनसत्व ! स्वाभ्यां भुजाभ्या मजितांतुभूमिं-नेच्छेत्कुरूणा मृषभः कथंचित् ॥

न ह्येष कामान्नभयान्नलोभाद्युधिष्ठिरो जातु जह्यात्स्वधर्मम् । भीमार्जुनौ चातिरथौ यमौ च तथैव कृष्णा द्रुपदात्मजेयम् ।१२०।२३।२४

सात्यकि और यादवों को, सम्बोधन कर श्रीकृष्ण ने कहा माधव ! आप का कहना सत्य है, और हम स्वीकार भी करते हैं, पर धर्मराज क्षत्रिय हैं, यह शायद इस राज्य को तो क्या सारी पृथिवी को भी, जो अपनी दोनों भुजाओं से जीती नहीं गई, लेना किसी भी समय स्वीकार न करेंगे । क्योंकि इन्हों ने धर्म शास्त्रों में पढ़ रखा है कि "बाहुवीर्य जितं यत्त तद्गृह्णाति क्षत्रियः" युधिष्ठिर न काम से, न भय से, न लोभ से, अपने धर्म को नहीं त्यागेंगे । और इन्हीं की भान्ति भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, तथा द्रुपदराज की पुत्री

कृष्णा भी क्षात्रधर्म को नहीं त्यागेगी ! धन्य है भारत सन्तान तेरा धर्म विश्वास !

युधिष्ठिर का समर्थन ।

नेदं चित्रं माधव! यद्ब्रवीषि सत्यंतुमे रक्ष्यतमं न राज्यम् ॥ १२० । २७

कृष्णजी के विचार सुन कर, धर्मराज ने कहा, माधव ! आपने जो कहा है संदिग्ध नहीं, सत्य ही है, मेरे जीवन का उद्देश्य "सत्य" की रक्षा है, राज्य प्राप्ति वा राज्य रक्षा नहीं ! और सात्यकि को सम्बोधन कर, कहा * माधव ! मुझे कृष्ण भली भान्ति जानते हैं, मैं उन्हें जानता हूं । इस लिये अभी आप शान्त रहें, जब श्रीकृष्ण युद्ध का उचित काल समझेंगे; तब आप लोगों ने पुरुषार्थ करना, फिर आप और केशव, सुयोधन को जीत लेंगे । अब आप अपने २ घरों को पधारिये ! आपने हमें, देख भाल लिया, हमने आप लोगों के दर्शनों का लाभ ले लिया । ईश्वर करे हम धर्म की रक्षा करते हुए एक दूसरे को सुखावस्था में फिर शीघ्र मिलें । यह कह प्रणाम, आशीर्वाद, के पीछे यादव घरों को चले गये ।

---

* माधव कृष्ण का भी नाम है और सात्यकि का भी कदाचित् सब श्रीमान् पुरुषों का नाम ही माधव होता हो ।

(कैलास खंड ५)

॥ यक्ष वास दर्शन, दुर्गम पर्वत लंघन ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषाविधेम ऋ० १० । १२ । १४

लोमश ऋषि की प्रेरणा से, धर्मराज मैनाक, स्वेतगिरि को लंघ कर, हिमालय, के उन स्थानों में पहुंचे जहां शीत रक्षा के लिये रात दिन अग्नि प्रचंड रहता है । वहां से काल शैल, और मंदराचल में प्रवेश किया । जहां के पर्वत इतने दुर्गम हैं कि दुर्बल देह, चञ्चल मन पुरुष यात्रा नहीं कर सकते ।

यत्रमाणिवरो यक्षः कुवेरश्चैव यक्षराद् ।
कुवेर सचिवाश्चान्ये रौद्रा मैत्राश्च राक्षसाः ॥
असंख्येयास्तुकौन्तेय यक्षराक्षसाकिन्नराः ।
नागाः सुपर्णाः गन्धर्वा कुवेर सदनं प्राति ॥
१३९ । ५ । १२

जहां यक्षराज कुवेर, यक्षों सहित, असंख्यात यक्ष, राक्षस किन्नर, किंपुरुष, नाग, सुपर्ण, गंधर्व, बसते हैं । यहां तक धर्मराज के साथ बहुत अनुयायी थे, और कुछ २ सवारी का भी प्रबन्ध था ।

गन्धमादन की बढ़ाई } धर्मराज जैसे, तप वा व्रत पालन में, सब से अधिक क्षम थे, इसी प्रकार पर्वत यात्रा के कष्ट सहने में भी, एक अद्भुत क्षमता रखते थे। गन्धमादन में कन्दरायें बहुत थीं, यहां कोई रथ, अश्व, आदि चल न सकते थे। पुरुष भी इन कन्दरायों को * अग्नि ज्वाला के सहारे, वा तपोबल से, पार कर सकते थे। इस लिये, यहां पर आकर भीम से धर्मराज ने, कहा भाई रास्ता कठिन है, आप लोगों को विशेष कर कृष्णा को बहुत कष्ट होगा, अतः आप कृष्णा सहदेव, पुरोहित धौम्य के पास यहां ही ठहरें, और सब अनुचरों को भी यहां ही रोक लें। मैं और नकुल ऋषि लोमश के साथ आगे जायंगे। यह सुन भीम ने कहा राजन्! अनुयायीगण चाहे रुक जाय, हम तो आप के साथ ही चलेंगे। और कृष्णा तो आप को अकेला छोड़, सर्वथा हटना नहीं चाहती। और देव! मार्ग कष्टों का आप विचार न करें, हम सब पैदल चलेंगे। विषम मार्ग पर, मैं कृष्णा तथा माद्रीनन्दनों को उठा लिया करूंगा। धर्मराज ने, कहा यदि ऐसा कर सकते हो, तो चलो ईश्वर तुम्हारे बल, उत्साह, सहनशीलता को, बढ़ावें। यह सुन हंसती हुई द्रौपदी बोली—

---

* काश्मीर यात्रा में हमने अमरनाथ के मार्ग पर अब भी कन्दराओं को दिन में अग्निज्वाला से दिखाते या पार होते देखा है। ऐसे ठंडे स्थान भी देखे हैं जहां रात दिन आग जलानी होती है।

ततः कृष्णाऽब्रवीद्वाक्यं प्रहसन्ती मनोरमा ।
गमिष्यामि न सन्तापः कार्यो मां प्रति भारत ॥

वन० १४० । २१

भारत ! मेरी चिन्ता न करें, मैं स्वयं चलूंगी, क्योंकि मैं भी क्षत्रिय पुत्री हुं । इस के बाद गन्धमादन के ऊंचे, नीचे, शिखरों पर, पहुंचे जहां नाना विध पुष्प फल हर समय खिले रहते हैं, नाना सर, सरिता, निर्झर स्रोत दुग्ध सम स्वेत जल बहाते हैं । जहां वायु, वर्षा की अति अधिकाई रहती है । जहां की तुषार वा अन्धकार से पुरुष न मार्ग देख सकता है, न संगी को, देख सकता है । जहां कोई किसी की सहायता भी नहीं कर सकता ।

अग्निहोत्र का सामान ।

धर्मराजश्च धौम्यश्च निलिल्या ते महावने ।
अग्निहोत्राण्युपादाय सहदेवस्तु पर्वते ॥

१४३ । १५

पाठक ! देखिये धर्मराज का वैदिक कर्मों के साथ प्रेम, ऐसे विषम स्थानों पर भी जहां अपने आप को सम्भालना कठिन है, वहां भी अग्निहोत्र का सामान साथ रखे हुए हैं, अर्थात् जीवन रहे या न रहे, पर वेदोक्त कर्म (देवयाग) का त्याग न हो ।

आवात वाहिभेषजं, विवात वाहि यद्रपः ।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूतईयसे ॥
त्रायन्तामिहदेवा स्त्रायन्तां मरुतांगणः ।
त्रायन्तां विश्वाभूतानि यथाय मरपा असत् ॥
आपइद्वा उ भेषजीरापो अमीवचतानीः ।
आपः सर्वस्यभेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥

(ऋ० १० । १३७ । ३; ५; ६)

द्रौपदी की जल चिकित्सा — गन्धमादन की, विषम घाटियों में, एक दिन चलते २ द्रौपदी थक कर, मूर्छित हो गिर पड़ी, तथा धौम्य प्रभृति वेदवित् ब्राह्मणों ने, वेदमंत्रों के, पाठ तथा तदनुसारिणी क्रिया (औषध दानादि) करनी आरम्भ की । और पांडवों ने शीतल, जल के समंत्र छीटों और शीत वायु दान, तथा हस्त स्पर्श विधान से, चेतनता लाने का शास्त्रोक्त यत्न किया ।

रक्षोघ्नांश्च तथामंत्रान् जेपुश्चक्रुश्चते क्रियाः ।
पठ्यमानेषुमंत्रेषु शान्त्यर्थं परमार्षिभिः ॥
स्पृश्यमाना करैः शीतैः पांडवैश्च मुहुर्मुहुः ।
सेव्यमाना च शीतेन जलमिश्रेण वायुना ॥
पाञ्चाली सुखमासाद्य लेभे चेतः शनैः शनैः ॥

वन० १४४ । १६-१८

जिस से द्रौपदी, शनैः २ सुख लाभ करती हुई, चेतनता को प्राप्त हो गई। तथा सब संतुष्ट हो गये।

घटोत्कच की वीरता } मार्ग की कठिनता, देख, धर्मराज की आज्ञा से, भीम ने अपना पुत्र, राक्षसी गर्भ जात, वीर घटोत्कच बुलाया। और पूजन सत्कार के पीछे उस ने पूछा क्या आज्ञा है ? तब धर्मराज बोले—

धर्मज्ञो बलवान् शूरः, सत्योराक्षसपुंगवः।
भक्तोऽस्मानौरसः पुत्रोभीम गृह्णातुमाचिरम्॥

१४५। १

धर्मज्ञ, बलवान् शूर सत्यवादी, अपना पुत्र, राक्षस पुंगव, शीघ्र ही अपनी सेवा करे।

राजा की इच्छा जान, भीम ने कहा बेटा तेरी माता (कृष्णा) थक रही है, इसे उठा कर चल ! सारांश यह इस राक्षसी प्रान्त के सफर में, घटोत्कच ने, माता को उठा कर, चलने में बड़ी वीरता दिखाई। इस की सहायता से पांडव, 'विन्दुसर' नामक शिव स्थान पर पहुंच गये।

युधिष्ठिर का काम राष्ट्र रक्षा था } यहां रहते, एक जटासुर नाम, असुर, ब्राह्मण का रूप धार. कुछ दिन धर्मराज के पास रहता रहा, बाद में भीम की, अनुपस्थिति में, धर्मप्रचार बन्द करने के लिए, धर्मराज को ही उठा कर ले चला। इस प्रकार लिये जाते, राक्षस को धर्मराज ने कहा हमारा भोजन आदि कर हमारे ही साथ यह कृतघ्नपन, करते तो कर ही लेते, पर तुम्हें क्या मालूम नहीं—

वयंराष्ट्रस्य गोप्तारो रक्षितारश्च राक्षस !
राष्ट्रस्यरक्ष्यमाणस्य कुतो भूति कुतः सुखम् ॥
१५७ । १८

हम राष्ट्र के रक्षक हैं, हमारे न रहने से, ऐश्वर्य, तथा सुख, सब का ही नष्ट हो जायगा । इस प्रकार राष्ट्र हित के नाम से अभ्यर्थना की । पर उधर से सहदेव ने इसे ललकार कर कहा धर्मराज को छोड़ दो, वरन सूर्यास्त के पहले मारे जाओगे ? जो ऐसा न कर सके तो हम अपने को "क्षत्रिय" कहना छोड़ देंगे । इतने में भीम ने आकर उस का शिर वृक्ष के पके फल की तरह उतार दिया । और धर्मराज आदि सब तप में लग गये ।

अर्जुन का आगमन } जटासुर को मार १७ दिन के पीछे धर्मराज हिमालय के, पृष्ट पर पहुंचे वहां से वृषपर्वा, ऋषि के पास ७ । ८ दिन रहे, वहां से चार दिन में माल्यवान पर्वत पर पहुंचे । और नानाविध वनौषधि, रसौषधि, देखते हुए, आर्ष्टिषेण ऋषि से उपदेश लेकर, यक्षराज कुवेर की अलकापुरी में आये, जहां वह उन सब को पुत्रवत पालता था । कुवेर से मैत्री बना, धर्मराज, धौम्य, तथा आर्ष्टिषेण सहित, अर्जुन की बाट देखने लगे, क्योंकि वह "पंच वर्षाणि वत्स्यामि विद्यार्थीतिपुरामयि" १५८ । ६ के अनुसार अपना समय पूरा बिता चुके थे । उधर इन्द्र अर्जुन को शस्त्र अस्त्र विद्या में, निपुण कर 'निवात कवच' युद्ध में, उसे भेज परीक्षा कर चुके थे । तथा शास्त्रादेश की दीक्षा, शस्त्र आदेश (कहां

चलाना कहां न चलाना कब २ चलाना कैसे चलाना) भी देख चुके थे, और अर्जुन के, शील पुरुषार्थ से, प्रसन्न हो कर इन्द्र ने १ तनुत्राण, २ अभेद्य कवच, ३ मुकुट, ४ सुवर्णमाला, ५ देवदत्त शंख, तथा ६ बहुत से दिव्य प्रकाशमय वस्त्र भूषण भी दिये। पीछे निश्चित समय रथ पर, बैठा कर, अर्जुन को गन्धमादन पर्वत पर भिजवा दिया जहां धर्मराज सपरिवार, उस के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके आने से तथा दिव्य अस्त्रों के, प्राप्त करने से सब पांडवों को बड़ा आनन्द हुआ। तथा धर्मराज की आज्ञा से सब शस्त्र अस्त्रों का सर्व साधारण को प्रयोग दिखाया, तथा एक दिन इन्द्रलोक के प्रसंग, वर्ताव दृश्य, सुन्दर २ स्थानादि का भी वर्णन किया। संगीत विद्या, गन्धर्व अप्सराओं की वाद्य कला, नृत्य कला का सविस्तर दृश्य सुनाया।

द्वैतवन प्रवेश — अब इन्हें वन में, आये ११ ग्यारह वर्ष पूरे हो गये थे, केवल १२ वां वर्ष शेष था, इसे द्वैतवन, में बिताना उपयोगी समझ सब लोग दुबारा द्वैत वन में आ गये।

काम्यक वन में श्रीकृष्ण आगमन — द्वैतवन में कुछ मास, बिता, वर्षा के अन्त में, पांडव फिर काम्यक वन में आ गये। वहां इनका आना सुन तथा अर्जुन की अस्त्र प्राप्ति सुन, श्रीकृष्ण स्त्री सहित, शैब्य, सुग्रीव, नामी प्रसिद्ध घोड़ों के रथ में बैठ, काम्यक वन में, पहुंचे। दूर से ही रथ की ध्वजा, घोड़ों की गति देख, एक नवयुवक ने कहा—वह अर्जुन सखा, महाबाहु

शौरि, (कृष्ण) आ रहा है । इतने में झट रथ से उतर कर, श्रीकृष्ण ने पुरोहित धौम्य, तथा धर्मराज को प्रणाम किया, द्रौपदी को सान्त्वन देकर, अर्जुन को बार २ आलिंगन किया, नकुल, सहदेव को आशीर्वाद दे उचित आसन पर बैठ गये। तथा * सत्यभामा सब से यथा योग्य सत्कृत हो, द्रौपदी को आलिंगन कर, अपने आसन पर बैठ गयी। तत्पश्चात् अर्जुन ने अपनी पत्नी सुभद्रा तथा अभिमन्यु का कुशल क्षेम प्रेमादर-पूर्वक पूछा।

यादवों के धनुर्विद्यालय का तथा पांडवपुत्रों की शिक्षा रुचि का दिग्दर्शन खंड ६

श्री कृष्ण का शिष्ट भाषण।

स पूजयित्वा मधुहायाथवत् पार्थं च कृष्णां च पुरोहितञ्च । उवाच राजानमभिप्रशंसन् युधिष्ठिरंस्तत्र सहोपविश्य ॥ १८३ । १५

पांडव ! धर्म, संसार में, राज्य लाभ से भी ऊंची वस्तु

---

* सत्यभामा कदाचित् रुक्मणी का ही दूसरा नाम होगा, क्योंकि समालोचकों ने श्रीकृष्ण की एक रुक्मणी ही स्त्री मानी है। देखो बंकिम चन्द्र कृत कृष्ण चरित्र हिन्दी। कलकत्ता

है, तभी तो राजा लोग भी धर्म प्राप्ति के लिये तप करते हैं। श्रीमन्! आपने सत्य तथा सरलता से, धर्म पालते २ लोक, परलोक, जीत लिये हैं। प्रथम आश्रम में आपने ब्रह्मचर्य, की रक्षा पूर्वक, सम्पूर्ण धनुर्वेद सीखा, फिर उसी के सहारे धन लाभ कर राजसूय, यज्ञ तक किये।

न ग्राम्यधर्मेषु रतिस्तवास्ति, कामान्नकिंचित्कुरुषे नरेन्द्र। न चार्थलोभात्प्रजहासिधर्म तस्मात्प्रभावादसि धर्मराजः॥ १८३। १८

आरम्भ से आप की ग्राम्यधर्म (भोगों) में प्रीति नहीं आप कोई काम, कामेच्छा से नहीं करते। न धनादि के लोभ से, धर्म ही त्यागते हैं, इसी लिये धर्म प्रभाव से, आप धर्मराज कहाते हैं। राजन! बड़े धन पदार्थों को लभ कर भी, आप की रुचि दान, सत्य, तप, श्रद्धा, बुद्धि, क्षमा, धैर्य, आदि धर्मांगों के पालन में हो रही है। आप की सहनशक्ति, अनन्त है, क्योंकि कुरु सभा में, द्रौपदी को विवश करके, अपमानित करने का जो दृश्य था, जिसे देख सारा जनसमुदाय, उस पापी की निन्दा कर रहा था, उसे शान्ति से सहना आप का ही काम है। इन लक्षणों से यही प्रतीत होता है, आप के सब काम शीघ्र पूर्ण होने वाले हैं, और आप जल्दी ही प्रजा का पालन करेंगे। धर्मराज! हम सब आप की सहायता में, कुरुवंशियों के निग्रह करने में तय्यार हैं, यदि श्रीमानों की प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी हो!

और बीच में धौम्य पुरोहित, युधिष्ठिर, भीम, नकुल,

सहदेव, तथा द्रौपदी को, कृतकार्य हो कर इन्द्रलोक से अर्जुन के सकुशल आने की बधाई दी । और खास तौर से द्रौपदी को कहा-कृष्णे ! बधाई हो जो तूं अर्जुन के आने से * समग्र हुई हो। (अर्थात् पति बिना नारी और पत्नी बिना नर अर्धांगी वा अर्धांग कहा) ।

कृष्णे ! तेरे पुत्र, धनुर्वेद में बड़ी अभिरुचि रखते हैं, तथा शीलवान् हो कर, वे सदाचारी मित्रों के साथ सदा शुभ आचरण ही करते हैं । तथा कृष्णे ! तेरे पुत्र कई बार, राज्य, राष्ट्र, तथा तेरे पिता और भाईयों के सादर बुला लेने पर भी अपने मामा, नाना, के घर में रहने की रुचि नहीं रखते, जितनी रुचि द्वारका में रह कर धनुर्वेद सीखने में रखते हैं । और झट वृष्णिपुर में आजाते हैं. देवि ! जिस तरह माता कुन्ती वा तू † उन में सदाचार डालने, का ध्यान वा यत्न किया करती थी उसी प्रकार बहिन सुभद्रा प्रमाद छोड़ बार २ उन में सदाचार डालने का यत्न करती रहती है ।

प्रद्युम्न भी जिस तरह, अनिरुद्ध, अभिमन्यु, सुनीथ, और भानु की देख भाल करता है, वैसे ही तेरे पुत्रों की करता है । ढाल, तलवार, चलाने में, रथ चलाने, घोड़े की, सवारी में, जिस तरह अभिमन्यु, सुशिक्षित हो गया है, वैसे ही तेरे पुत्र हैं । रुक्मणि पुत्र, पराक्रम बढ़ाने; हर एक को विहार, क्रीड़ा का प्रबन्ध करने, से संतुष्ट रखता है । कृष्णे ! तुम्हारे

---

* इस से भी द्रौपदीपति अर्जुन ही सिद्ध होते हैं ।

† इस से सिद्ध है, सदाचारी पुत्र बनाना माताओं वा वृद्ध स्त्रियों का काम है ।

पुत्रों में से एक २ भी यदि विहारार्थ भिन्न २ दिशा में जाता है, तो उस के पीछे रथ, सवारी, हाथी, और सामग्री सहित अनुचर, भेजे जाते हैं। पाठक! देखिये पुराने आर्यावर्ती लोगों का बन्धुभाव, तेरह २ वर्ष के, लिये देश से निकाले हुए, पांडवों को न केवल, कृष्ण जैसे संसार प्रिय, पुरुष अनेक बार उन की सुध लेने, बनों जंगलों में जाते हैं, किन्तु पीछे से उन के, परिवार स्त्री पुत्रों की, सम्भाल भी करते हैं। सब से, बढ़ कर उन की सन्तान की कुलोचित शिक्षा का प्रबन्ध अपने पुत्रों और भानजों के ठीक २ तुल्य ही करते हैं। उन की देख रेख के लिये, अपनी स्त्रियों, बहिनों, और बड़े राजकुमारों को नियुक्त किया हुआ है। उनके यथाभिरुचि विहरण, वा बनादि में जा अनुभव प्राप्त करने के लिये साधन आदि का प्रबन्ध साधारण नहीं, किन्तु राजकुमारों जैसा सुप्रबन्ध, कर रखा है। मनोरञ्जन का समान इतना किया हुआ है, कि वे राजकुमार, अपने नाना पञ्चालराज, द्रुपद और मामा धृष्टद्युम्न, आदि के बार २ सप्रेम लेजाने पर भी, वहां रहना नहीं चाहते। सचमुच मित्र, बन्धु, की आवश्यकता भी, विपद् काल के दिनों की सहायतार्थ ही मानी गई है। वरन सुख, ऐश्वर्य में, तो संसार ही बन्धु बन जाता है। हम ने आज कल के धर्म, कार्यार्थ, कारावास झेलने वाले बन्धुओं से, सुख दुःख समस्या पूछने पर सुना है, कि यदि उन के स्त्री पुत्रों का, भरण, पोषण, वृद्ध माता पिता, विधवा बहिन का, प्रतिष्ठा पूर्वक भोजन, छादन, विशेष कर सन्तान का स्वधर्मानुसार, सदाचार, संयुत, शिक्षण का प्रबन्ध तनिक भी कोई बन्धु, मित्र,

सभा, समिति, कर देवे, तो उन्हें कारावास के बन्धन, सुकुमार तनु रखने वाले अध्यापक, वैद्य, मास्टर, वा साहूकारों को अठार: २ सेर पीसने के कष्ट, कोल्हू चलाकर तेल पीलने, वा ढंगरों की तरह दिन भर कूआ चलाने का, असह्य क्लेश, वा वर्षों तक काल कोठरी का वास, क्लेशप्रद नहीं। किन्तु यदि कोई क्लेश है तो यह कि जिस देश के धर्मसुधार, नीतिसंशोधन, बाल संस्कार, दीन जन दुःख टारने, के लिये उन्हों ने, कष्ट उठाया है, वही सुधार संशोधन संस्कार, सुधारकों की सन्तान वा इन के ही परिवार द्वारा, बिगड़ कर देश को पहले से भी अधिक दीन, दुःखी, वा पापी बना देता है।

धर्मराज की एक और परीक्षा — कृष्णा को पुत्र संदेश देकर, धर्मराज की आन्तरिक, दशा की जांच करने के लिये श्रीकृष्ण ने कहा—धर्मराज! वृष्णि अन्धक आदि योधा और उन की चतुरंगिणी सेना, सदा से आप की आज्ञा में है, क्या हर्ज है, यदि आप तो अपनी प्रतिज्ञानुसार बनवास व्रत पालते रहें, पर हमें हस्तिनापुर पर धावा करने की आज्ञा देदें। हम धृतराष्ट्र के पुत्रों को, सौभपति, भौमासुर की भान्ति यमलोक को पहुंचा कर, कुरुराज्य आप के लिये सुरक्षित कर रखेंगे?

यदि कोई आजकल का योरूपीयन किंग होता तो ११ वर्ष के लगातार देखे दुःखों को, याद कर, वा दुर्योधन के बचपन के किये उग्र अपराधों को ध्यान में धर कह देता, "बहुत अच्छा सोचा है आपने" मैं आप का धन्यवाद करता हूं, और यदि पबलिक राय थांमने में आप मदद दें, तो मैं भी आप के साथ ही हो लेता हूं? पर यहां आर्यजाति के, नरेन्द्र थे जो

प्राणपण से भी सत्य की रक्षा करना ही सीखे हैं। अतः धर्म-राज ने कहा—दैत्यारि ! आपने जो कहा है, आप के औदार्य स्वभाव, के अनुकूल ही है, आप पांडवों का सदा से हित हो करते आये हैं, पांडवों का आप के बिना और है ही कौन ? पर हृषीकेश ! यदि आप यही काम समय पर करें, तभी आप के पांडवों का भला है। हमने प्रतिज्ञानुसार ११ वर्ष से अधिक समय बिता लिया है, १२ वां वर्ष बीत ही रहा है। बाकी १ वर्ष अज्ञातवास विधि पूर्वक बिता कर फिर पांडव आप के ही भरोसे हैं। अर्थात् अब आप ऐसे विचार न सुनाइये।

श्रीकृष्ण, धर्मराज की दृढ़ता, सभ्यता, विनय, शीलता, देख प्रसन्न हो कर, द्वारका लौट गये।

धर्मराज का शास्त्र ज्ञान } धर्मराज को वेदानुकूल शास्त्र, इतिहास, सुनने का बड़ा शौक था, बहुत से धर्मो-पाख्यान सुनाते २ मार्कंडेयजी ने वर्ण निर्णय पर एक ब्राह्मण व्याध का संवाद सुनाया जिस का भाव हम भी यहां देते हैं।

शूद्रयोनौ हि जातस्य सद्गुणानुपतिष्ठतः।
वैश्यत्वं लभते ब्रह्मन् ! क्षत्रियत्वं तथैवच ॥
आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्य मभिजायते ॥

वन० ११२। ११;१२

ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्मसु।
दाम्भिको दुष्कृतः प्राज्ञः शूद्रेण सदृशो भवेत् ॥

यस्तु शूद्रोदमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः ।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद्विजः ॥

२१६ । १४ । १५

अर्थात् शूद्र, उत्तम कर्म करने से, वैश्य, क्षत्रिय, * ब्राह्मण, वर्ण को प्राप्त हो जाता है, और ब्राह्मण, गिराने वाले कर्मों को करता हुआ, शूद्र पदवी को प्राप्त हो जाता है, इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य के लिये शास्त्रों की आज्ञा है । इस सिद्धान्त के अनुसार धर्मराजा का अनुष्ठान भी रहा करता था, अर्थात् वे कभी गुण हीन की पूजा नहीं करते थे ।

शत्रु मोक्षण वा जातित्व रक्षण खंड ७

चांडाल मंडल की नीचता } कर्ण, शकुनि, आदि की सम्मति से दुर्योधनने घोषयात्रा के बहाने दुःखदलित पांडवों को, अपनी विभूति द्वारा अधिक पीडित करने और लज्जित करने के लिये राजकीय ठाठ से, सपरिवार सेना सहित, वन यात्रा की मनजूरी राजसभा से लेली । और जब द्वैतवन के 'संवृत' नामक सर के पास राजदल पहुंचा तो उनका सेनामुख (अगाऊ जत्था) सरोवर में क्रीडा करते, गंधर्वराज और अप्सरा को राजा दुर्योधन का नाम लेकर,

---

* भारत के टीकाकार नीलकंठ जी २१२ । ११ की टीका में लिखते हैं ।

"गुण कृतएव वर्ण विभागो न जातिकृत इति भावः" ।

मनुस्मृति और आपस्तंब सूत्रों में भी यही लिखा है—

वहां से निकल जाने का हुक्म देने लगा। क्योंकि यह गन्धर्व केवल विहारार्थ ही आये हुये न थे किन्तु देवराज इन्द्र ने, अपने पुत्र, अर्जुन आदि की सहायतार्थ सेना सहित भेजे हुये थे। और इधर कुरुराज की सेना थी, परिणाम दोनों दलों की मुठभेड़ होगई। और 'पापी कों राम की मार' की उक्ति के अनुसार कर्ण आदि तो पहले दिन ही मार खाकर पोछे दौड़ आये। और दूसरे दिन दुर्योधन की शक्ति किरकिरी हो गई अर्थात् गन्धर्वराज चित्रसेन ने स्त्रियों सहित, दुर्योधन को, परास्त (कैदी) कर बान्ध लिया। और सारा सामान, ऐश्वर्य जो पांडवों के लज्जित करने को साथ उठाया था, वह भी कदाचित् पाडवों का अनुपम, धैर्य, गौरव, दिखाने के लिये गन्धर्वों ने जब्त कर लिया।

पांडवों की शरण की सूझी } अब इस संकट में पड़े दुर्योधन को, 'विपतहि बन्धु सहाय' के अनुसार पांडवों की शरण में जा अपनी जान, तथा कीर्ति बचाने की सूझी, और इस के लिये कौरवों के सेनावीरों ने, निकट में तप तपने वाले धर्मराज को कुरुवंश की स्त्रियों सहित, दुर्योधन तथा दुःशासन की दुरावस्था बताकर रक्षा की प्रार्थना की। तथा प्राण भिक्षा मांगी। जिसे सुन भीम बोले—धर्मराज! अच्छा हुआ जो इन अधर्मियों को, कर्मफल मिल गया। अब इन की मदद करना पाप की वृद्धि करना है। मालूम देता है, कोई पुरुष हमारे भी प्रिय में लगा हुआ है, क्योंकि इन के साथ जो व्यवहार हमने करना था, उसने कर दिया। राजन्! दैव की इच्छा देखिये जो कौरव हमारी विषम अवस्था को देखना

चाहते थे, वे अपनी अपनी बहु बेटियों की, परम विषमावस्था संसार को दिखा रहे हैं। अस्तु यहां पर, यदि कोई और प्रहार कर बदला लेना, इस समय योग्य नहीं, तो कम से कम इन को इन के कर्मफल भोगने में स्वतंत्र कर देना चाहिये अर्थात् हम अब इन के, किसी काम में, भला बुरा न कहें न करें यही अच्छा है।

धर्मराज की उदारता और जातिरक्षा } भीमसेन को यथार्थ पर रूखी वाणी सुन कर धर्मराज ने कहा भीम ! यह समय, इन खरी और खुश्क बातें सुनाने का नहीं। विषमावस्था प्राप्त, डरे हुये, शरण चाहने वाले, कौरव आप का सहायार्थ द्वार खटकावें, और आप आगे से यह कहें, यह तुम्हारे योग्य नहीं।

माभ्राताभ्रातरं द्विक्षन् मास्वसार मुतस्वसा०।

अथर्व० ३।३०।३

यदातु कश्चिज्ज्ञातीनां बाह्यः प्रार्थयतेकुलं।
नमर्षयन्ति तत्संतो बाह्येनाभि प्रधर्षणम् ॥
दुर्योधनस्य ग्रहणाद्गंधर्वेण बलात्प्रभो।
स्त्रीणां बाह्याभिमर्शाच्च हतं भवतिनः कुलम् ॥
शरणं च प्रपन्नानां त्राणार्थं कुलस्य च।
उत्तिष्ठध्वं नरव्याघ्राः सज्जीभवत मा चिरम् ॥

क इहार्यो भवेत्त्राणमभि धावेति चोदितः ।
प्रांजलिं शरणापन्नं दृष्ट्वा शत्रुमपिध्रुवम् ॥
वरप्रदानं राज्यं च पुत्र जन्म च पांडवाः ।
शत्रोश्च मोक्षणं क्लेशात्त्रीणि चैकं च तत्समम् ॥
किं चाप्याधिक मेतस्माद्यदापन्नः सुयोधनः ।
त्वद्बाहुबल माश्रित्य जीवितं परिमार्गते ॥
स्वयमेव प्रधावेयं यदि न स्याद्वृकोदर !
विततोमे क्रतुर्वीर नाहिमेत्र विचारणा।२४३।३-७५

वृकोदर ! पिछली बातों का ध्यान मत धरो, घरों में, बरादरियों में, अनेक बातों में, भेद होजाया करते हैं, कभी २ कलह भी होजाता है । वह वैर रूप भी बन जाता है । परं इस से कुल धर्म नहीं त्यागे जाते । कुलीनों को सदा ध्यान में, रखना चाहिये, कि जब कोई बाहर का विजातीय पुरुष, स्वजाति पर आक्रमण करे, तब उस का जाति की ओर से जवाब दें, क्योंकि जाति की हीनता, देखना, सत्पुरुषों का काम, नहीं हैं । मैं यह समझता हूं कि यह दुर्बुद्धि हमें जान कर दुःख देने घर से आया है, परं तो भी इस के बलात् गंधर्वों द्वारा, पकड़े जाने से तथा स्त्रियों के गैरों के वश पड़ कर, अपमानित होने से, कुल हमारा ही, नष्ट हो रहा है । अतः नरसिंहो ! शरणागतों की रक्षा, तथा कुल कीर्ति के, लिये शीघ्र खड़े हो

जाओ। भीम! तुम अर्जुन, नकुल और सहदेव, सब जने जा कर हरे लिये जाते, सुयोधन को छुड़ाओ। ये सुवर्ण की ध्वजा वाले धृतराष्ट्र के रथ दिखाई पड़ रहे हैं, इन्हीं पर बैठ कर सुयोधन को गंधर्वों से छुड़ाओ। भाई कोई भी क्षत्रिय पुत्रहो, वह शरणागत की प्राणपण से भी रक्षा करता है, और तू तो पांडु पुत्र भीमसेन हो तेरे में देरी? आर्यवर! संसार में कोई भी आर्य हो "दौड़ कर मेरी रक्षा कीजिये" ये शब्द सुन कर शरण में आये, हाथ बांध खड़े, महा बैरी की भी रक्षा करना आर्यत्व समझेगा। इस लिये आर्यत्व की रक्षा के लिये भी, सुयोधन की, रक्षा कीजिये। तुम पूछोगे, शत्रु को छुड़ाने का क्या फल है? सुनिये मैं बताता हूं १ दुःखी को वर प्रदान, २ स्वराज्य प्राप्ति, ३ और पुत्र जन्म तीनों मिल कर जो आनन्द आता है, अपने हाथ से शत्रु को छुड़ाने से उसके समान आनन्द होता है। और यदि सुयोधन स्वयं आकर तेरे बाहुबल से, जीवन दान मांगे तो उन तीनों आनन्दों से कहीं बढ़ कर आनन्द आता है। भीम! मैं स्वयं दौड़ कर, सुयोधन को गैरों से छुड़ाता, यदि मैंने यह वैदिक यज्ञ, आरम्भ न किया होता। अतः भीम! जाओ साम रीति से, वा मृदु पराक्रम से, वा नरम से युद्ध से, वा जिस किस उपाय से भी सुयोधन को गैरों से छुड़ाओ, मैं यज्ञ में दीक्षित होकर इस से अधिक संदेश नहीं दे सकता! मानना, न मानना, तुम्हारा काम है।

दुर्योधन की शिक्षा — धर्मराज की, आज्ञा पा, अर्जुन, भीम, आदि वहां गये, गंधर्वराज चित्रसेन से, युद्ध कर, गंधर्वराज सहित, दुर्योधन को पकड़, पटरानी भानुमती

आदि को कुरु वधुओं के साम्हने, कैदी के रूप में, धर्मराज के संमुख खड़े कर पूछा महाराज ! क्या आज्ञा है ? धर्मराज ने गंधर्व, और दुर्योधन के, बयान लिये, पीछे से * गन्धर्वराज को, धन्यवाद पूर्वक बिदा किया। तथा दुर्योधन को नीचे का उपदेश देकर घर जाने की आज्ञा दी।

---

* गन्धर्व और अप्सरा के सम्बन्ध में भी, लोगों के विचित्र विचार हैं, इस लिये यहां कुछ वर्णन कर देते हैं।

अमृतं ब्राह्मणागावो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
अपत्यं कापिलायास्तु पुराणे परिकीर्तितम् ॥

आदि० ६५ । ५२

१—पुराणानुसार ऊपर लिखे पद्य में, गन्धर्व, अप्सरा, ब्राह्मण कपिला की सन्तान थे।

२—महाभारत अनुसार ऊर्वशी, अप्सरा से पुरुवंश, चला। देखो वनपर्व ४६ । ४०-४६

३—शकुन्तला, जो मेनका, अप्सरा से ऋषि विश्वामित्र की कन्या थी । कण्व ऋषि के आश्रम में शिक्षा पाकर, महाराजा दुष्यन्त की पत्नी (गन्धर्व विवाह से) हो कर, कुरुवंश के प्रसिद्ध महाराज भरत की जननी हुई, सो भी अप्सरा थी। आदि० ७२ और ७३ ।

४ – स्वयं अर्जुन ने चित्रांगदा, अप्सरा से, उस के वंश वर्धन, निमित्त पुत्र पैदा किया। आदि० २१५ ।

५—अंगारपर्ण गन्धर्व को अर्जुन ने जीता, फिर उस से मैत्री की, उस ने कुछ उपदेश भी दिये। आदि० १६९ ।

मास्म तात पुनः कार्षीरीदृशं साहसं क्वचित् ।
नहि साहसकर्तारः सुखमेधन्ति भारत ।१४६।२२
स्वस्तिमान्सहितः सर्वैर्भ्रातृभिः कुरुनन्दन ।
गृहान्व्रज यथाकामं वैमनस्यं च मा कृथाः।।२३

६—यह चित्रसेन जिस से दुर्योधनादि को छुड़ाया, गन्धर्वराज तथा स्वयं गन्धर्व था । वन० २४६

७—आदि पर्व १८३ में वेदवित् धौम्य को पुरोहित बनाने की सलाह एक गन्धर्व ने दी थी ।

८—राजसूय यज्ञ, और भारतीय युद्ध, पांडव दिग्विजय, प्रसंग में अनेक गन्धर्वों के मिलने का वर्णन है ।

९—मनुस्मृति अ० ३ में गन्धर्व विवाह, मनुष्यों, विशेष कर क्षत्रियों के लिये कहा है, तथा इस की पुष्टि प्रायः सब ही स्मृतिकारों ने की है । पुराण इतिहास भी, इसके पोषक हैं ।

१०—इन ऊपर कहे सम्बन्धों तथा कर्मों से साफ हो जाता है, कि गन्धर्व, अप्सरा, मनुष्य जाति में से राग विद्या, शस्त्र विद्या, शृंगार विद्या, जानने वाले भारतीय नर नारी थे । लोकान्तर निवासी वा भिन्न जाति के न थे । भारत में ही कई जगह पर गन्धर्वों का राज्य रहा है । तभी वे पांडु पुत्र अर्जुन तथा दुर्योधन आदि से लड़ सके थे । देखो आदि पर्व अ० १६९ और १८३ । तथा चन्द्रवंशी राजाओं का मातृ पक्ष में इन का घना सम्बन्ध था ।

प्यारे भाई ! फिर कभी, इस प्रकार का साहस, न करना क्योंकि साहसकर्ता कभी सुख नहीं पा सकते। अब तुम परिवार सहित, कल्याण पूर्वक, इच्छानुसार, अपने गृहों को जाओ आप को किसी का बन्धन नहीं। और सुयोधन ! इस घटना से, मन में कोई ग्लानि, न करना। क्योंकि तू हमारा भाई है ! कोई दूसरा नहीं। यह सुन लज्जा से नीचे मुख किये गतेन्द्रिय आतुर, के समान चेष्टा वाला, दुर्योधन धर्मराज को प्रणाम कर घर को चल पड़ा।

चांडाल चौकड़ी की चालाकियें } धर्मराज से, जीव दान लेकर, दुर्योधन घर को लौट रहा था, मार्ग में कर्ण ने उसे बधाई दी, जिस पर दुर्योधन ने कहा, कर्ण यह अवसर बधा का नहीं किन्तु शोक का है। क्योंकि गन्धर्वों ने जब जीत लिया, तब मेरी प्रार्थना पर पांडु पुत्रों ने मुझे उन से छुडाने के लिये, उन्हें भी कैद करके, धर्मराज के साम्हने खड़ा कर दिया। और धर्मराज के, पूछने पर, गन्धर्वों ने, हमारे विचारों का पुस्तक खोल दिया। जिस का परिणाम चाहे कुछ न हुआ उलटा मुझे प्रेम पूर्वक पांडवों ने घर आने को कह दिया, परं इस उपकार से जो मुझ पर, कुन्तीपुत्रों ने, किया मेरा आत्मा डुब रहा है। मैं युद्ध में मर जाता, तो अच्छा था, मेरा यश तो होता और गति भी। पर अब तो सारा संसार, मुझे धिक्कारेगा, कि जिन को, इस ने देश से निकाला, जिन के साथ बचपन से, शत्रुता करता रहा, उन की कृपा से जीवन लेकर जीता फिरता है। जिन स्त्रियों के साम्हने, कैद से, उदारता पूर्वक, पांडु पुत्रों ने मुझे आजाद किया है, मैं उन स्त्रियों को

कैसे वीरत्व समझा वा सुना सकूंगा ! इस लिये, मैं अब नगर में जाकर, बाहर ही प्राण दे दूंगा आप लोग घरों को जांय। यह देख दुःशासन ने कहा आप के विना मैं भी कोई सुख न भोगूंगा। क्योंकि अपमान का दुःख मुझे भी वैसा ही है जैसा कि आप को (यह कर रोने लग गया।

इनकी यह दशा देख कर्ण बोला—राजकुमारो! वीर बनो, अकारण शोक से नष्ट होकर शत्रुओं का क्यों, हर्षित करते हो! यदि शोक जनक घटना हो भी गई है, उसे क्यों बढ़ा रहे हो, धैर्य धरो। कभी अग्नि अग्निज्वाला से, भी शान्त हुआ है। शोक बुद्धिमानों का काम नहीं।

कर्तव्यं हि कृतं राजन् पांडवैस्तवमोक्षणम्।
नित्यमेव प्रियं कार्यं राज्ञो विषयवासिभिः॥
पाल्यमानास्त्वया ते हि निवसन्ति गतज्वराः।
नाहिस्मेवं गते मन्युं कर्तुं प्राकृद्वद्यथा। २४९। ४०

राजन्! पांडवों ने तुम्हें छुड़ा कर, अपना कर्तव्य ही पालन किया है क्योंकि शास्त्रों में राजा का प्रिय करना, प्रजा के नित्यधर्मों में है। और वे तेरी प्रजा हैं। यह सुन कर भी जब दुर्योधन ने लज्जा के कारण जीने से मरने को ही, कल्याण कर समझा, तब कर्ण ने कुछ दैत्य* दानवों को इसे मरने से बचाने के

---

* दैत्य—जैसे आदित्य विद्वान् देवों का नाम है, वैसे ही इस के उलट अज्ञानी, अधर्मी, विषयी वा आर्याचार के

लिये कहा, तब दैत्य दानवों के मुखियाओं ने बहुविध समझा बुझा कर कहा राजन् क्यों यह दुःसाहस कर रहे हो।

आत्मत्यागी ह्यधोयाति वाच्यतां चायशस्करीम् ॥ २५२ ।

इस से तो लोक में, अपयश और परलोक में नीचगति प्राप्त होनी है। अतः जीवन धारण रखते हुये शत्रुओं को जीत, लोक परलोक में, यश पैदा करो पाप से बचो।

विरोधियों का नाम दैत्य है, देखो शान्तिपर्व अ० २२८। दैत्य भूलोक वासी हैं इन में से १ पुलोमा २ अश्वग्रीव ३ स्वर्भानु ४ नरक ५ शंबर ६ प्रह्लाद ७ नमुचि ८ विरोचन ९ पुष्यवान् १० वृष ११ ऋषभ १२ बाण १३ विश्वजित १४ मधु १५ हिरण्य-कशिपु १६ कैटभ १७ बलि आदि प्रसिद्ध दैत्य समय २ पर पृथ्वी के शासक भी रहे हैं। शान्तिप० २२७। वन० १०१ में दैत्य दानवादि की एक ही जाति लिखी है। खांडवदाह से बचा हुआ मयासुर, मय दानव भी कहलाता था। ३ दैत्यों की पृथक् जाति नहीं, कई एक आर्यकुल में जन्म लेकर भी पापाचार से दैत्य कहलाते हैं, जैसे महा–उग्रसेन के पुत्र कंस तथा केशी, दैत्य कहलाते हैं। ४। दैत्य असुरादि के विवाह संबंध, आर्यों से भी होजाते थे। जैसे चन्द्रवंशी महाराजा ययाति का वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से विवाह हुआ, कुरुवंश के मुखिया पुरु उसी शर्मिष्ठा के पुत्र थे। आदि प० श्री कृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध वाणासुर की कन्या से, विवाहा गया था। ५ वे

कर्ण की अद्भुत वाक्शक्ति

न मृतो जयते शत्रून् जीवन् भद्राणि पश्यति।
मृतस्य भद्राणि कुतः कौरवेय कुतोजयः ।३९।
न कालोद्य विषादस्य भयस्य मरणस्य वा,
परिष्वज्याब्रवीच्चैनं भुजाभ्यां स महाभुजः ॥

योधा और लक्ष्मीवान् भी थे वनप० १-१। ८ में इन के संजोय सुवर्ण के लिखे हैं। दैत्य, दितिपुत्र होने से और २ दानव—माता दनु के पुत्र होने से भी कहलाये हैं। ६ इनकी कन्यायें शीलरूप, वेश में देव, गन्धर्व वा मनुष्य कन्याओं के समान थी, पूछताछ के बिना बाहरी रूप से इनका निर्णय नहीं हो सकता था। आदि० ६७।३१-३२ ॥ ७ इन के पुरुषों के नाम ऋषिमुनि तथा देवों के समान होते थे, जैसे सूर्य, चन्द्र आदि। देखो आदिप० ६५। २७।

अन्यौ तु खलु देवानां सूर्याचन्द्रमसौस्मृतौ।
अन्यौ दानव मुख्यानां सूर्याचन्द्रमसौ तथा।

८—कभी २ इनका गुरु शिष्य संबंध, आर्य ऋषियों से भी होजाता था। जैसे शुक्राचार्य दैत्य गुरु कहलाते हैं। ६—कभी २ ये आर्यों के युद्ध सहायक वा व्यवहार सहायक भी हो जाते थे। जैसे मयादि पांडवों के, संशप्तक दुर्योधन के सहायक हुये।

एक दिन, अच्छा मौका, देख कर, जयशील जीवन की प्रशंसा कर कर्ण ने कहा—पृथ्वीराज ! मरा हुआ पुरुष शत्रुओं को जीत नहीं सकता, और न कोई भद्र देख सकता है, इस लिए यह काल विषाद, भय, वा आत्महत्या का नहीं है, उठो पराक्रमी बनो, यश लाभ करो ! आखिर पुरुष का मन बाहर के संस्कारों से ही बनता, बिगड़ता, चढ़ता, वा गिरता है। और वाणी में वह भी समय पर अच्छे शब्दों में प्रयोग की गई में, परमेश्वर ने अमृत शक्ति भरी है । वाणी कायरों को वीर, मृतों को जीवित, उत्साह हीन को उत्कंठित, करने में प्रसिद्ध है। इसलिये कर्ण से वाक्पटु की, वाक्शक्ति ने, दुर्योधन को दुबारा जीवन दान किया, और वह आगे लग कर हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुआ।

अतप्ततनूर्नतदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्त-स्तत्समाशत ॥ ऋ० ९।८३।१

सर्वं वै तपसा साध्यं तपोहि दुरतिक्रमम् ॥मनु०

व्यासागमन } यहां रहते, पांडवों की दशा देखने, एक दिन फिर व्यासजी आये, और इनके तपश्चर्या से कृश शरीरों को, देख कर, इन के कल्याण के लिये बोले—

नातप्त तपसोलोके प्राप्नुवन्ति महत्सुखम् ।
सुखदुःखेहिपुरुषं पर्यायेणोपसेवते ॥ २६१।१३

नासाध्यं तपसः किंचिदिति बुद्धय स्व भारत।१७।
तस्माच्छरीरं युंजीत तपसा नियमेन च ॥२०॥

भारत ? तप से महा सुख मिलता है, बिना तप के, मनुष्य उत्तम फल, पा नहीं सकता। सुख दुःख तो पुरुष को मिलते ही रहते हैं। अतः तू शरीर को, तप तथा नियम में लगा। यह कह चले गये।

दुर्वासा को पांडवों का भय } दुर्योधनादि ने पांडवों को दुःख देने के, अनेक उपायों में, एक यह भी किया था कि महर्षि दुर्वासा को प्रसन्न कर, वर प्राप्त किया, कि आप शिष्यों सहित, वन में पांडु पुत्रों को मिलें, और भोजनानन्तर, उनके आश्रम में जाना। ऋषि ने तथास्तु, कह स्वीकार कर लिया। दुष्टचेता दुर्योधनादि ने यह सोचा था कि राजा युधिष्ठिर, जब इन का उचित, अतिथि सत्कार, न कर सकेंगे, तब ये क्रुद्ध हो कर, ब्रह्मरोष से, उन्हें दग्ध कर देंगे, इत्यादि २ पर उस धर्म हीन, को क्या पता था, कि धर्मात्माओं की रक्षा 'धर्म' स्वयं सदा करता है। दुर्योधन के निश्चय अनुसार, जब ऋषि वन में गये, धर्मराज ने निमन्त्रण देकर, उन्हें स्नानादि से निवृत्त होने को, कहा तथा स्वयं यथाशक्ति फल आदि उपार्जन में लगे। जब ऋषि स्नान कर रहे थे तो उन्हें ईश्वर की ओर से, अपने आत्मा में अकारण धर्मात्माओं को संताप पहुंचाने के विरुद्ध पश्चात्ताप होने लगा। तथा धर्मात्मा पांडु पुत्रों की धर्माग्नि से डर आने लगा। इसी अवस्था में दुर्वासा बोल पड़े।

बिभेमि सुतरां विप्राः हरिपादा श्रयाज्जनात् ॥
पांडवाश्च महात्मनः सर्वे धर्म परायणाः ।
क्रुद्धास्ते निर्दहेयुर्वै तूलराशि मिवानलः ॥

२६३ । ३३

विप्रो ! मैं सदा ईश्वर भक्त से डरा करता हूं । और पांडव सारे ही महात्मा तथा धर्मात्मा हैं, ऐसा न हो कि हमारे छल पर, वे* क्रुद्ध हो कर, हमें रूई की भान्ति भस्म कर दें । अतः हमारा भला इसी में है, कि उन के साम्हने ही न हों । यह विचार वहां से ही अन्यत्र चले गये । और धर्म की जय रही ।

द्रौपदी हरण और जयद्रथ दलन खंड ८

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥ ऋ० १०।९५।१५

---

* यहां पर कृष्णभक्तों ने कुछ ऐसी गल्प के श्लोक भी मिला दिये हैं, कि वहां कृष्ण आये, और उन्होंने भोजनपात्री से, थोड़ा सा लगा अन्न खाकर, सारे विश्व को तृप्त कर दिया, पर इस में कृष्ण शक्ति तो बता दी, पर पांडवों के धर्माचरण का गौरव छिपा दिया, जो तप वा धर्म के प्रभाव को, नष्ट कर एक प्रकार का पाप किया है । अतः हम ने उपर्युक्त विषय को ही अंकित किया है । पाठक स्वयं भी विचार लें ।

काम्यक वन में, वसते पांडव, एक दिन सारे ही शिकार को चले गये । पीछे से सिन्धुराज जयद्रथ, बहुत से मित्रों और सिपाहियों के संग आश्रम में आ पहुंचा । देवी द्रौपदी के रूप को देख, उस का मन विकृत हो गया । द्रौपदी ने कुशल क्षेम के पश्चात् अर्घ्य पाद्यादि से, उस का पूजन किया । बैठे २ पापी ने देवी को छूना चाहा—देवी ने फटकार कर कहा, पीछे हट, मुझे न छूना । फिर जब बलात् छूने लगा देवी ने, धक्का देकर परे फैंक दिया । इस के बाद उस ने संगियों की मदद से देवी को बलात् रथ में फैंक लिया । देवी ने चलते २ चिल्ला कर, और प्रणाम कर, पुरोहित धौम्य को अपनी व्यथा जोर से सुना दी । पुरोहितने उस दुष्ट को युद्ध के लिये ललकारा । पर कामुक सिंधुराज, उस देवी को बन की ओर ले भागा । इतने में बन पशुओं, तथा पक्षियों, की गति वा * भाषा से यह समझ, कि आश्रम में कोई क्षोभ है, धर्मराज आदि शिकार छोड़, आश्रम की ओर दौड़े । और पुरोहित से समाचार, पा उस के पीछे गये, ज्योंहि पांडवों ने उस के रथ को देख ललकारा, और द्रौपदी, ने कहा वे महा बली कुन्तीपुत्र आ रहे हैं, तब वह पापी डर कर, बार २ द्रौपदी से अपनी रक्षा के लिये,

---

* प्रतीत होता है उस समय आर्यावर्त में, और विद्याओं के साथ २ पशु पक्षी गति वा भाषा जानने की विद्या भी आम प्रचलित होगी । जिस का चिन्ह मात्र अब शकुन विचार या कोयल, मोर, चकोर, पपीहा, दर्दुर, हिरण, गौ, चूहा, कुत्ता, घोड़ा, आदि के स्वर भाषण वा चेष्टासे रोग, व्याधि, आंधी मेंह अग्निदाह दर्याउ, बहाऊ जानना देखा जाता है ।

प्रार्थना करने लगा। इस कायरता और हरण समय की उद्धटता को देख, पहले तो द्रौपदी को आश्चर्य हुआ, और हंसी आई। पर उस की अति दीनता को देख वीर पुत्री, वीर जाया तथा वीर माता, द्रौपदी अपनी स्वाभाविक वीरता और धर्मराज की उदारता को विचार कर बोली—

अप्येष शत्रोः शरणागतस्य दद्यात्प्राणान् धर्मचारीनृवीरः । परेह्येनं मूढ!जवेन भूतये त्वमात्मनः प्रांजलिर्न्यस्त शस्त्रः ॥ २७०।८

मूढ़ ! गिड़गिड़ा क्यों रहे हो, यदि प्राणों की लालसा है, तो हथियार फैंक कर, हाथ जोड़ शीघ्रता से धर्मराज की शरण में चले जाओ ! वह नरवीर बड़े दयालु हैं, वह शत्रुओं को भी, शरण में आने पर, जीवन दान दे दिया करते हैं ? हां यदि मुझ से कोई मदद चाहते हो, तो यह कह दूंगी, कि जब धर्मराज मुझ से पूछेंगे तो मैं सारी घटना ज्यों की त्यों, उन्हें बता कर, तुम्हारे लिये प्राण दान की सिफारिश कर दूंगी। यह सुन जयद्रथ को जीने को कुछ आशा हो गई। भारत बन्धुओ ! तुम जो नित्य योरुप, अमेरिका, एशिया की, कहानियां पढ़ते हो कभी पढ़ा है कि महारानी का जिस पापी के हाथ से इस तरह अपमान हुआ हो, और जो बार २ समझाने से भी न समझा हो, सहायता का समय आने पर वही देवी उस की जान बचाने की सब से बड़ी ठेकेदार बने और और जान बचाए।

जयद्रथ ग्रहण और मोक्षण } पांडव वीरों को, देख कर सिन्धुराज, द्रौपदी* को छोड़ वन को भाग चला, जिसे ललकार कर भीम पकड़ लाये। तथा द्रौपदी को आश्रम में पहुंचा दिया। जब भीम पकड़ कर ला रहे थे, तो अर्जुन ने कहा राजपुत्र ! इसी बल के घमंड से पर स्त्री को हरे लिये जाते थे ? शर्म करो अब भागने कौन देगा ? इस प्रकार धिक्कार कर, मारना ही चाहते थे कि धर्मराज बोले —

---

* भारत काल के नामों के पाठ से प्रतीत होता है कहीं स्त्रियों के नाम पुरुषों (पिताओं) के नाम से कहीं पुरुषों के नाम स्त्रियों (माताओं) के नाम से, कहीं दोनों नामों से थे, जिस से कहना पड़ता है, उस समय के समाज में स्त्रियों का समान अधिकार था आज कल के हिन्दुसमाज की भान्ति स्त्री नाम लेना पाप न था, शायद यह सतर (पर्दे) को लहर दीन इस्लाम की दात हो। यहां नमूने के तौर पर हम कुछ नाम देते हैं पाठक विचार करें।

१--स्त्री ख्याति नाम—१ गांगेयः (गंगा पुत्र भीष्म) २ सत्यवती सुत (श्री वेदव्यासः) ३ रेणुका सुत (परशुराम) ४ अम्बिका सुत (धृतराष्ट्र) ५ राधेय (कर्ण) ६ देवकी सुत (कृष्ण) ७ कौन्तेय (युधिष्ठिर आदि) ८ पार्थः (पृथा-पुत्र अर्जुन) ९ गांधारि (दुर्योधन) १० सौभद्र (अभिमन्यु) ११ माद्री नंदन (नकुल सहदेव) १२ द्रौपदेया (श्रुतसेनादयः) १३ हैडंब (घटोत्कच) १४ रौक्मणेय (प्रद्युम्न) १५ रौहणेय (बलभद्र) आदि २।

न हन्तव्यो महाबाहो दुरात्माऽपि स सैंधवः।
दुःशलामभि संस्मृत्य गांधारीं च यशस्विनीम्

:२७१।४३

महाबाहो! इस दुरात्मा, सिन्धुराज को, न मारो। क्योंकि यह अपनी बहिन दुःशला (धृतराष्ट्र की पुत्री) का पति तथा गांधारी का जमाता है। उन का ध्यान कर इसे जीता छोड़ दो। छोड़ते २ भी दो काम भीम ने कर लिये, जो पराजित राजपुत्रों से किये जाते हैं? उस का शिर अर्धचन्द्र बाण से ५ जटा रख कर मूंड दिया। २ उस से सभा, तथा

२—पुरुष ख्याति स्त्री नाम—१ द्रौपदी (द्रुपद) पुत्र २ कुन्ती (कुन्ती भोज कन्या) ३ गांधारी (गंधार राज कन्या ४ रुक्मणी (रुक्म कन्या) माद्री (मद्रराज कन्या) आदि २।

३—पुरुष ख्याति पुरुष नाम—१ पाराशर (व्यास) २ धार्तराष्ट्र (दुर्योधन) ३ जामदग्न्य (परशुराम) ४ वासुदेव (कृष्ण) ५ पांडव (भीमादि) ६ वैराटि (उत्तर) ७ वैचित्रवीर्य (पांडु) ८ आर्जुनि (अभिमन्यु) ९ दौष्यन्त (भरत) १० द्रौणि (अश्वत्थामा) आदि २।

४—इस के बिना सत्यवती, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, अम्बा, विदुला उत्तरा, आदि का समाज कार्य वा राज काजों में समय २ पर भाग लेना यह बतलाता है कि तब स्त्रियों का पद प्रतिष्ठित दशा मे था ईश्वर करे अब भी वह पद भारत नारियों को प्राप्त हो।

समाज में कहलवा लिया, कि "दासोऽस्मि" मैं तुम्हारा दास हूं।

धर्मराज का उपदेश } पापी जयद्रथ को छोड़ देने के लिये द्रौपदी, तथा धर्मराज के, सामने खड़ा कर कहा, यह पापी दासता स्वीकार करता है, इस के लिये क्या आज्ञा है? उस के मुंडे शिर, बन्धे हाथ, नीचे मुख को, देख कर द्रौपदी ने कहा अब यह दास है इसे छोड़ दो पर धर्मराज ने जयद्रथ को लक्ष्य रख कर कहा—

अदासो गच्छ मुक्तोसि मैवंकार्षीः पुनःक्वचित्।
स्त्रीकामं वाधिगस्तु त्वां क्षुद्रः क्षुद्रसहायवान्॥
स प्रेक्ष्य भरतश्रेष्ठः कृपांचक्रे नराधिपः।
धर्मेते वर्धतां बुद्धिर्माचाधर्मे मनः कृथाः॥

२७२। २१, २३।

स्त्री कामना से, तुमने अनर्थ किया, इस लिये तुम्हें धिक्कार है, फिर उसे देख कर नरपति ने दया करते हुये, कहा जाओ तुम्हारी दासता, हटाकर, तुम्हें स्वतंत्र करता हूं, पर फिर कभी कहीं भी ऐसा काम न करना! जिस से क्षुद्रता या क्षुद्र सहाय प्रतीत हो। परमेश्वर करे, तेरी बुद्धि धर्म में बढ़े, तेरा मन पाप की ओर, कभी न जाय। यह कह उसे सदा

के लिये आजाद कर दिया। हमारे पाठक धर्मराज की नीति देख कि वे किस तरह बड़े से बड़े पापी और वैरी को केवल यह कह कर कि " फिर कभी ऐसा न करना " छोड़ देते हैं, सते होंगे। कि राजभार्या का हरन कहां और यह सजा क्या! परं हंसी की बात नहीं ? पुराने आर्य धर्म बल, वा प्रजा स्नेह से, शासन करते थे, दमन नीति वा क्रूर दंड से नहीं, जो क्रूर दंड की महिमा मानते हैं उन्हें उन काश्मीर आदि राजाओं के शासन काल से तुलना करनी चाहिये, जिन्होंने सारी उमर में, एक को भी फांसी वा सूली नहीं दी और आज भारत के केवल पञ्जाब प्रान्त की रिपोर्ट पढ़े तो हर वर्ष सहस्रों को प्राण दंड (फांसी) होने पर भी अपराध प्राणी हत्या बढ़ रही है। कहें क्या यह मत विविधता से ही हो रहा है॥

कालेमनः कालेप्राणः कालेनाम समाहितम् ।
कालेन सर्वानन्दन्त्या गतेत प्रजा इमाः ॥७॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्मसमाहितम् ।
कालोह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः८

अथर्व ।

वनवास काल विभाग } आर्य विद्वानों का कथन है, कि काल सदा व्यतीत होता हुआ, जगत् में अमृत तथा विष की सृष्टि करता रहता है। जो लोग काल को उत्तम कर्मों में नियम पूर्वक गुजारते हैं, उन्हें अमृत, अनियत रीति से बिताने वालों को विष देता है। राजा के लिये, लोकमत,

अनुकूल, होना अमृत, तथा प्रतिकूल होना विष है ॥ अगले पृष्ठों में आप देखेंगे कि युधिष्ठिर के लिये प्रजानुराग प्रतिदिन बढ़ रहा था और दुर्योधन के लिये द्वेषभाव बढ़ रहा था। इस का कारण इन का उत्तम काल विभाग ही था। अतः इन के १२ वर्ष के काल का संक्षेप से विभाग देते हैं। पांडव हस्तिनापुर से निकल कर दान देते, विद्या पढ़ते, यज्ञ करते, दुःखियों के दुःख दूर करते और आपस में पूर्ण प्रेमसे दिन व्यतीत करते थे। १२ वर्ष में १ वर्ष द्वैत वन में पांच ५ वर्ष काम्यक वन में १ एक वर्ष इतस्ततः नदियों पर चार ४ वर्ष गन्धमादन पर्वत पर, वहां से बदरिकाश्रम में होते यमुना के किनारे २ यामुन पर्वत पर १ एक वर्ष फिर कर पांडवों ने बारह वर्ष का वनवास काल समाप्त किया ॥

इति

॥ पञ्चमो भागः ॥

त्रातार मिद्र मवितार मिन्द्रं हवे हवे, सुहवं शूरामिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ऋ० ६।४७।११

इन्द्रः सुत्रामा स्ववां अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः । बाधतां द्वेषो अभयंकृणोतु सुवीर्यस्य पतयो स्याम ॥ ६।४७।१२

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ६। ५४। ९

गावइवग्रामं यूयुधिरिवाश्वान् वाश्रेववत्सं सुमना दुहाना । पतिंरिव जाया मभिनोन्येतु धर्त्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥ १०।१४९।४

तपसा ये अनाधृष्या स्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपोयेचाक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥
ऋ० १०।१५४ २

गुप्त वास विचार

पाठक आपने पिछले पृष्ठों में धर्मराज के वनवास के १२ वर्ष देख लिये। और किस तरह उसने अपने को तप, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, अतिथि सेवन में लगाये रक्खा, और अर्जुन को पांच वर्ष के लंबे काल के लिये भावी युद्धार्थ शस्त्रास्त्र प्राप्ति के लिये इन्द्रलोक में भेज पश्चात् नाना कष्ट सहते हुये भी समय व्यतीत किया। तथा आपने यह भी देखा कि समय पड़ने पर दुर्योधन मोक्षण, जयद्रथ प्राण दान आदि कितने उदार कर्म किये। परं विचार दृष्टि से देखें तो ये सारे कर्म, वीर पुरुषों के लिये सुकर हैं, क्योंकि इस में वे किसी के अधीन नहीं होते। आगे जो काम उन्हें करने पड़ेंगे जिस तरह वीर शक्तियों को दबा शूद्रों और नपुंसकों की भान्ति रहना पड़ेगा यह क्षत्रिय के लिये बड़ा दुष्कर है। परं महापुरुष देश के स्वातंत्र के लिये, जातिरक्षण तथा आत्म प्रण पालन के लिये सब कुछ कर लिया करते हैं, इसी प्रकार पांडवों का यह अज्ञात वास था। अज्ञातवास का काल यद्यपि १२ मास था परं १२ वर्षों से कठिन था क्योंकि इस में एक तो अपने को छुपा कर रखना था दूसरे यदिभेद फट जाय तो नये क्रमसे फिर १२ वर्ष का वनवास फिर १२ मास का अज्ञात वास करना होता था क्योंकि अनुद्यूत के समय एक विदेशी (शकुनि) के मंत्र से ऐसा ही मंत्रित हुआ था।

गुप्त वास का स्थान } धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव द्रौपदी तथा पुरोहित धौम्य ने विचारकर

मत्स्य देश के वृद्ध, पांडव हितैषी बलवान् महाराज विराट के नगर में वास करने का निश्चय किया। तथा इन्द्रसेन आदि सारथि वर्ग को रथादि सहित द्वारका, और शेष दास वर्ग को द्रौपदी के पिता के राज्य में भेजने का निश्चय कर दिया और सब को यह भी कह दिया कि पांडवों के अगले वास काल को कोई किसी से प्रगट न करें। गुप्तवास के समय पर्यन्त अग्नि-होत्रादि कर्म की रक्षा का काम धौम्य पुरोहित जी के समर्पण किया गया।

गुप्त नाम और काम } विद्वानों का सिद्धान्त है कि पुरुष को वह विद्या सीखनी चाहिये जो विपद्काल में काम आवे, अर्थात् कुछ हस्तलाघव क्रिया कौशल ऐसा भी होना चाहिये जिस से जहां चाहें उदर निर्वाह करलें। पुराने आर्य जो सांगोपाँग वेद पढ़ाया करते थे उस का अर्थ यही था कि वे आज कल की यूनिवर्सिटी के कलम पंडितों की भान्ति केवल दफ्तरी काम ही न कर सकते थे किन्तु जरूरत पड़ने, पर बड़े २ राजे महाराजे चक्रवर्ती पृथ्वीपाल तक हाथ से काम भी कर सकते थे, जिन के सहारे उन के विपद् दिन कट कर संपद्काल में बदल जाते थे। महाराजा नल आपत्ति में १०००० दश हजार रुपया मासिक पर रथ चलाने पर नियुक्त हुये थे। दमयन्ती ने भी अपने दिन अपनी गुणावलि से ही काटे थे। इसी प्रकार पांडवों के आचार्यों ने इन्हें वेदों के साथ२ सांसारिक विद्यायें भी सिखाई थीं। इन्हींके सहारे इन्हों ने विचार किया हम वहां अपना क्या २ नाम रखें और किस२ काम से राजा को रिझा कर जीवन निर्वाह करें, यह पहले विचार लें। सब

से पहले धर्मराज ने कहा मैं राजसभा में 'कंक' नाम ब्राह्मण बन कर रहूंगा राजसभा के प्रबंध में भाग लेता हुआ मंत्री, बांधव, और राजा का मनोरञ्जन कर संतुष्ट रखूंगा। पूर्व पता पूछने पर युधिष्ठिर का प्राण सम सखा बतला दूंगा। २—भीम ने कहा मैं "बल्लव" नाम से पाक विद्या के काम पर लगूंगा। मनोरंजन के तौर पर मल्ल योधा से दो हाथ भी ले लिया करूंगा। और समय२ पर हाथी या वलवान् बैलों को पकड़ कर भी राजा का चित्त प्रसादन कर दिया करूंगा। ३ अर्जुन ने कहा मैं "बृहन्नला" नाम षंढ बन कर राजा का और अन्तःपुर की स्त्रियों का रमण करा दिया करूंगा। और अपना रूप वेणी और भूषण कंकण कुंडल और नूपुर पहर वैसा कर लूंगा।

गीतं नृत्यं विचित्रं च वादित्रं विविधं तथा।
शिक्षयिष्याम्यहं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः॥

वि० २। २९

अर्थात् नाना विध विचित्र बाजे गीत तथा नृत्य कर्म सिखा राजा की पुरस्त्रियों को शिक्षा दूंगा। ४ नकुल ने कहा मैं 'ग्रंथिक' नाम अश्वबंधक बन कर घुड़शाला सम्भाल लूंगा क्योंकि मैं अश्व शिक्षा, अश्व पालन, अश्व परीक्षण, अश्व चिकित्सा में विशेषज्ञ हूं। ५ सहदेव ने कहा मैं 'तन्तिपाल' नामक गोपाल बन कर निर्वाह कर लूंगा—क्योंकि मैं गौओं के लक्षण, रूप, चरितवंश, रोग, औषध, गुणागुणों को अच्छी तरह जानता हूं ६ द्रौपदी ने कहा मेरी ओर से आप निश्चिन्त रहें मैं खास तौर से अपने सती धर्म की रक्षा करती हुई खास

महाराणी सुदेषणा की 'सैरंध्री' नाम की दासी बन कर उस के केश संस्कार आदि कर्म में लग जाऊंगी। वह मेरी रक्षा करेगी मैं कर्तव्य पालन से उसे संतुष्ट रखूंगी। मेरा दुःख आप को न होना चाहिये।

सेवाधर्म पर पुरोहित का उपदेश — धर्मराज की प्रार्थना पर धौम्य ने कहा, धर्मपुत्र! यद्यपि तुम सब कुछ जानते हो तथापि सूचना रूप से कुछ चेतावनी सी देता हूं। क्योंकि यह सेवाधर्म आप को इस आयु में अब ही करना पड़ा है। पहले केवल पढ़ा होगा। राजन्! तैने और अर्जुन ने कृष्णा की रक्षा ध्यान पूर्वक करना। मान अपमान को सहते हुए भी अज्ञात रूप से वर्ष काटना। राजा को सदा खुले द्वार से देखना छुप कर नहीं देखना, सदा अपने योग्य स्थान पर बैठना। अपने को राज संमत समझ कर कभी यान, पर्यंक, पीठ, गज, रथ, पर अपनी इच्छा से नही बैठना। जहां २ बैठने से कोई भी शंका करे वहां न बैठना, क्योंकि राजगृहवास के ये ही नियम हैं। बिना पूछे राजा के आगे बोलना नहीं, और पूछने पर झूठ कभी न बोलें, क्योंकि मृषावादी मंत्री का राजा अपमान कर देता है। राजा के महलों में कभी मैत्री न करना, राजशत्रु वा अहित् से मेल मिलाप न रखना। राजा के सामने बिना आज्ञा के अपने स्थान को देखता हुआ भी जन्मांध की भान्ति, न देखे न बैठे यह मर्यादा है। राजा की सदा अग्निवत् वा देववत् सेवा करें मिथ्योपचार राजकुल में हानिकर होता है। जहां २ भर्ता लगावे लग जाना प्रमाद अहंकार क्रोध को राजसेवा में पास नहीं फटकने देना, सेवक सदा अनुकूल प्रिय और हित

कर ही समर्थन करे। भर्ता के शत्रुओं से न बैठे, न बात करे, राजा के सामने न बैठे किन्तु सदा पीछे की ओर बैठे। बुद्धिमान् अपने को राजा का प्यारा समझ कोई काम न करें किंतु प्रमाद रहित सदा हित और प्रियकर, काम करें। राजा के संमुख होठ, भुजा, जानू इच्छानुसार न फैलावें। अधोवायु छींक थूक, हास्य, शनैः२ उठकर करें। लाभ से हर्ष अपमान से शोक काम से श्रम जो न करे वह राज सेवक है। प्रसन्न मुख, बलवान, सत्यवादी, मृदु स्वभाव, इन्द्रियजित्, रह कर जो पुरुष छायावत् अनुसारी, हो वह राजसेवा के योग्य है। दूसरे को काम के लिये बुलाने पर जो झट आगे करने को तय्यार हो जाय। और आदि मध्य अन्त वा अन्दर बाहर काम करने को तय्यार हो वह उत्तम सेवक है। जो घर से निकल कर घर के प्रिय बन्धुओं को स्मरण न कर इसी कर्म में सुख जाने, और राजा के समान पहराव न करे ऊंचे बैठे नहीं, बार २ पास जाकर मंत्र न करे वह राजा का प्रिय होने योग्य है।

न कर्माणि नियुक्तःसन् धनं किंचिदपि स्पृशेत्।
प्राप्नोति हि हरन् द्रव्यं बंधनं यदि वा वधम्॥

विरा० ४। ४९

किसी राज कार्य पर लगा हुआ किसी से घूस न छूये क्योंकि पर धन लेने से बन्धन (कैद) वा प्राणदंड को पाता है। जो वस्त्र भूषण वाहन राजा दे उसे वर्ते इस से राज प्रिय होता। यह सूत्रोपदेश दे धौम्य ने कहा १ वर्ष ऐसा व्रत करलो फिर यथा सुख विहार करना। पुरोहित वचन सुन धर्मराज ने

*धन्यवाद पूर्वक स्वीकृति करते हुए माता कुन्ती महात्मा विदुर के बिना इस वास को गुप्त रखने का कह, प्रार्थना की ब्रह्मन् ! यह ऐसा ही होगा, इस के बाद दुःख तरने, सुख बढ़ाने, जय पाने का जो उपाय हो वह आप करें क्योंकि हम आप के आश्रित ही हैं ।

अधः पश्यस्व मोपरि ॥ ऋ० ८।३।१९

विराट नगरी में प्रवेश — परस्पर किये विचार के अनुसार पांडव अपने शस्त्रों और चिन्हों को नगर के बाहर एक भारी शमीवृक्ष पर रख, जो वृक्ष श्मश्मान के एक कोने पर था नगर के अन्दर अलग २ रास्तों और वेशों में प्रविष्ट हुए। तथा भिन्न २ समय पर अपना २ गुण बता राजा की ओर से सम्मान पूर्वक धर्मराज, भीम, नकुल, सहदेव, राज सभासद, भोजनशाला, घुड़शाला, गोशाला आदि विभागों के अध्यक्ष निश्चित हो गये, तथा हजारों रुपये की वृत्ति भी हो गई ।

रानी और द्रौपदी — द्रौपदी भी अपने काले सूक्ष्म नरम और लंबे केशों को दक्षिण ओर दबा एक मलिन वस्त्र पहन राजमहलों की ओर निकली, ज्यों ही वह बाजार में आई उस के गुथे देह मनोहर अंग मीठी तथा नर्म वाणी को देख सुन अनेकों स्त्री पुरुष उस के पीछे हो लिये । कईयों ने पूछा भद्रे तू कौन है ? क्या करना चाहती हो ? और उस ने उत्तर में कहा सैरन्ध्री (दासी) हुं जो कोई काम देगा उसका काम कर जीवन यात्रा करना चाहती हूं । इतना साफ कहने

पर भी उस के दासी पन पर लोक विश्वास न करते। चलती हुई कृष्णा को देख विराट पत्नी महाराणी सुदेष्णा ने बुलाया और कहा कौन हो? क्या करना चाहती हो? किस की हो? क्या काम आता है? द्रौपदी ने कहा सैरन्ध्री नाम की दासी हूं नौकरी चाहती हूं, पहले यादवों तथा पांडवों के राज भवन में रही हूं, केश संस्कार तथा स्त्री संस्कार पुष्प ग्रंथन आदि कार्यों का अभ्यास है। ये बातें सुन और उस का कमनीय देह देख रानी ने कहा रखने को तो मैं तुम्हें रख लूं पर कठिनता यह है कि कहीं तेरे इस सुन्दररूप से राजा ही न मोहित हो जाय? क्योंकि जब से तू आई हो मेरे महल की सब स्त्रियें भी आसक्त हो कर तुम्हें ही देख रही हैं पुरुषों की तो क्या बात?

द्रौपदी—इस की तो आप चिन्ता न करें न राजा विराट् न और कोई मुझे प्राप्त नहीं कर सकता, कारण एक तो मैं दुःखाचारवती हूं; दूसरे पांच गुप्त गन्धर्व मेरी हर समय रक्षा करते हैं अतः जो कोई मुझ पर कुदृष्टि करेगा उस के प्राण वे हर लेंगे। और वे अकारण क्रोधित नहीं होते। वरन जो कोई मुझे उच्छिष्ट न देकर पाद सेवा में न लगा कर विहित सेवा करावेगा, उस पर वे सदा प्रसन्न रहेंगे। इस निश्चय के अनुसार द्रौपदी राजमहिषी की सेवा में लग गई।

अर्जुन और कन्या शिक्षण — सब के पीछे नपुंसक वेश और रूप में अर्जुन ने राजा विराट् से कहा—नरदेव मैं गाना बजाना और नाचना बहुत अच्छा जानता वा जानती हूं मुझे अपनी पुत्री उत्तरा का नृत्य शिक्षक नियत कीजिये मैं उसे

और उस की सहचरी कन्याओं को राजकुलांगना योग्य शिक्षा से शिक्षित कर दूंगा ।

संमंत्र्य राजा विविधैः स्वमंत्रिभिः परीक्ष्यचैनं प्रमदाभिराशुवै । अपुंस्त्वमप्यस्य निशम्य च स्थिरं ततः कुमारीपुरमुत्ससर्जतम् ॥

वि० ११ । १२

अर्जुन का इंद्रिय संयम — बृहन्नला को नृत्यकलादि में कुशल जान मंत्रियों से विचार कर राजा ने उस के नपुंसकत्व की अनेक सुन्दरी प्रमदाओं से परीक्षा की और परीक्षा में निश्चित क्लीव सिद्ध होने पर उसे कुमारीपुर में भेज दिया ।

स शिक्षयामास च गीत वादितं,
सुतां विराटस्य धनंजयः प्रभुः ॥
सखीश्च तस्याः परिचारिकास्तथा,
प्रियश्च तासां स बभूव पांडवः ॥११ । १३॥
यैषा नर्तन शालेह मत्स्यराजेन कारिता ।
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति तथा गृहम्॥

वि० २२ । ३

परीक्षा अनन्तर नृत्यशाला में गीत वादित्र और नृत्य * तीनों कलाओं की शिक्षा अर्जुन ने राजापुत्री उत्तरा उस की सखी सहेली तथा परिचारिकाओं को पूरे संयम से दी। इस नृत्य शाला में सब कन्यायें दिन में सीखती और रात को

---

* नृत्य संगीत तथा वाद्य आर्यावर्त की पुरानी विद्यायें हैं। गन्धर्व वेद में इन तीनों का वर्णन है। जिस तरह संगीत में सामवेद से लेकर नारद संहिता प्रभृति अनेक ग्रंथ हैं इसी प्रकार नृत्य कर्म में भरत मुनि कृत १ भरत नाट्य शास्त्र, २राम कृष्ण भट्ट कृत राग कौतूहल नृत्य प्रकरण, पुण्डरीक विट्ठल कृत ३ नर्तननिर्णय। गणपति देव सेन कृत ४ नृत्य रत्नावलि अशोक मल्ल कृत ५ नृत्याध्याय। ६ रुद्रडमरू ७ संगीत दामोदर आदि अनेक ग्रंथ हैं। नृत्यकर्म में अप्सराओं के बिना १ नट राज महायोगी शिव २ देवर्षि नारद ३ योगीराज वासुदेव श्रीकृष्ण ४ कुन्ती पुत्र अर्जुन आदि सैंकड़ों प्रसिद्ध हैं। नृत्य कर्म का प्रचार अब यद्यपि व्यभिचारी पुरुष स्त्रियों में अधिक है परं पूर्वकाल में भागवत धर्म के अभ्युदय तक पुण्य लोकों में प्राय: संकीर्तन के साथ २ देव स्थानों में होता था। और कई लोग इसे जन्म साफल्य में कारण मानते थे जैसे एक कविका वचन है। "नयनों से नीर वहै जल गावत नाचत स्वेद चले सब अंगा। कै रण में गह खड्ग भली विधि लोहू के घाव करे रिपु अंगा। ए दोउ पूत जने जननी जग और सभी सुत कीट पतंगा"। इत्यादि०

अब भी न केवल भारत के पर्वतीय भागों जगन्नाथ के मंदिरों तथा नगरों और जंगली गांवों में इस का अच्छा बुरा

अपने २ घरों में चली जाती। आज कल के पश्चिमी विद्वान् अर्जुन के इन्द्रिय परीक्षण पर कदाचित् विस्मय करें पर आर्यों की हर एक विद्या ही विलक्षण है वे लोग पुरुष के मन

रूप पाया जाता है किन्तु अफगान जैसी अशिक्षित जातियों से लेकर अंग्रेज जैसी पूर्ण शिक्षित जातियों में जातीय शिक्षा के तौर पर नृत्य का नर नारियों में प्रचार है । और नगर २ में बड़े खर्च से नाच घर बने हुये हैं जहां प्रायः रात को नाच होता है। संस्कृत साहित्य में तो रात्रि का नाम ही नृत्यवती है ।

नृत्य के लाभालाभ पर हम कुछ विशेष नहीं कह सकते, पर ताल लय का आश्रय नृत्य से मिलता है । नृत्य सविलासांग विक्षेप का नामान्तर है। इस में शृङ्गार रस के भाव ही नहीं किन्तु वीर रस भी दिखाया जाता है।

नाट्यकला का अभिनय नृत्य का पूरक है। नाट्यकला बिना कोई जाति अपने को पूर्ण नहीं रख सकती, सैंकड़ों नाटक आर्य जाति में हर भाव के विद्यमान हैं। इस का मन शरीर वा समाज पर जरूर उत्तम भाव हो सकता है। योरुप की तो अनेकों नर्तकी जगत भर में प्रसिद्ध है। संगीत तथा वाद्य की भान्ति बहुत से पुरुष अपनी कन्याओं को अब भी यह सिखाते हैं। गति की सुन्दरता तो बिना नृत्य के बन ही नहीं सकती। गज गामिनी हंसगति, मयूर गति, आदि विशेष गति रुचि द्योतक अपने में भी विद्यमान हैं।

३—रण वाद्यों के बिना संगीत वाद्य (बाजे) भारत में मुख्यतया चार ४ प्रकार के थे।

संयम का जब पूरा अभ्यास करा देते थे तब फिर विकार की

---

१ ततम्—जो तारों से बनते जैसे सतार सारंगी ताऊस तंबूरा आदि २ शुषिरम्—जो सूखे काष्ठ वंश आदि से बनते हैं जैसे वंशी, बीणा बीन आदि। ३ आनद्धम्-चर्म से मढे हुये मृदंग, ढोलकी, तबला, डफ, नकारा ढोल आदि। ४ घनम्—कांस्य आदि धातु निर्मित छेना, मंजीर, ताल, घंटा घड़ियाल आदि। इन में से ततों (तार वाद्यों) के भी १ अलाबणी २ ब्रह्मवीणा ३ किन्नरी ४ लघु किन्नरी (फोनोग्राफ) ५ विपञ्ची ६ बल्लकी ७ ज्येष्ठा ८ चित्रा ९ ओषवती १० जया ११ हस्तिका १२ कुब्जिका १३ कूर्मी १४ शारंगी १५ परिवादिनी १६ त्रिशत्री १७ शशचन्द्री १८ नकुलोष्ठी १९ ठंसवी २० अडम्बरी २१ पिनाकी २२ निबंध २३ शुष्कल २४ गदावार २५ बनहस्त २६ रुद्र २७ शर मडल २८ कपिलास २९ मधुस्यन्दी ३० घोण आदि अनेक भेद थे।

इसी प्रकार "शुषिरके" १ वंश २ पारो ३ मधूरो ४ तिन्तरि आदि "आनद्ध" के १ मुरज २ पटह ३ ढक्क ४ मृदंग ५ भेरी आदि "घन" के १ करवाल २ कांस्य बज्र ३ जयघंटा ४ शुक्ति का ५ मंजीर आदि अनेक भेद हैं। मतग मुनि, और भरत मुनि कृत ग्रंथों में इन का बहुत विस्तार पाया जाता है। केवल वंश, (वंशी) बांस, खैर, रक्त चन्दन, श्री खण्ड, हस्तीदन्त, सुवर्ण, चान्दी, ताम्बा, पीतल, लोह, बल्लौर आदि से नाना विध बनाया जाता था। आवश्यकता है पूना कलकत्ता आदि रिसर्च इन्स्टीट्यूट में बैठ कर इन विद्याओं के विद्वान इस विषय को अधिक खोलें।

शंका ही न हो सकती थी। क्योंकि विकार पहले मन से ही पैदा होते हैं। वह मनो निग्रह केवल अध्यात्म विद्या के विद्यार्थियों के लिये ही आवश्यक न था किन्तु आयुर्वेद धनुर्वेद के विद्यार्थियों को भी जरूरी था। मास पक्षी के वेधन, स्वयंवर लक्ष्य वेधन में, अर्जुन के अग्रसर होने में उसीने काम दिया था। सारांश अर्जुन अब उस श्रेणि का संयमी होगया था जिन्हें उर्वशी आदि अप्सरायें इन्द्रभवन में भी प्रभावित न कर सकती थीं। विराट नगर की रमणियों की तो कथा ही क्या है? पाठक क्या ऐसे पुरुषों को ऋतुकालाभि गामी होना या बारह २ वर्ष मनोरम वनों में स्त्रियों के संग रह कर ऊर्ध्व रेता रहना कोई कठिन काम है? इस प्रकार अपना २ काम करते पांडवों को वहां तीन मास व्यतीत होगये। आपस में बात चीत करने के लिये जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन, और जयद्बल क्रम से पांडवों ने नाम रखे हुये थे।

सिंह और हाथियों से मल्ल युद्ध } विराट नगर में रहते जब चतुर्थ मास जा रहा था तब वहां एक ब्रह्मोत्सव नाम राष्ट्रीय उत्सव हुआ जो कदाचित् राष्ट्र की शारीरिक मानसिक सामाजिक उन्नति के लिये सदा हुआ करता था, इस में बहुत सी खेले, पशु शिक्षण, पक्षी दर्शन मल्ल युद्ध आदि हुये। मल्ल केवल पुरुष पुरुषों में नहीं किन्तु पुरुष और पशुओं में भी हुआ करते थे। मल्ल युद्ध में इन दिनों जीमूत नामक एक महा मल्ल ने दूर देशों से आकर मत्स्य देश के बहुत से मल्लों को पछाड़ कर फिर अहंकार से राष्ट्र भर को ललकारा तब राजा विराट ने उस के साथ 'बल्लव' (भीम) को भिड़ाया, उसने

तत्काल अभ्यास तथा पराक्रम से गिरा कर परास्त किया जिस से इस के बल को सारे जन समुदाय में प्रशंसा होने लगी। राजा भी प्रसन्न हुये।

ततोऽव्याघ्रैश्च सिंहैश्च द्विरदैश्चाप्ययोधयत्।
पुनरन्तः पुरगतः स्त्रीणांमध्ये वृकोदरः॥
योध्यते सः विराटेन सिंहैर्मत्तैर्महाबलैः॥

वि० १३।४१।

फिर विराट ने मदान्ध हस्ती वाघ तथा शेरों से भीम का युद्ध कराया। और वही युद्ध व्याघ्रादि से फिर अन्तःपुर में स्त्रियों को दिखाने के लिये कराया। सारांश भीम ने अपने निश्चित काम और पराक्रम से राजा को प्रसन्न किया। और इसी प्रकार अर्जुन ने नृत्य गीत से नकुल ने शिक्षित घोड़ों की खेलों से सहदेव ने सिखाये हुये जातिवन्त बैलों की गतियों से प्रसन्न किया। राजा ने सब को धन का पारितोषक दिया। द्रौपदी ने भी अपने काम धन्दे से महाराणी सुदेष्णा और अन्य स्त्रियों को संतुष्ट कर पारितोषक प्राप्त किया॥

कीचक वध खंड २

(परदारा संकल्प का फल 'अकाल मरण')

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधान मुतस्त्रियं मायया शाशदानाम् ॥ (ऋ० ७।१०४।२४)

रन्धया शासदव्रतान् ॥ अथर्व०

नाततायी वधे दोषः । मनु० ८।३५०

कृष्णा का रूप वा शील } कृष्णा का सुन्दर सुडौल गुथा हुआ शरीर
विशाल नेत्र मधुर भाषण स्पर्धनीय शील

देख कर विराट् का सेनापति कीचक जो उस का साला था मोहित हो गया । और समय २ पर डरा कर वा झुक कर लालच दिखा भोग विलास का आनन्द सुना कृष्णा को अपनी काम इच्छा पूरी करने के लिये कहता !

इस पर द्रौपदी ने कहा—

परदारे न तेबुद्धिर्जातु कार्या कथंचन ।
विवर्जनं ह्यकार्याणामेतत्सु पुरुष व्रतम् ॥ १४।३६

सत्पुरुष परस्त्री की इच्छा नहीं किया करते यह मंद कर्म त्याग योग्य है, आप ऐसी बुद्धि न करें । इस पाप की इच्छा से ही पुरुष अपयश तथा महा भय को प्राप्त हो जाता है । आप अपने को बचावें ।

कीचक—इस के बुरे फल जानता हुआ भी बोला—वरानने ! ऐसा कह कर मुझे दुःखित न कर किन्तु मेरे अनन्त ऐश्वर्य वा वैभव का आनन्द उठा कर दासता के मलीन आवरण को परे फैंक ।

द्रौपदी—कीचक तेरे भले के लिये कहती हूं, मेरी इच्छा न कर क्योंकि ५ पांच गुप्त गन्धर्व मेरी सदा रक्षा करते हैं, उन्हें मालूम हो गया तो तेरे प्राण हर लेंगे ! उन के कुपित होने पर तूने चाहे पृथ्वी की तह में घुस जाना चाहे आकाश में उड़ जाना वा समुद्र पार हो जाना तुझे वे जीता न छोड़ेंगे। सूतपुत्र ! तू मुझे चाह कर मौत को बुला रहा है जैसे कुपथ्य सेवी रोगी कालरात्रि को बुलाता है ? तेरे हित कर मंत्री इस समय क्यों सो रहे ? इस दिन की बातचीत द्रौपदी और कीचक ने रानी सुदेष्णा को अपने २ ढंग से अलग २ समय में कह दी और उस की अपने २ लिये सहायता भी मांगी।

दूसरे दिन सुदेष्णा ने न चाहती हुई भी द्रौपदी को कीचक भवन में कुछ पीने की वस्तु देकर भेजा । कीचक-ने वहां त्रिदोष रोगी की भान्ति पुराना प्रलाप शुरू किया । द्रौपदी-ने भी वही सान्त्वन पूर्वक धर्म वर्धक पाप नाशक औषध दी । पर दुर्भाग्य वश मरणासन्न रोगी की भान्ति कृष्णा के कमनीय कोमल दिव्य देह की ओर राक्षसी हाथ बढ़ाया और स्वयं उठ कर पागल की भान्ति झपट गया । तिस पर वीरसुता वीर जननी वीरांगना याज्ञसेनी ने दुर्गा की भान्ति शुम्भ निशुम्भ दैत्य की तरह वीर हाथों से भूमि पर धड़ाम से गिरा दिया । और स्वयं बाहर आ गई ।

राजसभा में न्याय की प्रार्थना } कीचक से बच कर सती कृष्णा ने विराट् सभा में उसके किये का फल दिलाने के लिये कहा—कीचक अधर्मी है, मत्स्यराज तथा इस के सभा सद भी धर्म नहीं कर रहे जिन्हों ने इस पापी को राज्य के ऊंचे पद पर रख छोड़ा है, इस पर विराट् ने अपना अज्ञानपन बता कर न्याय की आशा दिलायी और सभासदों ने कीचक की निन्दा तथा देवी को साधुवाद कह सान्त्वन दिया। धर्म-राज ने उसे यह कह कर कि सैरन्ध्री यह दुष्ट दमन का काल नहीं, मत्स्यराज को कष्ट न दो गन्धर्व तेरा काम करेंगे। सुदेष्णा के महल में भेज दिया। पर मस्तक पर पसीना धर्मराज के भी आ गया था।

यद्यपि जग दारुण दुःख नाना,
सब से अधिक जाति अपमाना।

भीम से कृष्णा का रुदन } विराट् नगर में रहते कृष्णा को ग्यारवां महीना जा रहा था १२ वर्ष उस ने दुःख मय बन में काटे थे, सारे समय में उस ने इतना दुःख नहीं माना जितना कीचक के सती धर्म हरने के लिये हाथ बढ़ाने में माना, क्योंकि इसे वह जाति अपमान समझती थी। पांडु की पुत्रवधु को इतर चाहे, यह उसे सह्य न था, इस लिये उस ने भीम से कहा क्षत्रिय नन्दन! मुझे १२ वर्ष के वनवास में कोई कष्ट नहीं हुआ, और न ही इस परिश्रम में हुआ जो रानी

सुदेष्णा के निमित्त चन्दन आदि घिसने में उठाना पड़ा। यद्यपि मैंने अपने सारे जीवन में माता कुन्ती के स्नान उबटन के बिना अन्य किसी की कभी दासता (सेवा) नहीं की। पर कीचक जो मुझे पाप की बातें कहता है इस का मुझे भारी दुःख है। राजसभा में पता नहीं कब और क्या न्याय मिले। आपने बनवास काल में जटासुर और जयद्रथ के हमलों से मेरी रक्षा की थी। माता कुन्ती ने भी बन चलते समय मेरे दुःखों का दारू आप के वीरत्व को ही बताया था। इस लिये आप इस दुःख को शीघ्र दूर करो। यद्यपि दुःख मुझे यह भी है कि आप पांचों भाई दूसरे की आज्ञा में दूसरे के हाथों अन्न वस्त्र लेकर निर्वाह करते हो यह मेरे हृदय में विष बुझे शल्य की भान्ति चुभता है पर इस के लिये हम विवश हैं। शास्त्रों में स्त्रियों की रक्षा सब से जरूरी भी है, क्योंकि कुल रक्षा धर्म रक्षा मानरक्षा स्त्री रक्षा से ही होती है। अन्यथा व्यभिचार फैलने से सर्वनाश हो जाता है। कीचक को दण्ड देना मेरे सम्बन्ध में पापाचार से ही नहीं किन्तु—

आहरेदपि वित्तानि परेषां क्रोशतामपि।
न तिष्ठतेस्म सन्मार्गे न च धर्मं बुभूषति॥

वि० २१। ३७

वह दूसरों के चिल्लाते रोते हुए भी धन हरता है। कभी सन्मार्ग में चलता नहीं न ही किसी धर्म कार्य की उस से आशा है, वह दुष्टात्मा अविनीत प्रकृति है। इस लिए उस का आज ही सुधार होना चाहिये क्योंकि क्षत्रिय का दुष्ट दमन

परम धर्म है। यह सब सुन भीम ने कहा उस दुष्ट को तुम जैसे कैसे उसे इस नृत्यशाला में आज रात को ले आना यह स्थान रात को खाली होता है मैं वहां उस का कर्म फल उसे चखा दूंगा। इस संकेत के अनुसार द्रौपदी ने यह कह कि रात के वक्त शून्य मन्दिर नृत्यशाला में कोई न देखेगा कीचक को रात को वहां आने के लिये सन्तुष्ट कर लिया, और भीम पहले ही वहां जा पड़े थे। और पीछे कामान्ध कीचक उसी नृत्य मंच पर कपड़ा लिये पड़े भीमसेन को द्रौपदी समझ कई प्रकार के कामियों के विलास शब्द कह कर अपने को उस घड़ी के लिये कृतकार्य समझ आगे बढ़ने लगा। तब झट महा बली भीम ने उसे पकड़ उस के रूपलावण्य धन धान्य की बड़ाई करते हुए इस निर्जन स्थान में पहुंचने के लिये बधाई दी। पर भीम की भीम मूर्ति क्रूर हाथ रोष भरी सिंह बाणी सुनते ही कीचक महाशय का मुंह फक हो गया, प्राण बाहर निकलने को फड़कने लगे, पाऊं उखड़ कर पृथ्वी घूमती सी दिखाई देने लगी। उसने सोचा मुझ से धोखा हो गया है। मैं कामिनी मन्दिर में नहीं चंडी कोप घाट पर बलि देने के लिये लाया गया हूं, पर अब बन क्या सकता था कामी जनोंको अन्ततः जिस घाटपर उतरना ही होता है वहां वह पहुंच चुका था। निदान भीम ने उसे नीचे गिराया उसने भी अपना बल मारा थोड़ी देर में भीम ने उस की हड्डी पसली चूर २ कर हर एक मर्म स्थल को फोड़ डाला और बहुत थोड़े काल में मर्त्यलोक के उस कंटक को परलोक गामी कर भीम उच्च स्वर से बोला—

कीचक वध से शान्ति लाभ ।

अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुर्भार्यापहारिणम् ।
शान्ति लब्धास्मि परमां हत्वा सैरंध्रि कंटकम् ॥
पश्येनमेहि पांचालि ! कामुकोयं यथाकृतः ॥

वि० २२ । ७९ । ८४

आज मैं भाई (अर्जुन) की स्त्री को हरने की इच्छा वाले * आततायी द्रौपदी के कांटे कीचक को मारकर अनृणी हुआ हूं, और अब निश्चय से परम शान्ति को लभूंगा । और द्रौपदी को अग्नि के उजाले में लाकर कहा याज्ञसेनि ! देख यह कामी किस दशा को पहुंच गया है और यह भी बताया कि † सुन्दरि ! जो भी पर स्त्री की इच्छा करते हैं उन की

---

* अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनाप हः ।
क्षेत्रदारा हरश्चैव, षडेते ह्याततायिनः ॥ वशि० ३।१६

† पाठक देखिये पुराने आर्यावर्त का रहन सहन तथा रूप वेश जयद्रथ हरण कीचक वध, समय कृष्णा की उमर लगभग ७० सत्तर वर्ष के थी पर फिर उसके केश का न शरीर गुथा हुआ गति युवतियों सी मनोहर जिस की साक्षी कीचक और जयद्रथ की मनोकामना से प्रतीत होती है और द्रौपदी ५ पांच वीर पुत्रों की जननी थीं आज कल शायद २० वर्ष की २ की बच्चे की मां बनने से ही वृद्ध हो जाया करती है ।

शास्त्रों में यही गति लिखी है । इस रात को सारे नगर में रौला पड़ गया कि गन्धर्वों ने कीचक को बुरी तरह मार दिया है । दूसरे दिन कीचक के दाह संस्कार के समय कई कीचक अनुयाइयों ने यह प्रस्ताव किया, कि सैरन्ध्री के लिये इसका मरण हुआ है, अतः उस को भी प्राण वियुक्त कर देना चाहिये । यह विचार हो ही रहा था कि भीम वेश बदलकर एक बीस गज़ (साठ फुट) लंबा ‡ वृक्ष उखाड़ वहां पहुंचा, और कीचक के साथियों का वध करने लगा । इस से भयभीत हो सब ने द्रौपदी के लिये वे विचार छोड़ कीचक का दाह कर्म पूरा किया ।

विराट गोहरण तथा कौरव पलायन खंड ३ ।

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथम भक्षः ॥ (ऋ० ६।२८।६)

---

‡ आजकल जैसे खूंटा उखाड़ना घुड़सवार सिपाहियों को सिखाया जाता है, इसी प्रकार पुराने काल में वृक्ष उखाड़ने सिखाये जाते होंगे, और भीमसेन इस कर्तव्य में बड़े निपुण प्रतीत होते हैं क्योंकि समय २ पर इन का वृक्ष उखाड़ने का वर्णन आता है । विशेष देखो वि० पर्व अ० २३

उतनो गोमतस्कृधि हिरण्य वतो अश्विनः।
इलाभिः रं रभेमहि ॥ (ऋ० ८।३२।९)

१३ दिन की याचना } कीचक वध के पीछे द्रौपदी के गुप्त रक्षक गन्धर्वों का भय सारे देश में फैल गया। और इसी से भीत हो कर राजा विराट ने सुदेष्णा से द्रौपदी को कहलाया कि तेरे कारण हमारा बहुत नाश हुआ है आगे को और नाश न हो इस लिए तू अब राजमहल छोड़ जल्दी दूसरी जगह चली जा। तब द्रौपदी ने विनती की "राजन्! मुझे केवल तेरह दिन और राजमहल में रहने दें, इस के बाद मेरे पति मुझे ले जाएंगे, और वे इस उपकार का बदला तुम्हें अवश्य देंगे" इस प्रकार कुछ दिन और वहीं रहने की द्रौपदी ने आज्ञा प्राप्त कर ली।

विराट पर इकठा हमला } इधर जब से पांडवों ने अज्ञातवास आरंभ किया था, तब से दुर्योधन के गुप्त दूत इन की ढूंड में लगे थे ताकि ढूंड कर फिर १२ वर्ष का बनवास दुःख दिखाये। पर उन्हें सिवा इस के कि दूत,रथी परिवार सहित द्वारका पहुंच गये और कुछ पता न चला। कई समझते थे द्रौपदी और पांडव मरगये, कई समझते कहीं फसगये। हां दूतोंने विराट सेनापति कीचक का गन्धर्वों से वध, और त्रिवगपति सुशर्मा का विरोध दुर्योधन को जरूर बताया, और विराट राज्य के ले लेने की सलाह दी। दुर्योधन ने सुशर्मा को दक्षिण की ओर से हमला करने को, और स्वयं उत्तर की ओर से आक्रमण

करने की विचारणा कर जीतने पर मत्स्यराज को बांट लेने का निश्चय किया। इस निश्चयानुसार सुशर्मा ने कृष्ण पक्ष की सप्तमी को चल कर अष्टमी को विराट की हजारों गौयें पकड़ ली। गोवर्ग रक्षकों ने राजा को सूचना दी। राजा अपने भाई शतानीक ज्येष्ठ पुत्र शंख और बृहन्नला के बिना कंक बल्लव आदि वीरों को सेना सहित गौ छुड़ाने निकला। इनमें शतानीक शंख आदि वीरों ने—

सवज्रायसगर्भं तु कवचं तत्र कांचनं ।११।
तर्वपार सवं वर्म कल्याण पटलं दृढम् ।१२।
दृढमायसगर्भं च श्वेतं वर्म शताक्षिमत् ।१५।
कवचानि विचित्राणि मृदूनि च दृढानि च ।२६।

अन्दर से दृढ फालादी अभेद्य और बाहर से सुनहरी रुपहरी नर्म पतले चमकीले संजोय पहने और युक्त शस्त्र अस्त्र ग्रहण किये। रण भूमि में जा दोनों सेनायों का खूब युद्ध हुआ। और रात आ जाने से कुछ देर के लिये युद्ध बन्द हो गया। फिर चान्द के उजाले में युद्ध आरम्भ हुआ। तब त्रिगर्त राजा ने विराट का रथ तोड़ उसे पकड़ लिया। और शेष सेना में निराशता फैलने लगी।

धर्मराज की कृतज्ञता

मत्स्यराजः परामृष्टास्त्रिगर्तेन सुशर्मणा।
तं मोचय महाबाहो ! नगच्छे द्विषतां वशम् ३३।१२
उषिताः स्म सुखं सर्वे सर्वकामै सुपूजिताः।

भीमसेन त्वयाकार्या तस्य वासस्य निष्कृतिः १२

सेना की निराशा और राजा का संकट देख धर्मराज ने भीम से कहा भीम ! सुशर्मा ने राजा को बांध लिया है इसे शीघ्र छुड़ाना चाहिये। हम कई समय में मत्स्य राज्य में सुख पूर्वक बसे हैं और सब सुख तथा पदार्थों से सुपूजित रहे हैं कृतज्ञता पुरुष का प्रधान लक्षण है इस लिये तू जल्दी इस का बदला मत्स्यराज को दे। यह सुन भीम उधर चले गये, धर्मराज ने थोड़ी देर में हज़ारों शत्रुओं को इधर स्वर्ग लोक के मार्ग पर पहुंचा दिया। थोड़ी देर में भीम सुशर्मा को बांध मत्स्यराज को सम्मान पूर्वक छुड़ा कर धर्मराज के पास लाये। विराट राजा को देख धर्मराज ने प्रणाम करते हुये प्रसन्नता प्रगट की और सुशर्मा के बन्धन खुला अपने सदा के स्वतंत्रता प्रिय स्वभावानुसार नम्र शब्दों में कहा—

अदासोगच्छमुक्तोसि मैवंकार्षीः कदाचन ॥

३३। ६१।

त्रिगर्त राज ! यद्यपि तुम इस समय महाराज विराट के दासत्व में हो पर अब तुम्हें अदास कर छोड़ते हैं जाओ फिर ऐसा काम न करना। राजा विराट भी इस महासंकट से छूट आनन्द अनुभव करता हुआ कृतज्ञ भाव से धर्मराज से बोला—"आज मेरा राज्य तथा प्राण तुम्हीं ने बचाये हैं अतएव मत्स्यराज के सच्चे मालिक आप ही हो" यह कह बहु मूल्य वस्त्र भूषण शस्त्रास्त्र रत्नादि दे कृतज्ञता पूर्वक पांडवों का सत्कार किया।

कौरवों का हमला } सुशर्मा जिस दिन चला, उस से दूसरे दिन पूरे दल बल से कौरव चले, और उन्होंने उत्तर की ओर से विराट पुर पर हमला कर साठ हजार गौएं हर लीं। गोपाध्यक्ष ने नगर में आकर राजकुमार को सूचना दी, जिसे सुन, राजकुमार उत्तर बोला, मैं अभी कौरवों को जीत गाएं ले आता, यदि कोई उत्तम सारथी होता। इस पर सैरंध्री ने कहा यह बृहन्नला रथ चलाने में प्रवीण है, इसे कहो! उत्तर ने कहा मैं नपुंसक से कैसे अभ्यर्थना करूं? सैरन्ध्री ने कहा तुम्हारी बहिन इस से विद्या सीखती है वह कह दे। इस पर उत्तरा के कहने पर बृहन्नला, सारथी बन जब युद्ध को चलने लगे उत्तरा और उस की सहेलियों ने कहा बृहन्नले! हमारे खेलने के लिये कौरवों के वस्त्र लाना। बृहन्नला बोला यदि राजकुमार उन्हें जीतेंगे तो मैं अवश्य तुम्हारे लिये वस्त्र लेता आऊंगा।

सारथी से योद्धा और योद्धा से सारथी } युद्ध क्षेत्र में कौरवों के अथाह बल और भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन आदि प्रसिद्ध वीरों की ध्वजा तथा उन के जयघोष को देख सुन, नवयुवक अकेला अनुभव हीन राजकुमार उत्तर घबरा गया। और अर्जुन के वीर भाव अपने चिर अपकारियों के झुण्ड को देख कर एक बार ही जाग उठे। उत्तर ने कहा—बृहन्नले! मेरा बाप सारी सेना ले कर दक्षिण की ओर लड़ने गया है, इन के बड़े कटक तथा

विजयी, प्रसिद्ध २ महारथी योद्धाओं से मैं अकेला लड़ना नहीं चाहता। मेरा रथ लौटा कर नगर को ले चल। मेरी गौएं जाय वा राज्य भी जाय परं मेरे प्राण बचा मैं तुझे बहुत धन दूंगा।

नैषः शूरैःस्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम्।
श्रेयस्तु मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम्॥

३८। २६

बृहन्नला ने कहा क्षत्रिय के लिये डर कर युद्ध भूमि से भागना अच्छा नहीं। युद्ध में मरने से कल्याण होता है। और तुम जिन स्त्रियों के सामने वीर कथा कहते आये हो, भागकर उन्हें कैसे मुंह दिखाओगे इत्यादि बातों से द्विविधा मे पड़े राजकुमार ने पूछा फिर मैं अब क्या करूं? युद्ध में जय की आशा नहीं क्योंकि जय होता है धैर्य वालों को मेरा धैर्य गिर गया है। बृहन्नला ने कहा और नहीं तो तुम सारथी बना मैं युद्ध करता हूं तुम्हें सारथी कर्म आता है क्या? उत्तर ने कहा, सारथी कर्म मुझे बहुत अच्छा आता है मैंने इसे गुरु‡ से यथा विधि सीखा है। परं तुम वीरों से युद्ध कैसे करोगी, युद्ध स्त्रियों वा नपुंसकों का काम नहीं यह भी कौरवों से। बृहन्नला ने कहा मैं स्त्री वा नपुंसक नहीं किन्तु वीर क्षत्रिय का वीर पुत्र हूं। केवल बड़े भाई की आज्ञा से यह एक वर्ष के लिये व्रत किया हुआ है। मैं इन सब को अकेला जीत लूंगा।

---

‡ विराट पर्व ४५। १८

इस बात चीत के पीछे घर से चला सारथी योद्धा, और योद्धा रथ हांकने के लिये सारथी बन गया ॥

गांडीव धनुष की संभाल } रथ का सारथी बना उत्तर को बृहन्नला ने कहा इसे अमुशेश्मी वृक्ष के नीचे ले चल, वहां जाकर उसने विशेष वेष्टनों में लपेटे हुये बहुत से शस्त्र अस्त्र उठाये । जिन में से युधिष्ठिर की सुवर्ण खड्ग जो व्याघ्र चर्म के म्याने में थी देख कर । और सुवर्ण के सैंकड़ों सूर्य चन्द्रों के चित्रों से चित्रित धनुषों को देख उत्तर बड़ा प्रसन्न हुआ ।

वराह कर्णव्यामिश्रान् शरान् धारयते दश ॥

४२ । ८

यहां से ही अर्जुन ने गांडीव धनुष उठाया, जिस में पांच व्याघ्रों के चित्र खिचे थे । और जिस में एक बार ही दश २ वराह कर्ण वाण चढ़ सकते थे । गांडीव धनुष ले चार घोड़ों के रथ पर, वानर की ध्वजा लगा, जब अर्जुन वेग से युद्ध क्षेत्र की ओर बढ़ा तो—मार्ग में इतनी धूल उभर रही थी जैसे वन में एक बार हजार हाथी गुजर रहा हो । और धनुष को टंकार देता ज्योंही अर्जुन आगे बढ़ा, और उस की प्रकाश-मान ध्वजा शत्रुओं को दिखाई देने लगी, तब द्रोण बोले—

एतद् ध्वजाग्रं पार्थस्य दूरतः संप्रकाशते ।
एष घोषः सरथजोरोरवीति च वानरः ॥५३।४

एतद् ध्वजाग्रं पार्थस्य दूरतः संप्रकाशते ।
एष घोषः सरथजो रोरवीति च वानरः ५३ । ४

यह ध्वजा का अग्र अर्जुन का दिखाई दे रहा है, रथ घोष भी उस का ही है। यह देखो वानर रोता हुआ सुनाई दे रहा है। कईयों ने कहा कोई अनर्थ होने वाला है। युद्ध में जय निश्चित नहीं होती अच्छा है । पांडवों को कुछ भाग दे सन्धि कर ली जाय। इस पर दुर्योधन बोला–

नाहं राज्यं प्रदास्यामि, पांडवानां पितामह ।
युद्धोपचारिकं यत्तु तच्छीघ्रं प्रविधीयताम् ॥

पिता जी मैंने राज्य पांडवों को देना नहीं, आप युद्ध के कार्य को आरम्भ करें । दुर्योधन की आज्ञा से युद्ध छिड़ गया ।

कुरुदल की ध्वजायें } युद्ध छिड़ने के समय अर्जुन ने जान पहचान के लिये, उस समय के प्रधान योधाओं का परिचय देते हुए कहा–उत्तर। जिस की ध्वजा में सुवर्ण का कमंडलु है वह मेरा आचार्य गुरु द्रोण हैं । जिस की ध्वजा पर, धनुष का चिन्ह है, वह गुरुपुत्र अश्वत्थामा है जिस की ध्वजा पर, सोने का नाग है, वह राजा सुयोधन हैं, हस्तियों की पंक्ति की ध्वजा वाला, कर्ण है। और वह स्वेत छत्र वाला, जिस की ध्वजा में सूर्य तारा का निशान है, वह

पितामह भीष्मजी हैं । और जिस की ध्वज़ा पर सुवर्ण वेदि (हवनकुंड) बना है वह कृपाचार्य हैं। अब जहां २ जब २ मैं ज़ाने का इशारा करूं तैने वहां २ ही रथ ले चलना।

कौरव वस्त्र हरण और पलायन

लड़ाई शुरु होते ही अर्जुन के चमकदार, शब्द वाले तीखे बाणों से बड़ी शीघ्र बड़े २ वीरों के पाऊं उखड़ गये । कर्ण आदि अनेक हत आयुध हो गये। बहुत से संज्ञा हीन हो कर गिर पड़े। इस दशा से लाभ उठा, उत्तर ने बहुत से रंग बिरंगे वस्त्र हर लिये । बहुत देर तक भीष्म जी से लड़ाई रही । अन्ततः भीष्म ने भी कौरवों को गौयें छोड़ पीछे लौटने की ही सलाह दी । जिसे मान कौरव मुखिया लौट गये। और इधर उधर बिखरे सिपाहियों ने अर्जुन की शरण में आकर अभय स्थान प्राप्त किया । और अर्जुन की आज्ञा से वह भी घरों को वापस चले गये।

विजय घोषणा का विचार

इधर अर्जुन गौयों और गोपालों को आगे कर, उत्तर कहने लगे कि तुम जानते हो मेरे भाई तेरे पिता के राज्य में गुप्त वास कर रहे हैं, इस लिये यह सारा विजय कर्म तूने अपने नाम से घोषित कराना यदि मेरा नाम बताया तो राजा डर कर कष्ट पायेगा । इस को उत्तर ने स्वीकार किया। और जयघोषणा के लिये शीघ्रगामी दूत भेज दिये । और स्वयं रथ को उसी वृक्ष के नीचे ले जा, शस्त्र रख वस्त्र बदल, वृहन्नला वागें पकड़ राजकुमार को रथ में बैठा नगर की ओर शनैः २ चले।

विराट राज को घबराहट } त्रिगर्त को जीत, नगर में आकर जब विराट ने सुना कौरवों से लड़ने केवल राजकुमार उत्तर बृहन्नला को सारथी बना कर चला गया है। उसे कुमार के जीवन की बड़ी चिन्ता हुई। इस की सहायता के लिये भारी सेना को वहां भेजने की झट आज्ञा दे दी। यद्यपि कंक ने कहा भी कि यदि बृहन्नला सारथी है तब जरूर कुंवर जीतेगा पर विराट राज को विश्वास नहीं आया, उत्तरोत्तर उस की चिन्ता बढ़ गई।

दूतों का आगमन } राजा की सेना अभी चली न थी कि इतने में कुछ दूतों ने राजसभा में आकर उत्तर विजय और गौओं के लौटाने का सन्देश दिया जिसे सुन, कंक महोदय ने राजा से कहा, राजन्! बधाई हो आप के पुत्र को जय हुई है और कौरव भाग गये, गौयें सब गोपाल वापस ला रहे हैं। मेरे मन में तो यह जय ध्रुव ही थी, क्योंकि सारथी बृहन्नला था। यह सुन राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। उस ने दूतों को पुरस्कार दिये। और नगर में जयोत्सव मनाने के लिये मन्त्रियों को आज्ञा दे दी, एक मत्त हस्ती पर बैठ घंटे वाले ने नगर के गली कूचे चौक बाजार में सब जगह जयघोषणा घोषित कर दी।

विजयी का सम्मान } नगर घोषणा के पीछे विजयी कुमार के सन्मान के लिये, बाजों, गाजों सहित नगर के स्त्री पुरुषों को नगर से बाहर से लेने के लिये भेजा,

और स्वयं कंक आदि राज सभा के सदस्यों से कुमार की वीरता का वर्णन करता हुआ, दर्बार लगाने में लग गया।

धर्मराज की दूरदर्शिता } बात चीत में जब कंक ब्राह्मण के वेश में ठहरे हुए युधिष्ठिर ने जब अपनी सत्य रक्षा के लिये बृहन्नला की प्रशंसा की तो उसे सुन न सहते हुए विराट का हाथ उन के नाक पर लग गया, जिस से नाक से रक्त जारी होने लगा। जिसे धुलाने और सम्भालने के लिये सैरन्ध्री सुवर्ण का जल पूर्ण कमंडल और चांदी की हस्तपात्री लेकर आगई। और कंकदेव का मुख धुला दिया। इतने में द्वारपाल ने सूचना दी कि राजकुमार उत्तर और बृहन्नला शत्रु को जीत द्वार पर ठहरे हुए हैं। राजा ने सूत को आज्ञा दी, दोनों को अन्दर लिवा लाओ। पर कंक ने उठ कर सूत को समझाया कि पहिले एकले राजकुमार को फिर दुबारा आज्ञा मिलने पर सारथी को लाना। कारण यह था कि अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि यदि मैं बड़े भाई के शरीर से बिना युद्ध के रक्त निकलता वा भूमि पर गिरता देखूंगा तो रक्त निकालने वाले का संहार किये बिना न छोड़ूंगा। इस कड़ी प्रतिज्ञा को जान धर्मराज दीर्घ दर्शिता से सम्भलना चाहते थे। तथा अपने उपकारी विराट की किसी प्रकार की हानि न चाहते थे। अस्तु ऐसा ही किया गया और राजकुमार सन्मान पूर्वक आगये, उन्होंने पहले पिता के पादों का वन्दन किया, फिर कंक देव का सत्कार किया। कंक जी के नाक का रक्त देख कर पिता से पूछा इन को किस ने ताड़ा है। राजा ने कहा मैंने क्योंकि यह बार २ बृहन्नला की प्रशंसा करता था। राज

कुमार ने कहा आप ने बड़ा अनर्थ किया जो ब्राह्मण देव* को कुपित किया इन्हें शीघ्र प्रसन्न करो वरन सर्वनाश हो जायगा। कुमार के कथनानुसार राजा ने कंक को विनय भाव से शान्त वा सन्तुष्ट कर लिया।

राज कुमार की सत्योक्ति } दूसरे दिन प्रसन्न हृदय से विराट ने पूछा पुत्र ! तूंने कैसे कौरवों को जीता ? उत्तर में कुमार ने कहा—पिता जी ! मैंने नहीं जीता, वे तो एक देव पुत्र ने, मार २ कर भगा दिये, और हम गौये लेकर घर आगये। राजाने कहा बेटा ! वह देव पुत्र कहां है ? ताकि मैं उसे देखूं और सत्कार करूं। कुमार ने कहा पिता जी ! वह अब अन्तर्धान हो गया है। कल या परसों फिर प्रकट होगा।

---

* भारत काल में वेश बदलने की विद्या का अच्छा प्रचार था। विशेष कर लोग ब्राह्मण वेश को पसन्द करते थे। एक चक्र में पांडव ब्राह्मण वेश में रहे ! द्रौपदी स्वयंवर, जरासंध बध, विराट नगर के अज्ञात वास में इन्होंने ब्राह्मण वेश ही धारण किया। खांडव दाह में अग्नि ने, कर्ण को सूचना देने में सूर्य ने, कर्ण से कवच कुंडल मांगते हुये इन्द्र ने, युधिष्ठिर हरण में जटासुर ने, परीक्षित दंश में नागों ने ब्राह्मण ही भेष बदला था। विराट सभा में धर्म राज ने भी व्याघ्र पाद गोत्री कंक ब्राह्मण बन कर ही १२ मास बिताये थे। कदाचित ब्राह्मणों को उन दिनों आज कल के योरुपोयनों की भान्ति कहीं प्रवेश में रोक टोक न हो या यह वेश उसी तरह सिद्धि दायक समझा जाता हो।

इस बात चीत के बाद अर्जुन ने, कौरवों के, वे वस्त्र राजा विराट को दिये, जो विराट कन्याओं के लिये, हर कर लाये गये थे। और जिन्हें लेकर राजकुमारी उत्तरा बड़ी प्रसन्न हुई।

पाठक गण ! इस खंड में, आप दक्षिण उत्तर में, होने वाले दो भारी युद्धों को, केवल गौओं के लिये होना देख विचारते होंगे कि पुराने आर्य कैसे विचार शील थे ? कि कति पय पशुओं के लिये, प्रजा को, संग्राम संकट की पीड़ाओं में डाल देते थे, सो यह विचार का स्थान नहीं, किन्तु राजनीति का यह अवश्यं भावी पाठ है। जो भी युद्ध होता है, हुआ है। वा होगा। वह विवाद की वस्तु के मूल्य पर नहीं किन्तु मान मर्यादा, स्वप्रतिष्ठा, देशाभिमान, जाति गौरव की रक्षा के लिये ही होता है। उसका बीज सूत्र चाहे कोई भूमि, कोई पद, आसन, किसी के बचन, किसी की ध्वजा पताका, वा कोई शस्त्र, अस्त्र, ही क्यों न हो, और विजय भी एक पाऊ की भूमि पर हुया, और दूसरे दल का एक पाऊं ही फिसला फिर जय, पराजय, कहा जाता है। और इसी एक पाऊ की भूमि वा स्वल्प सी वस्तु, की रक्षा के लिये, कोटिशः धन, और अक्षौहणी, सेना, लगानी पड़ती है। इस के बिना राष्ट्र, राज्य, वा स्वदेशमान, रह भी नहीं सकता। महाराष्ट्र के बीरों, और बीर भूमि राजस्थान के राजपूतों ने एक २ स्त्री की मान रक्षा, वा पुरुषों को वाणी, निबाहने के लिये, सहस्रों देवियों को अग्नि ज्वाला के अर्पण किया, लक्षों बीर नरों के शिरों से रण चंडी की

पूजा की पर राजपूतीशान, और भारतीय मान, को न जाने दिया। अंग्रेज़ जाति ने, और यवन लोगों ने भी समय २ पर छोटी २ बातों पर हजारों की शहादते पेश की हैं। बीसवीं सदी का रूस जापान युद्ध, और थोड़े समय में हो चुका, पर देर तक न भूलने वाला, जर्मन से योरुपीय शक्तियों का महासंहारी महासंग्राम भी किसी बड़े कीमती क्षेत्र के लिये शुरू नहीं हुआ था। पर परिणाम उस का भारी फलदायी निकल रहा है। इसी तरह हमारे ख्याल में यह युद्ध विराट गो हरण न था किन्तु पांडव विजय और कौरव पराजय का प्रथम सूत्र पात था। या धर्म बल और पाप दल का प्रथम अभि दर्शन था, जिस में पाप ने खूब मुंह की खाई, और धर्म ने जय पाई॥

पांडव प्रकाश तथा अभिमन्यु विवाह

खंड ४।

महां अस्य ध्वरस्य प्रकेतो नक्षते त्वदमृता मादयन्ते॥ ऋ।७।११।१

त्वं वरूण उतमित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्व सिष्ठाः। त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभि सदानः॥७।१२।३

धर्म एवहतो हन्ति धर्मोरक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्योमानो धर्मोहतो वधीत्॥

मनु०

पांडव प्रकाश } परमेश्वर के सहारे सत्य पालन रूपी महान् अध्वर को पूर्ण कर उसी की आशीर्वादों तथा निजधर्माचरण से सुरक्षित पांडु पुत्र, १२ वर्ष बनवास १३ वां वर्ष अज्ञात रूप से व्यतीत कर उत्तर गो विजय के तीसरे दिन प्रातः कृत्यकर, शुभ वस्त्र पहन सब से पहले राज सभा में गये और राजा विराट के आसन पर जा विराजे। और जब महाराजा विराट ने आकर राज्यासन पर बैठे कंक को देखा तब वह आश्चय और गुस्से मे बोला--मैंने तुम को सभासद् बनाया था आप सभापति बन राज्यासन पर कैसे बैठ गये हो ?

इस पर अर्जुन ने कहा--राजन्! आश्चर्य का कोई स्थान नहीं यह दृढव्रती यज्ञशील, वेदवेत्ता, सर्वास्त्र कुशल, साक्षात् धर्मावतार धमराज युधिष्ठिर तो इन्द्र के भी समान इन्द्रासन पर बैठने के योग्य हैं। यह सुन विराट ने कहा यदि यह धर्मराज हैं तो अर्जुन भीमादि शेष पांडव कहां है ? इस उत्तर में सब का गुण वर्णन पूर्वक परीक्षा देकर कहा मैं अर्जुन हूं। यह जान राजा को बड़ा ही आनन्द हुआ। अर्जुन के कथन के पीछे राजकुमार उत्तर ने भी अर्जुन आदि का विस्तार पूर्वक गुण वर्णन किया और अपने जय का सारा यश अर्जुन को देते हुये, उसके मान करने की प्रार्थना की। विराट ने

अप जय में भीम सेन को कारण बताते हुये राजा की ओर से पूजा प्रतिष्ठा करने की पुष्टि की । तथा कुछ देर विचार के पीछे राजा ने सब सभासदों की सम्मति से कहा--

इदञ्च राज्यं पार्थाय यच्चान्यदपि किञ्चन ।
प्रति गृह्णन्तु तत्सर्वं पांडवा अविशंकया ॥

विराट ७१।३३

उत्तरां प्रति गृह्णन्तु सव्यसाची धनञ्जयः ॥३४

यह सब राज्य और इसका सब धन धर्मराज का है, अतः पांडु पुत्र इसे बिना संकोच ग्रहण करें तथा वीर कन्या उत्तरा का सव्यसाची अर्जुन स्वीकार करे । इस पर धर्मराज ने राजा का अपने गुप्तवास काल बदले में कृतज्ञता पूर्वक धन्यवाद करते हुये और प्रसंग वश हुये अपराधों की क्षमा मांगी । और उत्तरा ग्रहण के लिये अर्जुन की ओर मंत्रणार्थ देखा । इस के बाद विचार पूर्ण शब्दों में अर्जुन ने कहा—

राजन् ! मैं पुत्रवधु के नाते से उत्तरा को स्वीकार करता हुं । क्योंकि उचित यही है, मेरा और उत्तरा का संबन्ध गत वर्ष विद्या सिखाने के कारण पिता और पुत्री का रहा है । मैं उसे पुत्री और वह शुद्धव्रता मुझे पितावत् वर्तती रही है । और अब भी इस संबन्ध से वही सम्बन्ध रहेगा क्योंकि स्नुषा और दुहिता समान ही पद है । और आयु तथा वीरतादि से भी मेरा पुत्र अभिमन्यु ही उत्तरा का योग्य भर्ता है । वह श्रीकृष्ण का भानजा चक्रधारी वासुदेव का सर्वाङ्ग कोविद प्यारा शिष्य भी है । तथा इस से मत्स्यराज

और भरत वंशियों का सुखद संबन्ध भी रहेगा । इस के उत्तर में इस सम्बन्ध को पसन्द करते हुये मत्स्यराज ने पांडवों को वधाई देते हुये अपने भाग्य की भी सराहना की और कहा ।

सर्वे कामाः समृद्धा मे सम्बन्धीयस्य ह्यर्जुनः२७

विवाह की तयारी } इस सम्बन्ध के निश्चय के बाद पांडव विराट नगर के निकटवर्ती प्रसिद्ध स्थान उपप्लव्य पर राजकीय ठाठ से रहने लगे । और विवाह के पांचाल, शूरसेन आदि देशों में संबन्धियों को बुलाने के लिये निमंत्रण भेज दिये । विशेष रूप से श्री कृष्ण के पास आदमी भेज कर कहलाया कि आप अपने भानजे अभिमन्यु को विवाहने के लिये मित्रमंडली सहित शीघ्र पधारिये । निमंत्रण पाते ही श्रीकृष्ण अपनी बहिन सुभद्रा और भानजे अभिमन्यु को इन्द्रसेन आदि रथियों के साथ दश हज़ार हाथी लाख घोड़ों को लेकर बरात बना उपप्लव्य नगर में पहुंच गये। तथा बहुत सी सेना ले काशीराज शैव्य (युधिष्ठिर के श्वसुर) द्रौपदी के पाचों वीर पुत्र अपने महारथी मामे शिखंडी, तथा धृष्टद्युम्न के साथ, आनर्त, दाशार्ह के राजे । कृष्ण के बड़े भाई बलभद्र, कृतवर्मा, हार्दिक्य युयुधान, सात्यकि, अनाधृष्टि, अक्रूर, सांब, निशठ आदि यादव भी बरात में आये । बहुत से स्नातक वेदज्ञ ब्राह्मण और अन्य स्त्रियें भी विवाह में आईं। सब का नौकरों चाकरों सहित मत्स्यराज ने यथा योग्य सत्कार किया । और स्त्रियों का सत्कार महाराणी सुदेषणा

ने अपने साथ प्रतिष्ठित स्त्रियों को लेकर अगुवानी करते हुये मार्ग में जाकर किया । और वर पक्ष वालों ने भी मत्स्यराज का मान ऊंचे भावों से अन्तःकरण तथा रत्नादि उपहार से किया ॥

उत्तरा विवाह ।

समञ्जन्तु विश्वेदेवा समापो हृदयानि नौ ।
संमातरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥
ऋ १० । ८५ । ४७

ततो विवाहो विधि वद्ववृधे मत्स्य पार्थयोः ।
७२ । २६

विवाहंकारयामास सौमस्य महात्मनः ॥ ३५

हुत्वासम्यक् समिद्धाग्नि मर्चयित्वा द्विजन्मनः ३७

सब संबन्धियों (स्त्री पुरुषों) के साम्हने वेद रीति से ब्राह्मणों ने उत्तरा का वीर अभिमन्यु के साथ विवाह *

---

* प्रायः लोग कहा करते हैं अभिमन्यु का विवाह १६ वर्ष की आयु में हुआ था । परं नीचे के युक्ति प्रमाणों से यह कथन निर्मूल ठहरता है ।

उस वेद के समय में बाल विवाह का प्रचार न था, और विशेष कर श्रीकृष्ण के भानजे वीर अर्जुन के पुत्र धर्मराज के वंशधर का ऐसा होना तो सर्वथा ही असम्भव था ।

संस्कार कराया। और महाराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों की पूजा करते हुये बहुत साधन भी दिया। जो इस निमित्त श्री कृष्ण

विराट ७२। ८ में अभिमन्यु को अस्त्रों में पंडित कहा है जो ब्रह्मचर्य को पूर्ण कर स्नातक ही हो सकता है।

विराट नगर में जो भारी सभा युद्ध पर विचार करने के लिये भरी थी उस में अभिमन्यु अन्य विद्वान् जुम्मेवारों की भान्ति सम्मति देने वालों में था, उद्योग १। ६ में इसे बल वीर्य में अर्जुन के तुल्य लिखा है।

कुरुक्षेत्र युद्ध में अनेकों महारथियों से देर तक प्रभाव शाली युद्ध करने से भी उस की आयु १६ वर्ष की प्रतीत नहीं होती।

इस से बडी आयुः के भाई द्रौपदी पुत्र भी अभी कुमारे ही थे।

उस समय इस कुल का कोई पुरुष २५ वर्ष से कम नहीं विवाहा गया। और नाही यादव कुल में प्रद्युम्न अनिरुद्ध आदि का विवाह २५ वर्ष से कम हुआ था। देखो वैद्यकृत श्रीकृष्ण चरित्र (महराठी) का विवरण जिस में लिखा है कृष्ण विवाह २५ में अर्जुन का २५ में कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न का २५ कृष्ण पौत्र अनिरुद्ध का लगभग ३० में।

सुश्रुत आदि आयुर्वेद में भी २५ वर्ष से कम विवाह निषिद्ध है। देखो सुश्रुत शारीर स्थान।

८ सभा पर्व ४५। ४९ में लिखा है, राजसूय यज्ञ में आये राजाओं को अपनी हद्द तक पहुंचाने के लिये और जुम्मेवार

द्वारका से लाये थे। और सब ने वर वधु को आशीर्वाद दिया *।

षष्ठो भागः

स्वराज्य (अधिकार) प्राप्ति विचार, वा स्वावलम्बन खंड १

अरिष्टः समर्तो विश्व एधते प्रप्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्या सो नयथा सुनी-

---

राजकुमारों की भान्ति अभिमन्यु भी गया था। जो कम से कम १६ वर्ष का चाहिये।

६ वन पर्व १२०। २१ से पता लगता है, अभिमन्यु वनवास समय राज्य सम्भालने के योग्य था।

१० श्री वैद्य म० भा० मीमांसा के पृ० १४० पर लिखते हैं सुभद्रा विवाह अभिमन्यु विवाह से ३३ वर्ष से भी पहले हुआ था। और बहुत सम्भव है, प्रथम वर्ष ही सुभद्रा के अभिमन्यु जन्मा हो क्योंकि दोनों (पति पत्नि) नीरोग तथा विद्वान् थे। इस लिये हमारा दृढ़ निश्चय है कि अभिमन्यु विवाह ३२ वर्ष की आयु से ऊपर ही हुआ था। कोई २ कहेंगे फिर उसे बाल क्यों कहा जाता था, उस समय दीर्घायु होने के कारण ५० वर्ष से पूर्व बालक ही समझते थे। देखो शान्ति पर्व ८५। ६

* तथा वर वधु ने अपने २ प्रतिज्ञा मंत्र वेद से पढ़ कर अपने धर्म पर दृढ़ रहने की सूचना दी।

तिभिराति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ ऋ० १० । ६३ । १३

विराटराज्य में सभा — अभिमन्यु विवाह के आनन्दोत्सव के पीछे राजा विराट ने दुर्योधन के दुष्ट विचारों को जान पांडवों के अधिकारों की रक्षा के लिये एक सभा बुलाई। सभा में सैंकड़ों पांडव पक्षी सज्जन इकट्ठे हुए जिन में से विशेष मान्य व्यक्ति ये थे। पंचालराज द्रुपद, शिनिप्रवीर, धृष्टद्युम्न, शिखंडी आदि द्रुपदपुत्र, सात्यकि, प्रद्युम्न, साम्बादि यादव। युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, और सहदेव। श्रुतसेन आदि ५ द्रौपदी पुत्र, विराट पुत्र शंख, उत्तर, आदि के साथ उन का बहिनोई वीर अभिमन्यु और प्रसिद्ध भारत श्री कृष्ण तथा बलभद्र थे। सब लोग बड़े २ ऊंचे बहुमूल्य सुखद आसनों पर यथोपयुक्त पंक्ति में विराजमान थे। और सब के बीच विशेष आसन पर बृद्ध तथा पितृसम पूज्य महाराज द्रुपद और महाराजा विराट बैठे थे। उन के निकट ही धर्मराज युधिष्ठिर और योगीराज श्रीकृष्ण विराज रहे थे।

श्रीकृष्ण का शिष्ट भाषण — सभा के नियमानुसार सज जाने पर उद्देश्य का प्रस्ताव करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा श्रीमन्तः! आप को विदित है कि शकुनि की सलाह से, दुर्योधन ने पांडवों का राज्य किस तरह हरण किया गया, और उन को बन में भेज कर क्या कष्ट दिये गये। और उन्हें स्वभावतः वन के कैसे २ दुःख झेलने पड़े। पराक्रमी पांडव यदि चाहते तो वे इन संकटों से अपना छुटकारा कर लेते,

और फिर सारी पृथ्वी का राज्य भी प्राप्त कर लेते । परन्तु केवल सत्यता के लिये उन्हों ने तेरह वर्ष वनवास के दुःख सहे । धर्मराज स्वर्गराज्य भी अन्याय प्राप्त नहीं चाहता परन्तु यदि धर्म के अनुसार उसे एक गांव भी मिल जाय उस में धर्मानुष्ठान कर वह जीवन सफल कर लेगा । राज्य पर उसका पैतृक अधिकार है यह भी आप लोगों को भूला हुआ नहीं ॥

एवंगते धर्मसुतस्य राज्ञो दुर्योधनस्यापि च यद्धि तं स्यात् । तच्चिन्तयध्वं कुरुपुंगवानां धर्म्यं च युक्तं च यशस्करञ्च ॥ उद्योग १।१३।

इस लिये आप अब ऐसा उपाय विचारें जिस से महाराज दुर्योधन, तथा धर्मराज का भी हित हो और वह धर्मानुकूल नीति युक्त तथा यश वर्धक हो । पांडव इस विषय में बाल हैं उन के हक की रक्षा के लिये राजा विराट यह प्रस्ताव आप के साम्हने रखते हैं ।

फिर कहा विचार समय आप दुर्योधन के बढ़े हुए राज्य और लोभी स्वभाव और पांडु पुत्रों की सत्यप्रियता । जिस के लिये इन्हों ने १३ वर्ष कष्ट सहे हैं) का भी ध्यान रक्खें और यह भी अभी सोच लें कि यदि उन्हों ने इन्हें युद्ध के लिये बाधित ही किया और इन्हें उन से लड़ना ही पड़ा तो ये थोड़े होने के कारण उन्हें जीत न सकेंगे यह मेरी राय है । मेरी तरह आप भी सब इन के सम्बन्धी हैं । सम्बन्धी धर्म को साम्हने रख कर इन्हें मरवा देना ठीक है, वा सब को मिल कर दूसरों के हक दबाने वालों को कुकर्म फल दिखा देना

धर्म है ? अस्तु अभी कुछ न कह कर मैं प्रस्ताव करता हूं कि दुर्योधन का मत जानने के लिये यहां से कोई धर्मशील, शुचि, प्रमाद रहित, कुलीन पुरुष भेजना चाहिये। ताकि वह आधा राज्य दिला कर शान्ति कर सके।

बलभद्र का भाषण — श्री कृष्ण के प्रस्ताव को उत्तेजना मिश्रित समझ उन के बड़े भाई बलभद्र जी बोले श्रीमान् धर्म बन्धुओ ! आपने मेरे छोटे भाई का प्रस्ताव जो राजा दुर्योधन और धर्मराज के हित के लिये आधा राज्य प्राप्त करने के लिये किया है सुन लिया है, इसकी पुष्टि करता हुआ मैं स्वराज्य प्राप्ति उपाय सम्बन्ध में इतना कहना चाहता हूं कि हमारा दूत भीष्म द्रोण कृप कर्ण शकुनि दुर्योधन आदि सब ही लोगों को बुला कर उन के छलों का ज़िकर न कर किन्तु गुण प्रशंसा कर जरूरत पड़े तो धर्मराज की द्यूत प्रियता को मान शान्ति पूर्वक यदि हक्क ले आवे तो अच्छा हो। इस से हिंसा भी न होगी और स्वराज्य मिलने पर शान्ति भी स्थिर हो जायगी। और यदि युद्ध छिड़ गया तो याद रक्खो युद्ध में नीति तो नष्ट हो जायगी, अर्थ प्राप्ति निश्चित नहीं।

सात्यकि का गरम मत — बलदेव का नरम पार्टी का "भिक्षांदेहि" का भाषण सुन प्रसिद्ध यदुवीर सात्यकि बोला—सज्जन क्षत्रिय वीरो ! जैसा पुरुष का आत्मा होता है वैसा ही वह बोलता है, कायर से वीर भाषण और वीर से कृपण वाणी की आशा भी नहीं करनी चाहिये। कोई कुल सारे का सारा ही महाबली नहीं रखता कुलों में बली भी होते

हैं और नपुंसक भी । एक,वृक्ष के सब फल भी एक से नहीं होते। मैं लांगल ध्वज की निन्दा नहीं करना चाहता मुझे तो आप के क्षात्रपन पर गुस्सा आ रहा है, जिन्हों ने यह कायर कथानक शान्ति से सुना और सहा । क्या यह पाप नहीं कि पापातीत धर्ममूर्ति धर्मराज की बाबत इस के अपने आदमी के मुख से जूये जैसे पाप कर्म का लगाव बताया जाय। और क्या यह सत्य नहीं कि पापियों ने द्यूत कर्म से अनजान साधु प्रकृति क्षात्रधर्म के भक्त धर्मराज को छल से बुला कर द्यूत को अक्षयुद्ध समझा चालाकी से जीत कर राज्य से भ्रष्ट कर दिया । और फिर ऐसे लोगों की बड़ाई की जाय यह घोर पाप है।

मेरा तो यह मत है कि द्यूत के बाद की गई शर्त के अनुसार यदि भीष्म द्रोण आदि ने इन्हें आधा राज्य न दिला दिया तो मैं बल से इन सब को जीत धर्मराज के चरणों में गिरा दूंगा! और राज्य का हक, हक वालों को दिला कर ही छोडूंगा। यदि वे हक न देंगे तो उन्हें मंत्रियों सहित यमलोक पहुंचा दूंगा । यह मैं जानता हूं कि उन में फौजी ताकत है, पर यह मैं मान नहीं सकता कि सुदर्शन चक्रधारी कृष्ण गांडीवधारी अर्जुन के तथा मेरे साम्हने कोई ताकत खड़ी रहेगी। और वह तब जब कि अभिमन्यु सरीखे छः अर्जुन पुत्र धृष्टद्युम्नादि द्रुपद पुत्र, शंखादि विराट पुत्र हमारे साथ हों।

नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून्हत्वाऽऽततायिनः।
अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम् ॥

इस लिये वीरो ! धर्मात्मा का सहाय करने के लिये, जो मन में आता है कर डालो ! आततायी शत्रु के मारने में कोई पाप नहीं । वरन यह पाप और अपयश है जो दुत मुख से शत्रु के द्वार पर जाकर कहना है "भिक्षांदेहि" भीख दो ॥

द्रुपद का सर्व सम्मत अभिप्राय — इस प्रकार वाद विवाद को देख महाराजा द्रुपद ने अपना गंभीर तथा सर्व सम्मत अभिप्राय कहा—" दुर्योधन स्वभाव ही से दुष्ट है, वह शिष्टता से पांडवों का राज्य कभी नहीं लौटावेगा। धृतराष्ट्र पुत्र प्रेम से भीष्म द्रोण स्वार्थ से, कर्ण शकुनि मूर्खता से, दुर्योधन ही के अनुकूल नाचेंगे । कई अंशों में दुष्टों से शिष्टाई दिखाना गधों को गीत सुनाना ही है । सौम्यता के वर्ताव से वे यही समझेंगे कि पांडव निर्बल और डरपोक हैं । इस के सिवा, दुर्योधन उधर युद्ध की भी तयारी करता होगा । इस लिये श्रीकृष्ण ने जैसा कहा है, हमें एक दूत धृतराष्ट्र के पास भेजना चाहिये । और इधर भिन्न २ राजाओं के पास दूत भेज कर उन से बिनती करना चाहिये कि वे हमें रण में सहायता के लिये तयार हैं । क्योंकि प्राय; राजा लोग समझते हैं, जिस का दूत प्रथम आवेगा उस की सहायता करना हमारा धर्म है अतः यदि आप लोग दूत भेजना पसन्द करें तो आज्ञा दें ताकि दूत भेजा जाय। और आप लोग वे शब्द बता दें जो धृतराष्ट्र, दुर्योधन और भीष्मपितामह को कहे जांय ! इस के बाद सब की ओर से श्रीकृष्ण ने उठ कर कहा, हम सब आप के सामहने पुत्रवत् हैं, आप ही हमारी ओर से सन्देश पत्र बना दें। और हम तो विवाह के लिये आये थे, अब जाने की आज्ञा दें। यह

निश्चय कर सब घरों को चले गये। सर्व सम्मति द्रुपद पुरोहित दूत बना कर हस्तिनापुर भेजा गया। और मित्र राजाओं से सहायतार्थ संदेश भी भेजे गये।

सहाय प्राप्ति खंड।

श्रीकृष्ण के पास दोनों एकट्ठे गय

विराट राज्य में महाराजा द्रुपद की अध्यक्षता में जो प्रस्ताव, विचारादि हुए गुप्तचरों द्वारा उन की सूचना धृतराष्ट्र पुत्र को यथा समय मिलती रही, इस से युद्ध सामग्री एकत्र करने में, वह पहले से ज्यादा तेजी करने लग पड़ा। और राजाओं के पास औरों को भेज कर, श्रीकृष्ण की मदद लेने बड़े ठाठ से द्वारका में स्वयं गया। और जहां श्रीकृष्ण सोये हुए थे वहां सिरहाने की ओर जाकर बैठ गया। संयोग वश दुर्योधन के ठीक साथ ही अर्जुन ने भी द्वारका में इसी प्रयोजन से प्रवेश किया। और वह श्रीकृष्ण के पाऊं की ओर बैठ गया। जब श्रीकृष्ण जगे तो उन्हों ने पहले अर्जुन को बैठे देखा और पीछे से सिर की ओर दुर्योधन को। नमस्ते भगवन्! नमस्ते श्रीमन्! तथा पारिवारिक कुशल क्षेम के पीछे दोनों से आने का कारण पूछा, दोनों ने भगवान् से अपने २ पक्ष के लिये सहाय मांगा। भगवान् ने दोनों को समान प्रिय, समान बन्धुता बताते हुए; अपने को और अपनी सेना को दो भागों में रख कर कहा—श्रीमानो! एक ओर मेरी दश लक्ष नारायणी सेना है, एक तर्फ मैं अकेला हूं। आप एक २ वस्तु को लेलें। अर्जुन को क्योंकि मैंने पहले

देखा है और वह है भी छोटा इस लिदे यथारुचि चुनने का उसे हक है। दुर्योधन ने यद्यपि कहा मैं पहले आया हूं, पहले चुनने का मेरा हक चाहिये. पर महाराज ने कहा मैंने पहले इसे ही देखा है। इसलिये यही इच्छित चुनाव चुन ले। दुर्योधन को डर था कि कहीं अर्जुन दशलाख सेना न ले जाय। पर सूक्ष्म दृष्टि कुन्ती पुत्र समझता था हजार पशुओं से एक पशुपाल अच्छा होता है, सौ शिष्यों से एक गुरु में ज्यादा शक्ति होती है, इस लिये उसने अकेले श्रीकृष्ण को ही स्वीकार किया और दुर्योधन नारायणी सेना लेकर प्रसन्न २ घर चला गया॥

शल्य से छल किया गया — महाराजा शल्य श्रीकृष्ण के तुल्य ही योधा वा रथ विद्या कुशल थे। और वे पांडवों के मामा थे। पांडवों की सहायता के लिये उन के निमंत्रण से सेना सहित आ रहे थे। रास्ते में दुर्योधन ने जहां तहां उन की सेवा और प्रतिष्ठा का बहुत ही सुखकारी प्रबन्ध कर दिया। और जब राजा ने युधिष्ठिर आदि के प्रबन्ध की प्रशंसा करते हुए प्रसन्न चित्त से वर देने की इच्छा प्रकट की तो झट दुर्योधन ने प्रकट हो कर उन की सहायता उन से इस सेवा में लेली। शल्य ने सहाय वचन देते हुए इतना कहा कि केवल एक बार धर्मराज से भेंट कर आऊं। और सेनागण इधर ही ठहरेगा।

अर्जुन पाकना की कामना — महाराज शल्य जब पांडव कैंप में गये, और कुशल क्षेम मार्ग छल तथा कष्ट कथा कह सहानुभूति प्रकाशित करते हुए बोले कहिये मैं अब आप

का क्या प्रिय करूं ? तब कुन्ती पुत्र ने कहा आप की सब दया है, पर यदि हो सके तो कर्ण अर्जुन संग्राम में अर्जुन की पालना का ध्यान रखना, इस के उत्तर में वह 'तथास्तु' कह दुर्योधन कैंप में सदा के लिये आ गये।

क्षात्रदल का विभाग } शल्य की भान्ति और भारतीय वा भारत भिन्न देशों के आर्य अनार्य क्षात्र दल का पांडव वा कौरव दल में विभाग हो गया। युधिष्ठिरी दल में सात, दुर्योधनी में ग्यारह अक्षौहणी, कुल १८ अठारह अक्षौहणी युद्ध के लिये उद्यत हो गई।

पुरोहित की वापसी } विराट नगर में हुई सभा के निश्चयानुसार राजा द्रुपद के पुरोहित ने भीष्मादि की उपस्थिति में कौरव राजसभा में जा कर बड़े नम्र शब्दों में पांडवों का सन्देश सुनाया। वह बोला—परम्परा से चाहे राज्य के सर्व स्वामी पांडव हैं, पर वह जाने दो उन्हें तुम्हारे पिता ने ही आधा राज्य दे रखा था, जो तुमने छल से जुये द्वारा हर कर उन्हें तेरह वर्ष के लिये बन में भेज दिया। उन्हों ने वह कष्ट वा अपमान भरा जीवन भी गुजार लिया, अब वे पिछली बातों, कष्टों को भुला कर तुम से अपने किये नियमानुसार आधा राज्य शिष्टता से मांगते हैं। भयंकर हानि न हो कर उन्हें हक मिल जाता अच्छा अन्यथा वे हर प्रकार से राज्य प्राप्ति का उपाय करने के लिये विवश होंगे। अच्छा है राष्ट्रहित, ज्ञातिहित को सामने रखते हुए उन्हें उनका राज्य लौटा दें। पुरोहित का यह कथन भीष्म जी को

पसन्द पड़ा, और उन्हों ने प्रसंगवश धर्मराज की सात्विकता और अर्जुन की वीरता की श्लाघा भी कर दी। इस पर कर्ण उद्धतता से बोल पड़े धर्मराज अपनी शर्त से अब राज्य नहीं मांग रहा किन्तु मत्स्य, पञ्चाल के सैन्य बल के घमंड से डरा रहा है। हम डर कर राज्य न देंगे, यदि युद्ध छिड़ ही जायगा तो उन सब को जीतने के लिये मैं अकेला काफ़ी हूं।

इस घमंड के कथन को सुन भीष्म जी ने कहा 'उत्तर गो ग्रहण' के समय तेरा बल सब ने देख लिया है। मैं सत्य कहता हूं कि यदि इस ब्राह्मण के कथनानुसार हमने राज्य न दिया, और युद्ध छिड़ गया, तो शीघ्र ही रणचंडी हमारे रक्त से अपनी प्यास बुझायेगी। इस विवाद को रोकते हुए धृत-राष्ट्र ने कहा पांडवों के दूत के बैठे यह तमाशा अच्छा नहीं लगता बस करो। और द्रुपद पुरोहित को सत्कार पूर्वक विदा करते हुए कहा—कि आपने धर्मराज से कहना हम शीघ्र ही विचार करके संजय को आप के पास भेजते हैं। विदा होते हुए पुरोहित ने कौरवों की सारी फौजी छावनियों को भी अच्छी तरह देख लिया।

संजय गमनागमन खंड ३

धृतराष्ट्र की सिखावन — पुरोहित को विदा कर धृतराष्ट्र ने संजय को बुला कर कहा तुम्हें मालूम है विराट राज्य में पांडव राज्य प्राप्ति और युद्ध का सामान कर रहे हैं। और उन की सहायता को म्लेच्छ देशों, पर्वतों, और दूर दूर

देशों से आये राजाओं के मित्र मत्स्यराज; पञ्चालराज भी जुटे हुए हैं। जो भारी योधा हैं।

नाहं तथा ह्यर्जुना द्वासुदेवाद्भीमाद्वाहं यमयोर्वाबिभेमि। यथा राज्ञः क्रोधदीप्तस्य सूतमन्योरहं भीततरः सदैव॥

महातप ब्रह्मचर्येणयुक्तः संकल्पोयं मानसस्तस्य सिद्ध्येत्॥ २३। ३४

अर्जुन भीमादि पांडव तथा श्रीकृष्ण भी महाबली हैं, पर संजय! मैं अर्जुन वा श्रीकृष्णादि के शस्त्र अस्त्रों से इतना नहीं डर रहा जितना डर कि मुझे अजातशत्रु धर्मराज के क्रोध से लगता है, क्योंकि वह धर्मात्मा तथा ब्रह्मचारी है उस का तो संकल्प करते ही कार्य सिद्ध हो सकता है। इस लिये हे संजय जा पांडवों को प्रणाम के पीछे मेरी तर्फ से कुशल प्रश्न पूछ कर, उन्हें शान्त सन्तुष्ट करते हुए कहो 'युद्ध करना अच्छा नहीं, उस से प्राण हानि होती है, और प्रजा को बहुत कष्ट होता है, सारा जीवन धर्म अनुसार बिता कर अब तुम्हें निष्ठुर न होना चाहिये। आशा है संसार की सुख सम्पत्ति के लिये आप युद्ध समान क्रूर कर्म वा घोर कृत्य न करेंगे, क्योंकि तुम सब धर्मात्मा हो, इस लिये हम दोनों की मित्रता रहनी चाहिये।

पांडव दल में दूत संजय } इत्यादि कपट सूत्रों को कंठ कर संजय पांडवों की छावनी में पहुंच, पांचों भाईयों का कुशल पूछ, वन कष्टों पर समवेदना प्रकाशित कर, कुशल से समय बिताने पर बधाई देकर ऊपर की सूत्रावलि (सन्धा) सुना बड़ी गंभीरता से बोला—

न चेद्भागं कुरवोऽन्यत्र युद्धात्प्रयच्छेरंस्तु-
भ्यमजातशत्रो । भैक्षचर्यामंधक वृष्णि राज्ये
श्रेयो मन्ये नतु युध्येन राज्यम् ॥ २७।२।

धर्मराज ! यदि बिना युद्ध के कौरव आप को राज्य न दें तो मेरे विचार में आप सरीखे दयालु धर्मात्मा पुरुष के लिये अंधक वृष्णि (यादव) राज्य में भीख मांग कर जीवन के शेष दिन बिता लेना अधिक उत्तम है, इस की अपेक्षा कि आप इस चञ्चल जीवन और क्षणभंगुर संसार सुख के लिये युद्ध सा हत्या भरा काम कर, कष्ट उठा स्वराज्य प्राप्त करें ॥

धर्मराज का युक्त उत्तर } धर्मराज ने संजय का शिष्ट सम्मत सत्कार कर, कुरुराज्य के वृद्ध युवा स्त्री पुरुषों दीन दुःखियों का कुशल पूछ, और अपने सम्बन्ध में होने वाले स्नेह युक्त प्रेम प्रश्नों को स्मरण करा, बड़े आदर से कहा— संजय ! आपने जो देश हित के लिये युद्ध के विरुद्ध तथा धर्म की महिमा में कहा है ठीक है, मैं भी मानता हूं, धर्म बहुत बड़ा है, और धर्म त्याग जीने से मरना उत्तम है, पर यदि सूत मैं धर्म छोड़ूं तो तैने मेरी निन्दा करना। मैं तो धर्म युक्त

भाग (आधा राज्य) ही मांग रहा हूं। और इस धर्म से प्राप्त भाग के लिये यदि युद्ध करना पड़ा तो मैं करूंगा, क्योंकि यह मेरा पिता, पितामह द्वारा परम्परा प्राप्त धर्म है " जो राज्य के लिये युद्ध करना " क्षत्रिय के लिये युद्ध से डर भीख मांगना मैं ' नास्तिक धर्म ' वा पाप मानता हूं।

सूतपुत्र ! धर्म त्याग कर आधा राज्य तो क्या सारी पृथ्वी का धन, ऐश्वर्य, और देवराज्य-

प्राजापत्यं त्रिदिवं ब्रह्मलोकं नाधर्मतः संजय कामयेयम् ॥ २८। ८।

प्रजापति लोक, तीनों ज्योति वाला ब्रह्मलोक भी मिले तो मैं उस की चाह नहीं रखता, हां यह मैं मानता हूं कि हक के लिये लड़ना क्षत्रिय का धर्म है, यदि इस में सन्देह हो तो धर्मेश्वर, नीति कुशल, ब्राह्मणोपासक, दोनों पक्षों के तुल्य शुभचिन्तक श्रीकृष्ण बता देंगे।

श्रीकृष्ण की पुष्टि } धर्मराज की पुष्टि करते हुए श्रीकृष्ण बोले संजय ! मैं जिस तरह पांडव का अभ्युदय चाहता हूं, उसी तरह धृतराष्ट्र पुत्रों की भी वृद्धि चाहता हूं * पर संजय जिस राज्य के लिये धृतराष्ट्र इतना ललचा रहे हैं, उसे छोड़ खाली हाथ सूखी बातों से शान्ति स्थापना का वचन ये भी नहीं दे सकते। बिना भोजन भूख चली जाय यह बात हम ने भी किसी गुरू से नहीं पढ़ी। पुराना

---

* उद्योग पर्व २६। १

इतिहास यह बताता है कि जब कोई किसी के स्वत्व को दबाने लगता है तब ही धनुषबाण, शस्त्र, अस्त्र, खड्ग संजोय, निकल आते हैं। संजय आप ही कहें पांडवों का पैत्रिक राज्य दबाता हुआ राजा धृतराष्ट्र कौनसा धर्म पालन कर रहा है ? इतना हम कर सकते हैं कि शकुनि की सलाह से किये दुर्व्यवहारों बन कष्टों, और द्रौपदी अपमानों को पांडवों से क्षमा करा दें। और यदि कहने सुनने से शान्ति हो तो इस पुण्यकार्य के लिये कुरु सभा में जाने को मैं तयार हूं । पर यदि वे आधा राज्य देने को तयार हों। वरन संजय ! कुरुराज धृतराष्ट्र को कहदो—

स्थिता शुश्रूषितुं पार्थाः स्थितायोद्धुमरिंदमाः।
यत्कृत्यं धृतराष्ट्रस्य तत्करोतु नराधिपः ॥

२९ । ५७ ॥

कुन्तीपुत्र सेवा के लिये तयार हैं; और वे युद्ध के लिये भी तयार हैं, जो आप चाहते हैं करालें।

संजय की अभ्यर्थना } पांडव पक्ष का अभिप्राय समझ नीचे के शब्दों में संजय ने बिदाई के लिये अभ्यर्थना की।

नरदेव धर्मराज ! जनार्दन ! तथा वीर पांडवो ! मैं आप से तथा अन्य समागत भूपालों से जाने की आज्ञा चाहता हूं, और यहां रहते दूत धर्म पालन करते २ मुझ से कोई अपशब्द वा कटु वचन निकल गया हो तो उस की क्षमा चाहता हूं।

युधिष्ठिर का उत्तर } पंडितवर संजय ! आप कुशल वा कल्याण पूर्वक घर को जाइये, कटु भाषण के लिये आप क्या कह रहे हैं, आप कोई अपरिचित नव पुरुष हैं, हम सब और वे (कौरव) आप को देर से जानते हैं, आप शुद्ध अन्तःकरण वाले दूतों में एक हैं, हम तो चाहते हैं यदि फिर आना पड़े तो आप ही आवें या विदुर जी आवें, आप की वाणी कटु वचन कहने पर भी कभी रूखी, क्रोधभरी, खरदरी, कड़वी वा चुभने वाली नहीं होती, आप जैसे शीलवान् संतोषी हैं वैसे ही आप की वाणी दयायुक्त, धर्मभरी, अर्थ वाली होती है। हमें तो आप को चिर पीछे देखने से बड़ी प्रसन्नता हुई है। अर्जुन का आत्मसमान सखा होने से आप हमारे भाई ही हैं। आशा है अब आप हमारे किसी व्यवहार से अप्रसन्न न जाओगे इत्यादि।

धर्मराज का पुरवासी हितचिन्तन } संजय को विदा करते हुए नीचे वाक्यों में धर्मराज ने अपने देश के ब्राह्मणों, सम्बन्धियों, तथा इतर वासियों को जो कुशल प्रणाम कहा है उस से आप का राष्ट्रहित विशेषतया पुरवासी हित चिन्तन स्पष्ट प्रतीत होता है।

आपने कहा—सूतपुत्र ! यहां से जाकर वहां पर जो शुद्ध वीर्य कुलीन धर्मात्मा, वेदपाठी, तपस्वी वा वनवासी ब्राह्मण और वृद्ध हों उन्हें मेरी ओर से अभिवादन * (नमस्ते) कहना

* अभिवादनं वाङ्नती, इति कोशकारः।

और दूसरे वामियों को इसी प्रकार आदर से कुशल पूछना। महाराज धृतराष्ट्र के पुरोहित, आचार्य, ऋत्विक्, लोगों को प्रणाम कहना, वहां पर जो साधारण जन पर शील, बलयुक्त धर्माचारी हों तथा जो हमारे देश में व्यापारार्थ बसते और राष्ट्र का पालन करते हैं उन्हें मेरी ओर से कुशलक्षेम पूछ कर सत्कृत करना। और मेरे विद्यागुरु, नीतिमान्, आचार्य द्रोण, आदि गुरु कृपाचार्य को उन के घर जाकर पाऊं छूकर प्रणाम करना, और गुरुपुत्र गन्धर्व समान अश्वत्थामा को कुशल पूछना। और शौर्य, धैर्य, शील, श्रुति तथा दया के भंडार कुरु वृद्ध भीष्म जी को पाद छूकर प्रणाम करते हुए मेरा कुशल वृत्त कहना।

सूतपुत्र ! मेरे वृद्ध बहुश्रुत राजा धृतराष्ट्र, महा परिश्रमी साधुशील बाल्हीक, मेरे अपराधों के स्नेह सदा सहने वाले पूजा योग्य सोमदत्त को पाद स्पर्श करके प्रणाम कहना। और पृथ्वीशासक मन्दमति सुयोधन, शील हीन पर शूरवीर दुःशासन, योग्यतम भ्रातृतुल्य मेरे मित्र भूरिश्रवा, और कौरवों में देव प्रकृति कलह द्वेषी बुद्धिमान् धर्मात्मा युयुत्सु को बड़े प्रेम से कुशल पूछना। द्यूत कुशल शकुनि, चित्रसेन; उत्साह संपन्न वीर कर्ण को भी आदर पूर्वक कुशल पूछना। और संजय विशेष रूप से, मेरे पालक, गुरु, भर्ता, पिता, माता, सुहृत्, मंत्री, दीर्घदर्शी महा बुद्धि विदुर को कुशल पूछना। इन के बिना कुरुवंश के युवा, भ्राता, पुत्र, पौत्र, और पांडवों से युद्धार्थ आये राजा राजकुमार, वशातय, शाल्वक, केकय, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, वा पर्वत देश-

वासी, शीलवान् योधा, हस्ती, रथ, घोड़ा, सवार वा पैदल सिपाही, राजा के मंत्री, नौकर, द्वारपाल, आयव्यय गणक (Accountant) सेनानायकों का स्नेह साथ कुशल पूछना। और वहां जो वृद्ध स्त्रियें मेरी माता के समान हों वा अन्य प्रत्येक वर्ग की स्त्रियें हों उन्हें प्रणाम कर मेरी ओर से उन के पुत्र पौत्र का कुशल और रोजगार (वृत्ति) पूछना। और स्त्रियों से कहना कि तुम सास श्वसुर की सेवा करती हुई, पतिव्रत धर्म का पालन करो जिस से तुम्हारे पति अनुकूल हों और तुम्हारा सर्व सुख बढ़े। और जो स्त्रियें मेरी पुत्रवधुओं वा पुत्रियों के बराबर हों उन्हें कुशल पूछ 'प्रजावती हो' का आशीर्वाद देते हुए कहना, अलंकार, वस्त्र, भूषण, भोग, सुख भोगने के साथ उस कल्याण मार्ग (वैदिक धर्म) का सेवन करो जिस से तुम पतियों के अनुकूल हों और पति तुम्हारे अनुकूल हों (यही गृहस्थ का रस है)।

सूतवर! वहां जो दास, दासी, सेवक, भृत्य, अनाथ, दुर्बल, कुबड़े, लंगड़े, लूंजे, अंधे, बूढ़े, कष्ट जीवी पुरुष, वेश स्त्रियें हों, उन्हें कुशल पूछ उन से पूछना कि जो गुज़ारा राज्य की ओर से पहले मिलता था वह अब मिलता है वा नहीं और उस से तुम्हारा निर्वाह अच्छा चल रहा है? और उन में जो दुःखी हों उन्हें मेरी तर्फ से कहना चिन्ता न करो यह कष्ट कोई दिन का समझो मैं शीघ्र दुष्टों का नाश कर धर्मराज स्थापन करूंगा। और तब अन्न वस्त्र आदि से सब का सुख पूर्वक पालन पोषण होगा। सूत! इन के विना और जो भी कोई कहीं २ से आये हों चाहे वे विद्या, गुण, धन से, कितने

भी दीन हीन हों उन सब का मेरी ओर से कुशल पूछना। और अन्त में सबको मेरा कुशलक्षेम भी बताते रहना। पाठक! देखिये अपने महाराज का प्रजानुराग, शिष्टाचार, उदारभाव, और उत्साह लंबे संकटों के भोगने पर युद्ध की छावनी में बैठे ऊंच नीच को कैसे अपना रहे हैं।

महाबली धर्म पर विश्वास } चलते हुए संजय को धर्मबल पर विश्वास प्रकट करते हुए धर्मराज ने कहा महाशय सुयोधन को एक बार फिर सुना देना—

नही दृशाः सन्त्यपरे पृथिव्यां ये योधकाः धार्तराष्ट्रेणलब्धाः। धर्मस्तु नित्यो ममधर्म एव, महाबलः शत्रुनिवर्हणाय ॥ ३० । ४७

ये सच है ऐसे वीर योधा पृथ्वी में और नहीं है, जो आपने अपने लिये एकत्र कर रखे हैं, पर मेरा महा बलधारी योधा "धर्म" एक ही सारे शत्रुओं के नाश के लिये सामर्थ्य रखता है। अर्थात् युद्ध से पहले खूब सोच लेना।

धर्मराज की बहुत छोटी मांग (चाह) } इसके बाद धर्मराज ने छोटी से छोटी चाह भी संजय को बता दी जिसे कि वह जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक समझते थे। धर्मराज ने कहा संजय भीष्म विदुर आदि के सामने राजा सुयोधन को मेरी ओर से कहना कि मैं समझता हूं राज्य सारा ही पांडु पुत्रों का है, पर मेरे पूज्य ताया जी ने हमें आधा राज्य देकर संतुष्ट कर

लिया था, जो छल से १३ वर्ष की कड़ी शर्त पर हम से छीना गया, और इस बीच में और भी बहुत से कष्ट दिये गये, अब वह राज्य हमें मिलना चाहिये, पर आप युद्ध बिना देते दिखाई नहीं देते, मैं युद्ध से डरता हूं, क्योंकि इस से देश में बहुत दुःख बढ़ जाया करते हैं, इसलिये मैं पिछले सारे दुःखों अपमानों को भुला कर देश के हित के लिये अपने राज्य के भी हक का पूरा ध्यान न कर एक बात कहता हूं वह सुनो।

अथोचितं स्वकं भागं लभेमहि परंतप ।
निवर्तय परद्रव्याद्बुद्धिं गृद्धां नरर्षभ ॥

उद्योग ३१ । १७

शान्तिरेवं भवेद्राजन् प्रीतिश्चैव परस्परं ।
राज्यैकदेशमपिनः प्रयच्छ शममिच्छताम् ॥१८
अविस्थलं वृकस्थलं माकंदीं वारणावतं ।
अवसानं भवत्वत्र किंचिदेकंच पंचमम् ॥१९
भ्रातृणां देहि पंचानां पंचग्रामान्सुयोधन ।
शान्तिर्नोऽस्तु महाप्राज्ञ ज्ञातिभिः सह संजय ॥२०
भ्राता भ्रातारमन्वेतु पितापुत्रेणयुज्यताम् ।
स्मयमानाः समायान्तु पांचालाः कुरुभिः सह ॥

तुम पर द्रव्य का लालच छोड़, हमें आधा राज्य, कोई एक प्रान्त, अथवा बहुत नहीं तो हम पांच भाइयों को कम से कम, १ इन्द्रप्रस्थ २ वृकप्रस्थ ३ माकंदी ग्राम ४ वारणावत, और पांचवां कोई एक नगर देदो सुयोधन ! हम शान्ति चाहते हैं, इतने से शान्ति और आपस की प्रीति हो जायगी, मैं नहीं चाहता जाति जाति से लड़े, किन्तु मैं चाहता हूं भाई भाई से, पिता पुत्र से, सम्बन्धी बांधवों से मिल जाय। और हम सब कुरु पाञ्चालों की तबाही (क्षति) न देखें। सब शान्त रहें।

अलमेवशमायास्मि तथा युद्धाय संजय।
धर्मार्थयो रलंचाहं मृदवेदारूणायच ॥३१।२३

यदि आप इतना भी न देना चाहें और युद्ध ही चाहें तो मैं उसके लिये भी तयार हूं। किसी और ध्यान में न रहना मैं क्षत्रिय हूं, इस लिये कोमल भी हूं और कड़ा भी हूं। आप विचार लें।

विदुर की सुन्दर नीति* } संजय जब लौट कर हस्तिनापुर पहुंचा तो रात्रि समय होने पर भी उस ने राजा धृतराष्ट्र से भेंट की, और उस समय उसने और वृत्त सभा में कहूंगा कहते हुए इतना तो कह ही दिया कि धर्मराज बड़े

---

* उद्योग पर्व ३३-४० तक आठ अध्यायों में यह उपदेश विदुर नीति के नाम से बहुत-विस्तार से है, विदुरनीति भाषा टीका सहित छप चुकी है।

धर्मात्मा और न्याय की बात कह रहे हैं, आप लालच में आ कर जगत् भर में निन्दापात्र बन रहे हैं । इस बात को सुन संजय के चले जाने पर धृतराष्ट्र की नीन्द नष्ट हो कर व्याकुलता बढ़ गई। इस दुःख को दूर करने के लिये उन्होंने महात्मा विदुर जी को बुलाया, उन्होंने निद्रा नाश सुनते ही कहा— राजन् ! निद्रा नाश तो कामी, चोर, हीन साधन, बलवान से दबाये हुए, वा सर्वस्व खोये हुएका हुआ करता है, आपको उनमें से तो कोई कारण नहीं लिपट गया । अथवा कभी २ पर द्रव्य हरने, मित्रों के त्याग, सज्जनों से कुव्यवहार करने से भी ऐसा संताप हो जाया करता है । लोक निन्दा के कारण भी बहुधा नीन्द नष्ट हो जाया करती है, कदाचित् पांडवों के कारण पैदा हुई लोक निन्दा ही न दुःख दे रही हो, सो इस का तो सहज ही उपाय है सो आप कर डालिये ।

प्रदायैषामुचितं तातराज्यं सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः ॥ ३३ । १२३

अर्थात् उन को उचित राज्य भाग देकर पुत्रों सहित बेखटके सुख भोगिये । मत समझना कि राज्य बट जाने से तेरे पुत्रों का बल घट जायगा, किन्तु धर्मात्मा, विद्वान, शूर कुन्ती पुत्रों के साथ मिल कर मिले हुए वृक्षों के संघों की भान्ति कौरवों में शत्रुदल की प्रतीप वायु सहने की शक्ति हो जायगी । मिल कर रहने से पुण्य और यश भी बढ़ जाता है, बिखरे हुए कभी धर्म नहीं कर सकते; सुख नहीं पा सकते, शान्त रह कर गौरव नहीं बढ़ा सकते । सच पूछिये तो तेरे

पुत्र वन के समान हैं, और वे वन सिंहों के तुल्य हैं, दोनों के मिलने से दोनों की रक्षा तथा जीवन हो जायगा।

सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत्, सिंहाविनश्येयुर्ऋते वनेन ॥ ३७ । ६४

स्वजाति संवर्धन } राजन् शास्त्र में लिखा है स्वजाति की सदा वृद्धि करनी चाहिये, इस से लोक में यश बल, और सुख बढ़ता है, जाति से कभी विरोध नहीं करना चाहिये।

संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि ।
तुषैरपि परिभ्रष्टा न प्ररोहन्ति तन्दुलाः ॥
ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च ।
सुवृत्ता स्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥

जातियें तार देती हैं, और जातियें डुबो भी देती हैं, सदाचार वाली तार देती हैं, दुराचार सम्पन्न डुबो देती हैं, और पांडव तो महा सदाचार संयुक्त हैं, उनका मान तो सर्वथा कल्याणकारी है। महाराज जाति हित के लिये तुम्हें यह भी करना चाहिये, कि शकुनि आदि के चक्र में चढ़ कर दुर्योधन ने जो २ पाप वा अनर्थ किये हैं, उनका तू परिमार्जन (शोधन) कर जिस से तेरा जीवन लोक परलोक में सुखमय हो, और जाति में विरोधांकुर का नाश हो जाय। यह कह विदुर जी अपने घर चले गये।

कौरव सभा में विचार ।

सभा माविविशुर्हृष्टाः सूतस्योपदिदृक्षया ।
शुश्रूषमाणाः पार्थानां वाचोधर्मार्थसंहिताः ॥३

सुधावदातां विस्तीर्णां कनकाजिर भूषिताम् ।
चन्द्रप्रभां सुरुचिरां सिक्तां चन्दन वारिणा ॥४

रुचिरैरासनैः स्तीर्णां कांचनैर्दारवैरपि ।
अश्मसार मयैर्दान्तैः स्वास्तीर्णैः सोत्तरच्छदैः ५

अगले दिन चान्द जैसी श्वेत, सुवर्ण जटित आंगन वाली, विशाल तथा चन्दन जल से आसेचित, राजसभा में सुवर्ण, रजत, हस्तिदन्त, उत्तम काष्ट, और बल्लौर वा अश्मसार के बने सुन्दर दृढ़, सुखद आसनों पर पांडवों का मत जानने के लिये सारे राज सभासद और राज प्रतिनिधि, अपने २ निश्चित पदानुसार ठीक समय में बैठ गये । सभा भर जाने पर संजय आया, और उस ने पांडवों का शिष्टाचार, मित्रबल सम्बन्धी संगठन, कष्ट सहन, और पूर्व कष्ट विस्मरण, सुन्दर शब्दों में सुना कर महाराज युधिष्ठिर द्वारा की हुई कम से कम मांग (५ गांव) को कह सुनाया । और अर्जुन के वीर शब्दों को सुना कर, अपना मत बताया कि कौरव हित इसी में है, कि पांडवों को कुछ राज्य भाग देकर प्रसन्न कर लिया जाय, वरन तबाही है ।

संजय के पीछे भीष्म ने शकुनि कर्ण आदि के कुमंत्र की निन्दा कर कुरुराज को पांडवों से सन्धि करने की सलाह दी और गुरु द्रोणाचार्य ने भी भीष्म की पुष्टि में ही कहा—

पुरायुद्धात्साधुमन्ये पांडवैः सहसंगतम् ।४९।४५

संजय द्वारा अर्जुन की बातों को सुन कर मैं भी यही चाहता हूं, कि पांडवों से सन्धि करली जाय अन्यथा मैं अर्जुन को जानता हूं, वह जो कहेगा, कर ही देगा । इस पर कर्ण आदि ने बहुत विरोध करते हुए अपने बल की श्लाघा की। और युद्ध को ही हितकर बतलाया।

इस बात चीत में धृतराष्ट्र ने संजय से धर्मराज की इच्छा दुबारा पूछा कि क्या थी! संजय सभा में पांडवों से युद्ध के विचार सुन व्याकुल सा हो कर कहने लगा—

महाराज! वहां जो कुछ हो रहा है वह धर्मराज के इशारे से ही हो रहा है, मत्स्य, पञ्चाल, यादव, म्लेच्छ, एकलव्य, धृष्टद्युम्न श्रीकृष्ण और पांडव सब उसी के मुख की तर्फ देख रहे हैं, जो वह कहेगा कर डालेंगे, और वह स्वयं भी युद्धार्थ तयार हैं, और तुम्हारी सारी सेना के मुखिया योधाओं के जोड (प्रतियोधा) तयार किये हुए हैं।

धृष्टद्युम्नः सदैवैतान्संदीपयातिभारत ।
युध्यध्वमितिमाभैष्ट युद्धाद्भरसत्तमाः ५७।४७

और द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न * उन सब को सदा युद्ध के लिये उद्दीप्त करते रहते हैं।

धृतराष्ट्र का निज मत — संजय द्वारा पांडवों का बल और निश्चय जान धृतराष्ट्र दुर्योधन से भरी सभा में बोला—पुत्र! क्षत्रतेज संपन्न ब्रह्मचारी युधिष्ठिर से युद्ध करना बुद्धिमत्ता, नहीं। और न ही युद्ध सब अवस्थाओं में सुखदायक होता है, इस लिये—

अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम्।
प्रयच्छ पांडुपुत्राणां यथोचितमरिंदम ॥५८।३

आधा राज्य पांडवों को देदे, तेरे लिये आधा राज्य ही पर्याप्त है। देख मैं युद्ध नहीं चाहता, बाल्हीक, भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, संजय, सोमदत्त, शल, कृपचार्य, सत्यव्रत पुरुमित्र जय भूरिश्रवा और अन्यान्य कौरव भी युद्ध नहीं चाहते ऐसी दशा में जय कठिन है। और पुत्र मैं यह समझता हूं, जो तू करता है वह स्वयं नहीं किन्तु शकुनि आदि का प्रेरा ही करता है।

दुर्योधन का अभिमान और लोभ — पिता के वचन सुन विदेशी के हाथ में चढ़े हुए दुर्योधन ने कहा—पिता जी! मैंने आप के भरोसे वा भीष्म, द्रोण; संजय तथा अन्यान्य कौरवों के भरोसे युद्ध निश्चय नहीं, किन्तु कर्ण

---

* इस से प्रतीत होता हैं, युद्ध भड़काने वाले पाञ्चाल राज धृष्टद्युम्न थे न कि श्रीकृष्ण।

दुःशासन के बल से समरयाग रच कर, रथ की वेदि, खड्ग का स्रुव, गदा का स्रुक्, कवच का सद चारों धुरों को चातुर्होत्र; बाणों को दर्भ बना कर युधिष्ठिर की पशुबलि देकर आत्मयज्ञ को पूर्ण कर जय लाभ करूंगा। कुरुश्रेष्ठ! बहुत विवाद की जरूरत नहीं मैं तो यही चाहता हूं कि या मैं पांडवों को मार सारा राज्य भोगूं या पांडव मुझे मार सारा राज्य सम्भाल लें। और यदि आप मुझे जोर ही डालेंगे तो मैं सारा राज्य, धन, और प्राण भी आप के लिये छोड़ दूंगा पर मैं पांडवों के साथ मिल कर एक दिन भी यहां न वसूंगा।

यावद्धिसूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण मारिष।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पांडवान्प्रति।५८।

आधा राज्य तो क्या जितना भू भाग सूक्ष्म सूई के अग्र भाग में आ सकता है, पांडवों के लिये मैं उतना भी देना नहीं चाहता।

पाठक! देखिये गोत्र हत्यारे, देश नाशक, पर स्वत्व हर्ता, धर्म द्वेषी, अधर्म मित्र; विदेशी के हाथ में चढ़े हुए आर्य पुत्र पर अनार्य स्वभाव दुष्ट दुर्योधन के हठ, आग्रह, लोभ, अभिमान, वृद्धापमान को, न उसे किसी के स्वत्व का ध्यान न अपने बल का विचार, न वृद्ध अनुशासन का डर, केवल अहं ही अहं भाव है। सच पूछिये तो ये कोई नये भाव नहीं किन्तु नष्ट होने वाली जातियों और दुर्गति पाने वाले मन्दात्माओं में ऐसे भाव विनाशकाल में हो ही जाते हैं। क्योंकि परमात्मा ऐसे पुरुषों को अभ्युदय, सुख संपन्न जीवन, देर तक नहीं दे

सकते जो वृद्धों का अपमान, स्त्रियों की अप्रतिष्ठा, बन्धुओं से द्रोह करते और पर द्रव्य वा स्वत्व को छल से तथा बाहु बल से दबा लेते हैं। यदि भारत के भावी राष्ट्र संहारी युद्ध का कोई उत्तर दाता है तो कौरव परिवार नहीं किन्तु विदेशियों के हाथ पर चढ़ा दुर्योधन है।

धृतराष्ट्र की व्याकुलता

चलते हुए विवाद में ही धृतराष्ट्र ने व्याकुल चेता पुरुषों की भान्ति संजय से फिर पूछा—सूत ! तुम ने वहां कृष्ण का क्या मत देखा और वह किस के पक्ष में रहेगा तथा अपनी सेना और उन की सेना में अधिक बल उत्साह कहां दिखाई देता है ? और लक्षणों से तुम्हें जय कहां प्रतीत होती है ?

संजय ने कहा राजन् ! जैसे अर्जुन आदि युद्ध के लिये पूर्ण समुद्र की तरह उमड़ रहे हैं वैसे ही (यदि सन्धि न हुई तो) श्रीकृष्ण उत्क्रान्ति दिखा रहे हैं, और उन्होंने चलते समय मुझे कह भी दिया था कि कुरुराज को मंत्रियों सहित सुना देना कि तुम पर भारी दुःख आने वाला है कोई यज्ञ, दान, पुण्य, शुभ कर्म जो हो सके कर लो, फिर कहा राजन् ! कृष्ण का पक्ष और जय पूछते हो तो मैं सत्य कहता हूं।

यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः ।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥

संजय से हृदय को हिला देने वाले वृत्त सुन भयातुर हुए धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को कहा पुत्र ! बल का अभिमान मत

कर उधर सेना बल तेरे से कम नहीं । पांडवों की न केवल पंचालराज, मत्स्यराज, तथा वीर यादव आदि बन्धुगण ही सहायता करेंगे किन्तु युद्ध छिड़ गया तो—

धर्मादयः समेष्यन्ति समाहूता दिवौकसः ॥६०।९

युधिष्ठिर आदि के पितर (वीर्य दाता) धर्म * वायु, इन्द्रादि भी आजायंगे । और उन के योधा भी विलक्षण हैं केवल अर्जुन ही ऐसा धनुष रखता है ।

शतानि पंच चैवेषून्योगृह्णन्नैव दृश्यते ।
निमेषान्तर मात्रेण मुंचन्दूरंच पातयन् ।६०।१६
यस्यैकषष्टिर्निशिता स्तीक्ष्णधाराः सुवाससः संमतो हस्तवापः ॥ उद्योग २३ । २२

जिस में एक ही बार ६१ तीष्ण बाण चढ़ते हैं । तथा जिस से एक ही वेग में ५०० पांच सौ बाणों को वह छोड़ देता है । इस लिये समय है कि तू पांडवों से संधि करले ।

---

* इस से प्रतीत होता है उस समय धर्म इन्द्र वायु आदि हिमालय वासी ऋषि जीवित थे । तथा महाभारत में ऐतिहासिक रूप से वर्णित सूर्य, चन्द्र, शुक्र, हंस, परशु, हस्तो, वेद, धर्म, इन्द्र, वायु, अग्नि, (पावक) पर्वत, नरक, स्थाणु आदि पुरुष ही थे, इतर योनि प्रभवपक्षी आदि न थे ।

श्री व्यास और गांधारी उपदेश — इस पर भी जब दुर्योधन ने हठ न छोड़ा तब उसे समझाने के लिये श्री वेदव्यास और माता गांधारी को बुलाया । व्यास जी ने कहा राजन् ! जो संजय कहते हैं ठीक है । और गांधारी ने कहा पुत्र जिस ऐश्वर्य और जीवन के लोभ से तू न्यायपथ और बृद्धों की आज्ञा का भंग कर रहा है, स्मरण रख तेरे लिये यह अच्छा नहीं होगा, अगर लड़ाई छिड़ गई तो तेरा धन ऐश्वर्य यहां ही धरा रह जायगा, भीमसेन के हाथ से मारा जाकर तूं पिता के वचनों को स्मरण करेगा । तेरे शत्रुओं के घर खुशी के नक्कारे बजेंगे और तेरे बूढ़े मां बाप रोते फिरेंगे ! अतः हे पुत्र समझ कर बालक न बन, उन का हक्क देकर भाइयों से मिल और यश बढ़ा । पर शोक कि बिना शोन्मुख धार्तराष्ट्र क माता के उपदेश का भी कोई लाभ न पहुंचा ।

कृष्ण दूतत्व खंड ४ ।

दूत एव हि सन्धत्ते भिनत्येव च संहतान् ।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येनवानवा ॥

मनु० ७ । ६६

अग्ने ! दूतो विशा मसि ॥ ऋ०

युधिष्ठिर का श्रीकृष्ण से प्रश्न

इधर कौरवों में जब इस प्रकार बातचीत हो रही थी, तब राज्यभ्रष्ट राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से पूछ रहे थे, माधव! हमारा अधिकार, और पिछले १३ वर्षों में कष्ट से बिताया जीवन आप को याद है, अब संजय से सुयोधन का मत भी आपने जान ही लिया है। और महाराजा धृतराष्ट्र पुत्र स्नेह वश उस के विरुद्ध नहीं होंगे। अब हमें क्या करना चाहिये? यादव श्रेष्ठ नम्रता सहिष्णुता की भी कोई सीमा होती है, हमने, काशि, चेदि, पांचाल, मत्स्यराज तथा आप की सलाह से ५ पांच गांवों पर भी सन्तोष कर लिया था पर वह इस पर भी रजामन्द नहीं, हम अपने कष्टों को क्या सुनायें, सब से बड़ा दुःख यह है कि—

इतो दुःखतरं किंतु यदहं मातरं ततः।
सविधातुं न शक्नोमि मित्राणां वा जनार्दन॥

हम वहां रहती श्री माताजी. और अन्य स्नेही मित्रों को, भी कोई सेवा शुश्रूषा नहीं कर सकते, श्री माधव जी। ऋषियों ने निर्धन जीवन से परे कोई पाप गति नहीं बताई जहां पुरुष प्रातः सायं भोजन भी न कर सके। कई लोग धन रहित जीवन से मरने को अच्छा मानते हैं।

न तथा वाध्यते कृष्ण प्रकृत्या निर्धनो जनः।
यथाभद्रां श्रियं प्राप्य तया हीनः सुखेधितः॥

कृष्ण ! जो लोग सदा से निर्धन हैं, उन्हें धन हीनता का दुःख नहीं जितना दुःख कि एक राज्य श्री संयुक्त राजा को जैसे कैसे राज्य वैभव से भ्रष्ट होने पर होता है और यदि युद्ध करते हैं तो उस से जाति हनन का भयंकर दुःख संताप दे रहा है, सो इस संकट समय में इस कृच्छ्र प्रश्न को आप ही हल करें, क्योंकि आप धर्म के ज्ञाता, और हमारे प्रिय, तथा हित चाहने वाले हैं।

श्रीकृष्ण का उत्तर।

उभयोरेव वामर्थे यास्यामि कुरुसंसदम् ।७२।७९

शमंतत्र लभेयं चेद्युष्मदर्थ महापयन् ।

पुण्यं मे सुमहद्राजँश्चरितं स्यान्महाफलम् ॥८०

मोचयेयं मृत्युपाशात्संरब्धान् कुरुसृंजयान् ।

पांडवान् धार्तराष्ट्रांश्च सर्वांच पृथिवी मिमाम् ॥

न जातु गमनं पार्थ ! भवेत्तत्र निरर्थकम् ।

अर्थप्राप्ति कदाचित् स्यादन्ततोवाप्य वाच्यता ॥

धर्मराज का दुःख सुन श्रीकृष्ण ने कहा पार्थ ! तुम दोनों के हित अर्थ मैं कुरु सभा में जाता हूं, यदि तुम्हारा हक नाश न करते हुए सुलह हो गई, तो बड़ा पुण्य होगा, और मैं इस भयंकर युद्ध में जुड़ने वाले कौरव पांडव, उन के साथी,

तथा जगत् भर के प्रसिद्ध २ योधाओं को मौत के मुंह से बचा, सकूंगा। और यदि हमारे नियमों पर सुलह न हुई तो भी मेरा जाना व्यर्थ न होगा, क्योंकि सारे देश के राजाओं चारों वर्णों बाल वृद्ध और जानपदों के सामने अपनी न्याय संगत मांगनी मांग कर और उन की ओर से उस के न मिलने पर हम संसार के मनुष्यों के सामने निन्दा के पात्र न बनेंगे। और सब लोग उन्हीं को निन्दा करेंगे। और जो लोग अज्ञान वश द्विविधा में हैं एक मति हो जायेंगे।

कृष्ण गमन की पुष्टि

कृष्ण का शान्ति निमित्त हस्तिनापुर गमन सुन, १ धर्मराज ने कहा माधव! आप हमारे बन्धु और मित्र हैं, आप हमें, उन्हें, और हमारे प्रयोजन को जानते हैं अतः जो हितकर शब्द हों वही सुयोधन को कहना, और नहीं।

२ भीमसेन ने कहा मधुसूदन! जिस वचन से शान्ति हो युद्ध न हो वही करना। क्योंकि हमने अनेकों कुल युद्ध से नष्ट होते देखे हैं हम वह पाप करना नहीं चाहते।

३ अर्जुन ने कहा मित्र! धर्मराज ने जो कहा है वह आपने सुन लिया है, क्षत्रिय को धोखे से बुला कर छल द्यूत से जैसे देश से निकाला, पाप बुद्धि दुःशासन ने देवी द्रौपदी को जैसे सभा में खैंचा ये आप को भूला न होगा, इस लिये जो उचित और पांडवों के हितकर हो वह कह देना, संकोच न करना।

४ नकुल ने कहा यादव! धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, ने

जो कहा है ठीक। पर यह सब विचार यहां के योग्य हैं वहां न मालूम क्या परिस्थिति हो, इसलिये वहां की अवस्था देख जो उचित समझना कह देना, यह ठीक है वह लोभी है, हठी है, अभिमानी है, पर यह पुरानी कथायें हैं, दशा बदलते देर नहीं लगती, जब हम बन में थे हमारा कोई सहायक न था न कोई तब हमारा बल था, आज आप सरीखे सम्बन्धियों की कृपा से हमारे पास सात अक्षौहिणी वीर सेना है, इन्हें देख क्या उन पर प्रभाव न पड़ा होगा ?

श्रोताचार्थस्य विदुरस्त्वञ्चवक्ता जनार्दन।
कमिवार्थं निवर्ततं स्थापयेतां न वर्त्मनि।८०।१८

जनार्दन ! कहने की क्या जरूरत है आप वक्ता हों और महामंत्री विदुर जी श्रोता हों फिर भला कौनसी बात है जो विगड़ी हुई भी न सुधर जाय।

५ सहदेव ने कहा वृष्णिसिंह ! जो क्षत्रिय धर्म धर्मराज ने कहा उस में युद्ध क्षत्रिय का धर्म है अतः वही करना जिस से युद्ध छिड़ जाय। और यदि कौरव पांडवों से शान्ति ही रखना चाहे तो भी लोहा गर्म करा ही देना। धर्मराज ! द्रौपदी के सभा में अपमानित देख बिना सुयोधन वध किये मेरा क्रोध कैसे शान्त हो सकता है ? हां यदि भीमार्जुन तथा धर्मराज शान्ति प्रिय हो गये हैं तो मैं उस से जरूर युद्ध चाहता हूं।

६ सात्यकि ने कहा महाबाहो माद्रीपुत्र शूरशिरोमणि सत्य तो कह रहा है. स्त्रियों का अपमान देख भला किसे न क्रोध आवे ? आप को भी तो बन में इन्हें दुःखित देख क्रोध

आ ही गया था । सहदेव के मत पर सब वीरों ने साधु ! साधु ! ! कहा ।

द्रौपदी का हृदय द्रावक भाषण

इन सब का श्रीकृष्ण यथोचित उत्तर दे कर जब कृष्ण विचार सभा समाप्त करने लगे तब शोकातुर, अश्रुपूर्णाक्षी, द्रुपद सुता बड़े करुणा भरे शब्दों में वीर सहदेव, तथा सात्यकि के मत को गौरव देती हुई बोली–धर्मज्ञ ! दुष्टदमन ! आप को कौरवों का छल पांडवों का राज्यनाश, वन कष्ट, और संजय द्वारा दुर्योधन आदि का वर्तमान अभिप्राय तथा युधिष्ठिर से मांगे गये पांच गांवों का वृत्त मालूम ही है । इस लिये वहां जाकर जिस तरह पांडवों का हित आप का यश दुष्टों का दमन हो वही करना कहीं जाकर केवल ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः न करने लग जाना।

कृष्ण कभी आपने द्रुपदराज की पुत्री, धृष्टद्युम्न की बहिन, पांडु की पुत्रवधु, कौरवों की कुलवधु, पांडवों की धर्मपत्नी, पांच पुत्रों की मां कृष्ण की प्यारी सखी को निरपराध भरी सभा में केशों से पकड़ खैंचने का कारण भी पूछा है ?

अयंतेपुंडरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः ।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां संधिमिच्छताम् ॥
यदिभीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ संधिकामुकौ ।
पितामेयोत्स्यते वृद्धः सहपुत्रैर्महारथैः ॥ २७
पंच चैव महावीर्या पुत्रामेमधुसूदन ।

अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यन्ते कुरुभिसह ॥३८

दुःशासनभुजंश्यामं संछिन्नं पांसुगुंठितम् ।
यंद्यहंतु न पश्यामिका शान्तिर्हृदयस्यमे ॥३९

दुःख के आंसुओं से नेत्रों को भर कर, कृष्ण और लंबे केशों को बायें हाथ से पड़क सभा में दिखाते हुए कृष्णा ने कृष्ण से कहा यदि आप शान्ति के बहुत प्यारे हो तो पापी दुःशासन से बिना अपराध एक आर्य स्त्री के केशों को पकड़ भरी सभा में लाने को भी सदा याद रखना। और यदि कृपण (निर्लज्ज) भीम अर्जुन दुःष्टों से संधि चाहते हैं तो, मेरा वृद्ध पिता मेरे भाइयों और मेरे वीर पुत्रों को साथ लेकर अभिमन्यु को सेनापति बना कौरवों से युद्ध कर लेगा ! वीर ! जब तक पापी दुःशासन की वह स्याह भुजा जिसने एक सती के केश खैंचे थे कट कर धूलि में नहीं मिल जाती तब तक क्या मेरे हृदय में शान्ति हो सकती है ? भगवन् ! १३ वर्ष तक मैंने इस क्रोधाग्नि को हृदय में सहनता की राख से दबाये रखा पर आज तुम्हारी शान्ति सभा की वक्तृताओं से पावक प्रदीप्त हो गया है, अब यह पाप मल शुद्ध किये विना शान्त न होगा। मेरे विचार में तो जो स्त्रियों के अपमान को देख कर शान्ति सभा चाहें धिक्कार है उन के क्षत्रियत्व को और धिक्कार है उन की अस्त्र शस्त्र विद्या को।

द्रौपदी को सान्त्वन — द्रौपदी की करुणामय कहानी से कृष्ण का हृदय भी दयार्द्रित हो गया । और उसी

दशा में कृष्ण बोले देवि ! आसुओं को पोंछ ले तेरे पुण्यों से तेरे दुःखों की इति हो गई है । शीघ्र ही शत्रुओं की स्त्रियों को रोते चिल्लाते देखेगी । पापी हतमित्र, हतबल, हो कर तेरे क्रोध से भस्म हो जायंगे । मैं महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से भीमार्जुन नकुल सहदेव की सहायता से तेरे क्रोध शमन का उपाय शीघ्र करूंगा ।

चलेद्धि हिमवान् शैलो मेदिनी शतधापतेत् ।
द्यौः पतेच्च स नक्षत्रा नमेमोघं वचोभवेत् ।८२।४८

श्रीकृष्ण की यात्रा — कार्तिक शुक्लपक्ष रेवति नक्षत्र को, सूर्योदय के किञ्चित् पीछे, १ शैब्य, २ सुग्रीव, ३ मेघपुष्प और बलाहक नामी घोड़ों को एक दिव्य, सुदृढ़, ध्वजा, पताका वाले रथ में, एक हजार घुड़सवार, एक हजार पैदल योधाओं को साथ ले महाबली सात्यकि और कृतवर्मा आदि को शरीर रक्षक नियत कर—

कृत्वापौर्वान्हिकंकृत्यं स्नातः शुचिरलंकृतः ।
उपतस्थेविवस्वन्तं पावकंच जनार्दनः ।८३।९

स्नान, सन्ध्या, अग्निहोत्र, गायत्री जाप कर, ब्राह्मणों के वैदिक आशीर्वादों को लेकर सारे मित्र मंडल से अनुमोदित, भारत हित के लिये, भारत का सर्व श्रेष्ठ नेता, मानापमान, हानि लाभ, जीवन मरण त्याग, शान्ति स्थापना के

विचार अर्थ " दूत " * बन कर क्रूर शत्रु के घर को प्रसन्नता से चल पड़ा।

धर्मराज की मातृ भक्ति

रथ में बैठ कर चल पड़ने पर धर्मराज ने पीछे पाऊं प्यादे जाकर कृष्ण को कहा, कृष्ण ! यदि जन्मकाल से दुःख उठा कर हमें विद्वान् बली बनाने वाली माता, हमारे लिये संकट झेल कर भी सन्ध्या अग्निहोत्र के पीछे स्वस्तिवाचन करने वाली हमारी जननी जीती हो तो उस के पाऊं को मेरी तर्फ से सादर स्पर्श कर पादव-न्दन कहना। कृष्ण ! हमारी माता ने अपने विवाह काल से ही श्वशुर कुल के लिये श्वशुर कुल वालों की ओर से ही जो २ कष्ट सहे हैं वह कदाचित् ही किसी राज कुमारी पुत्रवती ने सहे होंगे।

अपिजातुसकालः स्यात्कृष्ण दुःखविपर्ययः।
यदहं मातरं क्लिष्टां सुखंदद्या मरिंदम ॥८३।४२

कृष्ण ! कभी मुझ पर भी वे दिन आयेंगे, जब मैं दुःखों

---

* कई लोग समझते हैं श्रीकृष्ण पांडवदल के संदेश ले जाने वाले होंगे, सो नहीं किन्तु वे भारत के प्रभावशाली तेजस्वी नेता थे, और शान्ति स्थापना के लिये सात्यकि आदि यादवों की चुनी हुई मंडली के साथ गये थे। जैसे कि पिछले योरुपीय युद्ध में राष्ट्रपति विलसन अमेरिका के प्रेजीडैंट गये थे। और हस्तिनापुर जाकर भी इन्होंने अपने पद के योग्य ही पुरुषार्थ किया, फल सदा ईश्वराधीन होता है।

से निकल कर, अनन्त सुख देने वाली, और आप दुःख उठाने वाली दुःखित माता कुन्ती को सुख दे सकूं !

रास्ते में सत्कार प्रबन्ध

जब इधर कृष्ण यात्रा के विचार हो रहे थे तब से ही कौरव राज सभा ने उन के मार्ग सुख के लिये हर एक स्थान वा मार्ग पर राजा के योग्य ठहरने, खाने पीने, आनन्द मनाने, मनोरञ्जन करने, और यज्ञ याग करने के सब प्रबन्ध कर दिये । और विशेष कर 'वृकस्थल' में विशाल आयोजन कि जहां कि सर्व भूत हितैषी शान्ति संस्थापक ने रात्रि वास करना था ।

राजधानी का शृंगार

और हस्तिनापुर के बाजार, गली, चौक, मकान, सार्वजनिक भवन, राजगृह राज्य भवन आदि को भी बड़े चमकदार रत्नों और बहुमूल्य चित्रों और वेद वाक्यों से श्रीकृष्ण के आदर के लिये सजाया गया ।

राज की ओर से सत्कार

और राज्य की ओर से सत्कारार्थ भेंट देने के लिये एक ही रंग के शिक्षित, उत्तम जाति वन्त चार २ घोड़ों से जुते हुए १६ सोलह सुनहरी रथ, युद्ध में आक्रमण करने वाले आठ मदोन्मत्त मातंग, साठ २ कोस दिन में यात्रा करने वाले अश्वतरी यान, कुछ शस्त्र, भूषण, कंबलादि वस्त्र देने का प्रस्ताव किया, ताकि प्रसन्न हो कर श्री कृष्ण कौरवों का हित करें । इस पर विदुर जी ने कहा कृष्ण सर्व प्रकार से गुणी मानी और पूजा के योग्य है, और विशेष कर अब जब कि सारे देश के हित के लिये शान्ति कराने वह आ रहा है, पर स्मरण रहे वह निस्स्वार्थ महात्मा

और अच्युत पुरुप कहलाता है, इन प्रलोभनों से, उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। और वह साधारण अर्घ्य, पाद्य, सत्कार और कुशल प्रश्न के बिना अपने साथ किसी पूजन को (भेंट) पसन्द भी नहीं करेगा। अतः शुद्ध हृदय से उस का उचित आदर करो और उस के शुभ उद्देश्य में सहाय दो।

दुर्योधन ने कहा भेंट आदि देना हमारे क्षात्रधर्म के भी विरुद्ध है, क्योंकि वह समझेगा डर कर भेंट चढ़ा रहे हैं। और डर का संदेह होना भी हमारा अपमान है।

भीष्मजी ने कहा वह निश्चित सिद्धान्त के महा पुरुष हैं सत्कार, असत्कार, मान, अपमान, उन्हें उद्देश्य से डिगा नहीं सकता, आप अपना धर्मसम्मत कर्तव्य पालन करें। ऐसा ही निश्चय रहा।

मार्ग में सर्वानुराग } श्रीकृष्ण अपने लाम लश्कर सहित जब उपप्लव्य नगर से चले, दारुक सारथि ने घोड़ों को खूब तेज हांका। और जहां नगर वा वस्ती आते वहां के सर्व वर्णों के स्त्री पुरुष इन्हें देखने और पूजा करने आये हुए होते। उन सब से दुःख सुख पूछ, श्रीकृष्ण सब का यथायोग्य सत्कार से आदर करते।

वृकस्थल में रात्रि वास।

अवतीर्यरथात्तूर्णं कृत्वाशौचं यथाविधि।
रथमोचन मादिश्य संध्यामुपविवेशह ॥८४।२१

सूर्यास्त के समय श्री कृष्ण वृकस्थल में पहुंच, झट

रथ से उतर, घोड़ों को छोडने की आज्ञा दे, शौचकर्म कर सन्ध्या में बैठ गये। और दारुक आदि भी नित्यकर्म में लग गये।

नागरिक सन्मान

इस नगर के सब मुख्य २ पुरुषों ने धर्म राज का कार्य वा सर्व देश का कार्य करने वाले श्रेष्ठ पुरुष का अपने २ घरों में ले आकर उचित मान किया और भेटायें दीं। श्रीकृष्ण ने उनकी वस्तुओं को "स्वीकृतम्" कह कर लौटाते हुए उन का अपनी ओर से सन्मान किया तथा उन को भोजन खिला कर स्वयं उनके साथ भोजन किया। और वह रात वहां आनन्द से बिताई।

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रिय स्तस्मात् पूर्वो-नाश्नीयात् ॥ अथर्व ९। ६ ॥

अशितावत्य तथावश्नीयाद् यज्ञस्यसात्म-त्वाय, यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥९।६

श्रीकृष्ण का स्वागत और अतिथि सत्कार

वृकस्थल से प्रातः उठ, स्नान, सन्ध्या अग्निहोत्रादि कर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर को चले। हस्तिनापुर से आप के स्वागत के लिये बड़े आदर उत्साह से भीष्म, द्रोण, कृप, आदि सभी राजमान्य व्यक्तियें प्रजाजनों के साथ लिवाने आईं। और नगर के बड़े २ बाजारों में से घुमा कर आप की सवारी महाराज धृतराष्ट्र के राज भवन में गई। उस दिन सारा नगर ध्वजा

पताका से सुशोभित और सुगन्धित जलों से सेचित किया हुआ था। महाराजा धृतराष्ट्र के भवन की तीन ड्योढी पार करके आप के आतिथ्य के लिये वहां एक बड़ा भारी सुवर्णासन सजाया गया था। आप के जाते ही सब राजा लोग उठ खड़े हुए, और राजा की आज्ञा से जब आप बैठ गये तो सब बैठे। वाचिक सत्कार के पीछे पुरोहित द्वारा मधुपर्क आदि से आप का पूजन किया गया।

विदुर गृह में निवास — आवश्यक शिष्टाचार के अनन्तर आप विदुर के भवन में निवासार्थ चले गये, वहा भी आप का राजोचित सत्कार किया गया, क्योंकि उस राज्य में विदुर जी का बड़ा अधिकार और वैभव * था धृतराष्ट्र, दुर्योधन, के भवन समान ही आप का राजभवन था। विदुर गृह में ही षडरस संपन्न, पौष्टिक, भक्ष्य भोज्य का आप के लिये सब दिन प्रबन्ध रहा।

माता कुन्ती के दर्शन — उसी दिन तीसरे पहर श्री कृष्ण कुन्ती भवन में माता कुन्ती के दर्शनार्थ और धर्मराज का पादवन्दन कहने गये। माता ने गले लगा कर

---

* जो लोग विदुर जी को शाक पात पर निर्वाह करने वाला भक्त, वा फकीर समझते हैं उन्हें महाभारत पढ़ कर अपनी भूल सुधार लेनी चाहिये, क्योंकि महाभारत से वे कुरु-राज्य के महा मंत्री और वैभव सम्पन्न सिद्ध होते हैं। उद्योग १४८। ९ के अनुसार कोश, दान, भृत्य भरण आदि का अर्थ साध्य काम विदुर के आधीन था।

आप को आशीष दिया, और फिर से क्रूर राजा की ओर से देश से निकाले हुए वीर तथा धर्मात्मा पुत्रों और पुत्रवधु कृष्णा का कुशलक्षेम पूछा । उत्तर में सब की ओर से भक्ति पूर्वक प्रणाम कहने के पश्चात् सब का कुशल क्षेम कहा। और वर्तमान स्थिति तथा अपने आने का प्रयोजन, द्रुपद, विराट, आदि सम्बन्धि वा पृथिवीपालों का आयोजन बताया । और चलते समय माता से पुत्रों के नाम आदेश वा संदेश पूछा ।

माता का संदेश वा आदेश — माता कुन्ती ने पांडवों को संदेश देते हुए कहा—वीर पुत्रो ! मुझे विधवापन, वा धन नाश, राज कोप का इतना शोक नहीं, जितना पुत्रों के वियोग का है । और सच पूछो तो राज्य हरण का, जूए में छल से हार जाने का, पुत्रों को देश से निकालने का इतना दुःख नहीं जितना याज्ञसेनी कृष्णा के सभा में अपमानित करने का दुःख है । वृष्णिनन्दन ! यदि संधि का अवसर आ पड़े तो जो हित और पथ्य हो कर लेना, पर—

अविलोपेन धर्मस्य, अनिकृत्या परंतप ।९०।१०२

कोई काम ऐसा न करना जिस में धर्म का लोप हो, या छल का आश्रय लिया गया हो ।

ब्रूयामाधवराजानं, धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।

भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक बृथाकृथाः ॥

पराश्रया वासुदेवया जीवनी, धिगस्तुताम् ।

अथो धनंजयं ब्रूहि नित्योद्युक्तं वृकोदरम् ॥७४
यदर्थं क्षत्रियासूते तस्यकालोऽयमागतः ।
कालेहिसमनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवितम् ॥७७
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि ।
विक्रमाधिगताह्यर्थाः प्रीणन्ति पुरुषोत्तमम् ।७८

कृष्ण ! धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को कहना कि तेरा धर्म नाश हो रहा है, पराश्रय वृत्ति सदा धिक्कार के योग्य है। धनंजय को अथवा भीमसेन को कहना, जिस समय के लिये क्षत्रिय मातायें पुत्र जना करती हैं वह समय अब आगया है। काल आ जाने पर जीवन लगा देना चाहिये। विक्रम से भोगों को प्राप्त करो, चाहे जीवन भी देना पड़े क्योंकि विक्रम से प्राप्त किये भोग ही श्रेष्ठ पुरुषों की अन्तः तुष्टि के कारण होते हैं। पाठक ! यही अमृत सेंचने वाले मातृ महा वाक्य थे जिन से अमृत भाव लाभ कर पांडवों ने अक्षय यश, अखंड राज्य, तथा अनन्त सुख प्राप्त किया । आज आर्यावर्त की अधिकार हीन, धर्म च्युत, स्वराज्य भ्रष्ट सन्तान पूर्व गौरव प्राप्त करले यदि कुन्ती सी विदुषी धार्मिक मातायें और द्रौपदी सी मानप्रिया वीर स्त्रियें बन जाय।

दुर्योधन का भोज-त्याग — कुन्ती से विदा हो कर शौरि दुर्योधन के भवन में गये वहां भी आप का राज्य की ओर से सन्मान किया गया और देर तक शान्ति स्थापन पर

खुले विचार होते रहे। उठते समय दुर्योधन ने अपने हां "घरेलू भोज" खाने को कहा आपने उससे इन्कार कर दिया। कारण पूछने पर आपने कहा मैं दूत हूं, कृतार्थ होने पर भोजन करने का मेरा हक़ है। बिना कृतकार्यता के नहीं। फिर आग्रह करने पर आपने कहा भोजन या तो प्रीति से किया जाता है या आपत्ति में। यहां प्रीति नहीं, और आपत्ति में मैं भी नहीं। अप्रीति का कारण पूछने पर श्रीकृष्ण ने कहा जो धर्मात्मा और हक़दारों का हक़ दबाते हैं वे हमारे द्वेषी हैं। इस लिये मैं किसी का अन्न न खाकर महात्मा विदुर का ही भोजन किया करूंगा। हठ न करें। यह कह कर श्री कृष्ण वहां से विदुरभवन में आगये और सब लोग अपने २ घरों को चले गये।

शान्ति के लिये यत्न करना मेरा धर्म है *

विदुर से बातचीत करते२ श्रीकृष्णने रात्रि को कहा मैं कौरव पांडवों के पिछले कर्मों और स्वभावों को जानता हूं, पर युद्ध छिड़ने से कौरवों पांडवों और इन के सम्बन्धियों का सर्व नाश न हो इस लिये इस को पुण्य समझ शक्तिभर शुद्ध चित्त से मैं शान्ति के लिये यत्न करूंगा क्योंकि यह मेरा धर्म है। भाइयों की लड़ाई में पड़ कर जो लड़ाई रोक नहीं देता वह मित्र, मित्र नहीं। दुर्जन मनुष्य मुझे यह न कहे कि शक्ति रखने पर श्री कृष्ण ने लड़ाई को न रोका' इस लिये भी मैं यत्न करूंगा।

---

* कई लोग विदेशी तथा विधर्मियों के बहकाये हुए कहा करते हैं कि कृष्ण भारतीय महा युद्ध के कारण थे, और वे पांडवों के अयुक्त पक्ष का भी पालन करने लग जाते थे

उभयोसाधयन्नर्थं मह्ममागत इत्युत ।
तत्र यत्न महंकृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम् ॥९३

पांडवों को हक्क मिल जाय, कौरव मौत से बच जाय, इस तरह दोनों का लाभ जैसे हो वैसे ही मैं करूंगा ।

शंनः कुरुप्रजाभ्योऽभयंन पशुभ्यः ॥

यजु० ३६ । २२

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून्वि चर्षणिः ॥ ऋ० २ । ४१ । १२

राज सभा में शान्ति प्रस्ताव } दूसरे दिन प्रातः स्नान संध्या के पीछे अग्निहोत्र कर्म से अभी माधव निवृत्त न हुए थे कि राजसभा की ओर से संदेश ले स्वयं महाराज दुर्योधन बुलाने आये । तब श्री कृष्ण कौरवों से घिरे हुए और

इत्यादि २ । ऐसे लोगों को आदि पर्व की अनुक्रमणिका उद्योग पर्व १ । १३;२ । १,५ । ३;७ । १२;२८ । १०;९३ । १७,९२ ।२ को पूर्व पर से विचार कर पढ़ना चाहिये इनसे न केवल यह सिद्ध होता है, कि कृष्ण स्वयं अपने वचनों में दोनों का हित बताते हैं किन्तु युधिष्ठिर और दुर्योधन, दोनों प्रतिद्वन्दी अपने शब्दों में श्रीकृष्ण को दोनों का हितकर वा सर्व भूत हितैषी मानते हैं । बिना प्रमाण वा विवेक के किसी महात्मा पर आक्षेप करना पाप है । उद्यो० १४१ । ३ में कर्ण ने दुर्योधन शकुनि दुःशासन और अपने को युद्ध के कारण बताया है ।

यादव वीरों से रक्षित, अपने रथ में विदुर जी को बैठा चल पड़े। पीछे २ दूसरे रथ में दुर्योधन, शकुनि, चले। राजसभा में इन के जाने पर सब राजा लोग खड़े हो गये। सभापति की आज्ञा से श्री कृष्ण को सुवर्ण के बहुमूल्य सर्वतोभद्र आसन (चारों ओर घूम जाने वाले सुखासन) पर आदर से बैठाया गया। सभा में हजारों पुरुषों के बिना गैलरी में सैंकड़ों स्त्रियें, और मान्यवर ऋषि लोग भी बैठे हुए थे। उस समय सब की दृष्टि श्री कृष्ण को देखने और कान उस का कथन सुनने, तथा मन उस का उत्तर मनन करने के लिये लगा हुआ था। सभापति की आज्ञा से श्रीकृष्ण ने प्रस्ताव किया।

कुरुणां पांडवानांच शमः स्यादितिभारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः।९५।३

महाराज ! मैं शान्ति (संधि) की भीख मांगने आप के द्वार पर आया हूं। जिस से कौरव और पांडवों में किसी का भी नाश न हो, ऐसा उपाय आप कीजिये। शान्ति की स्थापना कोई दुष्कर कर्म नहीं यदि आप चाहें। यह आप के और मेरे वश में है। आप अपने पुत्रों को समझावें मैं दूसरों को समझा दूंगा, स्वत्व किसी का न मारा जाय, किन्तु दोनों में आधा २ राज्य बांट कर सन्धि करादें। इस से तुम्हारा बल इतना बढ़ेगा कि आप सारे जगत् को जीत कर शासन कर सकेंगे। पिछली बातों का जानता हुआ भी धर्मात्मा युधिष्ठिर 'प्रजा का नाश न हो' इस लिये सब को भुलाने

को तयार है। राजन्! आप भी अपने कुल और प्रजा के हित के लिये पुत्रों को समझाकर न्यायसंगत शान्ति का यत्न करें।

स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थितायोद्धुमरिंदमाः।
यत्तेपथ्यतमं राजंस्तस्मिंस्तिष्ठ परंतप।९५।६२

मत समझना कि पांडव युद्ध से डर कर मुझ से शान्ति का प्रस्ताव करा रहे हैं। वे तो संधि हो जाय तब आप की सेवा करने को तयार हैं, युद्ध छिड़ जाय तव युद्ध को तयार हैं, अब आप अपना २ हानि लाभ विचार कर निश्चय कर लो। पर सब का भला शान्ति स्थापना में ही है। यह प्रस्ताव सुन कुछ देर तक तो सारी सभा में मूकता सी फैल गई, फिर पीछे धृतराष्ट्र बोले, कृष्ण! चाहते हम भी यही हैं पर दुर्योधन के हठ से हम व्याकुल हो रहे हैं। भीष्म, द्रोण, कृप, और गन्धारी बार २ इसे समझाते हैं वह मानता नहीं आप उसे समझालें, फिर सब इष्ट सिद्धि हो जायगी।

दुर्योधन को उपदेश — राजा का इशारा पा श्रीकृष्ण दुर्योधन को संबोधन कर बोले भाई! शान्ति में ही संसार का सुख है, आप आर्य कुल में पैदा हुए हैं शास्त्र पढ़े हैं, श्रद्धा से माता और पिता की आज्ञा को मानियें, अपनों से बैर पराओं से दोस्ती की टेढी चाल छोड़ दीजिये, इससे विभूति नष्ट हो जाती है। आधा राज्य भाईयों को देकर उन वीर भाईयों के बल से जगत् की राज्य श्री का उपभोग कीजिये। भाईयों से मिलना टोटे का सौदा नहीं है। इसके पीछे भीष्म,

द्रोण, विदुर, ने भी शान्ति की ही पुष्टि की। विदुर जी ने यह भी कहा कि दुर्योधन ! मुझे तेरी इतनी चिन्ता नहीं जितनी कि तेरे बूढ़े मा बाप की है, अगर युद्ध छिड़ गया तो तेरे मरने पर वे अनाथों की भान्ति गलियों में भीख मांगते फिरेंगे । और यह सारे कष्ट उन्हें तुझ जैसे कुल हत्यारे को जनने के कारण ही सहने पड़ेंगे। अभी अवसर है कि तू वासुदेव तीर्थ से अपने दुःख तर ले ।

गान्धारी का उपदेश } कृष्ण, भीष्म, विदुर आदि के सुझाने पर भी जब दुर्योधन ने अपने हठ और स्वार्थ को न छोड़ा तब फिर माता गान्धारी से राज्य की ओर से कहा गया कि उसे हित नीति का उपदेश करे।

नहि राज्यंमहाप्राज्ञ स्वेनकामेन शक्यते ।
अवाप्तुं रक्षितुं वापि भोक्तुं भरत सत्तम।१२९।२२
न युद्धेतात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम् ।
न चापि विजयो नित्यं मा युद्धेचेतः आधिथः ॥

गान्धारी ने एक उदार भाषण करते हुए कहा पुत्र ! राज्य अपनी इच्छा से नहीं मिला करता, न इच्छा से सुरक्षित रहता है, न भोगा जाता है, राज्य सदा लोकमत से गुणवान् को मिलता है वह लोकमत तेरे विरुद्ध क्रुद्ध हो रहा है, पांडवों का भाग देकर इस क्रोध को दूर कर। और युद्ध की कभी इच्छा न कर युद्ध कहीं कल्याणकारी नहीं होता, न इस में धर्म या अर्थ ही हैं, नहीं विजय निश्चय होता है। और यह भी न सम-

झना कि पांडवों को तुम कर्ण, शकुनि के सहारे जीत लोगे, उन में बहुत बल है। देश की बड़ी २ शक्तियें उधर हैं। अच्छा है तुम संधि करलो *।

कृष्ण को कैद करने का विचार } जब गांधारी कह ही रही थी कि अपथ्य सेवी आतुर की भान्ति दुर्योधन ने झट वहां से उठ कर चांडाल चौकड़ी में जा आसन जमाया। और जा कर शकुनि से विचारने लगे कि इस यादव के आने से हमारे प्रतिकूल क्षोभ बढ़ रहा है अच्छा हो इसे पकड़ कर कहीं कैद कर दें. इस से दोनों काम हो जायेंगे। अर्थात् हम अकुतोभय हो जायंगे वे मर जायंगे, क्योंकि उन का शर्म वर्म यही है।

सात्यकि की सावधानी } यह दुष्ट मंत्र इंगितों वा बुद्धि से जान, सात्यकि ने कृतवर्मा को इशारा किया, कि अधर्मी अनर्थ करना चाहते हैं, फौज को व्यूह में (सभा द्वार पर) कर दो और रथ प्रतिक्षण तयार रखो, ताकि अव-सर पड़ने पर श्री कृष्ण को छलियों बचा सकें। और उधर धृतराष्ट्र और विदुर आदि से सात्यकि ने यह सब विचार बता कर कहा, तुम्हारा पुत्र वस्त्र से प्रज्वलित अग्नि को पकड़ना चाहता है, उस का उपाय सोच लो क्योंकि यह अनीति है।

---

* गांधारी धृतराष्ट्र भीष्म द्रोण विदुर आदि के संधि चाहने पर भी जो दुर्योधन हठ पर डटा रहा और अन्त को युद्ध करा ही दिया, इस से मालूम होता है राज्य में दुर्योधन मंडली को कुछ विशेष अधिकार मिल गये थे। और राज्य सभा में उसी मंडली का प्राबल्य था।

विदुर धृतराष्ट्र आदि ने दुर्योधन के इस कर्म की घोर निन्दा की और इसे कुप्रभाव बताया।

श्रीकृष्ण की गर्ज } चांडाल चौकड़ी का गर्व तोड़ने के लिये वृष्णि सिंह ने गर्ज कर सभा में कहा—

राजन्! यह जो शास्त्र विरुद्ध चालें चल रहे हैं यदि मैं भी ऐसी ही चलूं तो युधिष्ठिर का काम आज ही हो गया समझो क्योंकि मै इन सब को पकड़ कर कैद कर सकता हूं, पर यह निन्दित कर्म मैंने करना नहीं। ये मूढ़ मुझे एकला समझ हमला करना चाहते हैं, इन्हें मालूम नहीं यहां मेरे रक्षक कौन और कैसे हैं और काम पड़े तो पांडव वा यादव भी यहां ही समझो और इस समय श्री कृष्ण ने अपने शस्त्र अस्त्रों की झलक भी दिखाई, और वीर सिपाहियों के भी वीर कृत्य दिखाये जिस से चांडाल मंडली की धुक धुकी बंध गई। और धृतराष्ट्र आदि ने क्षमा मांगते हुए संधि के लिये इच्छा प्रकट की।

मम पुत्राः शत्रुहणो दुहिता मे विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।

ऋ० १०। १५९। ३

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्॥

ऋ० १०। १७९। १

माता कुन्ती का अन्तिम सन्देश } सभा से उठ कर, श्रीकृष्ण प्रधान पुरुषों समेत, माता कुन्ती को सभा का सवि-

स्तर निश्चय सुनाने, और तात्कालिक अवस्था पर मातृ व्यवस्था लेने, कुन्ती भवन में गये। सब इति वृत्त सुनने पर राजमाता ने धर्मराज को संदेश दिया पुत्र ! तू क्षत्रिय है, क्षत्राणी का दुध पिया है, अपने धर्म को पहचान, ईश्वर ने वेदों में, क्षत्रिय का कर्म विक्रम, भोग बाहुवीर्यार्जित लिखा है तेरा धर्म प्रजा पालन है। तप तपना भीख मांगना ब्राह्मणों का कर्म है * मैंने या तेरे पिता, वा पितामह ने ऐसी नरमी रखने का

स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्तेस्वंवस्ते स्वंददातिच ।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुंजतेहीतरेजनाः ॥
सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचित् जगत्यांगतम् ।
ब्राह्मणो जायमानोहि पृथिव्यामधिजायते ॥ मनु० अ० १

३ " ब्राह्मणो ह्यमृताशीस्यात् । ४ अमृतंस्यादयाचितम् ५ प्रतिग्रहः प्रत्यवरः ॥ इत्यादि शास्त्र वचनों से प्रतीत होता है ब्राह्मण जो खाते पीते हैं वे किसी से मांगा हुआ नहीं किन्तु अपना ही भोगते हैं, उन का नित्य का भोजन अमृत था और अमृत याचना से प्राप्त नहीं होता। दान कर्म (भीख) को वे नीच कर्म समझते थे । मांगने की अपेक्षा शिल्प वा ऊंच्छ वृत्ति कर लिया करते थे। और जैसे क्षत्रिय बाहुवीर्य अर्जित धन को अपना स्वत्व समझते थे वैसे ही ब्रह्म (ज्ञान) वीर्य अर्जित धन को वे अपना समझते थे । भिक्षा आपत् काल में जैसे क्षत्रिय कर लेते थे वैसे ही कभी २ ब्राह्मण भी कर लेते थे। " भिक्षा धर्म ब्राह्मण का है " यह विधर्मियों की मिलावट है। सच पूछो तो पुराने ब्राह्मण इतने श्रीमान होते थे कि

कभी कोई आशीर्वचन नहीं दिया, तैने यह संथा कहां से पढली। समय को मत देख राजपुत्र समय पलट दिया करते हैं; मांग कर किसी से कुछ मत लो मुझे इस से परे और कोई दुःख नहीं, कि मेरे पुत्र पर पिंड जीवी हो। यदि दुर्योधन तुम्हारा राज्य न दे तो उठो युद्ध करो, मेरे दुःखों, द्रौपदी की विडंबना और अपने अपमानों का शस्त्रों से मार्जन करो। मैं तुम्हारा लंबा जीवन नहीं चाहती, ज्वलन्त जीवन चाहती हूं, चाहे थोड़े दिन जीओ पर जाज्वल्यमान हो कर। अपने हाथ

राजा लोग उन का भोजन कर मुग्ध हो जाते थे, देखो रामायण में भरद्वाज वा वशिष्ठ का आश्रम वृत्तान्त। और महाभारत में तो ब्राह्मणों की वीरता भी चमकती है। १ क्या कोई कह सकता है कि द्रोण ने द्रुपद को राज्य नहीं दिया। यदि पहले मांगा था तो मैत्री भाव से प्रतिज्ञात, भिक्षा नहीं। आदि० १३१। ४५॥ २ क्या व्यास ने पांडु आदि को जन्म देते समय भिक्षा ग्रहण की थी। (३)क्या पांडवों की पालना करते हुए ऋषियों ने भिक्षा मांगी है। (४) क्या कण्व ऋषि का शकुन्तला पालन वा भरत रक्षण, शिक्षण, भिक्षा है। (५) क्या एकचक्रा नगरी में पांडवों को वास देना ब्राह्मण का भिक्षा कर्म है ? (६) क्या द्रोणाचार्य और धौम्य पुरोहित आदि का राजपुत्र रक्षण भिक्षा कहलाती है ? (७) क्या अश्वत्थामा का दुर्योधन सेना को संभालना भिक्षा मांगना है ? रहा पठन कालका भिक्षाशन सो वह सब वर्णों के लिये हैं। हमारे ख्याल में वर्तमान के उच्चतम ब्राह्मणों को अपने आचरण से इस मिथ्या लांछन को मिटा देना चाहिये।

से शत्रुओं का नाश करदो। मेरी पुत्री समान प्यारी स्नुषा द्रौपदी को भारत की ईश्वरी बना कर चमका दो। किसी पापी बलवान् के डराने से मत झुको, चाहे पर्व २ से टूट जाओ। पौरुष से प्रताप बढाओ।

अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित् ॥
उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ॥

माधव ! सब को मेरा कुशल कह, सुना देना कि तुम्हारी माता का यही संदेश और यही उपदेश है।

कर्ण भेदन खंड ५।

शान्ति का एक और मार्ग

दुर्योधन से सर्वथा निराश हो श्री कृष्ण ने शान्तिस्थापना का एक और मार्ग निकाला और वह यह कि कर्ण के भरोसे दुर्योधन अकड़ रहा था। कर्ण कुन्तीका कानीन पुत्र था। इस नाते से वह युधिष्ठिर का बड़ा भाई वा पांडु राज्य का न्याय से अधिपति था। कृष्ण ने सोचा इसे दुर्योधन से अलग कर राज्य देदें। फिर लड़ाई रुक कर जगत् का नाश न होगा। इस विचार से कुन्ती भवन से विदा होते श्री कृष्ण भीष्मादि को सन्मान पूर्वक लौटा कर कर्ण को अपने रथ में बैठा बाहर ले आये। उस के गुण युद्ध के अनिष्ट परिणाम बता कर श्रीकृष्ण कर्ण से कहने लगे-

कर्ण ! तुम को मालूम है कि तुम्हारी जननी कुन्ती ही है,

इस से पांडु तुम्हारे पिता और पांडव भाई हैं। तुम सबसे बड़े हो इससे राज्य तुम्हारा है, युधिष्ठिर तुम्हारा शास्त्रानुसार अनुचर हैं। अतः तुम मेरे साथ चलो राज्याभिषेक की सब सामग्री तयार है, वेदज्ञ ब्राह्मण तुम्हारा स्नान करावेंगे धौम्य अग्निहोत्र करेगा वेद मंत्रों से चार वेदज्ञाता विप्र अभिषेक करेंगे, सब पांडव, पांडव पुत्र सारी प्रजा स्त्री पुरुष सहित, मैं और राज पुरोहित तुम्हें राजतिलक देकर पृथिवी पति बनायेंगे। धर्मराज युवराज के पद से आप पर व्यजन और भीमसेन श्वेत छत्र झुलायेगा। अर्जुन तेरे घोड़े हांकेगा मैं और अन्य राजा लोग तेरे पीछे चलेंगे। बिना युद्ध के तेरे नाम की विजयघोषणा हो कर देश तबाही से बच जायगा। चल तेरे लिये देश के लिये तेरी जननी भाई और पुत्रों के लिये ऐसा अभ्युदय काल फिर न मिलेगा।

कर्ण का उदार उत्तर } महाबली महा दानी कर्ण ने सारा विचार शान्ति से सुन वा मनन कर उत्तर में कहा—

केशव! आपने सुहृदता, प्रेम, मित्रता तथा मेरे श्रेय के विचार से जो कुछ कहा है सब सत्य है और मैं इस के लिये आप का धन्यवादी हूं, पर इस पर मेरा कुछ वक्तव्य है उसे आप सुनें। यह सच है कि मेरी जननी कुन्ती है किन्तु उस ने जन्मते ही मुझे नदी में बहा दिया, वहां से सूत अधिरथ ने उठा कर अपनी पत्नी राधा को दिया बस मेरी माता राधा * ने मुझे पाला

---

* जननी जन्म देने वाली को और माता निर्माण करने वाली को कहते हैं। जैसा निरुक्त में लिखा है "माता निर्माता भवति" माता धर्म कड़ा लम्बा और महान् है। इस लिये

पोसा। उसी ने मेरा मल मूत्र धोया उसी ने कष्ट उठाये उसी का स्तनदुग्ध पीकर मैं बढ़ा। सारा देश इस घटना को जानता है अब मैं उन की सेवा के समय सेवा छोड़ कुन्ती पुत्र बन कर राजा बन जाऊं, यह शास्त्र विरुद्ध अधर्म और निन्दनीय कर्म है।

२ सूत अधिरथ ने मुझे यौवन, प्राप्ति में पुत्रवत् विवाहा, फिर यहां मेरे पुत्र पौत्र हुए, उन में मेरा हृदय है, उन्हें किसी भी हर्ष के कारण, वा संपूर्ण पृथ्वी के कारण मैं छोड़ नहीं सकता।

३ दुर्योधन ने मुझे आश्रय देकर ऊंचा किया अब मेरी सलाह से मेरे बलाश्रय पर उस ने युद्ध की तयारी की अब कड़े वक्त उसे छोड़ मैं राजा बन जाऊं यह आर्यावर्त वा आर्य जाति के आचार विरुद्ध है।

४ अर्जुन से मेरी लड़ाई की सब को सूचना है, अब हम मिल जाय, इस में हम दोनों की भी निन्दा है, हमारे यश में बट्टा और वीरता में संशय हो जायगा। इस लिये आप राज सभा के निश्चय को लेकर ही पधारिये और उसी के अनुसार काम कीजिये वा कोई अन्य मार्ग शान्ति का ढूंढिये।

कर्ण की धर्मराज पर श्रद्धा।

यदिजानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः।

शास्त्रों में माता का बहुत ऊंचा पूज्य पद है। जो माता का निरादर करते हैं वे लोक भ्रष्ट समझो।

कुन्त्या प्रथमजंपुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ॥
स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः।
नेता यस्यहृषीकेशो योद्धायस्य धनंजयः ॥
१४१।२१।२३

चलते समय कर्ण ने श्री कृष्ण से एक प्रतिज्ञा ली जिस से उस की शत्रु पक्षी होने पर भी धर्मराज पर पूरी श्रद्धा पाई जाती है। वह प्रतिज्ञा यह थी "कृष्ण आपने धर्मराज को यह न बताना कि कर्ण तेरा बड़ा भाई है क्योंकि यदि उसे पता लग गया, तो वह राज्य कभी नहीं लेगा राज्य मुझे सौंप देगा मैंने मैत्री वश राज्य दुर्योधन को दे देना है; दुर्योधन आप जानते ही हैं लोभी राजा है इस तरह प्रजा पर वही कष्ट रहा, इस लिये मैं चाहता हूं, देश का राजा धर्मात्मा युधिष्ठिर ही बने जिस के नायक आप और योधा अर्जुन हैं। और अन्त में कर्ण ने यह भी कह दिया कि जय धर्मराज के पक्ष की ही होगी, कारण हमें दोनों सन्ध्या समय भय दबाता है, प्रजा में ग्लानि फैल रही है, और उधर धर्म प्रीति विश्वास उत्साह संगठन बढ़ रहा है।

विदितं मे हृषीकेश यतोधर्मस्ततोजयः।१४३।३६

युद्ध की घोषणा } कर्ण की कौरव मैत्री देख, युद्ध के बिना और सब मार्गों को बन्द जान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त दुःखित हृदय से कर्ण को यह घोषणा सुनाई।

ब्रूयाः कर्ण इतोगत्वा द्रोणंशान्त नवं कृपम्।

सौम्योयं वर्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः ॥१४२
सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्प माक्षिकः ।
निष्पंकोरसवत्तोयो नात्युष्ण शिशिरः सुखः।१७
सप्तमा च्चापि दिवसा दमावस्या भविष्यति ।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहु शक्रदेवताम् ।१८

कर्ण ! यदि बिना युद्ध के धर्मराज को अधिकार नहीं मिल सकता तो यहां से जाकर तैने द्रोण भीष्म आदि जुम्मेदारों को कह देना युद्ध के लिये यह महीना अच्छा है। खेती कट चुकी है, अन्न घास सुलभ हैं, जल निर्मल रसवत् है मक्खी मच्छर अल्प है, रास्ते साफ हैं, ऋतु सुखद है, अतः आज से सातवें दिन जो अमावस्या है * उसी दिन रण दुन्दुभि बजा कर निबटारा कर लेना चाहिये।

शान्ति के लिये कुन्ती का यत्न — कर्ण के लौटने पर युद्ध घोषणा की सारे नगर वा देश में चर्चा फैल गई। बुद्धिमान नारी नर इस आपस के संग्राम से बड़े व्याकुल हो गये। और यद्यपि युद्ध रुकना कठिन था तब भी सब लोग यथाशक्ति रोकने का यत्न करना कर्तव्य कर्म समझते थे। इसी कर्तव्य

---

* प्रतीत होता है यह अमावस्या मार्गशिर की होगी, क्योंकि तब तक प्रायः गंगा यमुना तीर वा कुरुक्षेत्र में खेतियें सम्भाल ली जाती हैं, और ऋतु भी पक जाता है।

को पालने के लिये माता कुन्ती, दूसरे दिन प्रातःकाल, जब कर्ण गंगातीर पर सन्ध्या वा गायत्री जाप कर, वेदों का पाठ कर रहे थे, कर्ण के पास आशा भरे भाव से पहुंची।

कर्ण—पाठ पूर्ण कर, देवि ! माता राधा और पिता अधिरथ का पुत्र मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं, और कहा आप कैसे आई हो मैं आप की क्या सेवा करू ?

कुन्ती—पुत्र ! तेरी माता राधा पिता अधिरथ नहीं तू मेरा पुत्र है मैं तेरी माता हूं, माता की आज्ञा माननी शास्त्रों में बड़ी पुण्य कृति लिखी है, मैं चाहती हूं तू दुर्योधन आदि का साथ छोड़ पांच वीरों से शोभित हो कर राज्य भोग, क्योंकि तू गुणी और ज्येष्ठ होने से यौधिष्ठिरी लक्ष्मी का असल भागी है।

उत्पादन म पत्यस्य जातस्य परिपालनम् ॥

मनु० अ० ६

कर्ण—ने यह मानते हुए कि मेरी जननी तू है, दुर्योधन संगत त्यागने में सारे कारण बतायें, जो श्रीकृष्ण को कहे थे। और जोरदार शब्दों में कहा देवि ! इस समय दुर्योधन को छोड़ना कृतघ्नता है, और यह भारी पाप है, स्वराज्य का आनंद इस पाप के दुःख को मिटा नहीं सकता। और माता की आज्ञा पालने के विषय में कहा भगवति ! माता वह नहीं होती जो जन्म देकर अनाथवत् निराधार पुत्र को फैंक दें और न ही मनु आदि शास्त्रकारों ने माता का कर्तव्य केवल जनन बतलाया है, किन्तु जन्म देकर, पालन, शिक्षण, भी उसका अंग है,

इस लिये देवि! मातृ धर्म पालन में जो प्रमाद करती हैं *
उन्हें मातृ मान की आशा नहीं करनी चाहिये। अब तुम आई
हो मेरे पास तुम्हारा आना निष्फल न होगा, अतः मैं प्रतिज्ञा
करता हूं कि होने वाले युद्ध में मैं अर्जुन के बिना तेरे शेष
चार पुत्रों पर शस्त्र नहीं चलाऊंगा। कुन्ती इतने वचन को
ही फिर दृढ़ करा कर स्वस्तिवाद कह कर वापस लौट आई।

श्रीकृष्ण का परावर्तन } जब श्री कृष्ण सन्धि कार्य से निराश हो
कर युधिष्ठिर दल में गये, तब सारा वृत्त
सुना कर वह विश्रामार्थ अपने भवन में चले गये। रात को
सूर्यास्त पीछे सायं सन्ध्या उपास कर पांडवों ने एक खुली
सभा बुला कर वहां का इति वृत्त विस्तार से सुनाने के लिये
श्री कृष्ण से प्रार्थना की श्री कृष्ण ने जो कुछ वहां हुआ, कह

---

* जो जातियें सन्तान को जन कर उनकी शिक्षा, दीक्षा
का प्रबन्ध विदेशी वा विधर्मी संस्थाओं से कराती हैं वे भी
समय पर कुन्ती की भान्ति निराश लौटती हैं। लोगों का विचार
है कि अच्छा होता कर्ण कुन्ती को न पेदा होता या पैदा हो कर
मर जाता, बनिस्बत इस के कि वह बड़ा हो कर दुर्योधन दल
में मुखिया बन अपने मा जाये भाइयों पर गोली चलावे। जो
लोग भारतमाता के पुत्र हो कर दूसरों की रोटी वा इज्जत से
बड़े हो भारतमाता की संतान पर वार करते हैं उन के लिये
भी भारतमाता यही कहती होगी कि अच्छा होता मेरे ये न
होते, और यदि हुए थे तो गैरों में न बड़े होते। पर यह सारा
दोष पालण पोषण वा शिक्षा दीक्षा का है।

सुनाया, और जो अन्तरीय भेद उस ने जाने वे भी बताये। और प्रसंगवश भीष्म का वह भाषण भी सुनाया जिस में उस ने दुर्योधन को कहा-

युधिष्ठिर राज्यस्वामी और सुभूप हैं।
अराजपुत्रो ह्यस्वामी परस्वं हर्तुमिच्छसि ॥३१
युधिष्ठिरो राजपुत्रो महात्मा न्यायगतं राज्य-
मिदं च तस्य ॥ १४९ । ३२

तू राजपुत्र नहीं तेरे गुण भी राजा के नहीं, अतः अस्वामी और अयोग्य हो कर तू परस्व हरना चाहता है। युधिष्ठिर राजपुत्र है और महात्मा है इस लिये न्यायानुसार राज्य उस का है। तथा युधिष्ठिर कुरुवंश पालक, उत्तम शासक, महानुभाव, सत्यसंध, अप्रमादी, शास्त्र स्थित, बन्धुजनसेवी, प्रजाप्रिय, सुहृदानुकम्पी, जितेन्द्रिय, साधुजन रक्षक, क्षमा, तितिक्षा, दम, आर्जव, सम्पन्न, सत्यवंती, दयालु और प्रजामत अनुकूल शासन करता है। ये ही गुण उत्तम राजा में होने चाहिये सो उस में हैं।

अन्त में यह भी कह दिया कि भीष्म को प्रमुख बना कर उन्हों ने ११ अक्षौहिणी युद्धार्थ एकत्र करली है।

युद्योग वा सेना विभाग खंड ६

चतुर्थो पाय साध्येऽरौ बृथा वै सान्त्वन क्रिया ॥

सेना विभाग विनिर्णय } जिस भ्रातृ युद्ध के विनाशकारी दुर्दिन से बचने के लिये, पांडवों ने महती शान्ति की, अपने आप को घोर अपमान वा कष्टों में लंबे काल तक डाला, सारे राज्य के मालक होने पर भी न केवल आधा राज्य उन्हें प्रसन्नता से देना स्वीकार किया किन्तु अपने लिये केवल ५ पांच गांव रख सारा राष्ट्र उन के अधीन करना भी पसन्द किया और द्रुपदराज पुरोहित, संजय, श्री कृष्ण और माता कुन्ती तक ने संधि के लिये शक्तिभर कोशिश की और अन्ततः कर्ण को भेद में लाकर युद्ध के रोकने का श्रेय कार्य करने पर भी जब किसी तरह से शान्ति दिखाई न दी तब शान्ति प्रिय, दयालु, राष्ट्रवर्धक विद्वानों ने भी साम, दाम, भेद, से न सिद्ध होने वाले शत्रु को दंड से ही सुधारने का निश्चय कर सेना विभाग * का वाद विवाद के पीछे निर्णय कर लिया।

---

* महाभारत काल में सेना नायकों के सेना की गणना के विचार से १ गुल्मपति २ पत्ति पति ३ गण पति ४ सेनापति (द्रुपदादि) ५ सेनापति पति (अर्जुनादि) ६ अक्षौहिणी पति ७ सर्व पति (धृष्टद्युम्नादि) ८ सेना मुखपति ९ सेनापति पति प्रणेता (श्री कृष्णादि) और बल वा कृति के विचार से १ रथी (नील वर्मादि) एक सौ से लड़े । २ अतिरथी एक हजार से लड़े । ३ महारथी (सात्यकि आदि) एक दश हजार

सर्व सेनापति } पांडवों की सात अक्षौहिणियों के सात सेनापति द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखंडी सात्यकि, चेकितान, और भीमसेन नियत कर, सर्व सेनापति का मुख्य पद द्रौपदी के महारथी भ्राता धृष्टद्युम्नको दिया गया। और सेनापति पति प्रणेता सर्व सम्मति से श्रीकृष्ण बनाये गये। पांडवों की सेना में यद्यपि ७ अक्षौहिणी सेना थी पर थे सब युद्ध वीर क्योंकि इन्हों ने कोई अभिमानी वा छिमन नहीं लिया था, और न ही जैसे दुर्योधन ने छल से शल्य को मार्ग में ही ले लिया था ऐसे किसी को लिया था। रुक्म राजा ने आकर कहा था मेरे पास भारी सेना है तुम्हें डर हो तो मदद करूं तब पांडवों ने यही कहा था डर कर हम सहायता नहीं लेना चाहते, तब वह चला गया।

कौरवों का सेना विभाग } श्री कृष्ण के जाने पर युद्ध की घोषणा कर ग्यारह अक्षौहिणी के कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, जयद्रथ, सुदक्षिण, कांभोज, कृतवर्मा, अश्वत्थामा

से लड़े। ४ अर्धरथ (कर्णादि) ५ रथोदार (युधिष्ठिरादि) ६ रथ यूथप ७ रथयूथप यूथप (अभिमन्यु आदि) ८ रथसत्तम (सेना बिन्दु आदि) ९ शीघ्रास्त्र १० परम शीघ्रास्त्र (काश्यादि) पद थे जैसे कि आजकल १ सैकंड लैफटीनेंट २ फस्ट लफटीनेंट ३ कैपटन ४ मेजर ५ लफटनंट कर्णल ६ कर्णल ७ जनरल ८ फील्ड मार्शल ६ कमांडर इनचीफ आदि हैं। और सिपाहियों की संख्या विचार से १ कम्पनी, २ पलटन, ३ ब्रिगेड ४ डिवीजन ५ फोर्स आदि नाम हैं।

भूरिश्रवा, शकुनि, कर्ण, और बाल्हीक सेनापति नियुक्त कर सर्व सेनापति का पद भीष्मपितामहजी के अर्पण किया गया।

रणक्षेत्र में सामग्री | दोनों ओर के दलों ने कुरुक्षेत्र की भूमि को साफ कर अपनी २ छावनी वहां डाल दी। और उस में जल के सुरक्षित कोष्ट (कला सहित) और सफाई, रोगी सेवा, क्षतों के उठाने का प्रबन्ध, सर्व विध शस्त्र, अस्त्र, रथ, ध्वजा, पताका, वाजे, गाजे, भक्ष्य, भोज्य, वस्त्र, भूषण, धन, रत्न, लुहार, तरखान, वैद्य, उपवैद्य, औषध यत्र साधन, वेदवित् ब्राह्मण, राष्ट्रीय वक्ता, पशु चिकित्सक, पशुचार, वा अन्य उपयोगी सामग्री पहुंचा दी। और उस स्थान का चित्र (नकशा) दोनों ने अपने २ मन में जमा लिया। और एक दुसरे का वृत्तान्त जानने के लिये बड़े कुशल गुप्तचर भी नियुक्त कर लिये। जैसे कौरवों का मुख्य संदेश हर सेनापति संजय था। जिसे धृतराष्ट्र हर बात पूछता रहता था।

रणक्षेत्र का विस्तार } कौरवों ने जो छावनी के लिये जगह मापी थी वह २० कोस थी और पांडवों की कुछ कम, वहां दर्शकों आदि के लिये भी व्यवस्था थी, और जरूरत की हर एक वस्तु जैसे हस्तिनापुर में मिल सकती थी वैसे ही वहां भी मिलती थीं। और वह एक प्रकार से राजधानी ही प्रतीत होती थी। नित्य कर्म के लिये यज्ञशालायें भी थी सन्ध्या के लिये एक स्थान अलग था, जिस का नाम 'संध्या हित' अब प्रसिद्ध है।

सेना और सेना व्यूह } दोनों दलों में सुप्रबन्ध के लिये * सेना विभाग (छोटा बड़ा) और आक्रमण करने तथा आत्मरक्षा के लिये † व्यूह रचना का अभ्यास भी पहले से

---

* सेना—चतुरंगिणी हस्ती, अश्व, रथ, पदाति । षडंगिनी रथ, हस्ती, अश्व, पदाति, शकट, उष्ट्र की कहलाती थी ।

१—हस्ती पर सात पुरुष होते थे ।

द्वावंकुशधरौतत्र द्वावुत्तम धनुर्धरौ ।

द्वावसि धरौ राजन्नेकः शक्तिपिनाकधृक् ॥ उद्योग पर्व अ० १५५ श्लो० २७

२ रथ परिवार—१० दश गजाः, १०० शतं अश्वाः, सहस्र १००० पदातयः । अथवा ५० गजाः, पंच सहस्र अश्वाः । ३५००० पैंतीस सहस्र पदातयः ।

३—पत्ति-एकोरथो गजस्त्वेको नरापञ्चपदातयाः ।

त्रयश्चतुरगास्तज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥ उद्यो: १५५

४ सेना—५०० नागा ५०० रथा २५०० नरा १५०० अश्वाः ॥

५ पृतना—(दश सेनाच पृतना) ५००० नागा ५००० रथा २५००० नरा १५००० अश्वा; ॥

६ वाहिनी—(पृतनादश वाहिनी) ५०००० नागा ५०००० रथा २५०००० नरा १५०००० अश्वा ।

७ अक्षौहिणी—पूर्व कह आये हैं । और प्रसिद्ध भी है ।

† ८ व्यूह—कवायद का खास रूप में करना । जैसे १ चक्रव्यूह २ मत्स्यव्यूह ३ शकट व्यूह ४ क्रौंच व्यूह ५ सर्प व्यूह ६ गरुड़ व्यूह ७ सूची व्यूह ८ सिंह व्यूह आदि प्रसिद्ध हैं ।

कराया जाता था। सबके शिक्षक अलग २ थे। और एक सर्व: शिक्षक भी रहता था।

विजय प्रार्थना।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेमशवसस्पते।
तामभिप्रणोनुमो जेतार मपराजितम् ॥
ऋ० १। ११। २

यस्मान्नऋते विजयन्ते जना सो यं युध्य-
माना अवसे हवन्ते ॥ ऋ० २। १२। ९
पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥१।१०४।९

त्वमीशिषे सुताना मिन्द्र! त्वमसुतानाम्।
त्वं राजा जनानाम् ॥ ८। ६४। ३

वयमुत्वादिवा सुते वयं नक्तं हवामहे। अ-
स्माकं काम मापृण ॥ ८। ६४। ६

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या
इषवस्ताजयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्व-
स्माँ उदेवा अवताहवेषु ॥ १०।१०३।११

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥

मह्यंनमन्तां प्रदिशश्चतस्र स्त्वयाध्यक्षेणापृतना जयेम ॥ १० । १२८ । १

रण प्रस्थान के दिन प्रातः स्नान सन्ध्या अग्निहोत्र के पीछे धर्मराज ने सारे क्षात्र मंडल तथा देश प्रतिनिधियों के समक्ष सब की ओर से सर्व ऐश्वर्य दाता प्रकाशरूप परम विजयी इन्द्र (परमेश्वर) से बड़े नम्र शब्दों में उपरोक्त ऋग्वेद के मन्त्रों से प्रार्थना की । हे धनपते हम सदा आप को नमन करते हुए आप के वेदोक्त धर्म पर चल कर आप की मित्रता में रहें जहां कोई कष्ट दुःख वा पराजय नहीं होता । हम युद्ध करते हुए सदा आप की विजयिनी शक्ति का ध्यान करे जिस के बिना पुरुष जय प्राप्त नहीं कर अकता । आप हमारे पिता ही हैं पिता के समान ही रक्षा कीजिये । हमारे वीर कभी न्याय, सत्य, वा उत्तम मार्ग का आश्रय न छोड़ें । आप के शासन में रहते हुए हम आप की अध्यक्षता में सब प्रकार के युद्धों में जय लाभ करें । और हमारा सत्य धर्म सदा उन्नत, सुरक्षित रहे । हमारे में कोई भी पाप, अन्याय, असत्य पर श्रद्धा न करे ।

पुरोहित का आशीर्वाद ।

स्थिरावः सन्तु ने मयो रथा अश्वास एषाम् ।

सुसंस्कृता अभीशवः ॥ ऋ० १।३८।१२

स्थिरावः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळूउतप्रतिष्कभे। युष्माकमस्तु तविषीपनीयसी। मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ ऋ० १।३९।२

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्मयच्छतु।
उग्रा वः सन्तुबाहवोऽना धृष्या यथासथ ॥
१०।१०३

सत्या सन्तु यजमानस्य कामाः। ऋ० १०।११५।८

राजा की प्रार्थना के अनन्तर धर्म की महिमा अधर्म की अधोगति दिखाते हुए, सारे वीर मंडल को शुद्धाचरण की की शिक्षा देकर महर्षि धौम्य पुरोहित ने इन वचनों को पढ़ कर आशीर्वाद दिया और कहा धर्म और न्याय के लिये युद्ध में बाधित हो कर स्वत्व रक्षा के निमित्त जाने वाले वीरो! तुम्हारे रथ, रथांग, सुदृढ़ और काम करने वाले हों तुम्हारी सेना धर्म वीर तथा विजयिनी हो, परमेश्वर कृपा करें और बल दें ताकि आप की भुजायें न थकने वाली, शत्रुदल नाशक और सुख लाने वाली हों। वीरो! सदा सत्य पर विश्वास रखो तुम्हारा राजा सत्यव्रती है और परमेश्वर भी सत्व्रती यजमान की सत्यकामनायें पूर्ण करता है। ईश्वर करे हम शीघ्र सत्य विजय लाभ कर सत्य का झंडा झुलायें।

सप्तमो भागः

युद्ध विभागे भीष्म खंडः ।

अहं दधामिद्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यज-मानाय सुन्वते ॥ ऋ० १० । १२५ । २

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् । तां मादेवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरि-स्थात्रां भूर्या वेशयन्तीम् ॥ ३

मया सोऽन्नमात्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईंशृणोत्युक्तम् ॥ ४

अहमेव स्वयमिदंवदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः । यं कामये तं तमुग्रं कृणोमितं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५

अहं रुद्राय धनुरातनोमि, ब्रह्म द्विषे शर वे हन्तवा उ । अहं जनाय समदंकृणोम्यहं द्यावा

पृथिवी आविवेश ॥ ऋ० १०।१२५।६
सिंहाइवना नदाति प्रचेतसः ॥ ऋ० १।६४।८
अहं भूमि मददामार्या याहं वृष्टिंदाशुषे मर्त्याय ॥
ऋ० ४।२६।२

सेना में जयोत्सव ।

अलंकारैः कवचैः केतुभिश्च सुखप्रणादैर्है-षितैर्वाहयानाम् । भ्राजिष्मती दुष्प्रतिवीक्षणीया येषांचमूस्ते विजयन्ति शत्रून् ॥ भीष्म ३९
हृष्टाः वाचस्तथा सत्वं योधानां यत्र भारत ।
न म्लायन्ति स्रजश्चैव ते तरन्तिरणोदधिम् ॥७५
अल्पायां वा महत्यां वा सेनाया मितिनिश्चयः ।
हर्षोयोधगणस्यैको जयलक्षण मुच्यते ॥ ७५
एकोदीर्णोदारयाति सेनां सुमहतीमपि ॥ ७६॥
न बाहुल्येन सेनाया जयोभवति नित्यशः । ८५

संसार में विजय श्री उन का आश्रय नहीं लेती जो संख्या में अधिक हों वा आयु में वृद्ध हों । किन्तु विजयलक्ष्मी सदा उन का घर पूछती है जो उत्साहि, शूर, धर्मात्मा, स्वार्थ

हीन तथा देश काल देख कर पराक्रम दिखाने वाले हों । इस नियम को जानने वाले धर्मराज ने अपने सिपाहियों को सुन्दर मूल्यवान् वीर वेश (वरदी) संजोय, भूषण देकर चमकने वाले झंडे और हथियार देकर अपने हाथ से फूलों की माला पहना कर उन्हें धर्म पूर्वक लड़ने और अधिकार रक्षार्थ पापी को मारने का महत्व बताया तथा हर्षित करने वाली वक्तृता दी। आल्हाद रण वाजों और रण प्रिय घोड़ों के हिनहिनाहट शब्दों से आमोदित सैनिक विजय क्षेत्र में पाऊं डालने के लिये उत्कंठित प्रतीत होने लगे।

ईश प्रार्थना तथा बृद्धाशीः ।

यस्मान्नऋते विजयन्ते जनासो, यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ॥ ऋ० २ । १२ । ९

सब वीर योधा सेनापति और सेना प्रणेताओं ने यज्ञ हवन के पीछे जय दाता परम ईश की मिल कर प्रार्थना की और जयध्वनि करते हुए कुरुक्षेत्र के खुले मैदान को नियमानुसार चल पड़े। वहां पहुंच कर कौरव सेना को अपने से भी बड़ी संख्या में देख वीरों के हृदय हाथ बढ़ाने के लिये फड़कने लगे। पर इनके विधाता महाराज युधिष्ठिर ने उस समय कुछ और ही सोच रखा था वह अपने निश्चय अनुसार रथ से उतर कर पाऊं प्यादे शत्रु सेना की ओर चल पड़े। उन के पीछे ही भीमादि चारों भाई और श्री कृष्ण भी हो लिये। इन्हें इस दशा में आते देख शत्रु दल के जल्दबाज कहने लगे—

इस में युद्ध का साहस कहां देखो अब संधि करने वा क्षमा लेने आ रहा है । यदि यह लड़ेगा भी तो इस भारु को जय कहां है ? पर उन्हें क्या मालूम था कि यह भारू नहीं किन्तु महासिंह पापियों के को मूल निर्बल करने आ रहा है । निदान धर्मराज ने भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, को यथाविधि प्रणाम कर युद्ध की आज्ञा मांग वृद्धों से जय आशीर्वाद प्राप्त की और उन के मृत्यु कारक स्थानों को जान वापस दल में आगया ।

पापी का साथी कोई नहीं होता } धर्मराज के पुण्य जीवन के प्रभाव से जहां शत्रु दल के मुख्य नेता इसे ' जयमाप्नुहि पांडव " वा ध्रुवस्ते विजयोराजन् " आशीर्वाद दे रहे थे वहां दुर्योधन को उस की माता भी न केवल उत्साहित न करती थी किन्तु दुर्योधन के यह कहने पर कि माता इस युद्ध में मुझे ' जय ' हो ऐसा कहो ।

अस्मिन् ज्ञातिसमुद्धर्षे जयमम्बा ब्रवीतुमे ।
इत्युक्ते जानती सर्व महं स्वव्यसनागमम् ॥
अब्रुवं पुरुषव्याघ्र ! यतोधर्मस्ततोजयः ॥

स्त्री पर्व १७ । ६,७

माता गान्धारी उस के अन्यायों से आने वाले कष्टों को जानती हुई कहती हैं, बेटा ! जहां धर्म है वहां ही जय होती है । जिसे सुन दुर्योधन लज्जित सा हो गया ।

धर्मराज के भाषण का शत्रु पर प्रभाव

भीष्म आदि से जयाशीः लेकर धर्मराज ने बड़े प्रभावोत्पादक शब्दों में धर्म की महिमा और पाप की दुर्गति बतला कर कहा अब समय है जो धर्म की शरण में आना चाहते हैं वे हमारे दल में आजायें पीछे से पछताने वालों को हम भी सहाय न दे सकेंगे ! यह सुन और अपने पक्ष को पापग्रस्त देख दुर्यो- धन का भाई धृतराष्ट्र का दूसरा पुत्र 'युयुत्सु' बोला महाराज यदि मुझे स्वीकार करें तो मैं पापियों से लड़ने को तयार हूं। यह सुनते ही धर्मराज ने बड़े प्रेमभाव से कहा आइये। भाई ! आइये आप, श्री कृष्ण और हम पांचों, कौरवों से युद्ध करेंगे। निश्चय है उन सब के नाश होने पर धृतराष्ट्र की भोजनादि से सेवा करने वाले, और पीछे से राजभार उठाने वाले आप ही होंगे। इस संवाद के बाद धर्मवीर युयुत्सु अपने शस्त्रास्त्र और कवच ले धर्मराज के साथ आ गया। इस राजकुमार के पांडव दल में आने से जहां इस दल का उत्साह बढ़ा वहां कौरवदल के विचारशील पुरुषों में बहुत सी चिन्ता उदासी वा ग्लानि पैदा हो गई जो प्राय पराजय का कारण होती है।

भारत के रथी और सारथी तथा रथ

रथे तिष्ठन्नयाति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः। अभीशूनां महिमानंपना- यत मनः पश्चादनु यच्छन्तिरश्मयः ॥

ऋ० ६। ७५। ६

यत्र बाणासं पतन्ति कुमारा विशिखाइव ।
तत्राणो ब्रह्मणस्पतिरदिति शर्म यच्छतु, विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ऋ० ६ । ७५ । १७

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् ॥ ऋ० ८ । ५८ । ३

अयं मेह हस्तोभगवानयं मेभगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥
यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ऋ०
ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषि ॥ ९।९६।६

शंख दुन्दभि आदि का नाद } सब लोग अपने २ रथों * और सारथियों को लेकर जब उपस्थित थे और भारत के सर्व श्रेष्ठ नेता भगवान् श्री कृष्ण अपने वचन अनुसार शस्त्र

---

* उन दिनों रथ सुन्दर दृढ़ लंबे चौड़े होते थे । उन के कई भाग सुवर्ण आदि धातुओं के भी बनाये जाते थे । यद्यपि ऋ० ८ । ५८ । ३ आदि में वेद की आज्ञा तीन पहियों के रथ बनाने की है और वह सुरक्षित भी होता है पर उस समय दो पहिये का ही रथ बनाया जाता था उन्हें ४ चार घोड़े जुतते थे प्रधान योधा (रथी) की रक्षा के लिये दोनों ओर चक्र रक्षक सिपाही अपने २ रथों में रहते थे । रथ युद्ध, निर्मल

त्याग वीर अर्जुन के सुफेद घोड़ों वाले रथ की रश्मियों को थाम रहे थे तब भारत के सुप्रबन्ध वा नियम का अद्भुत दृश्य

दिनों में कीचड़ रहित समतल भूमि में हुआ करता था। कुछक रथों के चलने से ढोलक मृदंग आदि वाजे बजते थे । कई में पक्षियों के शब्द सुनाई दिया करते थे। कई गीत भी गाते थे। देखो वन० २७ । ६ ।

रथ ध्वजा सब की अलग २ झंडे के तौर पर रथ के ऊपर रहती थी । रथों का सिर मंदिरों के कलश की भान्ति गोल ऊंचा कलदार होता था जिस पर लगी ध्वजा पताका वृक्षों से लगने पर भी टूटती न थी किन्तु झुक जाती थी। १ गुरु द्रोण के रथ की ध्वजा सोने के कमंडलु युक्त कृष्णार्जुन की मूर्ति युक्त थी । २ भीम की ध्वजा पर प्रचंड सिंह था। ३ कर्ण की ध्वजा पर हाथियों की पंक्ति थी। ४ धर्मराज की ध्वजा पर ग्रहण लगे पूर्ण चन्द्र का चिन्ह था । ५ नकुल की ध्वजा में शरभ (पक्षी) का निशान था। द्रोण० अ० २३।

रथ छोटे बड़े वा कार्य के भेद से कई प्रकार के होते थे जैसे १ देवरथ, २ पुष्प रथ, ३ सांग्रामिक रथ, ४ पारियात्रिक रथ, ५ पर पुराभि वायिक आदि । इसी प्रकार १ संपात्य, २ प्रवहण, ३ शंखमुक्ता ग्राहिणी, ४ महानाव, ५ राजतरणि, ६ स्वतरणादि, ७ हिंस्त्रिका आदि जल रथ (नौका) होते थे। देखो सत्याग्रह वा असहयोग पृ० ८३ । ६ घटोत्कच की ध्वजा पर गृध्र पक्षी था, ७ विराटपुत्र की ध्वजा पर भी सिंह था। ८ श्रीकृष्ण की ध्वजा में गरुड़ और ९ अर्जुन की ध्वजा में वानर मूर्ति थी। इन ध्वजाओं से अपने आकार तुल्य शब्द भी

था। सात अक्षौहिणी में एक चित उधर ११ में ही सहस्रों विचार उसे देख लोग युद्धारम्भ से पहले ही जय पराजय की कल्पना कर रहे थे। निदान दोनों सेना के व्यूह में हो जाने पर धर्मराज की आज्ञा से शंख दुन्दुभि आदि संग्राम बाजे बजाने लगे। धर्मराज ने स्वयं अनन्त विजय शंख श्री कृष्ण ने पाञ्चजन्य अर्जुन ने देवदत्त भीम ने पौंड्र नकुल ने सुघोष और सहदेव ने मणिपुष्पक शंख बजा कर फौज को उत्कंठित किया उस समय इन वीर वाद्यों के आल्हादक नाद को सुन कायर भी वीर बन जाते थे।

युद्ध का आरम्भ।

पांडव सेना अपने निश्चित नेताओं के अधीन और

निकलते थे जैसे आजकल मोटरगाड़ी आदि के पैंपों से आवाज आती है। इन चिन्हों को देख कर मालूम हो जाता था मुझ पर कौन हमला कर रहा है।

सारथी रथ चलाने की खास विद्या को सीख कर बनते थे। प्रायः प्रत्येक राजकुमार को सारथी विद्या सीखनी पड़ती थी। उत्तर, शल्य, कृष्ण; अर्जुन, दारुक, नल, मातलि, शालिहोत्र आदि इस में विशेष ख्यात नाम हैं।

ये रथ एक दिन में ५०० कोस तक चल सकते थे। वन० ७१। २६। राजा नल ऋतुपर्ण का रथ हांकते २ बात की बात में ४ कोस ले गये थे। सारथी का वेतन १०००० दश सहस्र रुपैये मासिक तक भी होता था। देखो नलोपाख्यान वनपर्व॥

कौरव सेना भीष्मपितामह आदि के अधीन युद्ध करने के लिये आगे बढ़ी और दोनों पक्ष के लोग जय श्री को संदिग्ध समझते हुए भी अपनी २ ओर खैंचने का भरसक यत्न करने लगे वहां पल भर में लोहे से लोहा खड़कने लग गया।

पहले दिन की आहुति } इस घोर युद्ध में सहस्रों साधारण जनों के अतिरिक्त पहले दिन धर्मराज के कृतज्ञ संबन्धि वा आश्रयदाता महाराज विराट के दो पुत्र उत्तर तथा श्वेत शल्य की शक्ति और भीष्म के अस्त्र की भेंट हुए। जिन्हें देख कौरवों को आनन्द और पांडवों को असह्य दुःख हुआ। सन्ध्या होने पर दोनों दल सन्ध्या तथा विश्रामार्थ अपने २ शिबिर में चले गये।

दूसरा दिन कलिंग वध } दूसरे दिन के युद्ध में पहले पहिर तो भीष्म के आक्रमण से पांडव सेना ने बहुत घाटा उठाया पर बाद दुपहिर भीम के धावे से कलिंग सेना का बहुत नाश हुआ। इस दिन अर्जुन, अभिमन्यु, के बाणों से भी कौरव सेना का बहुत कुछ बल परखा गया।

तीसरा दिन अर्जुन को उत्तेजना } तीसरे दिन कौरवों ने अपनी सेना का गरुड़ व्यूह पांडवों ने अर्ध चन्द्र व्यूह रच कर युद्ध किया। अर्जुन को स्नेहवश बचा २ कर शस्त्र चलाते देख श्री कृष्ण सुदर्शन चक्र हाथ में ले रथ से उतरे। जिस से लज्जित हो अर्जुन ने कहा अब मैं उत्साह से लडूंगा, आप अपनी प्रतिज्ञा छोड़ हमें लज्जा हीन न कीजिये।

चौथे दिन } भी भीष्म, अर्जुन, सात्यकि, भूरिश्रवा, भीम, दुर्योधन और धृष्टद्युम्न तथा राजा सायंमणि के पुत्र का द्वन्द्व युद्ध हुआ। इस युद्ध में धृष्टद्युम्न की गदा से उक्त राजपुत्र का बध हुआ। और सहस्रों अन्य वीर इस दिन वीर गति को प्राप्त हुए।

पांचवां छठा दिन } इन दिनों पांडवों ने श्येन व्यूह कौरवों ने मकर व्यूह रच कर युद्धारम्भ किया इन्हीं दिनों में सात्यकि के दश पुत्र भूरिश्रवा से मारे गये। दुर्योधन, भीम, भीष्म, विराट, अभिमन्यु, दुर्योधनपुत्र लक्ष्मण तथा श्रुतकीर्ति और जयत्सेन का घोर युद्ध हुआ। इन दिनों भी लाखों योद्धा वीर गति को गये।

सातवां और आठवां दिन } सातवें दिन कोई विशेष घटना नहीं हुई। कई रथियों के रथ युद्ध हुए। सायंकाल के लगभग पांडव दल ने भीष्म पर आक्रमण किया पर उस के शौर्य वीर्य वा पराक्रम का ठीक २ मुकाबला कोई भी न कर सका। इस दिन सुशर्मा, अर्जुन तथा धर्मराज और मद्र-राज का भी कुछ युद्ध हुआ। आठवें दिन भारी युद्ध हुआ उस दिन अकेले भीमसेन ने सुनाभ, अपराजित, कुंडधार, पण्डित विशालाक्ष, महोदर, आदित्यकेतु, बह्वाशी आदि स्वर्ग को पहुंचाये। इसी दिन अर्जुन के क्षेत्रज पुत्र इरावान् को आर्ष्य श्रृंगी नामक राक्षस से युद्ध करते २ स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई। इसी दिन भीमसेन के क्षेत्रज पुत्र महावीर घटोत्कच ने कौरव

सेना का अकथनीय नाश किया। कौरव योधा भगदत्त ने भी इस दिन बड़ा पराक्रम दिखलाया।

सेनापतियों पर संदेह

कौरवों की अभाग्यता का केवल यही कारण न था कि उसके सत्ताधारी, लोगों का स्वत्व दबाये हुए वा स्त्रियों के अपमानरूप घोर पाप से डरने वाले न थे किन्तु उन में एक यह भी दुर्गुण था कि उन में एक दूसरे का विश्वास भी न था चुनांचि एक दो नहीं किन्तु बीसियों बार राज काज की विशेष समितियों में वृद्धों और युवाओं में झगड़ा हो जाता था उस झगड़े की याद युद्ध के विकराल रूप धार लेने पर रणभूमि में भी न भूली। आज के दिन की बहुसंख्यक मृत्यु को देख दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण कृप, शल्य, और सोमदत्त आदि पर संदेह करना आरम्भ कर दिया कि ये दिल से उधर हैं। और भीष्म को तो कह भी दिया बाबा जी! आप दोनों ओर ध्यान रख कर लड़ते हैं। जिस के उत्तर में भीष्म जी ने कहा राजन्! मैंने तो पहले ही कहा था कि मुझे और द्रोणाचार्य को सेनापति न बनाओ! देवी गांधारी ने भी कहा था पर तुम ने किसी की एक न मानी। अस्तु अब क्या बिगड़ा है, आप युद्धसूत्र अपने हाथ लेकर लड़िये और पांडवों को जीत लीजिये।

भीष्म के इस स्पष्ट उत्तर को सुन दुर्योधन बहुत घबराया तथा पितामह से क्षमा मांग उस ने जीवनान्त युद्ध करने का वचन ले लिया।

इसी दिन अर्जुन ने क्रुद्ध हो कर त्रिगर्तराज पर वायव्य

अस्त्र से सेना क्षोभक वायु को छोड़ा, और उसे शैल (पर्वत) अस्त्र से गुरु द्रोण ने अपनी सेना का बचाऊ किया। सन्ध्या होने पर दोनों दल अपने २ सेना निवेश में चले गये।

नवमां दिन धर्म-राज को चिन्ता वा खेद — युद्ध के नवम दिन भीष्म अभिमन्यु और अलंबुष राक्षस ने बड़ा पराक्रम किया, दोनों दलों के लघु हस्त पर तीक्ष्ण प्रहारी पुरुषों ने असंख्य मनुष्यों का वध किया। आज श्रीकृष्ण ने अपराह्ण में अर्जुन को भीष्म आदि पर हलका प्रहार करते देख पुराने ढंग से उत्तेजना दी जिस से उद्दीप्त हो अर्जुन ने भीष्म से सूर्यास्त पर्यन्त घोर युद्ध किया। दिन डूबने पर सब सेना पूर्ववत् रात्रि वासस्थल में चली गई।

इस दिन की रात को सन्ध्या अग्निहोत्र भोजन आदि से निवृत्त हो धर्मराज ने अपने पक्षियों की, 'आत्मश्रेय के लिये' विचार सभा बुलाई। और उस में देवकीनन्दन को संबोधित कर कहा कृष्ण! देखते हो युद्ध को आरम्भ हुए आज नौ दिन व्यतीत हो गये हैं, सहस्र वीर हमारे नाम पर प्राण दे गये, अनेक संबन्धियों को असह्य दुःख वा हानि सहनी पड़ी है। जय या राज्य की अभी कोई आशा दीख नहीं पड़ती उलटा भीष्म हमारी सेना के वीरों को नित्य चुन २ कर मार रहा है, हम सब से अभी इसी का काम तमाम नहीं हो सका. और तो क्या अर्जुन ने कहा था मैं भीष्म को मारूंगा पर अब तक न मालूम अपना धनुष क्यों नहीं उठाया। यदि इस व्यव हार की यही गति चलनी है तो मेरे ख्याल में अच्छा है जितने आप के और मेरे बन्धु जीते हैं उन के जीवनों को हम बचा लें

ताकि वे कोई धर्म कार्य कर सके, ऐसे व्यर्थ मौत के पेट मरने से क्या लाभ है ? आप यदि कोई मेरे लिये और अच्छा मार्ग समझते हैं तो कहिये, पर वह धर्म के अनुकूल हो विरुद्ध न हो।

स्वधर्मस्यावरोधेन हितं व्याहर केशव ॥

भीष्म १०७ । २५

मेरे ख्याल में तो जब तक भीष्म नहीं मारा जाता हमें जय दुर्ग दिखाई भी नहीं देगा यह वृद्ध वीर हमारी विजय के मध्य में दीवार वा स्वराज्य में पर राज्य सीमा है । धर्मराज की दुःख भरी वक्तृता को सुन कृष्णजी ने कहा—धर्मपुत्र आप विषाद न कीजिये जिस, आप के दुर्जय शूर ४ चार भाई हैं आप को जय वा स्वराज्य निश्चित है यदि आप मुझे युद्ध के लिये आज्ञा दें तो मैं एकला ।

हनिष्यामि रणेभीष्म माहूय पुरुषर्षभम् ।
यदि भीष्महतेवीरे जयंपश्यासि पांडव ॥

१०७ । २९

सब कौरवों के देखते पुरुषोत्तम वीर भीष्म को मार देता हूं । यदि आप भीष्म के मरने में ही जय देखते हैं । देर केवल आप की आज्ञा की है ।

नतु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात् ।
अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरुमाधव ॥

१०७ । ४४

धर्मराज ने कहा वीर ! मैं आप को झूठा नहीं बनाना चाहता. बिना स्वयं हथियार उठाये वा युद्ध किये जो सहायता कर सकते हो करो माधव ! सत्य त्याग कभी कोई जय नहीं पा सकता। सत्य में ही सब की भलाई है।

इस विचार के पीछे वह उपाय सब स्थिर कर लिया जिस से अगले दिन युद्ध करना जयप्रद हो सकता था।

दशवां दिन भीष्म का पतन।

ऋते पांडुसुतं वीरं श्वेताश्वंकृष्णसारथिम्।
शिखंडिनं च समरे पांचाल्यम मितौजसम्॥

११६।८०

रात को यही निश्चय किया गया कि वीर अर्जुन तथा महारथी शिखंडी के बिना तीसरा कोई भीष्म को गिरा नहीं सकता अतः आज इन दोनों को वीरता से लड़ना चाहिये। इसी निश्चयानुसार दशवें दिन कौरव सेना के सहारे से भीष्म पांडवदल के बल से शिखंडी और अर्जुन रणखेत में शस्त्र अस्त्रों को मांज कर निकले पहले पहिर भीष्म के हाथों विराट के भाई शतानीक आदि पांडवपक्षी वीरों का बहुत वध हुआ। दुपहिर पीछे शिखंडी ने भीष्म पर नाना विध बाण छोड़े। पर उन्होंने इन की कुछ परवाह न की इतर योधाओं से ही भिड़ते रहे। कुछ देर बाद अर्जुन ने सारे बल से तीक्ष्ण बाण भीष्म पर छोड़ने आरम्भ कर दिये उधर से भीष्म भी उन का उचित समाधान वा संहार करते, पर अन्त को धनञ्जय के मूसल

तुल्य, गदा सदृश, सर्प मुख, वज्रवत् और क्षुर समान बाणों की वर्षा से देवव्रत भीष्म का देह स्थान २ से ज़ख़मी हो गया उन के मर्म स्थलों मे अनेक बाण लगे। जब बाण लगते थे तो वह उसी समय कह देते थे "अर्जुनस्य इमेबाणाः नेमेबाणाः शिखण्डिनः" आश्चर्य है इतने बाण लगने पर भी वे शस्त्र अस्त्र चला रहे थे। इस दिन अर्जुन की वीरता से डर कर कौरव सेना चारों ओर भाग रही था और अर्जुन की दुहाई दे रही थी। अन्त को घोर संग्राम के पीछे वृद्ध युवा की चोटों से चूर हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। भीष्म के गिरते ही कौरवों का दिल टूट गया, पांडवों ने जय वाद्य बजाने आरम्भ कर दिये। क्षण भर में सहस्रों वीरों ने धर्मराज को बधाई! बधाई जय हो! विजय हो! के शब्द सुनाये।

वीर पूजा वा उपचार } भीष्म देह पात होते ही लड़ाई बन्द की गई। दोनों दलों के मुखिया, सहस्रों प्रजा वासी, स्त्री पुरुष, कन्यायें कुमार और वृद्ध पुरुष पूजा का सामान ले वीर के दर्शन करने वा बालब्रह्मचारी आदित्य समान तेजस्वी वीर की वीर पूजा के लिये एकत्र हो गये। वृद्ध वीर का शरीर बाणों से इतना बिध गया था कि दो अंगुल स्थान भी कहीं बाण बेधन के बिना न था। शरीर में लगे बाणों से ही एक गज़ ऊंची शरशय्या सी बिछाई हुई दिखाई देती थी। लुडकते सिर के नीचे देने को महाराज ने सिराहना मांगा तब दुर्योधन आदि राजोचित नर्म सिरहाने लाये, पर इन्हें अयुक्त जान महावीर ने अर्जुन से कहा पार्थ! क्षत्रियों का

सिरहाना दो तब उस ने झट तीन बाण जोड़ कर पृथ्वी के अन्दर मारे जिस से भीष्म जी का शिर बाणों पर टिक गया उस सिरहाने को पा वे बड़े प्रसन्न हुए।

और राजपुत्रों से बोले क्षत्रियों का यह सिरहाना है मैं इस पर कुछ देर आराम करूंगा।

वैद्यों को लौटा दिया।

उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरण कोविदाः।
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधुशिक्षिताः॥
धनंदत्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः।
एवंगते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहास्तिकिम्॥

भी० १२० । ५६ । ५८

भीष्म जी की चिकित्सा के लिये तत्काल शल्य उद्धार करने में कुशल वैद्य सब साधन (यंत्र शस्त्र लेकर सेवा के लिये उपस्थित हुए। और जब उन्हों ने सेवा की आज्ञा मांगी तब आपने कहा इन वैद्यों को धन देकर विदा कर दीजिये, मुझे ऐसी उत्तम पुण्योपलब्ध गति मिलने पर किंचित् शरीर सुख के लिये इलाज वा दीर्घ जीवन की आवश्यकता नहीं। पर मैं अपने योग बल से उत्तरायण सूर्य में प्राण त्याग करना चाहता हूं अभी नहीं इस लिये मेरे सुख विश्राम के लिये कोई स्थान (खाई खोद कर) बना दीजिये और साधारण सेवक रख दीजिये और कुछ नहीं चाहिये। उन की आज्ञा से ऐसा ही

किया गया। पाठक देखिये उस समय के आर्यों का बल वीर्य वा धैर्य, २०० वर्ष से * ऊपर का वृद्ध १० दिन लड़ कर बाणों से शरीर छलनी होने पर भी वैद्योपचार का त्याग कर देता है और योग के लिये उत्साह रखता है।

बाण का शुद्ध जल } थोडी देर बाद भीष्मजी ने जल मांगा, तब राजा लोग कुछ खाद्य वस्तु तथा शीतल कुम्भ जल लेकर आये, तब उन्हें देख परे हटाते हुए भीष्म ने कहा ये पानी और भोजन मैंने छोड़ दिये हैं, अर्जुन को बुलाओ वह मुझे पानी देगा, तब झट अर्जुन ने उन का अभिप्राय समझ पर्जन्यास्त्र से पृथ्वी पर एक बाण मारा जिस से पृथ्वीतल फोड़ एक स्वच्छ जलधारा बहने लगी, उस धारा को पान कर पितामह ने तृषा बुझाई और शान्ति लाभ की।

यह स्थान कुरुक्षेत्र में अब भी बाणगंगा के नाम से प्रसिद्ध है। कोई भीष्म गंगा भी कहते हैं।

---

* आयु विचार; महाभारत के पाठ से मालूम होता है, युद्ध समय कृष्ण की आयु १०० वर्ष से ऊपर थी क्योंकि श्रीमद्भागवत कार कृष्ण की आयु १२५ वर्ष बताता है, ज्योतिषी १२० वर्ष, अंग्रेज गणितज्ञ भी १०० वर्ष से ऊपर बताते हैं। कृष्ण स्वर्गारोहण युद्ध के लगभग २० वर्ष पीछे हुआ। इस लिये युद्ध समय कृष्णायु कम से कम १०० ठहरी। कृष्ण अपने पिता के आठवें पुत्र थे, यदि उन के पिता की आयु विवाह समय २५ वर्ष की माने और एक २ पुत्र जन्म में तीन २

संधि की सुसम्माति।

यावन्नतेचमूः सर्वा शरैः सन्नतपर्वभिः।
नाशयत्यर्जुनस्तावत्संधिस्ते तात युज्यताम् ॥
१२१। ४६

न निर्दहातिते यावत्क्रोध दीप्तेक्षणश्चमूम्।
युधिष्ठिरोरणेतावत्संधिस्ते तात युज्यताम् ॥४८

वीर पूजा कर साधारण लोगों के चले आने पर विशेष

वर्ष का अन्तर जाने तो वसुदेव (कृष्ण पिता) की आयु कृष्ण से ५० वर्ष अधिक वा युद्ध समय १५० वर्ष की बनती है और उन का मृत्यु १७५ वर्ष ऊपर हुआ होगा क्योंकि कृष्ण की मृत्यु समय वे जीवित थे।

अब इधर धर्मराज कृष्ण से बड़े थे, अर्जुन छोटे, युधिष्ठिर जी के जन्म समय पांडु की आयु ५० वर्ष से बहुत अधिक थी, क्योंकि १ इससे पूर्व कोई राजा बानप्रस्थी नहीं बन सकता, २ पहिला विवाह २५ वर्ष के पीछे हुआ फिर १०।१५ वर्ष गुजरने पर सन्तान निमित्त कुन्ती की सलाह से माद्री से विवाह किया। दूसरे विवाह को जब १० वर्ष गुजरे तब क्षेत्र दोष नहीं, किन्तु वीर्य दोष सन्तान अभाव में कारण है, यह जान इसके बाद नियोग की आज्ञा दी, जिस से पांडव पैदा हुए। इस हिसाब से युद्ध समय धर्मराज की आयु १०० से ज्यादा,

पुरुषों की उपस्थिति में अपने मान अपमान की परवाह न कर भीष्म जी ने राष्ट्र वा राज्यहित के लिये दुर्योधन को लक्ष्य

अर्जुन की १०० के लगभग और उन के पिता के बड़े भाई धृतराष्ट्र की १५० वर्ष से भी अधिक हुई।

अब देखें व्यास जी की आयु धृतराष्ट्र आदि का जन्म नियोग विधि से व्यास वीर्य से इन की लगभग ६० वर्ष की आयु में हुआ। क्योंकि तब वह वनाश्रमी प्रतीत होते हैं (जटाश्मश्रू आदि से क्योंकि गृहस्थी आर्यों के जटाश्मश्रू न होती थी) देखो आदि पर्व अ० १०५।५ जब धृतराष्ट्र पांडु आदि से व्यास जी ६० वर्ष बड़े ठहरे और धृतराष्ट्र की आयु युद्ध समय १५० हुई तो वेदव्यासजी की आयु २०० वर्ष से भी कहीं ऊपर हुई। स्मरण रहे वेदव्यासजी भीष्मजी से कम से कम २५ वर्ष छोटे थे, क्योंकि सत्यवती को कुमार दशा में व्यास जी जन्में, वह पालनार्थ अन्यत्र भेज दिये गये। इस घटना के कुछ काल ही पीछे राजा शन्तनु ने सत्यवती से विवाह का विचार किया, इसी प्रसंग में इस विचार को कार्यरूप में लाने के लिये देवव्रत ने भीष्म प्रतिज्ञा की। इस समय देवव्रत ४ वर्ष से राज्य कार्य संभाले हुए था तथा जुम्मेदार पूर्ण पुरुष था तभी उस की प्रतिज्ञा का मान कर विलाह किया गया। इस लिये हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि युद्ध समय भीष्म की आयु २२५ वर्ष से भी कुछ ज्यादा ही थी। तिस पर यह बल और संयम ११ अक्षौहिनी सेना को बांध अर्जुन आदि से १० दिन तक लड़ना हालां कि आप के पीछे ४ सेना नायक ८ दिन भी पूरे धर्मनीति से युद्ध न कर सके किन्तु सर्व नाश कर स्वाहा हो गये।

रख कर कहा राजन् ! मैं अब लोक त्यागने वाला हूं, तुम्हारे साथियों ने और तुम ने भाइयों का स्वत्व दबा कर, वृद्ध नर

कृपाचार्य, विराट, द्रुपद, शल्य आदि की आयु भी १७५ वर्ष के लगभग होगी । गुरु द्रोण की तो द्रोण पर्व १२५ । ७३ के अनुसार स्पष्ट ही चार सौ वर्ष की सिद्ध है ।

" आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीति पंचकः ।
रणेपर्यचरद्द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् " द्रो० १२५ । ७३

कई लोग " अशीति पंचकः " का अर्थ ८५ वर्ष करते हैं, उन्हें शायद यह याद नहीं कि संस्कृत में ८५ को पंचाशीति कहा जाता है जैसे २५ को पंचविंशति अर्थात् दहाई से इकाई पहले होती है, यहां तो जैसे १०० को विंशतिपंचकः कहा जाता है, वैसे कहा है । दूसरे इतिहास में उन के पांडव कौरव शिष्यों की आयु १०० है उन के पुत्र अश्वत्थामा की भी उतनी ही है तो बाप वा गुरु को ८५ कैसे । सौ वर्ष के अर्जुन आदि शिष्य जब 'युवा' कहलाते हैं तो ८५ का वृद्ध क्यों कहलाया इस लिये द्रोणायु ४०० ही समझनी चाहिये ।

जो लोग सैंकड़ों वर्षों की आयु को कठिन समझते हों उन के लिये कुछ वर्तमान के पते लिखते हैं ।

प्रसिद्ध चीनी यात्री 'ह्युएनसंग' रसायनाचार्य नागार्जुन की बाबत लिखता है रसायन क्रिया से इसने अपनी आयु सैंकड़ों वर्षों की करली थी । नागार्जुन मसीह से ५०० वर्ष पूर्व हुआ था ।

नारियों के हटाने पर भी युद्ध आरम्भ कर जो देश की हानि की उस का मुझे शोक है, पर अब जितनी सेना बची है इसे

बन्देमातरम् ३१ मे २३ में टाइमस आफ इन्डिया के आधार से छपा था कि मेजर क्रास को तिब्बत में २४० वर्ष का एक बूढ़ा मिला जिस ने १९२७ के भावी युद्ध की भविष्यवाणी की है।

सरस्वती १९७१ माघ अंक में महात्मा किनीराम जी का चित्र और चरित्र छपा था जो १८२६ में १४२ वर्ष की आयु में स्वयं समाधिस्थ हुए थे।

रोडेगांव तासील मोगा में एक तरखान की कुमारी कन्या १०० वर्ष की आयु में १८७५ वि० में सारी क्रिया करती हम ने अनेक बार देखी। वह सभा समाजों में चार २ छः २ घंटे व्याख्यान सुनती तथा धार्मिक चर्चा भी बड़ी समझ से किया करती थी।

स्वामी केशवानन्दजी फाजलका वालों ने हम को बताया कि १९७८ वि० में गांव गुसाईसर राज्य बीकानेर में एक राम स्नेही भक्त ११३ वर्ष की आयु में अपनी सारी क्रिया करता था ७। ८ कोस चल लेता। नित्य अपने ऊंठ चरा लाता।

मनुष्य गणना की नयी पुरानी रिपोर्टों से मालूम होता है, कि अब भी इस नंगे भूखे व्याधियों से पीड़ित दीन भारत में सैंकड़ों स्त्री पुरुष सौ वर्ष से अधिक आयु के जीवित हैं। कई एक के वर्णन मासिक पुस्तकों में छप भी चुके हैं।

मेजनी गेरीबाल्डी की ७५। ८० वर्ष और प्रिंस बिस्मार्क

यदि अर्जुन के बाणों और धर्मराज के क्रोध से बचा कर उन से सन्धि करलो तो बहुत अच्छा है, मेरी हानि भी कुल दल

तथा विलियम की ९० वर्ष की आयु में युद्ध क्रान्ति पर लट्टू होने वाले नवयुवको ! महाभारत के योधाओं की कान्ति वा क्रान्ति का स्मरण कर अपने को ऊंचा करो ।

२–भीष्म वध में पुराणों तथा महाभारतमें महारथी शिखंडीका भारी सम्बन्ध है इसलिये इसके स्त्रीपद पर कुछ विचार लिखतेहैं।

शिखंडी धृष्टद्युम्न का भाई द्रुपद का महारथी पुत्र था, भीष्म बिना इन को स्त्री मान युद्ध करने के अयोग्य किसी ने नहीं माना, वरन अश्वत्थामा दुर्योधन आदि सब उस के साथ लड़ते रहे। देखो भीष्म पर्व ८२ श्लो० २६–३० ।

गीता १ । १७ में शिखंडी को महारथी (पुरुष) कहा है।

भीष्म को स्त्री होने से शिखंडी ने नहीं किन्तु अर्जुन ने अपने बाणों से गिराया था। देखो भीष्म पर्व ११९ । ६१–६५

शिखंडी का जोड़ पांडव दल में पहले ही निश्चित था। देखो उद्योग अ० ४८; ५७ वा १६३ । ६४

धृतराष्ट्र ने भी० १२० । २ में शिखंडी को पुरुष कहा है।

द्रोण पर्व २३ । ६ में शिखंडी का पुत्र क्षत्रदेव लिखा है।

शिखंडी से न भिड़ने का कारण भीष्म ११२ । १९ में यह लिखा है कि उस की ध्वजा अमंगल चिन्ह की थी अमंगल ध्वजा से न लड़ने का भीष्म मत था।

कई स्थलों पर पांडवों की भान्ति शिखंडी को भीष्म ने 'अवध्य' भी कहा है।

को हानि है, पर इसे भुला कर बाकी को बचाओ और उनको आधा राज्य देकर देश में शान्ति स्थापित करो। पर शोक, कि कुलघाती दुर्योधन ने इस देवमति बृद्ध के अन्तिम उपदेश से भी कोई लाभ न उठाया। सच है "प्रत्यासन्न विपत्तिमूढ़-मनसां प्रायोमतिः क्षीयते"।

यह हो सकता है कि शिखंडी की बहिन पुरुष वेश में युद्ध करती हो और ब्रह्मचारी भीष्म उस से भिड़ना पसन्द न करते हों पर इतिहास में राम का ताड़का वध कृष्ण का पूतना वध, जनक सुलभा, याज्ञवल्क्य मैत्रेयी का वाक्युद्ध, हनुमान् का लंकेश्वरी से भेड़ सिद्ध करता है कि युद्धार्थ उद्यत स्त्री से युद्ध निन्दित नहीं। विकटोरिया के वक्त में इंग्लैंड से तथा स्पेन की क्वीन के वक्त में स्पेन से योरूपीय राजाओं ने १९ सदी में युद्ध किया। अंग्रेजों ने प्रायः स्मरणीय महाराणी झांसी (श्री लक्ष्मीबाई) से भारी युद्ध किया था।

भारत के उद्योग भीष्म आदि पर्वों में अनेक स्थलों में जो यह इशारा आता है कि द्रुपदराज की युवति कन्या को यक्ष ने पुरुष बना दिया? यदि इस का यह भाव हो कि उस का वीरत्व देख पुरुष वेश दे युद्धाधिकार दे दिया जैसा कि गत योरूपीय युद्ध में कैसर जर्मन की पुत्री और पुत्रवधु को पुरुष वेश दे दिया था तब तो ठीक, और यदि इसका यह भाव है कि २०।२५ वर्ष की स्त्री को अन्तः शरीर चिकित्सा से बदल कर पुरुष (सन्तानोत्पादक) बना दिया तो हमारी समझ में यह चिकित्सा नहीं आती। और न ही हमने चरक सुश्रुत वाग्भट चक्रदत्त आदि में इस का कोई वर्णन पढ़ा है।

कर्ण को उपदेश } दुर्योधन के पीछे कर्ण ने पितामह को प्रणाम किया। आशीर्वाद देने के उपरन्त भीष्म ने कहा बेटा कर्ण! मैंने जो तेरे विरुद्ध अनेक बार कहा है वह किसी उद्देश्य को लेकर कहा था उसे क्षमा कर अब मुझे तेरे संबन्ध में कोई वैर बुद्धि नहीं। कर्ण! तुम्हें मालूम हो कि तुम राधापुत्र नहीं किन्तु कुन्ती पुत्र हो, इस लिये पांडवों के भाई हो, अब यद्यपि बहुत हानि हो चुकी है, पर अब भी अवसर है पांडवों से संधि करलो और नष्ट होते देश को बचाओ, राजा दुर्योधन तुम्हारी सलाह में हैं। पर शोक कि भीष्म का कर्ण पर भी उपदेश व्यर्थ ही गया अन्त में भीष्म यह कह कर चुप हो गये। कर्ण मुझे दुःख है कि मैंने शक्ति भर मौके २ पर सुलह की कोशिश की, पर कृतकार्य न हो सका। अच्छा बेटा तैने यदि युद्ध करना ही हो तो धर्म समझ कर स्वर्ग कामना से करना, क्रोध वा बदला लेने की इच्छा से न करना।

पाठक! आप सोचते होंगे भीष्म इतना बली होने पर भी युद्ध से क्यों डरता था? सो उस आर्य वीर का डर युद्ध

कोई सज्जन इस विषय को खोले हम इस के खोलने में असमर्थ हैं।

हां यह बात हम मान सकते हैं कि शिखंडी पूर्व जन्म में स्त्री हो और उस का स्मरण योग वृद्ध भीष्म जी को ही हो अन्य को न हो। और इस बात का वर्णन उद्योग १८७। १३ में अम्बोपाख्यान प्रसंग में आया भी है। सारांश यह कि शिखंडी एक जन्म में स्त्री से पुरुष नहीं बना।

से न था क्योंकि आर्य लोग युद्ध को तो यज्ञ ही समझते हैं, क्योंकि जो नाम युद्ध के हैं वही नाम यज्ञ के हैं। दूसरे, आर्य लोग युद्ध को रण वा युद्ध भूमि को रणक्षेत्र (रमण-आनन्द स्थान) कहते हैं जैसे रणवास (महल)। डर केवल भाई से भाई की लड़ाई का वा धर्मराज से उस का हक़ दबा कर लड़ने का था।

द्रोण खंड २

भयंकर युद्ध, नीति त्याग, गुरु पर आक्रमण।

गुरु द्रोण का नेतृत्व।

वर्णश्रैष्ठ्यात्कुलोत्पत्या श्रुतेन वयसाधिया।
वीर्याद्दाक्ष्यादधृष्यत्वा दर्थज्ञानान्नयाज्जयात्॥

द्रो० ६।२

तपसाचकृतज्ञत्वाद्वृद्धः सर्वगुणैरपि।
युक्तोभवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते॥

द्रो० ६।३

सभवान्पातुनः सर्वान् देवानिव शतक्रतुः ॥४॥
जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान्सेनापति यदि ॥
६ । ११

भीष्म को शरशय्या में लटा कर और उन की रक्षा का सब प्रबन्ध कर, राजा दुर्योधन ने गुरु द्रोण से कहा ब्रह्मन् ! आप वर्ण, कुल, विद्या. आयु, मेधा; वीर्य, चतुरता, सहन पन ज्ञान नीति पुरानी प्राप्त विजय तप कृतज्ञतादि सर्व गुणों से बढ़े हुए हैं आप हमारे रक्षक बनें यदि आप सेनापति का सूत्र सम्भाल लेंगे तो हम अवश्य पांडवों को जीतेंगे। इस निश्चय के अनुसार ग्यारवें दिन से कौरव सेना प्रणेता * गुरु द्रोण

---

* आज प्रायः सब ही लोग ब्राह्मणों को शस्त्र विद्या तथा सेना विभाग के छोटे २ पदों के भी अनधिकारी समझते हैं, और की तो क्या कहें स्वयं ब्राह्मण भी शस्त्राभ्यास को अन-होनी सी बात समझते हैं, यह सब पुराने इतिहास की अन-भिज्ञता का फल है। हमारी सम्मति में ब्राह्मणों का शस्त्र धारण वैसा ही साधारण वा स्वाभाविक कर्म है जैसा—कि वेद धारण का कारण।

शस्त्र अस्त्र की शिक्षा धनुर्वेद की है धनुर्वेद एक उपवेद है जिस के बिना वेद ज्ञान पूरा नहीं होता।

यजु; साम, अथर्व, वेद के अनेक भागों में इस शिक्षा का उपदेश है।

स्वयं ऋग्वेद के छठे मंडल ७५ सूक्त के मन्त्र देवता सब

हुए। युद्ध आरम्भ हुआ। इसी अवसर पर दुर्योधन ने गुरु से वर मांगा कि जिस प्रकार हो सके धर्मराज को वध न करें

युद्ध संबन्धि हैं जैसे वर्म, धनु, ज्या, आर्त्नी, इषुधि, सारथि, रश्मयः, अश्वा, रथ, रथगोपा, ब्राह्मणादयः, इषवः, प्रतोदः, हस्तघ्न, संग्रामाशिषः, युद्धभूमिः, ब्रह्मणस्पति, अदिति कवच आदि २ इन के जाने बिना, अनुष्ठान किये बिना ऋग्वेद पूर्ण नहीं हो सकता।

धनुर्वेद के प्रसिद्ध २ आचार्य गुरु (शिक्षक) प्रायः ब्राह्मण ही थे जैसे देवगुरु बृहस्पति दैत्यगुरु भृगुगोत्री शुक्राचार्य, परशुराम, महर्षि विशिष्ट, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि २। द्रोणाचार्य को तत्कालीन क्षत्रिय सर्व श्रेष्ठ योधा मानते थे द्रोणपर्व ६। ३ में दुर्योधन ने कहा है हम सब में आप सदृश कोई नहीं, आप सेनापति बनें। इसी पर्व के १८५। ६ में राजा दुर्योधन ने कहा है, न पांडव न हम न कोई और, धनुर्धारी युद्ध में आप के तुल्य नहीं। द्रो० प० १६२।३७ में भीमसेन ने द्रोण से कहा है ब्रह्मन्! यदि शस्त्र विद्या शिक्षित ब्राह्मण युद्ध न करें तो क्षत्रिय कभी नाश न हों। उद्योग १३६। २० में द्रोण ने कहा है जिस धर्मराज के ब्राह्मण सहायक हैं, उसे तूं (दुर्योधन) नहीं जीत सकता। उद्योग पर्व १५३। ६ में लिखा है ब्राह्मणों ने एक सेनापति बना कर क्षत्रियों को युद्ध में जीत लिया। द्रोण पर्व १६४। १० में लिखा है सब से पहला धनुषधारी ब्राह्मण था। वनपर्व २६। ४ में लिखा है क्षत्रिय सब (शिक्षा से) ब्राह्मणों ने पैदा किये हैं।

किन्तु जीता पकड़ कर मेरे वश में कर देवें। गुरु ने 'तथास्तु' कह कर धर्मराज को पकड़ने का विचार दृढ़ कर लिया।

गुरु गोबिन्दसिंह जी ने भी कहा है 'छत्री सभैं कृत विप्रन के इनहुंपै कृपा के कटाक्षनिहारो' दे॰ सूर्य प्रकाश।

प्रसिद्ध यात्री मैगस्थनीज़ कहता है ब्राह्मण लोग राजाओं को उपदेश किया करते थे और उन्हें राज्य शासन का मार्ग बताते थे, ये लोग बड़े विद्वान्, बुद्धिमान्, कर्मनिष्ठ, स्वार्थत्यागी और आत्मज्ञानी थे।

एक ग्रीक निवासी यात्री लिखता है इन्हें (ब्राह्मणों को) गवर्नर, डिप्टी गवर्नर, फौजी जरनल, खजाने का सुपरिंटेंडैंट आदि पद के लिये पसन्द किया जाता था इन की बड़ी सत्ता थी राजा तक इन की आज्ञा का पालन करना धर्म समझता था जगद्गुरु भा॰ पृ॰ ५०।

भारत के सारे युद्धों में मरहटों, राजपूतों और सिखों में ब्राह्मण महा योधा हुए हैं। इसलिये उचित है कि न केवल इस समय पर ब्राह्मण शस्त्र धारण करें किन्तु अपना पैतृक कर्म समझ दूसरे वर्णों को भी धारण करावें और प्रयोग का अभ्यास पूर्वाचार्यों की भान्ति करावें। स्मरण रहे इस वीर कर्म को करने के लिये पहले पर-आश्रित वृत्ति (भिक्षा) को छोड़ स्वावलंबन धारण करना अति आवश्यक है।

पुराण इतिहास ग्रन्थों में भी लिखा है, राजा की आज्ञा से देश की रक्षा निमित्त शस्त्र चलाना ब्राह्मण का विहित कर्म है।

धर्मराज को चिन्ता } गुप्तचरों से यह वरदान सुन धर्मराज को बड़ी चिन्ता हुई, उन्होंने यह भेद अर्जुन से कहा अर्जुन ने कहा यद्यपि मैं गुरु के विरुद्ध नहीं हूं तथापि

प्रपते द्यौः स नक्षत्रा पृथिवी शकली भवेत् ।
न त्वां द्रोणोनिगृह्णीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम् ॥

१३ । १०

मैं प्रण करता हूं द्यौ लोक तारों सहित चाहे गिर पड़े पृथ्वी टुकड़े हो जाय पर मेरे जीते, आचार्य द्रोण आप को पकड़ न सकेंगे । इस प्रतिज्ञा के बाद चारों तर्फ योधाओं के द्वन्द्व युद्ध जारी हो गये । कहीं अभिमन्यु शल्य और जयद्रथ को भगा रहा है तो कहीं भीम भगदत्त से भिड़ रहा है। त्रिगर्त पति अर्जुन का वध करने पर तुले हुए हैं, अर्जुन लल-कारने पर उधर लड़ भी रहे हैं पर हृदय धर्मराज की रक्षा में है। किञ्चित् समाचार मिलने पर इधर आजाते हैं। यदि दूसरी ओर जाते हैं तो सात्यकी आदि महाबलियों को धर्मराज की रक्षा पर लगाते हैं। इसी प्रकार लड़ते भिड़ते मारते दिन अस्त होने पर सब लोग सन्ध्या के लिये अपने २ स्थान पर चले गये। दूसरा दिन भी युधिष्ठिर पकड़ने और युद्ध करने में व्यतीत हो गया पर द्रोण कृतकार्य न हो सके। इस दिन वीर

याज्ञिक ब्राह्मणों को यज्ञार्थ भी कई शस्त्र चलाने सूत्र ग्रन्थों में लिखे हैं। मैं प्रसन्न हुंगा यदि कोई योग्य विद्वान् इस विषय को और भी साफ़ करे।

अभिमन्यु ने दुर्योधन पक्ष के अनेक वीरों का वध किया, तीसरे दिन जब अर्जुन का संशप्तकों से युद्ध हो रहा था, इधर कौरवों ने सेना को चक्रव्यूह में तयार कर युद्ध के लिये पांडवों को ललकारा। पांडवों में कृष्ण, अर्जुन, प्रद्युम्न, और अभिमन्यु के बिना इस व्यूह का भेदन कोई नहीं जानता था। पहले तीनों अन्यत्र लड़ रहे थे इस लिये धर्मराज ने अभिमन्यु को अदर सहित बुला कर कहा सुभद्रा नन्दन ! तेरे बिना इस मंडली में इस का भेदक कोई नहीं शीघ्रता से शत्रु सेना का नाश करो वरन तुम्हारे पिता आकर सब की निन्दा करेंगे।

चक्रव्यूह प्रवेश।

उपदिष्टो हिमेपित्रा योगोऽनीक विशातने।
नोत्सहे हिविनिर्गन्तुमहं कस्यां चिदापादि ॥
३५ । १६

नाहं पार्थेन जातः स्यां नचजातः सुभद्रया।
यदि मे संयुगेकाश्चिज्जीवितो नाद्यमुच्यते ॥२७
यदि चैकरथेनाहं समग्रं क्षत्रमंडलम्।
न करोम्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥२८

धर्मराज की आज्ञानुसार वीर अभिमन्यु ने कहा—मैं पितरों के जय अर्थ अवश्य इस व्यूह का भेदन कर शत्रु दल को ध्वंस करूंगा क्योंकि मेरे पिता ने मुझे प्रवेश की शिक्षा दी

है पर यदि कोई आपत्ति आजाय तो मुझे चक्रव्यूह से निकलना नहीं आता। राजन्! सच जानिये मैं अर्जुन का पुत्र ही नहीं वा सुभद्रा का जन्मा ही नहीं यदि अकेला सारे क्षत्रमंडल को भिन्न २ न कर दूं। आज्ञा दीजिये मैं रिपुदल दमन करने को रथ हांक दूं। अभिमन्यु का वचन सुन आशीर्वाद देते हुए धर्मराज ने कहा सुभद्रानन्दन ईश्वर कृपा से तेरा बलवीर्य वा उत्साह इसी तरह बढ़े। जाओ शीघ्र शत्रुओं का मान मर्दन करो। हम सब आप के कल्याण वा रक्षा के लिये पीछे रहेंगे। धर्मराज का वचन सुन अभिमन्यु व्यूह को भेदन कर अरिवन में दावानल की तरह फैलता हुआ अपनी शिक्षा वा कुल महिमा को विख्यात करने लगा।

एषगच्छाति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा।
नंदयन्सुहृदः सर्वान् राजानं च युधिष्ठिरम्॥

३९। ११

अभिमन्यु ने थोड़े ही काल में सैंकड़ों वीरों के अंग प्रत्यंग काट कर उन्हें व्यर्थ कर दिया।

दुर्योधन को द्रोण पर संदेह } एक अर्जुन पुत्र से कौरवों की भारी हानि देख दुर्योधन ने कर्ण आदि से कहा हमारा अभिषिक्त सेनापति धनुर्वेद का आचार्य होने पर भी अर्जुनपुत्र को वध नहीं करना चाहता, कदाचित् शिष्यपुत्र होने से प्रेम करता हो क्योंकि शिष्य पुत्रों की भान्ति ही प्रिय होते हैं। पर युद्ध में आकर यह प्यार अच्छा नहीं। यह सुन दुःशासन ने कहा राजन् इसे मैं मार दूंगा। अथवा पकड़ कर कैद कर

कूट युद्ध का आरम्भ वा नीति युद्ध की समाप्ति

अभिमन्यु का अन्याय से वध

शास्त्रकारों ने जिस तरह और प्रत्येक कर्म के नियम बनाये हैं वैसे युद्ध के भी नियम हैं। जिनको तोड़ कर लड़ने वाला नीति नाशक समझा जाता है, नीति विरुद्ध युद्ध को कूटयुद्ध कहते हैं, वह निन्दित है।

न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् ।
ना युध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥

मनु० ७ । ९१

सुप्त, मूर्छित, नग्न, शस्त्र हीन, देखने वाले वा दूसरे से लड़ रहे को न मारे । तथा एक से एक ही युद्ध करे यह भी नियम है, जो जिस शस्त्र को नहीं जानता उस पर वह शस्त्र अस्त्र न चलावे यह भी सिद्धान्त है । अभिमन्यु वध में न्याय नियम तोड़े गये । जब अभिमन्यु युद्ध कर रहा था, उस से कौरव दल में बहुत क्षोभ हो रहा था भीमादि पांडव वीर उस के पीछे जारहे थे, और तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं को बल परिचय दिखा रहे थे, तब सिंधुराज जयद्रथ ने इनको अपनी सेना से आगे जाने को रोक दिया । अन्दर अर्जुनपुत्र ने सैंकड़े वीरों को वृक्षों की भान्ति काट दिया, इसी प्रसंग में उस ने दुर्योधनपुत्र लक्ष्मण का वध किया, रुक्मरथ का सिर उडाया तब यह जान कि अकेला कोई भी योधा इस से नहीं लड़ सकता नीति विरुद्ध द्रोण, अश्वत्थामा, कर्ण, कृप, कृतवर्मा, और बृहद्बल इन छै महारथियों ने एक दम आक्रमण कर दिया।

यद्यपि जयद्रथ की रोक से सहाय भी न पहुंच सकी। तथापि वीर अभिमन्यु ने इन छै में से बृहद्बल को यमलोक पहुंचाया। और बाकी से भी खूब लड़ा धनुर्युद्ध गदायुद्ध आदि अनेक युद्ध हुए पर अन्ततः एक ओर बहुतों का साम्हना कब तक हो सकता था, द्रोण का इशारा पा कर्ण ने अपने बाण से उस का धनुष * तोड़ डाला। कृतवर्मा ने रथ के घोड़े मार डाले, कृपाचार्य ने सारथी मार दिया। तब वह ढाल तलवार लेकर उतरा, द्रोण ने मूठ के पास से तलवार तोड़ डाली, कर्ण ने ढाल के टुकड़े २ कर दिये तब चक्र से लड़ा जब वह भी निरुपयोगी हो गया तब गदा लेकर दौड़ा, और दुःशासनपुत्र से गदा युद्ध हुआ। एक दूसरे की चोटों से एक बार दोनों मूर्छा खा गये। दैवयोग से दुःशासनपुत्र की मूर्छा कुछ पहले खुल गई, इस अवसर पर उठते अभिमन्यु के सिर पर उसने जोर से गदा मारी जिस से तत्काल वह वीरलोक को प्राप्त हो गये इस वीर की मृत्यु से कौरवों में आनन्द, पांडवों में महा शोक और जन साधारण में कौरवों के धर्म विरुद्ध कुकर्म की निन्दा होने लगी।

---

* धनुष बाणों का वर्णन पुराने ग्रन्थों में अधिक होता है। धनुष एक विशेष वृक्ष की लकड़ी से बनता था, पीछे से उस पर सुवर्ण आदि का काम भी कराया जाता था, ये छोटे बड़े भी होते थे प्रायः धनुष १२ हाथ लम्बे एक हाथ पिठे के होते थे, जो उन दिनों पुरुष के सिर से जरा ऊंचे होते थे। अब तक धनुष एक माप सूत्र को भी कहते हैं। उन में अनेक विध बाण चलते थे, जैसे विषबुझे, सार्दे, अर्धचन्द्र, छुरे जैसे

एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥
४६ । १४

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
एकोयं निहितः शेते नैषधर्मो मतोहिनः ॥
४९ ।२२

स्वर्गमेषगतः शूरो योहतो न पराङ्मुखः ।
संस्तंभयतमाभैष्ट विजेष्यामो रणेरिपून् ॥
४९ । ३४

फूल समान, ये गुरु द्रोण आदि के पाद वंदन पर चलाये गये थे, कुछ मृदुमुख जो जबान बन्द कर देते थे जख्म नहीं करते थे जो एकलव्यने भौंकते कुत्तेके मुखमें,मारेथेदेखो आदि पर्व। जमीन फोड़ने वाले जो भीष्म को और द्रोण को जल पिलाने के लिये अर्जुन ने चलाये। बाण की लंबाई तीन गज, मुखी प्रायः लोहे की वा मिश्रित धातुओं की, पुंख सुवर्ण की होती थी पुंख पर योधाओं के नाम होते थे, चलने पर बाण शब्द भी करते थे, तथा प्रकाश भी करते थे, जैसा कि विराट पर्व ४८ । ९ । १७ में लिखा है ।

इतश्चेतश्चैनिर्मुक्तैः कांचनैर्गार्धवाजितैः ।
दृश्यता मघवै व्योम, खद्योतरिव संवृतम् ॥ ९ ॥
सुतेजनै रुक्मपुंखैः सुधौतै र्नत पर्वभिः ॥ १७॥

युधिष्ठिर विलाप } अभिमन्युवध से भयभीत हुई तथा भागती पांडव सेना को धर्मराज ने कहा यह बली स्वर्ग को गया है क्योंकि इस ने पीठ नहीं दिखाई। तुम भी भय मत करो, मैदान में डट जाओ! हम ज़रूर शत्रुओं को जीतेंगे। सन्ध्या होने से दोनों दल अपनी २ छावनियों में आ

कोई २ बाण हाथी तथा शत्रु के रथ तक को पीछे हटा देते थे। वे रथ में बैठ कर ही चलाये जाते थे, एक बार में अनेक अर्थात् दश २ वा ६१ तक भी चलते थे। जैसा विराट ४२। ८ और उद्योग २३। २ में लिखा है।

वराहकर्ण व्यामिश्रान् शरान् धारयते दश ॥ विराट ४२।८

यस्यैकषष्टि निशिता स्तीक्ष्णधारा सुवाससः॥ उद्यो० २३।२

अर्जुन एक बार बिना विश्राम ५०० बाण चला सकता था। ये बाण एक मील तक मार करते थे, ये बाण मोटे २ लोह तवों को भी छेद देते थे। भारत मीमांसा पृ० ३५० में लिखा है बाणों की भरी सात २ आठ २ गाड़ी आजकल की कारतूसी गाड़ी की भान्ति योधा के पीछे रहती थी, और योधा वर्षा की भान्ति बाण चलाते थे। आठ बैल जुतने वाली आठ गाड़ी अश्वत्थामा ने ३ घंटे में शस्त्रों अस्त्रों से चला कर खाली कर दी थी। ये बाण छोटे बड़े भेद से भी अनेक प्रकार के थे, अब भी बाणों की जो मुखी भारत के खंडरात से मिलती हैं, उनसे ऊपर के लेख अनुमान से ठीक जचते हैं। पं०हीरानन्द जी शास्त्री एम० ए० सुपरिंटेंडेंट आर्कियालोजीकल डिपार्टमेंट को १९०४ में कुछ बाण मुखी मिली हैं जिन का तोल १०० से

गये । उस समय धर्मराज अभिमन्यु के गुण स्मरण कर विलाप करने लगे । कभी कहते मैं भाई अर्जुन को क्या कह कर संतोष दूंगा, देवी सुभद्रा को क्या कह शान्त करूंगा। कभी कहते यह सब कुछ मेरे लिये हो रहा है । व्यासजी ने धर्मराज को शास्त्रीय विचारों से बड़ी देर बाद शान्त किया ।

अर्जुनखेद वा प्रतिज्ञा } इतने में संशप्तकों का वध कर और संध्योपासन कर श्री कृष्ण सहित अर्जुन भी छावनी में आगये । आज मार्ग में ही उन्हें अनिष्ट चिन्ह दिखाई देने लगे । यहां आकर और धर्मराज से अभिमन्यु वध सुना तो उस पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा, और वह अपने वीर पुत्र के शोक में व्याकुल होने लगे । और शत्रुताप से तप्त हो गये ।

---

२०० तोला तक हैं । लंबाई ६–८ इञ्च अष्ट धातु निर्मित त्रिशूल मुख बर्छी मुख चतुष्कोण आदि आकृति है सिकंदर के वक्त वा पृथ्वीराज के प्राणान्त तक आर्यों की यह विद्या प्रसिद्ध थी । उन दिनों युनान वा मिश्र वाले भी रथयुद्ध किया करते थे । वर्तमान काल की मैक्सिम गन की भान्ति साठ २ बाणों के भरे चक्र कला से एक ही बार चलाये जाते होंगे । भारत में उन दिनों बाणों के कई कारखाने थे, बनाने वालों को 'इषुकार' कहा जाता था । इस विद्या के अभ्यासी छाया वेध, चक्रवेध, लक्ष्यवेध आदि में निपुण होते थे । बड़े धनुष पर चिल्ला चढ़ा कर खैंचना भारी बल वा अभ्यास साध्य कर्म था अर्जुन बायें हाथ से भी बाण चला सकता था इसी लिए उस का नाम 'सब्यसाची' पड़ा है । उद्योग ३४ । ७९ में नाली (बंदूक) से चलने वाली गोली को भी बाण ही लिखा है ।

उन्हें संतप्त वा शोकातुर देख श्रीकृष्ण ने कहा—वीर ! शोक न कीजिये संसार में युद्ध वीरों की तो ऐसी ही गति होती है। वह जो सीधा लड़ कर मरा वह तो देवलोक में पहुंच गया पुण्यात्मा क्षत्रिय तो ऐसी मृत्यु को पुण्यों से लभते हैं, यह शोक-काल नहीं। शोकानन्तर धर्मराज से अभिमन्यु वध में जयद्रथ का भारी दोष समझ अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि धर्मराज ! मैं कल पापी जयद्रथ का जरूर बध कर दूंगा, यदि वह मौत से डर कर दुर्योधन दल को त्याग हमारे दल की श्रीकृष्ण वा आप की शरण में न आजाय, यदि कल सूर्यास्त से पहले उसे मैं न मारूं तो मुझे वह पाप लगे जो वेद विरुद्ध आचरण करने वालों को लगता है, अथवा मैं यदि उसे न मारूंगा तो स्वयं यहां ही अग्नि प्रवेश कर भस्म हो जाऊंगा।

सुभद्रा विलाप वा सान्त्वना } अभिमन्यु की मृत्यु पर उस की माता सुभद्रा ने बहुत विलाप किया और अन्त में उस के लिये कामना की, कि पुत्र ! जिस गति को वेदज्ञ ब्राह्मण, शूर क्षत्रिय, प्रजा पालक राजा, प्राप्त होते हैं उसे तू प्राप्त हो। जिस गति को मद्य मांस के त्यागी, एक स्त्री व्रती, ऋतुकालाभिगामी, पर स्त्री त्यागी, मातृपितृ भक्त, शरणागत पालक, और परोपकारी प्राप्त होते हैं उसे तू प्राप्त हो । इस प्रकार विलकती हुई सुभद्रा को कृष्ण ने कहा—बहिन ! उस वीर की मृत्यु पर शोक मत कर वह तो उस गति प्राप्त हो गया है जिसे पुण्यात्मा जन परम तप, ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन और उत्तम प्रज्ञा से प्राप्त होते हैं । तू वीरपत्नी वीरमाता वीर बांधवा हो शोक मत कर।

वीरसूर्वीरपत्नीस्त्वं वीरजा वीरबांधवाः ।
माशुचस्तनयं भद्रे ! गतः स परमांगतिम् ॥

७७ । १७

चौथे दिन जयद्रथ वध } शोकापनोद के पीछे सब सो गये अगले दिन प्रातः दोनों दलों में भारी सावधानी से घोर युद्ध हुआ, क्योंकि गुप्तचरों से कौरवों को अर्जुन की प्रतिज्ञा का पता लग गया था । अतः जयद्रथ को योधाओं में छुपा कर वे लड़ रहे थे । इस दिन श्रुतायुध सुदक्षिणविद अनुविद मारे गये, पांडवों के भी बहुत मरे । एक बार अर्जुन भी मूर्छित हो गया । और घोड़े भी थक गये पर श्रीकृष्ण की सावधानी वा योगविद्या से सूर्यास्तहोने से पहले ही हत्यारा जयद्रथ मार ही लिया । और अब तक कौरवों की आठ से ज्यादा अक्षौणी सेना मौत की भेंट चढ़ चुकी थी ।

भवतः तपसो ग्रेण धर्मेण परमेण च ।
साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥

१४९ । ३६

धर्मेण विजयः } जयद्रथ को मार कर श्रीकृष्ण ने धर्मराज से सहर्ष कहा राजन् ! आप के उग्र तप, धर्मबल, साधुता और सरलता से पापी जयद्रथ मारा गया है, और आप की कोपाग्नि से कोई भी नहीं बचेगा । इस के उत्तर

में धर्मराज ने उन के सहाय का धन्यवाद किया, उन्हें वधाई दी, तथा उन्हें प्रेमालिंगन देकर उन के अंगों को सुख स्पर्श किया।

घटोत्कच और कर्ण शक्ति } द्रोण के पांचवें पर युद्ध के १५ वें दिन फिर घोर युद्ध हुआ, जयद्रथवध से दुःखे हुए दुर्योधन ने पूरे चित्त से न लड़ने का द्रोण को उपालंभ भी दिया, जिस से उत्तेजित हो वे बड़े कोप से आगे बढ़े पर इधर भी पांडव दल था, अतः सहस्रों वीर युद्ध में काम आये। अलंबुश, जलसंध, भूरिश्रवा आदि आज ही मौत के घाट उतरे केवल घटोत्कच ने सहस्रों वीरों के सिर कलम किये। इस दिन सूर्यास्त होने पर कुछ देर संध्या की छुट्टी होने पर रात को भी युद्ध जारी रहा। भीमपुत्र घटोत्कच ने एक पूरी अक्षौहिणी कौरवों की आज ही भूलोक से उठा दी। और उस ने, कर्ण को भी युद्ध में विस्मित कर दिया। अब दुर्योधन का आशा तन्तु टूट गया उस नें समझा कौरवों का कालानल घटोत्कच ही है, इसलिये जिस किस उपाय से वे उसे मारने का यत्न सोंचने लगे। इतने में उन्हों ने कर्ण की अमोघशक्ति का स्मरण किया जो उसे इन्द्र से प्राप्त हुई थी, और जिसे अर्जुन पर चलाने को उसने संभाला हुआ था। दुर्योधन ने सर्वनाश होता देख अति आग्रह से अव्यर्थ शक्ति का प्रयोग घटोत्कच पर करा ही दिया, जिससे तत्काल ही घटोत्कच के प्राण हर लिये।

घटोत्कच के मरण से पांडवदल में बड़ा ह्रास अनुभव किया गया, कौरवदल में हर्ष मनाया गया। और यह स्वाभा

विक था, पर इस मरण से कर्ण को खेद तथा श्री कृष्ण को अत्यानन्द हुआ। कारण कर्ण के पास अर्जुन वध के लिये अब कोई अमोघ शस्त्र अस्त्र न था, तथा अर्जुन सखा श्री कृष्ण भी यह भेद जानते थे, अब उन्हें अर्जुनवध का कहीं से भी भय न रहा। इस दिन आधी रात तक युद्ध जारी रहा। फिर १ पहर विश्राम, फिर चन्द्रोदय होते ही युद्धारम्भ हो कर उषाकाल तक लोहे से लोहा खटकता रहा। फिर सब ने * संध्यावंदन किया। नित्यकर्म के पीछे फिर युद्ध छिड़ा । इस संग्राम में द्रोण ने हजारों पांचाल वीर द्रुपदराज उस के पुत्र पौत्र और विराट का वध किया। भीम दुर्योधनादि के भी द्वन्द्व युद्ध हुए अर्जुन ने बहुत वीरता दिखाई पर द्रोण का वेग मन्द न पड़ा जिसे देख युधिष्ठिरी दल में चिन्ता सी हो गई।

द्रोण वध और वाक् छल — द्रोण को जीतना कठिन समझ कृष्ण ने पांडवों से सलाह की कि शस्त्र धारण करता हुआ मारा नहीं जा सकता यदि इसे मारना है तो कोई उपाय सोचो जिस से यह शस्त्र त्याग दे। इस समय कूट से

---

*इस घोर संग्राम में भी प्रति दिन दोनों सन्ध्या समय २ पर करना बताता है कि तब तक भारतीयों को नित्य कर्मों पर कितनी श्रद्धा और विश्वास था।

ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययानान्युत्सृज्य सर्वेकुरु पांडुयोधाः।
दिवाकरस्याभि मुखंजपन्तः सन्ध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः॥
द्रोण पर्व १८६।४

निर्वाह होगा, प्राण रक्षा पर झूठ का पाप नहीं। इस बात को अर्जुन और युधिष्ठिर ने पसन्द नहीं किया, भीम धृष्टद्युम्न आदि ने खूब पसन्द किया। इस निश्चय अनुसार भीम ने इन्द्रवर्मा के अश्वत्थामा हाथी को मार कर द्रोण के पास जाकर ऊंचे से कहा "अश्वत्थामा हतः" अश्वत्थामा मर गया। भीम का वचन सुन द्रोण का शरीर पुत्र मरण के शोक से छिन्न भिन्न सा हो गया, पर तो भी उसने धैर्य न छोड़ा, किन्तु उस ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर सेना संहार शुरु कर दिया। तब ऋषियों ने आकर कहा—

अधर्मतः कृतं युद्धं समयोनिधनस्यते ।
न्यस्यायुधंरणे द्रोण!समीक्षास्मांन वस्थितान् ।३९
ब्रह्मास्त्रेणत्वयादग्धा अनस्त्रज्ञानराभुवि ।
यदेतदीदृशाविप्र कृतं कर्म न साधुतव् ॥

१९० । ३९

ब्रह्मन्! आपने अन्तिम आयु में अधर्म युद्ध किया है जो अस्त्र का उपयोग न जानने वालों पर ब्रह्मास्त्र सा कठोर अस्त्र चलाया है, उचित है अभी अस्त्र त्याग ब्रह्मलीन हो जाओ। हमारी ओर देखो ब्राह्मणों का इस प्रकार जनसंहार करना कर्म नहीं, यह असाधु कर्म है। इसी प्रसंग में लगे हाथ भीम ने द्रोण को सुना कर कहना शुरू किया यदि ब्राह्मण शस्त्र न उठावे तो क्षत्र क्षय न हो। एक के लिये अनेकों का वध करना

धर्म नहीं। ब्राह्मण को चांडाल की भान्ति मनुष्यों और प्राणियों का वध शोभा नहीं देता।

यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्यचजीवासि।
स चाद्यपतितःशेते पृष्ठेना वेदितस्तव। १९२।४१
एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद्धनुः।
सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत॥

और ब्रह्मन्! जिस के लिये शस्त्र लेकर लड़ रहे हो जिस के लिये जीते हो वह तेरा पुत्र * अश्वत्थामा पिछाड़ी

---

* द्रोण वध प्रसंग में महापुरुषों को मिथ्या कलंक लगाने वाली मंडली ने यह अनमेल घडंत घड़ा है कि सत्यधन सत्यव्रती धर्मराज युधिष्ठिर ने द्रोण को ऊंचे से कहा 'अश्वत्थामा हतः' और नीचे से कह दिया 'कुञ्जरो वा नरो वा' हालां कि ये दोनों पद एक वा जुड़े हुए युधिष्ठिर द्वारा कहे महाभारत में कहीं नहीं पाये जाते। जो कुछ हुआ कृष्ण भीम धृष्टद्युम्न की कोशिश से हुआ जिस को हमने ऊपर लिख दिया है पर संदेह निवारणार्थ हम इस पर कुछ विचार प्रकट कर देते हैं। द्रोणपर्व अध्याय १९०, १९१, १९२, १९३ और १९५ तथा स्वर्गारोहण पर्व ३। १५ में इस का मंत्रण, विधान, प्रयोग अनुवाद और स्मरण आता है। इस लिये इन्हीं स्थलों को सतर्क देखना चाहिये। १९०। ९–२४ में वह कथा है जो ऊपर मूल के पूर्व भाग में भीम की ओर से लिखी गई है। १९०। ४६—५५ में लिखा है भीम कथन को सफल न समझ केशव

मरा पड़ा है । ऋषियों की प्रेरणा और भीम का यह निराश करने वाला वचन सुन द्रोण ने धनुष तथा अन्य शस्त्र अस्त्र छोड़ दिये और कर्ण दुर्योधन को आवाज देकर कहा वीरो ! अब युद्धक्षेत्र को तुम संभालो मेरी ओर से अब सब को अभय दिया गया है, पांडवों का कल्याण समझो जो शस्त्र छोड रहा

ने धर्मराज को कहा, आप सेना की रक्षा करें वरन हमारा नाश हो जायगा । ऐसे अवसर पर झूठ कहना पाप नहीं। आप को द्रोण पूछेंगे उन का आप की वाणी पर विश्वास है। और जब द्रोण ने पूछा धर्मपुत्र तुम आजन्म सत्यवादी हो क्या मेरा पुत्र मर गया है ? तब झूठ से डरे हुए जय की परवाह न करते हुए सत्यव्रती ने कहा "हतः कुञ्जर इत्युत" १९० । ५१ अर्थात् हाथी मरा है ।

१९२ । ३७—४६ में भीम के कथन का उत्तर भाग है 'यस्यार्थे शस्त्र माद्रायादि' । और भीम के कथन ऋषियों की प्रेरणा से द्रोण शस्त्र त्याग तथा सब को अभयदान दे योगयुक्त होना लिखा है। १९३ । ४८—६३ तक कृपाचार्य के मुख से उपरोक्त का अनुवाद कराया है और श्लोक ५७ । ५८ में भीम के कहे 'यस्यार्थे शस्त्र मादायादि' पद्य को धर्मपुत्र के नाम जोड़ दिया है । जो अनुवाद विधि के विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त मालूम देता है । क्योंकि अनुवाद सदा उक्त विषय का होता है। सो पूर्व अध्याय में यह श्लोक भीम ने कहा है । २ दूसरा 'हतः कुञ्जर इत्युत' इस के साथ यस्यार्थे का सम्बन्ध नहीं जुड़ता। ३ जन कथा में सत्य में छुपा झूठ बोलने की प्रसिद्धि है ऐसे और प्रगट झूठ की नहीं जो यस्यार्थे वाले पद्य में बनाई

हूं। यह कह आप योगविधिसे सांख्यरीति से ब्रह्मयुक्त होगये। इस अवसर को पितृ अपमान वा पितृ हत्या वा संबंधि घात का बदला लेने के लिये उचित जान द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने गुरु द्रोणाचार्य का अति कठोर रीति से सिर काट लिया। धृष्टद्युम्न के इस कर्म से और श्रेष्ट आचार्य के वध से सारे क्षेत्र में हाहाकार मच गया, कोई इसे ब्रह्महत्यारा कहता कोई निर्दय कहता, पर

गई है। १९५। ११-१७ में धृष्टद्युम्न और उसके वंशधर पंचोलों के वध की प्रतिज्ञा द्रोणपुत्र की ओर से कराई गई है और उन के अधर्म कृत्य की निन्दा की है। तथा इशारे से भीम के व्याज वचन की भी निन्दा की गई है।

स्वर्गारोहण ३। १५ में भी यह वाक्य नहीं किन्तु द्रोण को ठगने की ओर इशारा किया है। और यह पर्व साध्यकोटि में है सिद्ध में नहीं, जो प्रमाणरूप से उद्धृत किया जाय।

आदि पर्व अनुक्रमणिका अध्याय में इस स्थल को केवल द्रोण निपातन लिखा है युधिष्ठिर असत्य भाषण नहीं, हालां कि चाहिये यही था। इस लिये इस की घडंत पीछे की ही प्रतीत होती है। अब केवल दो विचार शेष रह जाते हैं १ क्या ऐसे अवसर पर अनृतभाषण अपवादरूप से विहित नहीं ? २ क्या पुराने आर्य राजा ऐसा भूठ नहीं बोलते थे ? उत्तर, यह अपवाद नीति ग्रन्थों में लिखा है, और इसी लिये श्री कृष्ण की प्रेरणा से भीमसेन ने किया भी। पर ऐसे अपवाद किसी को बाधित नहीं करते की उसे हर एक व्यक्ति माने और करे। इसी लिये अर्जुन ने माना नहीं धर्मराज ने किया नहीं।

जो भी कहो द्रोणवध से कौरवों का रहा सहा बल भी सदा के लिये नष्ट हो गया, भीष्म वध से ऐसी निराशा न हुई थी जैसी आज हो गई। द्रोण वध से दुःखी हुए अर्जुन और अश्व-

---

रामायण में भरत के राज्य ग्रहण न करने और राम को अयोध्या लाने के लिये व्याकुल होने की अवस्था में रामचन्द्र यदि बन छोड़ राज्य ले लेते तो नीतिशास्त्र इसमें बाधक न था, पर उन्हों ने धर्म पालन को मुख्य समझ ऐसा नहीं किया तब वे और ऊंचे पुरुष कहला कर मर्यादा पुरुषोत्तम बन गये।

इस तरह चित्रांगद और विचित्रवीर्य के अकालमरण पर माता सत्यवती की आज्ञा वा प्रेरणा से वंशवृद्धि निमित्त यदि भीष्म जी स्वयं संतान पैदा कर देते तो नीतिशास्त्र से निषिद्ध न था, पर इस पर भी यदि भीष्म ने अपनी सत्य प्रतिज्ञा को दृढ़ रखा तो यह कर्म उन के तपोबल को उज्वल करने वाला था, न कि नीचा करने वाला। यदि कोई नीति प्रिय इन से पुत्र उत्पन्न करने का अकृत दोष इन पर थापे तो यह पाप कर्म है क्योंकि इन्होंने किया नहीं। इसी प्रकार धर्मपुत्र ने अपने सत्यव्रत को अन्त तक उसे परम धन समझ पालन किया है उन पर नीतिसंगत भी अकृत दोष लगाना धर्म धन पुरुषों को लोभ में लथेड़ना है। रहा यह विचार कि यदि धर्मराज ने ऐसा नहीं किया तो द्रोण ने क्यों शस्त्र छोड़े और वे कैसे वध किये गये इस का मूल में वर्णन है। विशेष चाहो तो १९०। ३५-३६। १११। ११ को पढ़ो।

त्थामा ने धृष्टद्युम्न को अनेक उपालम्भ दिये और उससे किये इस अधर्म मार्ग से गुरु (ब्राह्मण) वध की निन्दा की । पर इस का उत्तर धृष्टद्युम्न ने द्रोणकृत नीति विरुद्ध कर्मों को दुहराते हुए ही दिया। और अपने कर्म को सराहा।

द्रोण धन वा द्रोण गुण } यह बात जगत्प्रसिद्ध है कि विपक्ष में लड़ने पर भी अर्जुन को गुरु द्रोण में बड़ी भक्ति थी और द्रोण को भी अर्जुन अपने पुत्र अश्वत्थामा से अधिक प्रिय था । धृष्टद्युम्न जब मारने लगा तब भी अर्जुन यही पुकार रहा था कि मारो मत जीते को पकड़ कर लाओ कारण अर्जुन द्रोण के माननीय गुणों को जानता और मानता था इसी कारण अर्जुन ने द्रोण के गुणों का वर्णन करते हुए कहा ये बड़े धनी* वा दानी थे इन्होंने पुत्र जन्म पर एक हजार

---

* जो लोग ये समझते हैं कि ब्राह्मणों के पास धन न होता था। वे द्रोणपर्व १८६।२९ यह श्लोक पढ़े ।

यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवांदशशतं धनम् ।
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यःसोश्वत्थामैष गर्जति ॥

तथा भीष्म के कहे इन वाक्यों को भी पढ़े ॥

कुरुणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम् ॥

त्वमेवपरमोराजा सर्वेच कुरवस्तव ।
दिष्ट्या प्राप्तोसि विप्रर्षे महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥

आदि० १३१ । ७८,७९

गौएं ब्राह्मणों को दी थी। वे बड़े शान्ति प्रिय, † क्रोध हीन, न्यायानुकूल आचरण करने वाले वेद वेदांगों के ज्ञाता शास्त्रों के आचार्य आदर्श ब्राह्मण थे। इन के वध से अर्जुन और धर्म-राज लज्जित से हो गये।

कर्ण-शल्य खंड ३

ओ३म् तेजो असि तेजो मयिधेहि बलमासि बलंमयि धेहि मन्युरसि मन्युंमयि धेहि।

युद्ध के अन्तिमदिन } द्रोण के मरने पर कौरवों ने कर्ण को सेना पति और अश्वविद्या तथा सारथि कर्म के ज्ञाताशल्य को उनका सारथि बना युद्ध जारी किया। सारथि से

तथा आदि पर्व १६६। १८ को देखें परशुरामजी ने शस्त्र और शरीर के बिना सब कुछ दान दे दिया था।

† आजकल के लोगों की शास्त्र विरुद्ध यह धारणा हो रही है कि क्रोध ब्राह्मणों में स्वाभाविक है हालां कि ब्राह्मणों के लक्षणों वा धर्मों में कहीं क्रोध नहीं पाया जाता इस के विरुद्ध शमोदमस्तप० गीता १८। ४२ और शमस्तपः, आदि उपनिषद् ग्रन्थों में शान्तिवान् ही ब्राह्मण होता था। और इतिहास में भी लिखा है—

कर्ण का उत्साह गिराने का वचन पांडवों ने पहले ही ले रखा था, कर्ण के सेनापतित्व में अनेक घोर युद्ध हुए हमारे धर्मराज ने भी दुर्योधन, द्रोणपुत्र और स्वयं कर्ण से भी इन दिनों यथाशक्ति युद्ध किया, पर वे किसी को जित पराजित किये बिना निवृत्त हो गये। एक बार तो कर्ण ने उन्हें कहा भी धर्म पुत्र! तुम में ब्रह्म बल तप बल तो बहुत है पर क्षत्रिय बल पूरा नहीं है।

दुःशासन वध और रक्तपान } द्रौपदी को सभा में खैंच कर दुःशासन ने सब से ज्यादा कटु वचन कहे थे, उस समय भीम ने उस की छाती फाड़ खून पीने की प्रतिज्ञा की थी, उसी को पूरा करने का आज घोर अवसर है। युद्ध में दुःशासन को ललकार कहा आज मैं तेरा रक्त पान करूंगा, कर्ण आदि को कहा, आओ! यदि बल है तो इसे बचाओ। यह कह कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि के साम्हने दुःशासन को रथ से खैंच द्रौपदी अपमान की बातें स्मरण कर उसके कलेजे पर पाऊं रख तलवार से शिर और छाती काट डाली, और

वसिष्ठो घातितान् श्रुत्वा विश्वामित्रेणतान् सुतान्।
धारयामास तंशोकं महाद्रिरिव मेदिनीम्।
न त्वेव कौशिकोच्छेदं मेने मतिमतांवरः आदि० १७६।४३

वसिष्ठ ने विश्वामित्र से मारे गये अपने पुत्रों को सुन कर शोक को धैर्य से धारण किया और विश्वामित्र नाश का कोई विचार पैदा नहीं किया।

रुद्र रूप में छाती से निकल रहे गर्म २ खून को अंजलि से थाम कर कहा—

स्तन्यस्यमातुर्मधुसर्पिषोर्वा माध्वीक पानस्य च सत्कृतस्य । सर्वेभ्य एवाभ्यधिको रसोयं ममाद्य चास्या हितलोहितस्य ॥

कर्ण पर्व ८३ । ३० । ३१

मेरे लिये आज मधु घृत वा सत्कृत दाख के रस वा अन्य रसों से भी और माता कुन्ती के स्तन दुग्ध से भी यह स्त्रियों के मान हरने वाले धर्म विरोधी शत्रु का रक्त अधिक स्वादु है ।

फिर संधि का विचार ।

प्रसीद दुर्योधन शाम्यपांडवै, रलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम् ॥ ८८ । २१

धनंजयः शाम्यति वारितोमया, जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति ॥ २२

युधिष्ठिरो भूत हितेरतः सदा वृकोदरस्त द्वशगस्तथा यमौ । त्वयातु पार्थैश्च कृतेच संविदे, प्रजाशिवं प्राप्नुयुरिच्छया तव ॥ २३

देश की भयंकर हानि देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने दुर्योधन से कहा—राजन्! कृपा करो अब भी पांडवों से संधिकर मिल कर राज्यशासन करो, हमारे बड़े २ वृद्ध वा वीर चले गये हमारी कोई निश्चित स्थिति नहीं, बहुत हो चुकी अन्त को भाई भाई की लड़ाई में धिक्कार ही मिला करती है। जो उन की इच्छा की पूछो तो मैं कहे देता हूं, अर्जुन मेरे कहने से हट जायगा, श्रीकृष्ण पहले ही विरोध नहीं चाहते, और 'धर्म' प्राणि हित सदा चाहता है, भीम और माद्री पुत्र उसकी आज्ञा से बाहर नहीं, और सच जानिये आप की पांडवों से सुलह होने पर संसार की प्रजा सुखी हो जावेगी। शोक! कि ऐसी उत्तम सम्मति को भी दुःशासनवध और अपने अत्याचारों का ढकौसला खड़ा कर हाथ से खो दिया, तथा सर्व नाश के लिये कदम बढ़ा दिया।

कृष्ण नीति से कर्णवध — इसी दिन कर्ण का अर्जुन के साथ उग्र संग्राम हुआ कई बार एक दूसरे की चोटों से इन के अस्त्र ध्वज वा रथांग टूटे अनेक बार मूर्छा सी हुई दैवात् एक स्थान पर कर्ण के रथ का पहिया भूमि में धसने लगा, उसे ऊपर निकालने के लिये कर्ण रथ से नीचे उतरा, और अर्जुन से बोला, न्यस्तशस्त्र, भग्नशस्त्र भ्रष्ट रथ तथा भ्रष्ट कवच पर साधुव्रती शस्त्र नहीं छोडते तू शूरतम और साधु वृत्त रखता है इस लिये जब तक मैं रथ पर न बैठ जाऊं कोई शस्त्र न चलाना यह शास्त्रों की आज्ञा है, और तुम शास्त्र ज्ञाता हो। यह सुन वासुदेव ने कहा कर्ण खुशी की बात है जो तुझे भी सदाचार वा नीति वचन सूझा है। पर जब धर्मबद्ध पांडवों के

संमुख सती द्रौपदी को नीच वचन कह और सुन रहे थे तब यह बुद्धि कहां थी ? सच है नीच को दुःख में धर्म स्मरण आता है। और अर्जुन को वासुदेव ने इशारा किया कि क्या देखते हो जब तक रथ पर बैठता नहीं उस से पहले ही सिर धड़ से अलग कर दो। कृष्ण का मत जान अर्जुन ने झट ऐसा बाण मारा जिस से महाबली कर्ण का सिर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस के गिरते वा मरते ही कौरवों में महाशोक, नैराश्य, और पांडवों में हर्ष फैल गया, कई स्थानों पर इस के उत्कृष्ट गुणों का वर्णन, कहीं पर क्षुद्र कर्मों का जिकर होने लगा, अस्तु कुछ भी हो पर कौरवदल से गुरू की कुटिल कूट नीति से एक महा बली महा विद्वान् महादानी, कृतज्ञ, विश्वासी, मित्रपक्ष-पालक त्यागी समय से पहले ही जगत् से उठ गया, अभिमन्यु वध समय किसे याद था कि यह चाल कुफल लायेगी।

कर्ण के मरते ही कौरव सेना फिर छिन्न भिन्न हो गई। दुर्योधन ने दशों दिशाओं से कठिनता से २५ हजार पैदल इकट्ठे किये और शल्य को सेनापति बना युद्ध आरम्भ किया, पर पांडव वीरों ने क्षण भर में उन सब को 'स्वाहा' कर दिया इतने में सूर्यास्त होने लगा दोनों दल अपनी २ छावनी में चले गये। पर इस दिन शकुनि कृप अश्वत्थामा सहित दुर्योधन खिन्न मन था।

सुलह की सलाह } इस रात को वृद्ध, दयालु, कृपाचार्य ने दुर्योधन से कहा राजन् ! हमारा बल अब निश्चितरूप से पांडवों से हीन हो गया है ऐसे समय बृहस्पति आचार्य की तथा अन्य नीतिज्ञों की सम्मति संधि करने में हित

बताती है और पांडवों से संधि में तो हमारा बहुत लाभ है, जिस राज्य की अब निग्रह से आशा नहीं दीखती संधि पर वह अवश्य मिल जायगा, वह इस प्रकार कि जब हम धर्मराज की सेवा करेंगे तो धृतराष्ट्र के किंचित् संदेश से ही कृपाशील युधिष्ठिर राज्य तुम्हें सौंप देगा। अथवा कृष्ण के संकेत से दे देगा, सार यह कि धर्मराज कृष्ण से भी बाहर नहीं, और कृष्ण धृतराष्ट्र का वचन भंग नहीं करेगा। सुयोधन! मैं तुम्हें यह सलाह डर कर वा प्राण रक्षणार्थ नहीं दे रहा किन्तु हित कर मान कहता हूं। शोक! महा शोक!! मरने वाला रोगी जैसे पथ्य वा औषध को छोड़ देता है इसी प्रकार आज भी दुर्योधन ने अपने पूर्व अपराधों से डर कर इस हित औषध रूप सलाह से इन्कार कर दिया।

शकुनि और शल्य वध } कर्ण की मृत्यु के बाद कौरव सेना शल्य की कमान में लड़ती रही, भारी युद्ध के बाद धर्मराज के हाथ की शक्ति से शल्य मर गया। उसे मरा देख भद्र सेना भागने लगी पर दुर्योधन ने उन्हें थाम कर पांडवों से भारी युद्ध किया, इस में सहस्रों वीर मरे म्लेच्छराज शाल्व धृष्टद्युम्न ने मार दिया फिर शकुनि ने दुर्योधन को धैर्य बंधा गांधारी फौज से पांडवों पर हमला किया। तब धर्मराज ने उसके नाश के लिये बहुत सी सेना दे सहदेव को भेजा सहदेव के साथ देर तक शकुनि सेना भिड़ी पर अन्त को उस अनर्थ के बीजारोपक कलह प्रिय द्यूतकारी विदेशी विधर्मी के शस्त्र अस्त्र और जूआ खेलने वाले हाथों को काट उस का सिर काट दिया। और धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन का सारथी और घोड़ा मार

दिया तब दुर्योधन अकेला घोड़े पर बैठ अदृश्य हो गया। राजा के छुपते ही सारी सेना का धीरज टूट गया। और यह भी प्रति क्षण घटने लगी। अन्त में सिर्फ अश्वत्थामा कृतवर्मा कृपाचार्य और संजय बचे।

संजय को प्राणदान } इन में से संजय को पांडव वीरों ने पहले तो कैद कर लिया फिर धर्मराज श्रीकृष्ण की आज्ञा से उसे प्राणदान देकर स्वतंत्र कर दिया। अश्वत्थामादि

दुर्योधन कीदुर्दशा } के इधर भाग जाने पर भारतेश्वर महा समृद्धिशाली ग्यारह अक्षौहिणियों का मुख्य प्रणेता दुर्योधन अपने मंदविचार वा कर्मों से अपने ही देश में अनाथ और असहायरूप में अकिंचन हो कर अकेला घोड़े पर फिरता था अन्त को भीड़ में उस का यह घोड़ा भी मर गया, उस समय कौरवराज सर्वथा दीन बन गया, उस समय उसे विदुर आदि के शिक्षा प्रद भाषण स्मरण आते थे। उधर पांडवों की सेना विजयोत्साह से जयघोष करती हुई घूम रही थी। और दुर्योधन को बैठ कर विचार करने के लिये कोई स्थान वा समय न सूझता था। हा देव! तेरी लीला!

राजा का ह्रदप्रवेश } निदान रणभूमि के कुछ दूर एक तालाब (पानीपत) में दुर्योधन ने विश्राम के लिये प्रवेश किया। यहां पर उसे अश्वत्थामा आदि ने युद्ध के लिये प्रोत्साहन करना चाहा पर अब वह पूर्णतया क्षीण बल हीन मन हो चुका था। यहां पर ही संजय को इस ने अपने जीवित होने का संदेश महा अभागे धृतराष्ट्र को पहुंचाने के

लिये दिया। और स्वयं आधिव्याधि से खिन्न हो कष्ट कटाह में तपने लगा।

शत्रु स्त्रियों की मानरक्षा — धर्मराज युधिष्ठिर तथा सेनापति भीम की आज्ञा से शोकातुर वा रोती हुई कौरव स्त्रियों को उन के मान की रक्षा निमित्त संजय तथा दुर्योधन के बचे हुए मंत्रियों के साथ हस्तिनापुर भेज दिया और अपनी ओर से राजपुत्र युयुत्सु को साथ भेजा। वहां विदुरजी ने इनको सत्कार पूर्वक सम्भाला और युयुत्सु को बधाई देते हुए अगले दिन धर्मराज के पास भेज दिया।

दुर्योधनवध वा युद्ध का अन्त खंड ४

यद्धत्यं मायिनं मृगं तमु त्वं मायया वधीर-र्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ऋ० १।८०।३

दुर्योधन, धर्मराज संवाद — गुप्तचरों से पता लगाने पर श्री कृष्ण सहित पांडव दल बल से वहां पहुंचे जहां छुपा कुल घाती अनुचित विश्राम कर रहा था। वहां जाते ही धर्मराज ने कहा सुयोधन ! इतना जन बल नष्ट कर अब जल में क्यों छुप रहा है, उठ क्षत्रियों की भान्ति निकल कर जीत कर राज्य भोग वरना स्वर्ग भोग ?

दुर्योधन ने कहा—राजन् ! मैं बन्धु बांधवों के नाश होने पर भोग इच्छा नहीं रखता मैं अब बनवास लूंगा तुम निश्चिन्त हो कर पृथ्वी राज्य को भोगो।

नाहमिच्छेय मवनिंत्वयादत्तां प्रशासितुम् ।
अधर्मेण न गृह्णीयां त्वयादत्तांमहीमिमाम् ॥
शल्य ३१ । ५६

धर्मराज ने कहा–सुयोधन ! मैं तुम्हारी दी हुई पृथ्वी का वा अधर्म से ली पृथ्वी का शासन करना नहीं चाहता; क्षत्रिय का धर्म दान लेना नहीं । युद्ध में तुम्हें जीत कर ही पृथ्वी लूंगा ।

भीम से गदायुद्ध

इस बातचीत के पीछे दुर्योधन का भीमसेन से गदायुद्ध निश्चित हुआ । और देर तक दोनों योधा लड़ते रहे । भीम बल में और दुर्योधन छल में अधिक निपुण था कई प्रकार के छल करके बचाऊ चाहता था, पर ऐसे अवसर पर श्रीकृष्ण ने यही निश्चय किया ऐसे मायावी को जैसे तैसे वध ही कर देना चाहिये । इतने में भीम ने जाना कि दुर्योधन भयंकर छल करना चाहता है तब भीम ने उस की जंघा पर ऐसे जोर से गदा मारी कि वह भग्न उरू हो कर तत्काल धरणी पर गिर पड़ा । उसके गिरते ही विलक्षण प्रकार की वायु चलने लगी संसार का पटल ही पलटा हुआ दिखाई देने लगा । और भीम ने गिरे हुए दुर्योधन के शिर को बाएं पाऊं से ठोकर मार कर और उस के सारे कुकर्मों विशेषकर द्यूत छल तथा द्रौपदी अपमान को स्मरण करा कर कहा हमारे पास तो न आग है न छल द्यूत न ठगी न चालाकी किन्तु बाहुबल है उसी से शत्रु को दबाते हैं हम चाहे

नर्क भोगें या स्वर्ग तुम तो किये का फल चाखो । भीम को ऐसा करते देख धर्मराज ने कहा—भीम !

धर्मराज का औचित्य ।

माशिरोऽस्य पदामर्दीर्मा धर्मस्तेऽतिगोभवेत् ।
राजाज्ञातिर्हतश्चायं नैतन्न्यायं तवानघ ॥

५९ । १६

इस से वैर अब हो चुका, तैंने बदला ले लिया, तेरी प्रतिज्ञा भी पूरी होली, इसे अब पाऊं मत मारो, अन्ततः यह राजा है, अपना सजातीय है, और मृत समान है । ग्यारह अक्षौहिणियों का नेता कौरवों का सम्राट् सजाति मृतक हंसी के योग्य नहीं, किन्तु शोक के योग्य है । भीम के इस कृत्य को कृष्ण ने और शास्त्र विरुद्ध जंघा गदा प्रहार को बलभद्र ने भी बुरा ही माना ।

धर्मराज का विलाप ।

त्वमेकः सुस्थितोराजन् स्वर्गेतेनिलयो ध्रुवः ।
वयंनरकसंज्ञंवैदुःखं प्राप्स्यामदारूणम् ।५९।२९

धर्मराज ने विलाप करते हुए सुयोधन गुणगान के पीछे कहा-राजन् ! यह हम पर दैवी कोप हुआ जो आपस में लड़े। अपने ही अपराध से अपनों को मार कर अपने को विपद् में डाल लिया । राजन् ! तुम तो स्वर्ग को चले जाओगे शोक योग्य जीवन तो हमारा होगा, जिन के भाई बन्धु पुत्र पौत्र

नाती सब मर गये, और पीछे उन की विधवा स्त्रियें चिल्लाती रह गई वे तो सदा हमें ही शोक से शाप दग्ध करेंगे । आगे की तो फिर देखेंगे आज तो हम दारूण दुःखरूपी नरक में पड़ गये हैं । इस प्रकार विलाप करते धर्मराज को श्रीकृष्ण ने उपदेश दे शान्त वा सन्तुष्ट किया ।

युधिष्ठिर की कृतज्ञता } युधिष्ठिर की विलाप शान्ति के पीछे भीम सेन ने राजा को प्रणाम कर बद्धाञ्जलि हो कहा महाराज ! यह सारी पृथ्वी आप के हाथ में है, सब बड़े छोटे शत्रु नष्ट हो गये हैं । आप अब इसे धर्मानुसार पालन कीजिये । धर्मराज ने कृतज्ञता के भाव से प्रेरित हो कहा हां भीम अब वैर का मरण हो गया राजा सुयोधन मर गया । श्रीकृष्ण की सम्मति पर चल कर यह सारी वसुंधरा आप लोगों ने जीती है । भीम ! आप को ही बधाई है क्योंकि आप लोग सम्बन्धियों से, माता कुन्ती से, और द्रौपदी से अनृण हुए हैं ।

वासुदेवका उपालंभ } युधिष्ठिर के पीछे श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से सहानुभूति प्रगट करते हुए उस के भीष्म द्रोण आदि वृद्धों कर्ण आदि मित्रों लक्ष्मण आदि पुत्र जयद्रथ शकुनि आदि सम्बन्धियों का जिकर कर कहा—

याच्यमानं मयामूढ पित्र्यमंशं न दित्ससि ।
पांडवेभ्यः स्वराज्यं च लोभाच्छकुनि निश्चयात्

६१ । ५१

भाई जब मैं तेरे पास संधि निमित्त गया तब तैने शकुनि के मंत्र में आकर अथवा लोभ से पांडवों के पैतृक अंश स्वराज्य न देकर ही यह बुरा दिन देखा है । इस पर दुर्योधन ने कहा बुरा दिन कैसा है जब तक जीता रहा हूं आनन्द भोगा है, शत्रुओं को दलित और मित्रों को आनन्दित किया है,अब स्वर्ग-लोक में आनन्द लूंगा । यह संसार ही नित्य नहीं तो यहां का राज्य सुख वा यश कैसे ध्रुव रह सकता है । और कहा—

गृहे यत्क्षत्रियस्यापि निधनं तद्विगर्हितम् ।
अधर्मः सुमहानेष यच्छय्या मरणं गृहे ॥

शा० ५ । ३२

इन विचारों को सुन सर्वसाधारण ने दुर्योधन की वीरता वा धीरता की प्रशंसा की ।

धर्मराज को गान्धारी शाप का भय

दुर्योधन आदि मरण को चिन्तन कर उन की माता महा तपस्विनी, धर्मज्ञा गांधारी के शाप से राजा को भारी भय प्रतीत होने लगा इस निमित्त धर्मराज ने गांधारी की शान्ति वा सन्तुष्टि के लिये श्रीकृष्ण को हस्तिनापुर भेजा । वहां जाकर श्रीकृष्ण ने अपने विचारों से दुर्योधन अपराधों और पांडवों की विवशता साम्हने रख श्री वेदव्यास, महात्मा विदुर और महाराजा धृतराष्ट्र के साम्हने ही गांधारी का शोक कम कर दिया । और वह स्वयं कह उठी, केशव सच है पापी का कभी जय नहीं होता और धर्मी का क्षय नहीं । और यह भी कहा-केशव ! अब तो नेत्र हीन, वृद्ध तथा हतपुत्र राजा के सहारा

तुम और पांचों पांडव ही हैं । इस प्रकार कोप शान्ति वा शोक निवृत्ति करा श्रीकृष्ण ! उनकी आज्ञा से शीघ्र ही पांडवों की रक्षा के लिये समरस्थली में आगये । धर्मराज ने इस कार्य को सकुशल हो जाने पर कृष्ण का धन्यवाद किया ।

शोक सन्ताप खंड ५

राज्ञो नियोगाद्योद्धव्यं ब्राह्मणेन विशेषतः ।
वर्तता क्षत्रधर्मेण ह्येवंधर्म विदोविदुः । ६५।४२

अश्वत्थामा का कोपावेश } युद्ध के इसी अन्तिम १८ वें दिन मृत प्रायः दुर्योधन ने गुरु पुत्र से अपने दुःख कहे और अपने हाथ से रही सही सेना का पति उसे अभिषेक द्वारा नियत कर दिया, और उसने पितृवध के कोप से तथा दुर्योधन की अन्याय पूर्वक जंघा भंग करने के क्रोध से कृपाचार्य आदि के बार २ हटाने पर भी रात को पांडव छावनी पर हमला करने का निश्चय कर लिया । और इसी आवेश में किये हुए निश्चय के अनुसार उसने अपने पिता को क्रूरता से घात करने वाले धृष्टद्युम्न को जगा कर, बिना शस्त्र के पशुमार की रीति से मार दिया । लड़ते भिड़ते धृष्टद्युम्न की बाणी यद्यपि साफ २ सुन न पड़ी, पर तो भी कोलाहल से उस की स्त्रियें और पुरुष जग गये । पर इतने में अश्वत्थामा उस कैंप से निकल गया । पर इस वध का शोर सारे मंडप में मचगया ।

द्रौपदी पुत्रों का युद्ध में वध } अपने मामा (धृष्टद्युम्न) का वध सुन सुतसोम शतानीक, श्रुतकीर्ति, श्रुतकर्मा आदि ने अश्वत्थामा पर बाणों की * वर्षा की तिस पर घोर युद्ध छिड़ गया

---

* इस कथानक प्रसंग में दो किंवदन्तियें फैली हुई हैं।
१ अश्वत्थामा ने सोते पांडव पक्षियों का शस्त्रों से वध किया।
२ द्रौपदी के सोते ५ छोटे २ पुत्रों को पांच पांडव समझ वध किया। नीचे भारतीय प्रमाणों से दोनों निर्मूल ब्राह्मणों की निस्वार्थ रची गई प्रतीत होती हैं।

प्राबोधयतपादेन शयनस्थं महीपते ।
संबुध्य चरणस्पर्शादुत्थाय रणदुर्मदः ।। सौप्तिक ८।१५

इसके अनुसार अपने पिता के घातक धृष्टद्युम्न को लात मार कर जगाया और फिर बिना शस्त्र के लात मुक्का की मार से उसे मार डाला। धृष्टद्युम्न ने भी जहां तक बन पड़ा अश्वत्थामा को मारा।

धृष्टद्युम्नं हतंश्रुत्वा द्रौपदेयाविशांपते ।
अवाकिरन् शरव्रातै भारद्वाजमभीतवत् ।। सौ० ८।४८

धृष्टद्युम्न को मरा हुआ समझ द्रौपदी के ५ पुत्रों ने अश्वत्थामा पर बाण चलाये, निर्भय हो कर। और फिर युद्ध हुआ युद्ध में ५ मारे गये। बस इससे सिद्ध है कि अश्वत्थामा ने पितृ घाती को बिना हथियार के और और अपने पर हमला करने वालों को हथियार से युद्ध में वध किया। और आयु उस समय द्रौपदी पुत्रों की ५० वर्ष के लगभग थी, क्योंकि वे सब

और इस वीर ने तलवार से सब का खातमा कर दिया। और इस रात्रि क्रंदन में बहुत से अनजानपने में अपनों से ही भिड़ कर मर गये, सार यह कि भारत के प्रसिद्ध २ योधाओं से बची हुई पांडव पक्ष की वीर मंडली इस ब्रह्माग्नि से कुछ घड़ियों में कुरु सेना समान धरातल शायिनी हो गई। सिर्फ कुछ सारथी सेवक और स्त्रियें बचीं। पांडवों का सर्वनाश कर जब घातकों ने दुर्योधन को सुनाया तब दुःख से खिन्न हुआ उस का कंठगत प्राण हर्ष से अश्वत्थामा का धन्यवाद् कर सहज ही शरीर पंजर से बाहर हो गया।

द्रौपदी शोक निवारण } भाइयों और पुत्रों की मृत्यु से संतप्त हुई द्रौपदी ने धर्मराज को उपालम्भ रूप में राज्य सुख भोगने तथा पुत्र पौत्र सम्बन्धियों के मरण को भूल जाने की बात कही, और भीम को द्रोण पुत्र को पाप का फल चखाने को दुःख से कहा। तब भीम ने गंगातीर से उसे पकड़ कर द्रौपदी के साम्हने वध करना चाहा। तब ब्रह्महत्या के पाप से बचने के लिये श्रीकृष्ण ने उस के सिर में धारण करने वाली मणि हर कर छोड़ देने में ही उस के पाप का पर्याप्त प्रतिफल समझो। तब द्रौपदी ने भी कहा।

अभिमन्यु से १२। १५ वर्ष बड़े थे। अभिमन्यु तब ३४ वर्ष से ऊपर था। और रात के हमले की बात को तब कृपाचार्य आदि ने भी पसन्द नहीं किया। पर क्योंकि तब कूट युद्ध की चाल चली आ चुकी थी इसलिये वह भी उसी चाल में हुआ।

मुच्यतां मुच्यतामेषो ब्राह्मणोनितरांगुरूः ।
स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ॥
मारोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ।
यथाहं मृत्वत्सार्ता रोदिम्यश्रु मुखीमुहुः ॥
यैःकोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैर कृतात्मभिः ।
तत्कुलं प्रदहत्याशुसानुवंधं शुचार्पितम् ॥
(श्रीमद्भागवत पु० स्कं १ अ० ७ श्लो० ४३-४६)

छोड़ दो छोड़ दो इस को गुरुपुत्र होने से हमारे लिये यह पुत्र रूप में गुरु ही है। तथा मैं नही चाहती कि इसे वध कर इस की पतिव्रता माता को रुलाया जाय, जैसे कि मैं पुत्र दुःख से बार २ रो रही हूं। और क्षत्रियों के लिये ब्रह्मकुल कोप अच्छा नहीं होता। और इस के सिर की मणि हरलो और वह मणि धर्मराज धारण करें, इस में मेरे सब दुःखों में कमी और शोकों की निवृत्ति हो जायगी। द्रौपदी के इस ब्रह्मकुल मान वा धैर्य को देख सब लोग धन्य २ कहने लग गये। और वह मणि धर्मराज को धारण कराई गई।

धृतराष्ट्र गांधारी शोक वारण — अब इस भयंकर युद्ध की समाप्ति का धृतराष्ट्र गांधारी को पता लगा उन्हें बहुत शोक हुआ, वहां महात्मा विदुर और कृपाचार्य ने इस की निवृत्ति भी की, फिर उस शोक से कोपित धृतराष्ट्र गांधारी

कुरुक्षेत्र की वीरशायिनी कठोर भूमि पर आये वहां आदरार्थ पांडव भी धर्मराज की आज्ञा से पहुंचे और उन्हों ने प्रणाम किया। इस अवसर पर श्री व्यासजी भी आगये थे गांधारी को भीमादि पर कोपपूर्ण देख शापभय से व्यासजी बोले देवि! तेरे ही वचन से तो पांडव जय और कौरव क्षय हुआ है तैंने ही तो बार २ दुर्योधन के जयप्रार्थी होने पर कहा 'जहां धर्म वहां जय' अब शोक वा कोप क्यों करती हो।

भगवन्नाभिसूयामि नैतानिच्छामिनश्यतः।
यथैवकुन्त्या कौन्तेया रक्षितव्यास्तथामया॥

स्त्री० १४। १५

दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च।
कर्णदुःशासनाभ्यां च कृतोयं कुरुसंक्षयः॥

१४। १६

भगवन् मैं पांडवों की निन्दा नहीं करती और इन का अहित भी नहीं चाहती, मैं तो इन्हें कुन्ती की भान्ति ही रक्षित देखना चाहती हूं। मेरा मन केवल पुत्र मरण की प्राकृतिक वेदना से व्याकुल हो रहा है। यह मैं जानती हूं कि कुरुवंश का क्षय केवल दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन के * पापों अत्याचारों से हुआ है। इसी प्रकार धृतराष्ट्र का भी शोक दूर किया।

---

* जो लोग श्रीकृष्ण को कुरुक्षय का कारण मानते हैं वे ध्यान से पढ़ें। सन्तराम वेदरत्न

युधिष्ठिर की नम्रता } प्रणामाशीर्वाद के पीछे गांधारी ने भीम से दुःशासन रक्तपान तथा दुर्योधन के अनीतिवध का समाधान पूछा उस के समाधान मिल जाने पर उसने पूछा, धर्मराज कहा है ? तब राजा ने आकर कहा देवि ! मैं हूं तेरे पुत्रों का हत्यारा, कुलघाती, देशनाशक, निर्दय, संसार के दुःख का कारण शाप योग्य मुझे शाप दें ! क्योंकि मुझे धन, राज्य तथा जीवन की भी अब इच्छा नहीं। और न ही मित्रों सुहृदों और सम्बन्धियों को हनन कर मुझे इन में कुछ आनन्द मालूम होता है, इस नम्रभाव से प्रभावित हो आर्य स्वभावा गांधारी ने धर्मराज से माता के समान स्नेह किया।

मातृ दर्शन वा द्रौपदी विलाप } गान्धारी से आज्ञा लेकर पांचों भाई और द्रौपदी माता कुन्ती के दर्शनार्थ गये उस के पाऊं में शिर धर सब ने प्रणाम किया, माता ने पुत्रों के दुःख पौत्रों के अकाल मरण पर आंसु बहाते हुए आशीर्वाद दिया। इस के बाद द्रौपदी ने अभिमन्यु आदि पुत्रों के गुण स्मरण कर माता के साम्हने बहुत विलाप किया। और माता गान्धारी ने अपनी कथा (दशा) बता कर सब को शान्त वा धैर्य युक्त किया।

मृत शरीरों का सन्मान।

भवन्तः कारयन्त्वेषां प्रेतकार्याण्यशेषतः।
यथाचानाथवत्किंचिच्छरीरं न विनश्यति ॥

स्त्री० २६। २६

धृतराष्ट्र के कहने तथा अपने कर्तव्य से धर्मराज ने सुधर्मा धौम्य पुरोहित, संजय, महा बुद्धि विदुर तथा युयुत्सु को आज्ञा दी कि सब रणमेध में आहुति देने वाले नर वीरों के देहों को वेदविधि से पूर्ण सामग्री से संस्कार से संस्कृत करो।

चन्दनागुरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्युत।
घृतंतैलं च गंधांश्च क्षौमाणि वसनानि च २६।२८
समाहृत्या महार्हाणि दारुणांचैव संचयान्।
चितांकृत्वा प्रयत्नेन यथामुख्यान्नराधिपान्॥
२६।२६

घृतधाराहुतैर्दीप्तैः पावकैः समदाहयन्।
दाहयामासुरव्यग्राः शास्त्र दृष्टेन कर्मणा॥
२६।२८,३०

ये चाप्य नाथास्तत्रा सन्नानोदश समागताः।
दाहयामास तान्सर्वान् विदुरो राज शासनात्॥
४२।४३

राजा की आज्ञा से चन्दन अगर तगर सुगंधित द्रव्य घृत, तथा खोपे गरी आदि का तेल बहुमूल्य काष्ठ लेकर सुन्दर चिता बना घृत की धारा और सामवेदादि के अन्त्येष्टि संस्कार के मन्त्रों से सब का दाह संस्कार युवराज युयुत्सु, महा मंत्री संजय राज पुरोहित धौम्यजी ने किया। और जो कोई अज्ञात

आर्य अनार्य म्लेच्छ राक्षस नाना देशों से आये थे उन सब का दाह संस्कार राज्य की ओर से धर्मराज के ताऊ महात्मा विदुर जी ने कराया ।

गंगा गमन } सब का दाह संस्कार * कर राजा धृत-राष्ट्र को अगारी कर माता गांधारी कुन्ती आदि स्त्रियों सहित पांडव सब सम्बन्धि मंडल को लेकर गंगातट पर गये, वहां सब ने स्नानादि से निवृत्त हो शोकातुर होने के कारण मनोहर तथा रमणीक स्थान को भी निरानन्द पाया । तथा सब ने संसार को सार हीन सा देखा ।

पातक शोधन } गंगा स्नान के पीछे इस महा पातक को हृदय से दूर करने के लिये धर्मराज ने १ मास तक नगरसे बाहर ठहर कर जप पाठ में बिताया । इसके पीछे और सब तो राज्य शासनके लिये तयार हो गये पर युधि-ष्ठिर अभी विमन ही रहे । तब भीमादि ने प्रजा पालन की सम्मति दी पर फल कुछ नहीं हुआ । अर्थात् उन के दयालु स्वभाव में वह हत्या दीखती रही ।

द्रौपदी का संकेत } इस प्रकार धर्मराज को अकर्मण्य देख द्रौपदी ने कहा—धर्मराज आप तो दयालु तथा सत्यव्रती कहलाते हैं, इन कष्टों और दुःखों से पीड़ित तथा कृश भाईयों को देखो जो आपके साथ बार२ बनों और जंगलों में

---

* प्रतीत होता है उस समय तक दाह कर्म के पीछे और अस्थि संचय आदि प्रेत कृत्य प्रचलित न था ।

भटकते फिरते रहे हैं, और अन्त को इस अवसर लाभ के लिये पुत्र पौत्र सम्बन्धि मित्र सोते जागते सर्वस्व सहित स्वाहा कर चुके हैं, और आप उन शब्दों को याद करो जो बन में कहे थे कि हम दुर्योधन को मार कर पृथ्वी पालन करेंगे, और माता कुन्ती के वचन को सत्य बनाओ जो उसने मुझे आशीर्वाद देते कहा था कि "युधिष्ठिरस्त्वां पांचालि सुखेधास्यत्यनुत्तमे !" द्रौपदी ! युधिष्ठिर तुम्हें महा सुख देवेगा। और मेरी तर्फ देखो पिता, भ्राता, पुत्र, पौत्रों की बलि देकर भी धैर्य धर रही हूं। और राज्य का लाभ उठाओ।

यजस्व विविधैर्यज्ञैर्युध्यस्वारीन्प्रयच्छ च।
धनानि भोगान् वासांसि द्विजातिभ्योनृपोत्तम॥

शान्ति० १४। ३९

धर्मराज को संमोह — सम्बन्धियों के इतना कहने पर भी राजा का संमोह कम नहीं हुआ किन्तु वह प्रायोपवेश (शरीर त्याग) के लिये उद्यत हो गया, और कहने लगा मैं अब इस देह को उपवासादि से क्षीण कर समाप्त कर दूंगा ताकि दूसरे जन्म में मुझे कुलान्तकारी देह न मिले। आप जायें वा यहां रहें, मुझे प्रायश्चित्त करने की आज्ञा अवश्य देवें।

व्यासजी का उपदेश — दैवयोग से इस अवसर पर नारदमुनि तथा श्री वेदव्यास आदि महर्षि भी आये हुए थे। उन्होंने कहा राजन् ! क्षत्रिय का यह धर्म नहीं जिस

का आश्रय तुम ले रहे हो। तप की अधिक मात्रा ब्राह्मण के लिये है राजा के लिये नहीं। राजा का धर्मानुसार प्रजारक्षण तप है। और तेरे सारे पापोंका प्रायश्चित्त देश की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक दशा, सुधारने और यज्ञ याग करने में हो जाता है, और जिन पुरुषों वा स्त्रियों के पुत्र पौत्र भ्राता पति नाती मरने का तुम्हें चिन्तन है तुम उन की वृत्ति बांध कर उन का संतोष लाभ कर सकते हो। जिन देशों के राजा मर गये हैं उनके पुत्रोंको राज्यासन पर बैठा प्रसन्न कर सकते हो।

रञ्जयन् प्रकृतीसर्वाः परिपाहि वसुंधराम्।
कुमारो नास्तियेषां च कन्यास्तत्राभिषेचय॥

शान्ति० ३३। ४५

कन्या को राज्य तिलक } जिन के पुत्र नहीं उनकी कन्याओं को राज्यपद पर स्थापन कर प्रजानुराग प्राप्त करो। उसके पीछे धन धान्य एकत्र कर अश्वमेध यज्ञ करो। इस कायर क्लीव अनार्य प्रिय समोह को त्याग धर्म अनुसार राज्य पालन करो। व्यासजी के वचनों से कुछ समाधान पा धर्मराज ने पूछा भगवन्! आप धर्म से राज्य शासन बताते हैं पर धर्म और राज्य सर्वथा विरुद्ध २ पदार्थ हैं इन की एकता कैसे हो? व्यासजी ने कहा इत्यादि प्रश्नों का उत्तर भीष्मपितामह जी आप को देंगे आप उन से विस्तार सहित प्रश्न करें।

अष्टमो भागः

विजयी का राजधानी में प्रवेश

इमं देवा असपत्न ँ सुवध्वं महते क्षत्राय
महते राज्यैष्टयाय महते राज्याय ॥ यजु० ९।४०

१६ बैलों का दिव्य रथ

व्यासादि ऋषियों के उपदेश से मानसी दुःख को त्याग कर धर्मपुत्र ने महाराजा धृतराष्ट्र को आगे लगा कर पिता पितामह से परम्परा प्राप्त हस्तिनापुर की राजाधानी में प्रवेश किया। सब से आगे बड़े सुन्दर, विशाल ऊंचे पहियों वाले नरयान (तख्तरवां) पर माता गांधारी के साथ धृतराष्ट्र बैठे जा रहे थे। उस के पीछे सोहल जातिवन्त शिक्षित बैलों के रथ पर धर्मराज बैठे थे। यह रथ सुफेद रंग का नया बना हुआ था और चित्रकारों की कृति से अति दर्शनीय था। इस की बागें भीमसेन ने पकड़ी हुई थीं, वीर अर्जुन सुफेद छत्र ले रहे थे, दोनों ओर नकुल सहदेव चामर और व्यजन झुला रहे थे। पीछे युयुत्सु सात्यकि तथा श्रीकृष्ण के सुनहरी रथ थे। उस के पीछे विदुर जी के सत्कार में माता कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, तथा अन्यान्य कुरु स्त्रियें थीं। इनके पीछे २ अनेक रथ बहुत से हस्ती, सवार, घोड़सवार और पैदल चल रहे थे। इस जलूस में अनेक प्रकार

के बाजों में गान तथा सूत, मागध, गंधर्व, किन्नरों के समयोपयोगी जय सूचक हर्षवर्धक संगीत भी होते जाते थे। सारा नगर अन्दर बाहर से तथा राजमार्ग ध्वजा पताका बन्दरवार पुष्पमाला तथा कृत्रिम वाटिका द्वारों वा कुञ्जों से सजा हुआ था। सड़कों पर सुगंधित चूर्ण तथा सुगंधित जल छिड़का हुआ था सब आबाल वृद्धों के चित्त प्रसन्न थे।

राजभवन में स्वागत } मार्ग में सहस्रों स्त्रियें द्रौपदी के तप की और सहस्रों पुरुष पांडवों के भाग्य की बड़ाई करते थे। चारों तर्फ से प्रशंसा वचनों तथा स्तुति वाक्यों के सुनते हुए आगे सजाये गये देवराज के भवन तुल्य उत्तम राजभवन में धर्मराज पहुंचे। वहां ब्राह्मणों ने वेद मन्त्रों से स्वस्तिवाचन कर राजा का स्वागत किया तथा देश के सारे प्रतिनिधियों ने धर्मराज की विजय को स्वीकार कर अपनी श्रद्धा दिखाते हुए राजा का स्वागत किया तथा भेंट उपहार से राजा का उचितसन्मान किया। उस समय सब कह रहे थे।

दिष्ट्या राज्यं पुनः प्राप्तं धर्मेण च बलेनच ।
भवनस्त्वं महाराज राजेह शरदां शतम् ॥

३८। ११

देश वासियों से सत्कृत हो कर राजा ने वहां के सब ब्राह्मणों वृद्ध और पुरोहितों की पूजा की।

राक्षस की देश विरुद्ध वकता } परस्पर मान सत्कार के पीछे खुशी के बाजे शंख, दुन्दुभि, पणव, गोमुख आदि

बजने लगे । इस सारे मंगल को असह्य समझ वहां बैठे हुए एक राक्षस ने (जो दुर्योधन का मित्र तथा ब्राह्मणों का बनावटी रूप बना यहां घुस आया था) कहा राजन् ! ये सब ब्राह्मण आप को धिक्कार देकर कहते हैं। कि कुलघात, गुरू हनन,पुत्र पौत्र सम्बन्धियों को वध कर राज्य लेने की अपेक्षा तो मर जाना ज्यादा अच्छा है, तुम प्रसन्नता कैसी मना रहे हो ? यह सुन राजा तथा ब्राह्मण पहले तो बड़े लज्जित हुए, पर पीछे झट उस का असल भाव वा रूप समझ सब ब्राह्मणों ने मिल कर कहा महाराज ! यह हमारी वाणी नहीं यह देश द्रोही राक्षस दुर्योधन का साथी है सबने उसे वहां से निकाल दिया। फिर सब सन्तुष्ट हो गये ।

राज्याभिषेक वा प्रजोपहार ग्रहण } उस असाधारण स्वागत के पीछे मुख्य २ राजाओं तथा देश प्रतिनिधियों का एक भारीदर्बार किया गया। सबसे पहले धौम्य पुरोहितने अग्निहोत्र कराया फिर पूर्वाभिमुख बनाये हुए एक सर्व श्रेष्ट आसन पर धर्मराज विराज गये, उस के साम्हने सुनहरी चमकदार पीठ पर श्रीकृष्ण और सात्यकि बैठे । दूसरी तर्फ नर्म २ बहुमूल्य मणि पीठों पर भीम अर्जुन बैठे एक ओर सोने के काम से देदीप्यमान हाथीदान्त के पीठ पर नकुल, सहदेव को लेकर माता कुन्ती बैठीं, एक बड़े पूज्य स्थान पर राजा धृतराष्ट्र माता गांधारी युवराज युयुत्सु तथा संजय बैठ गये । सुधर्मा, विदुर, धौम्य भी उत्तम २ आसनों पर बैठाये गये । देश प्रतिनिधि भी सब यथायोग्य स्थानों पर बैठ रहे थे । सब से पहले राजा प्रजा कर्तव्य, राजा की जरूरत, उत्तम राजा की पूजा का

महात्म्य, और प्रजा पालन का पुण्य, बता कर वेद रीति से ब्राह्मणों और देशवासियों की आज्ञा से श्रीकृष्ण ने धर्मराज को राज्याभिषेक कर तिलक दिया फिर प्रजा ने प्रजाधर्मानुसार उपहार दिये। राजाने उसे स्वीकार कर प्रजावासियों की प्रति पूजा की और राज्य पालन के भारी कर्म में सहायता मांग सब का धन्यवाद किया।

राज भाषण वा कार्य भार विभाग } राज्यअभिषेक के बाद राजाको राज्य प्राप्त करने और भाइयों सहित सकुशल स्वराज्य में लौटने पर वधाई दी, और अपने आप को सदा राजसहायक रहने का वचन दिया, इसपर धर्मराज ने एक छोटा सा भाषण अपने शीलानुकूल निम्नांकित दिया। देशबन्धुओ! मैं मेरे भाई आप से सत्कार वचनों को सुन कर अपने को भाग्यवान् समझते हैं, हमसे पुण्य हुआ वा पाप हुआ पर आपने हमें अपना लिया है यही हमारा भाग्य है, आप आगेको भी हम पर अनुग्रह करेंगे ऐसी मुझे आशा है। आप से एक विशेष अभ्यर्थना मैं करना चाहताहूं और वह यहहै—कि यदि आप सचमुच मुझे प्रिय समझते हैं तो आज से पहले की तरह ही महाराज धृतराष्ट्र को शासना में ही चलिये ये मेरे परम देव हैं। मेरा जीना तभी सफल है जो मैं आप को साथ लेकर इनकी सेवा करूं। ये सारी पृथ्वी के, आप के, और सब के राजा हैं, यही हमारे रक्षक वा पालक हैं। प्रजाओं से इस प्रकार धृतराष्ट्र का सन्मान वचन ले धर्मराज ने प्रजा को सत्कार से विदा किया और राजसभा की ओर से भीम को युवराज, महात्मा विदुर को महा मंत्री, संजय को हर एक कार्य के निरीक्षण तथा आम-

दनी खर्च के जानने और करने पर। फौज के बढ़ाने, घटाने, जाचने, तथा भृत्यों को भक्त [खुराक] और वेतन देने और उन के काम को जाचने के लिये नकुल को, शत्रु के हमले को रोकने, वा दुष्ट राजाओं के मर्दन में वीर अर्जुन को। पुरोहित धौम्यजी को अग्निहोत्र वेदपाठ धर्मोपदेश वा यज्ञादि वा ब्राह्मण पूजन में, सहदेव जी को अपने पास अपनी सहायता वा रक्षा के लिये नियत किया। और जो २ विद्वान् जिस २ कार्य के योग्य था उस को उसी काम पर नियुक्त कर दिया। और काम बांट कर विदुर, संजय, युयुत्सु आदि सब को धर्मराज ने ताकीद की कि हर रोज प्रातःकाल उठ कर हम सब को महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से सब काम करने चाहिये। इस प्रकार इस दिन का कार्य समाप्त हुआ।

मृतबन्धुओं का स्मारक कार्य } युद्ध हत अपने वीरों के सत्कारार्थ वा परोपकारार्थ राजा धृतराष्ट्र ने पात्रों को बहुत सा दान वा धर्मशाला आदि का जहां तहां निर्माण कराया। और धर्मराज ने महात्मा द्रोण, दानी कर्ण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, घटोत्कच राक्षस, विराट, द्रुपद, उत्तर, शंख, द्रौपदी पुत्र और अन्य उपकारी मित्र देशी विदेशी योद्धाओं के स्मरणार्थ सभा, प्रपा, तडाग, बाग, विश्रान्ति गृह, पाठशाला, औषधालय आदि बनाये। और धृतराष्ट्र गांधारी का पूर्ववत् पुत्र तुल्य सन्मान किया। और सब भृत्यों का पूजन किया।

याश्चतत्रस्त्रियः काश्चित् हतवीरा हतात्मजाः।

सर्वास्ताः कौरवोराजा संपूज्या पालयद्घृणी ॥
शां० ४२ । १०

दीनांधकृपणानांच गृहाच्छादन भोजनैः ।
आनृशंस्य परो राजा चकारानुग्रहं प्रभुः ॥
शां० ४२ । ११

और जिन स्त्रियों के पति वा पुत्र युद्ध में मर गये थे दयालु राजा ने उनका आदर से पालन प्रबन्ध कर दिया, और दीन, अनाथ, अन्ध, अंगहीन, आपद्ग्रस्तों का मकान भोजन वस्त्र से सब प्रबन्ध उसने किया ।

भाइयों को विश्राम } धर्मराज ने सबसे पीछे अपने भाइयों को बुलाकर कहा आपने बहुत कालसे श्रम वा कष्ट सहेहैं अब विजय हो गया है, विश्राम करो तथा सुखानन्द भोगो। और पदोंके भिन्न भीम अर्जुन नकुल सहदेव को महाराज दुर्योधन का खास राजगृहवास और उस के समान ही दुःशासन दुर्मर्षण और दुर्मुख के महल सारी सामग्री सहित वा दास दासियोंसे भरे हुए यथाक्रम दे दिये। और जरूरत के और पदार्थ भी भेज दिये । और युयुत्सु, संजय, विदुर, सुधर्मा और पुरोहित धौम्य को उन्हीं के भवन सौंप दिये ।

पुरोहित वा आचार्य पूजन } पूज्य पुरोहित गुरु कृपाचार्य तथा विदुर जी को गुरु समान वृत्ति लगा कर राजा ने लाखों रुपये, धनधान्य, वसन, भाजन, भूषण, गौयें, घोड़े भी दिये और प्रसन्न किया। धृतराष्ट्र युयुत्सु की विशेष पूजा कर, सब आश्रित पुरुष स्त्रियों को अन्न पान वस्त्र पात्र स्थान

वा अन्य जीवनोपयोगी पदार्थों से सन्तुष्ट किया।

कृष्ण का धन्यवाद।

जयं प्राप्ता यशश्चाग्र्यं न च धर्मच्युताः वयम् ॥

शा० ४५ । २०

भवन विभाग के बाद श्रीकृष्ण और सात्यकि अर्जुन भवन में वासार्थ चले गये थे, प्रातःकाल उठ नित्य कर्म कर धर्मराज ने श्री कृष्ण से रात्रि का कुशल अनामय पूछ कहा भगवन्! आप की कृपा से हमें जय और यश दोनों ही प्राप्त हो गये हैं। और यह और भी खुशी की बात है कि हमने अपना धर्म नष्ट नहीं होने दिया। इस सर्व सिद्धि के लिये मैं आप का कृतज्ञ हूं, ऋणी हूं, और आभारी हूं।

कृष्ण का सन्देश।

ततःउत्थायदाशार्हः स्नातः प्राञ्जलिरच्युतः।
जप्त्वागुह्यं महाबाहुरग्नी नाश्रित्यतस्थिवान् ॥

५१। ७

दूसरे दिन सन्ध्या अग्निहोत्र कर गायत्री जाप तथा ब्राह्मण पूजन कर श्री कृष्ण ने धर्मराज के पास सात्यकि को भेजा कि जाओ कहो कि क्या आप भीष्म दर्शन के लिये तयार हैं, यदि तयार हैं तो रथ जोड़ शीघ्र चलिये वहां जाने में देर हो रही है। इस संदेशको सुन धर्मराज भी शीघ्र तयार हो गये।

भीष्म का अन्तिम दर्शन

श्री कृष्ण के संदेश अनुसार रथों में बैठ धर्मराज भीमादि चारों पांडव धृतराष्ट्र

सात्यकि श्री कृष्ण तथा और बहुत से राजा और ऋषि लोग कुरुक्षेत्र में पहुंच उस पुण्यभूमि पर गये जहां बालब्रह्मचारी भीष्मपितामह बहुत दिनों से शर शय्या पर स्थित योगमार्ग से उत्तरायण काल की प्रतीक्षा कर रहा था। वहां परिचारिकों के बिना अनेकों ऋषि इस राजर्षि के दर्शन से लाभ ले रहे थे। वहां जाकर सब ने उस पूज्य पुरुष को प्रणाम किया, और संकेत होने पर सब बैठ गये । जब चुपचाप बैठे कुछ देर हो गई तो नारदजी ने कहा इस ज्ञान दिवाकर के अस्त का समय हो रहा है कुछ उपदेश से लाभ लेलो । इस पर धर्मराज ने श्रीकृष्ण से कहा हृषीकेश! आप के बिना किस की शक्ति है इनके सन्मुख मुख खोल सके । तब श्रीकृष्ण ने कुशल, क्षेम, अनामय, तथा ज्ञान स्वास्थ्य पूछ अति मधुर और उचित वाक् शक्ति से उन्हें धर्मोपदेश के लिये प्रोत्साहित कर लिया। इस समय जो भीष्म ने उपदेश किया वह शान्तिपर्व के नाम से प्रसिद्ध है इसका कुछ सार भाग आप अगले पृष्ठों में देखेंगे *।

मृत्युंजय का स्वर्ग गमन — कुरू वृद्ध पितामह ने अखंड ब्रह्मचर्य तथा वैदिक योग से मृत्यु को स्वाधीन किया हुआ था। अतः अंगुल २ देह के बाण विद्ध होने पर भी इन्हों ने अपने इच्छित काल में देह पञ्जर त्याग स्वर्गलोक का यशप्रद गमन किया। आप के देह त्याग से मानों भारत का व्रत केन्द्र तप का भानु शील का चन्द्रमा अस्त हो गया । पर संसार में कोई देहधारी पार्थिव रूप में स्थिर नहीं रह सकता इस लिये यह भी सहा गया। और लोगों ने राजा की आज्ञा से इन के

---

* देखो भीष्म उपदेश शीर्षक अग्रिम अध्याय।

शरीर का अन्तिम संस्कार वा दर्शन बड़ी श्रद्धा भक्ति और पूज्यबुद्धि से किया। इनके दाह कर्म के पीछे और लोगों ने तो साधारण खेद अनुभव कर प्रकृति भाव लाभ कर लिया पर धर्मराज की स्वाभाविक दयालुता से युद्ध में मरे सब संबन्धियों की याद ने इन्हें देर तक मोहाविष्ट सा कर दिया।

अश्वमेध का उपदेश | इस मोह वा बन्धुघात के वृजिन (पाप) को दूर करने के लिये श्रीव्यासजी ने धर्मराज को अश्वमेध यज्ञ करने का उपदेश दिया। जिसे स्वीकार करते हुए धर्मराज ने कहा इस समय इस का होना कठिन है, कारण १ मेरे पास धन नहीं, २ प्रजा पर कड़ा कर डाल धन एकट्ठा करने का बोझ मैं डालना नहीं चाहता। इस पर व्यासजी ने हिमालय में एक धनराशि का पता बताया। और उस को यज्ञार्थ प्राप्त करने धर्मराज बन्धु समेत वहां चले गये, और बताये हुए स्थान में धन ढूंडने लग गये।

परिक्षत् जन्म वा अश्वमेध खंड २

परीक्षत को जीवन दान | युद्ध के आरम्भ में अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा गर्भवती थी। पांडवों के सारे उत्तराधिकारियों के मर जाने पर राजकुल की स्त्रियों तथा पुरुषों को इतना संतोष था कि उत्तरा पुत्रवती होकर कुरुवंश की विस्तारिक होगी। पर सर्व संहारी आत्मीय संग्राम ने स्त्रियों के गर्भान्त में पल रहे बालकों को भी चोट से न बचने दिया। उसी क्रम में परिक्षित् पर भी गर्भावस्था में अश्वत्थामा के अस्त्र का असर पड़ा। और जन्म समय वह मृत सा जन्मा। जिसे देख

उस की माता दादी सुभद्रा और बड़ी दादी कुन्ती आदि को बड़ा शोक हुआ। इतने में श्रीकृष्ण वहां पहुंच गये, सब देवियों ने मृत पुत्र को उन्हें सौंप शोक किया। श्रीकृष्ण ने उस के जीवनीय योग्य चिन्हों को देख कर कहा मैं इसे जीवित कर दूंगा आप चिन्ता न करें।

स भगवता वासुदेवेना संजातबलवीर्य पराक्रमोऽकालजातोऽस्त्राग्नि ना दग्धस्तेजसा स्वेनजीवितः ॥ आदिपर्व ९५ । ८४ ।

अकाल जात, निर्बल अप्रगट वीर्य पराक्रम, बालक को भगवान् ने अपने आयुर्वेदिक विज्ञान वा धार्मिक तेज से जीवित जागृत * कर दिया। जिसे पा सारे राजकुल में आनन्द की

---

* प्रायः कहा जाता है कि श्रीकृष्ण ने मृत को जीवित किया पर बात यही है जो ऊपर लिखी गई है अर्थात् समय से पूर्व शोकातुर उत्तरा के गर्भ हुआ। सब घर वालों ने उसे मरा समझ दुःख मानना शुरू किया। पर सर्व विद्याओं के ज्ञाता कृष्णने उसे जीवित देख प्राण क्रिया जारी करदी, देखो आदि० ९५। ८३, ८४ यह बालक सातवें मास के अन्त में आठवें के आरम्भ में जन्मा, हमारे मत में तो नवम मास में जन्मा है क्योंकि स्त्री पर्व अ० २० श्लो० २९ में लिखा है—

एतावानिहसंवासो विहितस्ते मयासह ।
षण्मासान्सप्तमेमासि त्वं वीरनिधनं गतः ॥

अर्थात् विलाप करती हुई उत्तरा अपने पति अभिमन्यु

वर्षा हो गई। कुल के क्षीण होने पर जन्म लेने से इसका नाम परीक्षित् रखा । और इस के पालन पोषण का पूर्ण प्रबन्ध सावधानीसे कर दिया।

के सहवास काल को सात मास बताती है उस के पीछे कुछ दिन युद्ध की तयारी १८ दिन युद्ध कुछ दिन पीछे प्रेत संस्कार इस तरह कुल एक मास भी माने तो आठ मास और उस के पीछे १ मास सूतक काल फिर भीष्म देवलोकागमन तदुपरान्त परीक्षित् जन्म, इस प्रकार जन्म नवमें मास में हुआ होगा। गर्भ युद्धास्त्रों से कृश हो गया था। वरन कृष्ण वा किसी अन्य मनुष्य में मृत को जीवित करने की शक्ति नहीं होती । यदि कृष्ण में यह शक्ति होती तो वे वीर अभिमन्यु द्रौपदी के पुत्रों और अपने प्यारों को भी जीवित कर देते । तथा श्रीकृष्ण ने मृत को जीवित देने की प्रतिज्ञा भी नहीं की और इसके बिना किसी को जीवित भी नहीं किया।

सुश्रुत, भावप्रकाश आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों में ६ मास के पीछे सातवें मास तक में पैदा हुए बच्चों के जीते रहने का वर्णन है। पंजाब में बहुत से परिवारों के मूल पुरुष सातवें मास में पैदा हुए बच्चों के चल रहे हैं, जो सतमाहें कहलाते हैं। हमने उपरोक्त जीवन क्रिया करते वैद्यों वा दाया को देखा है यह प्रायः वहां होता है जहां जननी के निर्बलता से गर्भ पूरी पुष्टि न पाकर समय से पूर्व पैदा हो।

अंग्रेजी चिकित्सा में भी इस क्रिया की परिपाटी है, पर यह होता वहां ही है जहां जन्म से पूर्व इस विद्या के दक्ष स्त्री पुरुष निकट हों । वरन कई स्थानों में अज्ञानता से जात

अश्वमेध यज्ञानुष्ठान

हिमालय से धन लाकर, और परिक्षित् जन्म से धर्मराज बड़े प्रसन्न हुए । अब व्यास जी की आज्ञानुसार धर्मराज ने अश्वमेध की विधि से घोड़ा छोड़, दशों दिशाओं के राजाओं को जीत, कर ले राजधर्म पालन के लिये अश्वमेधयज्ञ किया, यज्ञान्त में पात्र ब्राह्मणों को उत्तम दान तथा देश सुधार अर्थ सारा धन लगा दिया 'क्योंकि यज्ञ विधायक ब्राह्मण ग्रन्थों में धर्मराज ने पढ़ रखा था " राष्ट्रं वै अश्वमेधः " देश सुधार ही अश्वमेध है । इस यज्ञ में चारों

मात्र चेष्टा विहीन बच्चों को मरा समझ बाहर दबा दिया जाता है, ऐसी घटना हो परिक्षित् जन्म में होती यदि सर्व विद्या निधान श्रीकृष्ण समय पर सूतिका गृह में न पहुंच जाता ।

ऋग्वेद १० । ९७ । २२ और १० । १३७ । ३-७ में भी ऐसी विद्या का वर्णन पाया जाता है ।

कई कहेंगे कि कृष्ण ने संजीविनी बूटी से परिक्षित् को जीवित कर दिया होगा ? इनके ज्ञानार्थ हम बता देते हैं कि १ संजीविनी, २ विशल्यघ्नी, ३ संमोहनी, ४ सुवर्ण कर्णी आदि बूटियों का प्रयोग जीवन शेष रोगियों पर ही होता है गत प्राण पर नहीं । क्योंकि आयुर्वेद प्रवृत्ति मृतकों के लिये नहीं ।

अमेरिका के ' शिकागो ' आदि नगरों में समय से पूर्व जन्मने वाले बालकों की पालना का अच्छा प्रबन्ध है । १९१५ की प्रदर्शिनी में वहां ऐसे बच्चे दिखाये गये थे जो जन्म समय छोटे चूहे जितने थे पर पालना से पूर्ण दिनों में पैदा हुए हृष्ट पुष्ट बालकों की भान्ति पूर्णांग हो गये ।

वर्णों के नर, नारी, म्लेच्छ, राक्षस, आर्य, अनार्य, आदि सब पधारे थे।

❋ धर्मराज के शासन में प्रजा की दशा ❋

कामंववर्ष पर्जन्यः सर्वकाम दुघा मही।
सिषिचुः स्म व्रजान् गावः पयसोधस्वतीमुदा।४
नद्यः ससुद्राः गिरयः स वनस्पतिवीरूधः।
फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै॥५
नाधयो व्याधयः क्लेशाः दैवभूतात्म हेतवः।
अजात शत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञिकर्हिचित्।६

भागवत स्कंध १ अ० १० श्लोक ४।६

व्यास, नारद, भीष्म, धौम्य आदि के आदेश अनुसार देशवासियों की सम्मति से देश हितार्थ राज्य करते हुए धर्मराज के शासन काल में, वर्षा समय पर पर्याप्त होती थी पृथ्वी सब फलों के देने वाली, गौयें दूध के झरने से भूमि को भी स्निग्ध कर देती थी। सब फल ऋतु २ अनुसार होते थे। नदी समुद्र, पर्वत, वनस्पति, वीरूध औषधें सब अपना २ नियत प्रयोजन सिद्ध करती थी, देश में न कोई शरीर रोग न मानसी रोग न आपस का झगड़ा न विधवा दुःख न बुढापे का क्लेश विद्यमान था सारा देश शान्त था।

१५ वर्ष का शुभ काल

इस प्रकार सब काम धर्मानुसार पूर्ण शासन करते तथा महाराजा धृतराष्ट्र, माता गांधारी, देवीकुन्ती का पूजन, भीम अर्जुन नकुल सहदेव द्रौपदी को पुराने कष्टों को भुलाने तथा विश्राम देने के लिये सुख देते २ धर्मराज को पूरे पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो गये । धर्मराज के साधु व्यवहार का ही यह फल था कि सर्वनाश होने पर धृतराष्ट्र गांधारी सकुशल हस्तिना-पुर रहे ।

राजा रानी का वानप्रस्थ

१५ वर्ष के पीछे एक दिन राजा धृतराष्ट्र ने रानी गांधारी सहित धर्मराज से कहा हम ने अनेक बुरे कर्म किये हैं उन के लिये यद्यपि यहां व्रतो-पवास किये हैं तथापि अब हमारी शास्त्र विधि अनुसार वन में तप तपने की इच्छा है आप अपनी प्रसन्नता से आज्ञा देदें ताकि हम आर्य क्षत्रिय जीवन को सफल करलें यह सुन धर्म-राज का हृदय दुःख से भर आया उन्होंने सोचा राजा रानी कहीं हमारी प्रतिकूलता से राजधानी छोड़ रहे हैं, इस लिये उन्होंने विनय की रीति से कहा-'पिता जी तथा माता गांधारी जी यदि आप को कोई हमारे शासन से कष्ट हुआ हो तो क्षमा करें, हम राज्य नहीं चाहते, राज्य आप के पुत्र युयुत्सु को सौंप देते हैं, कृपा कर आप यहां ही रहिये कष्टमय वन में न जाइये । पर राजा रानी के आग्रह और व्यास जी के अनुमोदन से धर्मराज ने जाने की सम्मति देदी । धर्मराज की सलाह से धृतराष्ट्र ने देशवासियों से अपने और अपने पुत्रादि के किये अपराधों की क्षमा मांग राजा प्रजा के धार्मिक नाते से वान-

प्रस्थ की आज्ञा मांगी, और सन्तोष वृत्त के तौर पर कहा धर्मराज आप का उत्तम प्रकार से पालन करेंगे। गांधारी और मैं पुत्र हीन, नेत्र हीन (अंध) बल हीन (वृद्ध) आप की सम्मति से बन जाते हैं। यह सुन देशवासियों का हृदय स्नेह भर आया उन्हों ने कहा आपने देश काल अनुसार राष्ट्र का बहुत हित किया, अपने मन के विचारों को ग्लानि रहित कर शुद्ध संकल्प से वन में जा परमश्रेय लाभ कीजिये।

धर्मराज का औदार्य — चलते समय धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण तथा कौरवों के नाम पर कुछ दान करना चाहा उस के लिये धर्मराज ने अमित धन और रत्न जवाहिरात लाकर दे दिये, जिसे पात्रों में दान कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और इस उदारभाव के लिये प्रजा में अपने धर्मराज की भी कीर्ति हुई। भारतीय नवयुवको! क्या तुम ने कभी यह दृश्य चिन्तन भी किया है कि तुम्हारा पूर्वज जिस के हाथों भाई पुत्र माता स्त्री सहित सौ वर्ष तक नित्य कष्ट पाता रहा, जिस ने इस के अधिकार छीने छल से बन्धुवा किया, अग्नि भवन में जलाने तक का दुःसाहस किया उस वध योग्य शत्रु वो शत्रु शेष कुपुरुष को पिता समान, गुरु समान, राजा समान, अपने पूर्ण अधिकार समय में पालता पूजता वा सेवा से सन्तुष्ट रखता है। क्या आपने कभी तुलना की कि हम तो पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से प्रभावित हो थोड़ा सा भी बल, धन, पा लेने पर अपने जनक, पालक, शिक्षक, रक्षक, पिता तथा परम दुःखों को सह कर हमें सुखी बनाने वाली माता जननी को बीवी के इशारे से बूटों से ठुकरा देते हैं। वा गोली से उन

के शुद्ध दयादि हृदय को प्रति दिन छलनी करते रहते हैं। चेत् हम में भी आर्य गुण आजाय।

कुन्ती का दैवी कर्म } धृतराष्ट्र के साथ विदुर और संजय जी सेवा वा तप अर्थ तयार हो गये और गांधारी की सेवा वा तप निमित्त माता कुन्ती ने भी इनके साथ ही वन जाने का विचार किया। यह सुन धर्मराज आदि को बड़ा खेद हुआ उन्हों ने माता को वन से वर्जित करते हुए कहा माता! तेरे कहने से इतना युद्ध हुआ, तैने इतनी आयु तक नाना कष्ट सहे अब जब राज्य प्राप्त कर हम तेरी सेवा के योग्य हुए हैं तो तुम बन जाती हो। इस से तो यही अच्छा था तू हमें युद्ध का उपदेश ही न करती, हम कौरवों से सुलह कर लेते। माता ने कहा पुत्र! मैंने तुम्हें इसलिये युद्धार्थ नहीं प्रोत्साहित किया था कि मैं राज्य सुख भोगूं किन्तु इस लिये किया था कि मेरे पुत्र क्षत्रिय हो कर अधिकार खोकर राज्य हीन हो शूद्रों वा दासों की भान्ति दूसरों के मुख वा हाथ की ओर देख कर निन्दनीय जीवन यात्रा को स्वीकार करने वाले न हों। किन्तु अधिकार और बल से अत्याचारियों को दंड साधुओं को वृत्ति देकर अपने पिता माता का नाम और अपना लोक परलोक सुधार संसार में अक्षय कीर्ति फैला जावें।

नाहं राज्यफलं पुत्राः कामये पुत्रनिर्जितम्।
पतिलोकानहं पुण्यान् कामये तपसा विभो॥

पुत्रो! मैं पुत्रों के राज्य फल की चाह नहीं करती हूं, मुझे तप से पतिलोक प्राप्ति की इच्छा है। अतः मैं गान्धारी

की सेवा वा तपोनुष्ठान से शीघ्र ही सतियों के प्राप्तव्य पति-लोक को प्राप्त हूंगी । इस निश्चय के अनुसार तीन पुरुष दो देवियें नगर त्याग बनवासी हुए। देवियो तुमने भी कभी सास वा जेठानी की सेवा का पुण्य का विचार किया है ।

माता के बन में दर्शन } आर्य शास्त्रों में माता के उपकार वा गुणों की बड़ी महिमा है, और कुन्ती माता तो दैवी गुणों की खान थी, पांडवो के दिव्य गुण उसी देवी का प्रसाद् थे । इन गुणों का धर्मराज नित्य स्मरण करते रहते थे इसी लिये माता के वियोग में उन्हें राज काज में भी मिठास प्रतीत न होता था, बहुत दिन गुजरने पर भी वह मातृ वियोग दुःख को भुला न सके । इसी अवस्था में उन्हों ने राज काज भार धौम्य पुरोहित और भाई युयुत्सु को सम्भाल आप सब परिवार सहित गंगा के तट पर शतयूप नामक ऋषि आश्रम में (जहां वे सब वनी ठहरे थे) गये । और एक मास तक वहां बनवासी व्रत से रहे । इन्हीं दिनों विदुर जी ने धर्मराज को कुछ योगबल देकर योग रीति से अपना भौतिक शरीर त्याग किया ।

माता का अन्त्येष्टि संस्कार } बन में जाने के लगभग तीन वर्ष बाद धृत-राष्ट्र गांधारी और कुन्ती का तप से कृश जरा से जीर्ण शरीर यज्ञाग्नि से प्रदीप्त पर्णकुटी की तीक्ष्ण ज्वाला से दैवी संस्कार की तरह भस्म हो गये । और जब नारद द्वारा धर्मराज आदि पुरुष और द्रौपदी आदि स्त्रियों ने सुना बहुत क्लेश हुआ । धर्मराज तो अपने सहजस्नेह भाव से

कई दिन व्याकुल रहे। कठिनता से शोक संभाल उनकी *ऊर्ध्व देह क्रिया की अब तक युद्ध को १८ वर्ष हो चुके थे।

धर्मराज का महा प्रस्थान } भारतयुद्ध के ३६ वर्ष बाद पुत्रवत् प्रजा पालन कर वानप्रस्थ लेने के विचार से धर्मराज ने देश की इच्छा से धृतराष्ट्र के धर्मात्मा पुत्र युयुत्सु को राज्य सम्भाल तथा अर्जुन के पौत्र अभिमन्यु पुत्र परिक्षित को युवराज बना स्वयं कुल मर्यादा वा वेद की आज्ञानुसार अपनी १५० वर्ष की आयु में चारों भाइयों और यज्ञसेन की पुत्री द्रौपदी सहित महा प्रस्थान ले लिया अर्थात् ऋषि सेवित हिमालय पर्वत की ओर चले गये उस समय बहुत से प्रजावासी साथ जाना चाहते थे पर उन्हों ने सब को लौटा दिया। केवल उन की बलि से पला हुआ एक कुत्ता अन्त तक साथ गया †।

धर्मराज का आकार } धर्मराज का आकार सब भाइयों से लंबा था और सब पांडव लोगों से प्रादेश (८ इञ्च) मात्र ऊंचे उन दिनों धनुष १२ हाथ का होता था और वह प्रायः मनुष्य की कर्णकोटि तक आता था इस से अनुमान है धर्मराज का शरीर १२ हाथ वा १२ फुट लंबा जरूर था ‡।

---

* भारतीय काल में ऊर्ध्वदेह क्रिया से उन के स्मारक बनाना अभिप्रेत था पौराणिक पिंड विधान वा अस्थि संचय तब न होते थे। देखो, स्त्री पर्व प्रेतदाह प्रकरण।

---

† विशेष परिशिष्ट भाग में देखो।

‡ शरीरों की ऊंचाई भारत में अन्न, दुग्ध, घृत की कमी

क्योंकि कहीं २ हाथ छोटे भी होते थे। अर्थात् हाथ पुरुष का हस्त नहीं किन्तु एक माप का नाम था। और आप की खड्ग कम से कम * ४० सेर की सोने के मुट्ठे की तथा व्याघ्रचर्म के म्यान में रहती थी ढाल भी पुरुष आकार समान थी जो शत्रु आक्रमण को शिर से पाऊं तक रोकती थी। तलवार को दूसरे शस्त्रों के समान ही प्यारा समझते थे।

कमी बाल विवाह वा पराधीनता से घट कर प्रायः ५ फुट तक रह गई है। पर वर्तमान देह की ऊंचाई भारत के नाम बंधी हुई नहीं। अब भी जहां उपरोक्त बाधायें नहीं ६॥ फुट पुरुष स्त्री की ऊंचाई पाई जाती है। फीरोजपुर जिला में अनेक पुरुषों की ६। ३ वा ६। ५ तक अब भी पाई जाती है।

पिछली अठारवीं सदी में राजपूताने के बच्चे ७ सात२ फुट ऊंचे थे। टाडसाहब लिखते हैं देवगढ़ के राजकुमार २२ वर्ष की उमर में ७ सात फुट लंबे और तदनुसार सुडौल वा बलवान् थे।

भारत में प्रायः पुरुषों का आकार शाल वृक्ष के समान लंबा लिखा है। इस लिये १२ फुट आज से ५ हजार वर्ष पहले शरीर होना असम्भव नहीं।

* ७१३ ई० में बाप्पारावल ३२ सेर की तलवार रखते थे, और ५०० हाथ लंबे कपड़े के वस्त्र पहनते थे देखो टाड हिन्दी। ईसा की दशवीं सदी में यात्रा करने वाला अलबेरूनी लिखता है कि तब भारत में व्याघ्राचार्य कृत कृपान शास्त्र [तलवार सर] विद्यमान था। अलबेरूनी भारत हिन्दी १ भाग

धर्मराज का खानपान } क्षत्रिय प्रवर होने पर भी आप का खान पान पौष्टिक तथा सात्विक था आप मद्य-पान * वा मांसाशन के विरोधी थे इसी लिये आप के और आप के बड़ों के राज्य में मदिरा की कोई दुकान न थी इसी लिये राज्य के आय विभाग में मदिरा का कोई कर वा आय न था।

---

* कई लोग कहेंगे कि कौरव पूरे मद्यप थे उन के संगी पांडव भी मद्यप होंगे हम ऐसे लोगों के भ्रम निवारणार्थ यादवों की मदिरा सम्बन्ध में स्थिति उद्धृत करते हैं।

अघोषयंश्च नगरे वचनादाहुकस्यते ।
जनार्दनस्य रामस्य बभ्रोश्चैवं महात्मनः ॥ मौसल १।२८
अद्य प्रभृति सर्वेषु वृष्ण्यन्धक कुलेष्विह ।
सुरासवो न कर्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः ॥ २९
यश्चनो विदितं कुर्यात्पेयं कश्चिन्नरः क्वचित् ॥३०॥
जीवन स शूलमारोहेत्स्वयं कृत्वा सबांधवः ।
ततो राजभयात्सर्वे नियमंचाक्रिरेतदा ॥ ३१ ॥

अर्थात् यादवों के प्रत्येक वंश में आहुक, कृष्ण, बलभद्र और महात्मा बभ्र की आज्ञा से मद्य पीने वाले को सपरिवार प्राणदंड मिलता था। और इस राजनियम को सब पालन करते थे।

अभिमन्यु वध पर किये सुभद्रा विलाप से स्पष्ट है कि व्यभिचार आदि कुकर्मों की तरह मांस तथा मद्यपान को उस समय भी नर्कदायक अपयश का कारण माना जाता था॥द्रो०७८।१५

कुटकल वृत्तान्त } धर्मराज के हुए चाहे ५ हजार वर्ष हो चुके हैं पर आपके गुणों की याद प्रत्येक भारतीय को वर्तमान के महा पुरुष की भान्ति नूतन ही रहती है। भारत के प्रत्येक विभाग में धर्मराज के चिन्ह भी पाये जाते हैं। कुरुक्षेत्र में पांडवों का मूर्ति पञ्चक एक ही भवन में है। मटन काश्मीर राज्य में एक पांडुकीलढ नाम से संसार प्रसिद्ध मंदिर है उस की ऊंचाई * २५० फुट ऊपर थी यह सूर्योदय

यवन वा कृष्टान लोगों से पहले काल तक इस युग में मद्यपान वा मद्य विक्रय न था। प्रख्यात चीनी यात्री फाहियान ईसा की ४ थी सदी में भारतवर्ष पर लिखता है, यहां कोई मदिरा नहीं पीता। मदिरा की दुकाने भी नहीं हैं।

मेगस्थनी भारतीय पुरुषों के सम्बन्ध में लिखता है, वे यज्ञ करते हैं, कभी शराब नहीं पीते।

* कई लोग २५० फुट ऊंचे मंदिर की बात सुन विस्मित होंगे उन्हें मालूम रहे कि भारत में इतने ऊंचे मंदिर थे कि विदेशी देख कर हैरान हो जाते है। डाकटर फर्ग्यूसन रामेश्वर के मंदिर की बाबत लिखता है इस के ७०० फुट ऊंचे तक नक्काशी और चित्रकारी है। योरुप में इतना ऊंचा कोई मकान नहीं। हमारे कोई २ गिरजे ५०० फुट ऊंचे हैं और सेंटपीटर के गिर्जे द्वार से लेकर पूजास्थान तक केवल ६०० फिट ऊंचा है। यहां बगल के लंबे दालान ७०० फिट ऊंचे हैं। यहां हमें ४००० फिट तक लंबे दालान भी मिलते हैं। जिन के दोनों ओर कड़े पत्थरों पर नक्काशी की गई है। सत्याग्रह और असहयोग पृ० १०१

पर इतना चमकता था कि इस की दूसरी ओर के पुरुष इसको सूर्य ही समझते थे, इस के तेज से दो सूर्य प्रतीत हुआ करते थे। कदाचित् इसी लिये इस का नाम सूर्य मंदिर पड़ा इसे एक मुसलमान बादशाह ने शरह के बरखिलाफ समझ गिरा दिया। कहते हैं यह दृढ़तर पत्थरों से बनने के कारण छः महीने अखंड आग जलाने से गिरा था। अब भी इस की ऊंचाई बहुत है। हम ने गत काश्मीर यात्रा में इसे स्वयं देखा है।

स्मरण रहे ऐसे ऊंचे भवनों की रचना समय विविध यत्न वर्ते जाते थे जिन की यहां कमी न थी।

भीष्म उपदेश।

श्रीकृष्ण जाग्रण, वा उनका स्नान संध्या, अग्निहोत्र, तथा राजा सम्बोधन।

याममात्रा वशेषायां यामिन्यां प्रत्यबुध्यत।
अवलोक्य ततः पश्चात् दध्यौ ब्रह्म सनातनम्॥

शां० ५३। १। २

ततः उत्थायदाशार्हः स्नातः प्रांजलिरच्युतः।
जप्त्वागुह्यं महाबाहु रग्नीनाश्रित्य तस्थिवान्॥

५३। ७

उपदेश ग्रहण के दिन युधिष्ठिर की राजधानी में सुख पूर्वक निद्रा लेने के पीछे पहर रात्रि रहने पर श्रीकृष्ण जगे, तथा प्रातः स्मरणीय मन्त्रों से सनातन ब्रह्म का ध्यान कर, उन्होंने स्नान किया फिर सप्रणव गायत्री का जाप वा संध्या कर नित्य का होम किया। नित्यकर्मों के पश्चात् धर्म पुत्र को बुलाने के लिये सात्यकि को भेजा।

इन्द्रप्रस्थ से कुरुक्षेत्र गमन। } अपने दिव्य रथों में बैठ श्रीकृष्ण तथा पांडव इन्द्रप्रस्थ से चलकर थोड़े ही काल में कुरुक्षेत्र के उस पुण्य भाग में पहुंच गये जहां कुरुवंश का वृद्ध विद्वान्, उपदेशक बाल ब्रह्मचारी सहस्रों स्त्री पुरुषों ऋषि मुनियों से परिवृत भीष्म पितामह शर शय्या पर मृत्यु संयम का दृश्य दिखा रहा था॥

नारद का उद्बोधन । } सब युद्ध शेष राजाओं और महात्माओं के जुड़ जाने पर भीष्म महाराज के काल को निकटतर समझ देवर्षि 'नारद' ने कहा राजगण ! यह धर्म और विद्या का भानु आकाशगामी भानु (सूर्य) की भान्ति शीघ्र अस्त होने वाला है, अब समय है कि आप लोग धर्म के प्रश्नों को पूछ अपने २ मन के संशयों को दूर करो, जिससे उत्तर काल में सुख वृद्धि हो । नारद के उद्बोधन से सब राजा लोग आगे बढ़े पर देवव्रत के तेज से किसी को प्रश्न करने की समर्थ न हुई सब आपस में एक दूसरे को देखने लग गये ।

कृष्ण की उक्ति-प्रत्युक्ति । } सबको अवाक् देख धर्मपुत्र ने हृषीकेश को कहा—देवकीनन्दन ! आपके बिना दूसरा कोई भीष्म जी से प्रश्न नहीं कर सकता अतः आपही हमारे लिये धर्मज्ञान पूछिये क्योंकि आप सब धर्मों को जानते हैं ।

धर्मराज का वचन सुन कृष्ण ने कहा—राज सत्तम ! आपने रात्रि तो सुख से बिताई ? तथा आपकी बुद्धि और इन्द्रिय स्वस्थ हैं ? शरीर पर लगे असंख्य व्रणों से आपका हृदय तथा मन व्याकुल तो नहीं ? तथा हे अनघ ! आपकी वाणी धर्म के प्रश्नोत्तर में प्रवृत्त हो सकती है ? कृष्ण के कुशल प्रश्न तथा अभिप्राय को जान वृद्ध वीर ने कहा आपके दर्शन आदि से मेरा सारा श्रम मोह क्लेश तथा खेद दूर हो गया है, मेरा मन और वाणी अपनी क्रिया में कुशल है पर हे अच्युत ! आप ही इन लोगों के प्रश्नों के उत्तर में धर्म का व्याख्यान कर उसके भेदों को क्यों नहीं वर्णन कर देते ?

भवान् हि वयसा वृद्धः श्रुताचार समन्वितः ।
कुशलो राजधर्माणां सर्वेषामपराश्च ये ॥

शां० ५४ । ३४

जन्मप्रभृति ते कश्चिद् वृजिनं न ददर्श ह ।
ज्ञातारं सर्वधर्माणां त्वां विदुः सर्व पार्थिवाः ।३५
तेभ्यः पितेव पुत्रेभ्यो राजन् ब्रूहि परं नयम् ।
ऋषयश्चैव देवाश्च त्वया नित्यमुपासिताः ॥३६॥

इसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा कुरुवृद्ध ! आप आयु में वृद्ध और श्रुताचार में प्रसिद्ध है राजधर्म और इतर धर्मों को भली भान्ति जानते हैं जीवन भर में आपको कभी किसी पाप ने स्पर्श नहीं किया सब राजा लोग आपकी उपासना कर रहे हैं आप इन्हें पुत्रो के समान नीति शास्त्र का संदेश दीजिये आपने अनेकों ऋषि तथा देवताओं की निरन्तर उपासना की है ।

संम्बन्धीनातिथीन्भृत्यान्सं श्रितांश्चैवयोभृशम् ।
संमानयति सत्कृत्य स मां पृच्छतु पांडवः ।५५।६
सत्यं दानं तपः शौर्यं शान्तिदीक्ष्यमसं भ्रमः ।
यस्मिन्नेतानि सर्वाणि स मां पृच्छतु पांडवः ।७।
योनकामान्नसंरंभान्न भयान्नार्थ कारणात् ।

कुर्यादधर्मं धर्मात्मा स मां पृच्छतु पांडवः ।८।
सत्यनित्यः क्षमानित्यो ज्ञाननित्योऽतिथि प्रियः ।
योददाति सतां नित्यं स मां पृच्छतु पांडवः ।९।
इज्याध्ययन नित्यश्च धर्मे च निरतः सदा ।
युधिष्ठिरस्तुधर्मात्मा मां धर्मा ननु पृच्छतु ।१०।

श्रीकृष्ण के उत्तर में भीष्म जी ने कहा! यदि मैंने ही कहना है तो धर्मात्मा युधिष्ठिर मुझ से धर्मों को पूछे! जो युधिष्ठिर सम्बन्धी अतिथि आश्रित तथा भृत्यों को योग्य सत्कार पूर्वक मान देता है। तथा जिस में *सत्य दान तप शूरता शान्ति चतुराई विवेक नित्य रहते हैं, और जो काम क्रोध लोभ भय से भी †अधर्म नहीं करता, और जो सदा ‡सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, क्षमावान् दाता तथा नित्य यज्ञ अध्ययन और धर्मानुष्ठान को करता है वह पांडु पुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर मुझ से धर्म प्रश्नों को पूछे!

राजा लज्जा और शाप भय से नहीं पूछता ।

भीष्म देव के उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा महाराज! धर्मात्मा युधिष्ठिर भाई बन्धुओं के वध से लज्जित हुया तथा गुरु जनों के वध रूप पाप से भयभीत हुया आपके शाप से

---

* भीष्म के इन वचनों तथा शान्ति पर्व ४५ । २० "न च धर्मच्युताः वयम्" के उद्गारों से स्पष्ट है कि धर्मपुत्र ने द्रोणवध प्रसंग में भी झूठ नहीं बोला ।

डरा हुआ आपके निकट होकर प्रश्न नहीं करता । यह सुन भीष्म बोले—

युद्ध में मारना पाप नहीं ।

ब्राह्मणानां यथा धर्मो दान मध्ययनं तपः ।
क्षत्रियाणां तथा कृष्ण समरे देहपातनम् ॥
शां० ५५ । १४

पितॄन्पितामहान् भ्रातॄन् गुरुन्संबंधिबांधवान् ।
मिथ्या प्रवृत्तान् य संख्ये निहन्याद्धर्म एवसः ।१५
समय त्यागिनो लुब्धान्गुरु नपि च केशव ।
निहन्ति समरे पापान् क्षत्रियो य सः धर्मवित् ।१६
यो लोभान्न समीक्षेत धर्मसेतुं सनातनम् ।
निहन्तियस्तं समरे क्षत्रियो वै स धर्मवित् ।१७।
लोहितोदी केशतृणां गजशैलां ध्वजद्रुमाम् ।
महीं करोति युद्धेषु क्षत्रियो यः सः धर्मवित् ।१८
आहूतेन रणे नित्यं योद्धव्यं क्षत्र बन्धुना ।
धर्म्यं स्वर्ग्यं च लोक्यञ्च युद्धंहि मनुरब्रवीत् ।१९

श्रीकृष्ण जी ! युद्ध में लड़ते हुओं का मारना पाप नहीं

किन्तु जिस प्रकार दान अध्ययन तप ब्राह्मणों का धर्म है इसी प्रकार युद्ध में प्रति द्विन्द्वियों को गिराना धर्म है। पिता पितामह भ्राता गुरु आदि सम्बन्धियों का यदि मिथ्या प्रवृत्ति में हो तो मार देना धर्म ही है। केशव ! समयत्यागी लोभी गुरु को भी यदि कोई क्षत्रिय मारता है तो वह धर्मवेत्ता है। शास्त्र में लोभ वश सनातन मर्यादा तोड़ने वाले का वध करना धर्म है। धर्मपुत्र को इस युद्ध से लज्जित न होना चाहिये क्योंकि वे क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय धर्मवेत्ता वही है जो पृथ्वी को रुधिर रूपी जल से नरकेश रूपी तृणों से हस्तियों के पहाड़ों से रथ ध्वजों के द्रुमों से परिपूर्ण कर दे। और ललकारे जाने पर युद्ध करना तो क्षत्रिय के लिये धर्म स्वर्ग और लोक कीर्ति बढ़ाने वाला *मनु जी ने भी लिखा है।

धर्मपुत्र का विनय। — भीष्म जी से आश्वासन पाकर धर्मपुत्र विनीत पुरुष की भान्ति भीष्म की ओर बढ़े, और उन के चरणों को पकड़कर पाद प्रणाम किया, और भीष्म ने भी धर्मपुत्र को अभिनन्दन करते हुये इनका शिर †सूंघ कर बैठने के लिये प्रेम से कहा और इसके बैठ जाने पर भीष्म ने कहा कुरु श्रेष्ठ ! किसी प्रकार का भय मत करो निर्भय होकर धर्म प्रश्नों को पूछो।

धर्मपुत्र के प्रश्न। — इस प्रकार प्रेम से मिलन के पीछे धर्मपुत्र ने केशव भीष्म और इतर गुरु जनों को प्रणाम

---

* मनु अ० ७ श्लो० ८७–८६।

† शिर सूंघने की आर्यों की प्रीतिवर्धक पुरानी परिपाटी है। दे० सं० वि० पृ० ६१।

सत्कार के पीछे प्रश्न किया कि पितामह! राजाओं का धर्म महाधर्म धर्मवेत्ताओं ने कहा है और अब इस भारे धर्म का पालन भार मुझ पर रखा गया है, और राजधर्म सर्व लोकों का प्राण है इससे धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष भी परंपरया प्राप्त होते हैं, राजधर्म से जगत् का अज्ञान दूर होता है जैसे सूर्य से अन्धकार दूर होता है, राजधर्म संसार को नियमन करने वाला है जैसे अश्व को रश्मि और हस्ती को अंकुश नियमन करते हैं अतः सब से प्रथम आप राजधर्म का ही मुझे उपदेश दीजिये।

नहि सत्यादृते किंचिद्राज्ञां वैसिद्धिकारकम्।
सत्येहि राजानिरतः प्रेत्यचेह च नन्दति।५६।१७

सत्य से बिना राजाओं को सिद्धि करने वाला कोई नहीं सत्यरत राजा लोक परलोक में प्रसन्न रहता है। राजा को न नर्म न गर्म रहना चाहिये मध्यमरूप में रहे क्योंकि नर्म का लोक निरादर कर देते हैं और गर्म से डरते रहते हैं।

छः प्रकार के दुर्गों (मरु, जल, पृथ्वी, वन, पर्वत, नरमय) में से नरमय दुर्ग को उत्तम समझ चार वर्ण के पुरुषों को राजा अपने लोक हितकारी कर्मों से प्रसन्न रखे। सब प्रकार के व्यसनों से राजा बचा रहे क्योंकि व्यसन व्यसनी को नष्ट कर देते हैं।

यथाहि गर्भिणी हित्वा स्वंप्रियं मनसोऽनुगम्।
गर्भस्य हित माधत्ते, तथा राज्ञा प्यसंशयम्॥
स्वं प्रियं तु परित्यज्य यद्यल्लोक हितं भवेत्।

न संत्याज्यं च ते धैर्यं कदाचिदपि पांडव ।४६।

राजा को गर्भिणी के समान व्रत रखना चाहिये, जिस प्रकार गर्भिणी अपना हित त्याग गर्भ का हित करती है इसी प्रकार अपना हित त्याग राजा को सदा प्रजाहित करना चाहिये। और कभी भी धैर्य का त्याग नहीं करना चाहिये। राजा को अपने भृत्यों से बहुत हंसी नहीं करनी चाहिये इस से भृत्य लोग स्वामी का अपमान करने लग जाते हैं, और उस के कहे में विकल्प वा विरोध करने लग जाते हैं, गुह्य बातें प्रगट कर देते हैं न मांगने वाली वस्तु मांगने लग जाते हैं, भोजन को हर लेते हैं। रिश्वत वा कठोर वचनों से प्रजा को तंग कर देते हैं, अन्तःपुर की दासियों से अयुक्त व्यवहार करने लग जाते हैं तथा इसके साम्हने निरादरकारी चेष्टा और मर्यादा नाशक कर्म करने लग जाते हैं। वृत्ति से प्रसन्न नहीं होते, उसके साथ क्रीडा करना चाहते हैं लोगों को यह कर कि "राजा हमारा प्रेमी है" कई प्रकार के अनिष्ट भाव फैला देते हैं।

प्रशस्यते न राजाहि नारी वोद्यम वर्जितः ।५७।१

राजा सदा आलस्य त्याग उद्यम में लगा रहे उद्यम हीन स्त्री की तरह राजा भी प्रशंसा नहीं पासकता।

उशना का मत } भीष्म ने कहा धर्मराज! मैं राजधर्म पर उशना (शुक्राचार्य) का मत सुनाता हुं जिससे तेरे शासन में सहायता मिले।

सप्तांगस्य च राज्यस्य विपरीतं य आचरेत् ।
गुरुर्वायदिवामित्रं प्रतिहंतव्य एवसः ।५७।५
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्य मजानतः ।
उत्पथं प्रति पन्नस्य दंडोभवति शाश्वतः ।७।

सप्तांग राज्य (१ स्वामी २ अमात्य ३ सुहृत् ४ कोश ५ राष्ट्र ६ दुर्ग ७ बल) के जो उलट आचार करे वह गुरू हो वा मित्र दंड योग्य ही है। कर्तव्या कर्तव्य विवेक हीन गुरु भी यदि उलट रास्ते पर जारहा हो उसे दंड देना ही धर्म है।

प्रजार्थ पुत्रत्याग ।

बाहोः पुत्रेणराज्ञा च सगरेण च धीमता ।
असमंजाः सुतोज्येष्ट स्त्यक्तः परिहितैषिणा ।८
असमंजाः सरय्वां स पौराणां बालकान्नृप ।
न्यमज्जयदतः पित्रा निर्भत्स्य स विवासितः ।९
ऋषिणोद्दालकेनापि श्वेतकेतुर्महातपाः ।
मिथ्याविप्रानुपचरन्संत्यक्तो दयितः सुतः ।१०
लोकरंजन मेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः ।
सत्यस्यरक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम् ।११।
नहिंस्यात्परवित्तानि देयंकाले च दापयेत् ।१२।

वृजिनं च नरेन्द्राणां नान्यद्वारक्षणात् परम् ।१४

पांडु नंदन ! पुराने आर्य राजा लोक रञ्जन के लिये पुत्रों तक को छोड दिया करते थे। महाराजा सगर ने नागरिक लोगों के हित के लिये अपने बड़े पुत्र को और उद्दालक ऋषि ने महातपी प्रिय पुत्र श्वेतकेतु को ब्राह्मणों के प्रतिकूल होने से त्याग दिया था। सत्य की रक्षा व्यवहार की सरलता राजा का धर्म है। राजा पराये धन को कभी न ले, देने वाले पदार्थों को देता रहे। तथा प्रजा की रक्षा को मुख्य समझे, क्योंकि राजा के लिये देश की रक्षा न करने से बड़ा पाप कोई नहीं है।

साधारण शिक्षायें — राजा झटपट किसी पर विश्वास न करे और न ही अविश्वासी हो शुद्धमन प्रसन्नमुख सत्य-वाक् जितेन्द्रिय और जितनिद्रा हो। सत पुरुषों के धन को कभी न हरे आवश्यकता हो तो असतों के धन से देश कार्य करे, क्रोधी ईर्ष्यक कर्कश न हो। लालची न हो वृद्धों की संगति में रहे अपने सहायक मंडल में शूरवीर, भक्त, नीरोग, कुलीन, दृढ़ विचार मानकर्ता मानप्रेमी सज्जन तथा सज्जनों के सम्बन्धि, विद्वान् लोक परलोक वित् साधु धर्मात्मा अचल स्वभाव पुरुषों को सन्मान से रखे।

तैश्चतुल्यो भवेद्भोगैश्छत्रमात्राज्ञयाधिकः ।
प्रत्यक्षा च परोक्षा च वृत्तिश्चास्य भवेत्समा ॥

राज्य सहायकों का खान पान वसनच्छादन राजा के तुल्य हो केवल छत्र (राजा का चिन्ह) और आज्ञा-आदेश-दान ही अधिक हो।

पुत्रा इव पितुर्गेहे विषये यस्य मानवाः ।
निर्भया विचरिष्यन्ति स राजा राजसत्तमः ॥
अगूढ विभवा यस्य पौर राष्ट्र निवासिनः ।
नयापनयवेत्तारः स राजा राजसत्तमः ॥३४॥
स्वकर्म निरताः यस्य जनाः विषयवासिनः ।
असंघातरता दाता पाल्यमाना यथाविधि ।३५।
न यस्य कूटं कपटं न माया न च मत्सरः ।
विषये भूमि पालस्य तस्यधर्मः सनातनः ।३७।
राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम् ।
राजन्य सति लोकस्य कुतो भार्या कुतो धनम् ॥
तद्राज्ये राज्यकामानां नान्यो धर्मः सनातनः ।
ऋते रक्षांतुविस्पष्टां रक्षा लोकस्य धारिणी ।४२।

राजन् जिसके राज्य में देशवासी पिता गृह में पुत्रों की भान्ति निर्भय विचरें, धनी लोग अपना धन बिना छुपाये लिये फिरें, सब लोग नीति अनीति को जानें और अपने २ कर्म में रत हों तथा जिसके राज्य में छल कपट माया जाल कुछ न हो वह उत्तम राजा है। तथा जिस राज्य में सब लोग धन दारा से भी राजा को ज्यादा चाहें तथा जिसमें राज्याधिकारी मुख्य काम प्रजा रक्षण मानें वह राजा उत्तम राजा है।

नीतिज्ञों का मत } धर्मपुत्र भगवान् विशालाक्ष, महातपी काव्य, सहस्राक्षमहेन्द्र, प्राचेतसमनु, भगवान् भारद्वाज, गौरशिरामुनि, बृहस्पति आदि राजशास्त्र प्रणेताओं ने प्रजा रक्षण को ही राजधर्म का प्रधान अंग माना है।

उत्थानेनामृतं लब्ध मुत्थानेनासुराहताः।
उत्थानेनमहेंद्रेणश्रैष्ठ्यं प्राप्तं दिवीह च।५८।१४।
न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोपि बलीयसा।
अल्पोपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च।१७।
राज्यं हि सुमहत्तंत्रं धार्यतेनाकृतात्माभिः।
न शक्यं मृदुना वोढुमाया संस्थानमुत्तमम्।२१।

धर्मराज! राजा को उद्यम से रहना चाहिये क्योंकि देवताओं ने उद्यम से ही अमृत प्राप्त किया था, उद्यम से असुर मारे उद्यम से महेन्द्र ने सब जगह श्रेष्ठता प्राप्त की है। शत्रु दुर्बल भी हो उसकी अवज्ञा नहीं करनी, शत्रु स्वल्प भी अग्नि समान दाहक होता है।

राज्य भार बहुत गुरु है इसे अकृतात्मा पुरुष नहीं उठा सकते नहीं मृदुस्वभाव से अनायास यह उठाया जासकता है, अतः प्रयास, तेज, और उत्तम साथियों से इसे उठाना चाहिये॥

इस दिन संध्या होने के कारण धर्मराज ने शेष प्रश्न अगले दिन करने को कहा। और उपदेश की उत्तमता में वेद-

व्यास, देवस्थान, अश्म, वासुदेव, कृपाचार्य सात्यकि संजय ने धर्म भृतों में श्रेष्ठ भीष्म की स्तुति की । और सब लोग संध्यादि के लिये चले गये ।

(दूसरे दिन)

ततो द्विजातीनाभिवाद्य केशवः कृपश्चतेचैव युधिष्ठिरादयः । ५८ । २९

उपास्य संध्यां विधिवत्परंतपा स्ततः पुरंते विविशुर्गजाह्वयम् ॥ ५८ । ३०

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर आदि ने प्रातः संध्यादि कर्मकर, पितामह से कुशल प्रश्न पूछ नीति का उपदेश पूछा—तब भीष्म ने कहा—

न जरा न च दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा ।
सरीसृपेभ्यः स्तेनेभ्यो न चान्योन्यात्कदाचन ॥
भयमुत्पद्यते तत्र तस्य राज्ञोऽभिरक्षणात् । १२२
रञ्जिताश्चप्रजा सर्वास्तेन राजेति शब्यते ।१२५

धर्मपुत्र ! उत्तम राज शब्द का अधिकारी वह है जिससे प्रजा सब प्रसन्न रहे और जिसके राज्य में जरा, दुर्भिक्ष, मानसी चिन्ता, शरीर भय, सिंह सर्प का भय तथा आपस के कलह का भय भी न रहे ।

धर्म और यज्ञ विधान } धर्मराज ने कहा पितामह कौनसे धर्म हैं जिन से राजा राष्ट्र तथा देशवासी बढ़ते हैं ?

अक्रोधः सत्यवचनं संविभागः क्षमातथा ।
प्रजनः स्वेषुदारेषु, शौच मद्रोह एव च । ६०।७
आर्जवं भृत्यभरणं नवैते सार्ववर्णिकाः । ८ ।
प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददौ पशून् ।२३।
ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ।२४।
प्रजापतिर्हि वर्णानांदासं शूद्र मकल्पयत् ।२८।
स्तेनो वा यदि वा पापो यदि वा पाप कृत्तमः ।
यष्टु मिच्छाति यज्ञं यः साधुमेव वदन्तितम् ।५२।
ऋषयस्तं प्रशंसांति साधु चैतद संशयम् ।
सर्वथा सर्वदा वर्णै यैष्ट व्यामिति निर्णयः ।६०।५३

भीष्म ने कहा राजन् ! अक्रोध, सत्यवचन, संविभाग, क्षमा अपनी पत्नियों में प्रजोत्पादन, शौच, अद्रोह, ऋजुता और भृत्यों का भरण ये नव ९ सब वर्णों के सांझे धर्म हैं।

प्रजापति (परमेश्वर) ने वैश्यों को रचकर पशुरक्षण और ब्राह्मण क्षत्रिय को रचकर सारी प्रजा की रक्षा का कर्म सौंप दिया, तथा शूद्रों को सब द्विजों की सेवा बताई । यही इनका धर्म है। और सब वर्णों के लिये जो श्रद्धा से यज्ञ

करना चाहें यज्ञ करने की विधि बतलाई, यज्ञ का कर्ता पापी हो वा महा पापी हो स्तेन हो वा अन्य कर्म का कर्त्ता ऋषियों ने उसे साधु ही माना है, क्योंकि यज्ञ से पवित्र कर्म संसार में नहीं है।

या संज्ञाविहिता लोके दासे शुनि वृके पशौ।
विकर्मणि स्थिते विप्रे सैव संज्ञा च पांडव।६२।५
शूद्रो राजन्भवति ब्रह्म बंधुर्दुश्चारित्रोयश्चधर्मा दपेतः। वृषलीपतिः पिशुनो नर्तनश्च राज-प्रेष्यो यश्चभवेद्विकर्मा ॥ ६३ । ४
शुश्रूषोः कृतकार्यस्य कृत संतान कर्मणः।
अभ्यनुज्ञात राजस्य शूद्रस्य जगतीपते।६३।१२
आश्रमा विहिताः सर्वे वर्जयित्वानिराशिषम्।१३

जगतीपते जो ब्राह्मण कर्म धर्म छोड विकर्म में स्थित है वह शूद्र है ब्राह्मण नहीं और उसे किसी ब्राह्मण योग्य सत्कार का पात्र *न समझना चाहिये। इसके उलट जो शूद्र उत्तम कर्म करता है उसे आश्रमों का पूर्ण अधिकार है। इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य की गति जानना।

---

* देखो शान्ति पर्व ६५। ११

राजा की जीवन शृंखला ।

वेदानधीत्य धर्मेण राजशास्त्राणि चानघ ।
संतानादीनिकर्माणि कृत्वा सोमंनिषेव्यच ॥
पालयित्वा प्रजाः सर्वाः धर्मेण वदतांवर ।
राजसूयाश्वमेधादीन्मखान न्यांस्तथैव च ।१७।
आनयित्वा यथापाठं विप्रेभ्यो दत्तदक्षणः ।
संग्रामे विजयं प्राप्य, तथाल्पं यदि वा बहुः ।१८
स्थापयित्वा प्रजापालं, पुत्रं राज्ये च पांडव ।
अन्यगोत्रं प्रशस्तं वा, क्षत्रियं क्षत्रियर्षभ ।१९
अन्तकाले च संप्राप्ते, य इच्छेदाश्रमान्तरम् ।
सोऽनुपूर्व्याश्रमान् राजन् गत्वासिद्धिमवाप्नुयात्

भीष्म बोले—राजन् ! राजा की जीवन शृंखला शास्त्रों में इस प्रकार लिखी है—सब से पहले ब्रह्मचर्य विधि से आश्रम वासी होकर गुरु से वेदों का अध्ययन करे धर्म ज्ञान के पीछे राज शास्त्रों को पढ़े, फिर गृहस्थाश्रमी बन सोमपानादि कर सन्तान पैदा करे, और धर्मानुसार न्याय से प्रजा का पालन कर राजसूय, अश्वमेध आदि वैदिक यज्ञों को करे। तदनन्तर स्नातक ब्राह्मणों की पूजा करता हुआ, शत्रुओं को संग्राम में जीत, प्रजापालन निमित्त योग्य प्रजापालक अपने

पुत्र तथा किसी अन्य कुलीन विज्ञानयुक्त क्षत्रिय को स्थापन कर, वान प्रस्थादि द्वारा मोक्ष की प्राप्ति के लिये, सन्यास आश्रम को यथा विधि धारण करे।

विदेशियों का धर्म।

मान्धातो वाच।

यवना किराता गांधारा श्चीनाः शबरबर्बराः।
शकास्तुषाराः कंकाश्च पल्हवाश्चान्ध्रमद्रकाः॥
पौंड्रापुलिंदारमठाः कांबोजाश्चैवसर्वशः।
ब्रह्मक्षत्र प्रसूताश्च वैश्या शूद्राश्च मानवाः।१४
कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषय वासिनः।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वेवैदस्युजीविनः।१५

इन्द्र उवाच।

माता पित्रोर्हिशुश्रूषा कर्तव्या सर्वदस्युभिः।
आचार्य गुरु शुश्रूषा तथैवाश्रम वासिनाम्॥
वेद धर्म क्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते।१८।
पितृ यज्ञास्तथा कूपाः प्रपाश्च शयनानि च।१९
दक्षिणा सर्वयज्ञानां दातव्या भूतिमिच्छता।२१

मान्धाता और इन्द्र संवाद के द्वारा पितामह जी ने बताया कि यूनान मिश्र काबुल कंधार चीन ईरान आदि देशों की दस्यु प्रजा ब्राह्मण तथा क्षत्रियों की संतान हैं, इनको भी माता पिता गुरु आचार्य राजा तथा ब्राह्मणादि की सेवा धर्म शास्त्रानुसार और यज्ञयाग दक्षिणा सहित वेदानुसार करना चाहिये, और इनके सब कर्म वेद अनुकूल ही हों। जो लोग वेदाधिकार पर हठ किया करते हैं वे ध्यान से पढ़ें।

अराजकता की निन्दा } आर्यों में राजा की स्थापना सृष्टि के आरम्भ से वेदाज्ञा अनुसार प्रजा की सम्मति से चली आती है इसी के अनुसार भीष्म जी ने अगले वाक्यों में अराजकता की निन्दा और राज्यव्यवस्था की स्तुति की है। धर्मराज ने पूछा पितामह ! आपने वर्ण धर्म कहा अब राष्ट्र धर्म भी कहिये। उत्तर में महाराज ने कहा धर्मपुत्र ! सबसे पहले देशवासियों का कर्तव्य है कि वे अपना एक इन्द्र (राजा) बनाएं जिससे देश में बल आवे क्योंकि राजा हीन बल शून्य देश को दस्यु (चोर) दुःख देने लग जाते हैं। और राजा का चुनना वेदों में परमेश्वर ने ही बताया है।

अराजकेषु राष्ट्रेषु धर्मो न व्यवतिष्ठते।
परस्परं च खादन्ति सर्वथा धिगराजकम् ॥

शां० ६७ । ३

मनुस्मृति ······················ में भी लिखा है इन देशों के लोग पहले क्षत्रिय थे ब्राह्मण के अदर्शन और वेद प्रचार के अभाव से शूद्र भाव को प्राप्त हो गये।

नाराजकेषु राष्ट्रेषु वस्तव्य मिति रोचये ।५।
अराजकाणि राष्ट्राणि हतवीर्याणि वा पुनः ।६
नहि पापात्पर तरमस्ति किञ्चिद राजकात् ।७।
नधनार्थो नदारार्थस्तेषां येषामराजकम् ।१२।
प्रीयतेहि हरन्पापः परवित्त मराजके ।१३।
पापाह्यपि तदाक्षेमं न लभन्ते कदाचन ।
एकस्य द्वौहरतो द्वयोश्च बहवोऽपरे ।।१४।।
राजाचेन्न भवेल्लोके पृथिव्यां दंडधारकः ।
जलेमत्स्या निवाभक्ष्यन्दुर्बलं बलवत्तराः ।।

राजा रहित देशों में धर्म पालन नहीं होता आपस में लोग दर्या की मच्छियों की तरह लड़भिड़ कर नष्ट हो जाते हैं। अराजक देश में न किसी का धन न स्त्री अपनी होती है किन्तु पापी लोग हर लेते हैं इसीलिये वहां बसने का निषेध है। पापी लोग भी ऐसे देशों में सुखी नहीं रह सकते कारण एक पापी को दो, दो को बहुत हर लेते हैं । अराजक राष्ट्र सदा हतवीर्य ही रहते हैं स्वामी हीन खेत की भान्ति वे कभी फलते फूलते नहीं किन्तु सदा बलवानों से मार ही खाते रहते हैं।

राजा के लाभ ।

राजाह्येवाखिलं लोकं समुदीर्ण समुत्सकम् ।

प्रसादयाति धर्मेण प्रसाद्य च विराजते ।६८।१।
यांनं वस्त्रमलंकारान् रत्नानि विविधानि च ।
हरेयुः सहसा पापाः यदि राजा न पालयेत् ।१६
पतेद्बहुविधं शस्त्रं बहुधा धर्म चारिषु ।
अधर्मः प्रगृहीतः स्याद्यदि राजा न पालयेत् ।१७
मातरं पितरं वृद्धमाचार्यमातिथिं गुरुम् ।
क्लिश्नीयुरपिहिंस्युर्वा यदि राजा न पालयेत् ।१८
वधबंधः परिक्लेशो नित्यमर्थवतां भवेत् ।
ममत्वं न विन्देयुर्यदि राजा न पालयेत् ।१९।
नयोनिदोषो वर्तते न कृषिर्नबाणिक्पथः ।
मज्जेद्धर्मस्त्रयी न स्याद्यदि राजा न पालयेत् ।२१
न यज्ञाः संप्रवर्तेयुर्विधिवत्स्वाप्त दक्षिणाः ।
न विवाहाः समाजो वा यदि राजा न पालयेत् ।
अनयाः संप्रवर्तेरन् भवेद्वै वर्ण संकरः ।
दुर्भिक्षमाविशेद्राष्ट्रं यदि राजा न पालयेत् ।२९
विवृत्याहि यथाकामं गृहद्वाराणि शेरते ।

मनुष्याः रक्षिता राज्ञा समंतादकुतो भयाः ।३०
स्त्रियश्च पुरुषा मार्गं सर्वालंकार भूषिताः ।
निर्भयाः प्रति पद्यन्ते यदि रक्षति भूमिपः ।३२
यदा राजा धुरं श्रेष्ठयामादाय वहति प्रजाः ।
महता बलयोगेन तदा राजा प्रसीदति ।३६।
यस्या भावेनभूतानामभावस्यात्समं ततः ।
भावेच भावो नित्यं स्यात्कस्तं न प्रति पूजयेत् ।
नहि जात्वव मंतव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवताह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥

धर्मपुत्र ! राजा से देश में धर्म, विद्या, व्यापार, स्वत्व तथा प्राणि मात्र के सुख की वृद्धि तथा रक्षा होती है। पापियों का दमन पुण्यात्माओं का मान अन्धकार का नाश कुल और कुल देवियों के धर्म की रक्षा राजा ही करता है राजा को मनुष्य समझ कर कभी अपमान नहीं करना चाहिये किन्तु देश प्रतिनिधि देवता मान सदा पूजा करनी चाहिये।

गुप्तचर नियुक्ति ।

प्रणिधींश्च ततः कुर्याज्जडांधबधिराकृतीन् ।
पुंसः परीक्षितान्प्राज्ञान् क्षुत्पिपासा श्रम क्षमान् ।
६९।८

अमात्येषु च सर्वेषु मित्रेषु विविधेषु च ।
पुत्रेषु च महाराज प्रणिदध्यात्समाहितः ॥६९।९

इस के अनन्तर राज्य रक्षा के लिये राजा को जिते-न्द्रिय होने के साथ २ दूसरों के गुप्तचरों की चालें जानने और अपने परीक्षित पुरुषों को (जो भूख प्यास मानापमान सहने वाले मेहनती विद्वान् बुद्धिमान् हों) उन के देश के हर एक हिस्से वन पर्वत बाजार समाज नदी मंदिर शालाओं में नियुक्त करने की शिक्षा दी । और गुप्तचरों की नियुक्ति अपने पुत्र मित्र तथा मंत्रियों तक में भी बताई । दूतों को जड़, अंध, बधिर, भिक्षुक, रूप में रहना बताया ।

भिक्षुकांश्चा क्रिकांश्चैव क्लीवोन्मत्तान्कुशीलवान् । बाह्यान् कुर्यान्नरश्रेष्ठ ! दोषाय स्युर्हितेऽन्यथा ॥ ६९ । ५१

और भिक्षुक गाडीवान् क्लीव उन्मत्त कुशीलवों को भय के दिनों में नगर के बाहर कर देने की आज्ञा दी, क्योंकि ऐसे समय पर इन वेशों में शत्रु दल के दूत अनर्थकारी होते हैं ।

तोप और मशीनों की नियुक्ति ।

द्वारेषु च गुरूण्येव यंत्राणि स्थापयेत्सदा ।
आरोपयेच्छतघ्नींश्च स्वाधीनानि कारयेत् ॥

भीष्म ने कहा धर्मपुत्र ! युद्ध के भय के दिनों में दुर्ग का आश्रय ले और दुर्ग द्वारों पर शत्रु घातक यंत्रों (मशीनों) और शतघ्नी तोपों को अपने आधीन रखे । और लोगों के गमनागमन जानने के लिये प्रगंडी * (दुरबीन) स्थापन करे । और दिन में बिना अग्निहोत्र, सूतिकागृह, और शस्त्र अस्त्र निर्माण शाला के कहीं अग्नि न जलने दे, भोजनादि सब के रात को ही तयार हों । और यत्न से युद्ध के जड़ चेतन साधनों को सावधानी से निरीक्षण कर एकत्र करे ।

राजा ही काल है } धर्मराज ने पूछा पितामह युग के अनुसार राजा (अच्छा बुरा) है वा राजा के कारण युग (सतयुग आदि) होते हैं ?

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा काल कारणम् ।
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम् ॥

६९ । ७९

पितामह ने कहा इस विषय में तेरे को संशय न हो राजा काल का कारण है इसी के कर्म से चारों युग बनते बिगड़ते हैं । तथा—जब राजा पूरे धर्म से दंड नीति चलाता है तब सत्युग है । जब चतुर्थांश त्याग तीन अंशों में नीति चलाता है तब त्रेता है । जब अर्ध धर्म नीति होती है तब द्वापर । और

---

* संचारोयत्र लोकानां दूरादेवाव बुध्यते । प्रगंडीसाच विज्ञेया०

जब नीति छोड़ अयोग से प्रजा को क्लेश दिया जाता है तब कलियुग * है।

धर्मराज के पूछने पर भीष्मजी ने कहा—

कर लेने की रीति।

ऊधश्छिंद्यात्तुयोधेन्वाः क्षीरार्थी न लभेत्पयः।
एवं राष्ट्रमयागेन पीडितं न विवर्धते ॥

शान्ति० ७१। १६

योहि दोग्ध्री मुपास्ते च सनित्यं विन्दते पयः।
एवं राष्ट्र मुपायेन भुंजानोलभते फलम् ॥१७॥
दोग्ध्री धान्यं हिरण्यं च महाराज्ञा सुरक्षिता।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च तृप्ता माता यथा पयः। १९
मालाकारोपमा राजन्भव माऽङ्गारिकोपमः।
तथा युक्ताश्चिरं राज्यं भोक्तुं शक्ष्यसि पालयन् ॥

१७। २०

राजन्! जिस प्रकार गाय कोसे वा करने से गाय दूध देती है और जो गौ के ऊध (लेवा-दुग्धकोश) को काटता है उसे दूध नहीं मिलता। इसी प्रकार राजा को धरती (प्रजा) माता की रक्षा वा पालना से धनधान्य आदि मिलते हैं क्लेश से नहीं। राजा

* देखो शान्तिपर्व अ० ६६ श्लो० ८०, ८७, ८९, ९१।

को प्रजा से मालाकार की भान्ति खिले हुए फूल लेने चाहिये वृक्ष काटने की इच्छा न करे। कर (टैक्स) लेने के काम पर दूसरों अधिकारों की तरह धर्मात्मा पुरुषों को नियत करे, लोभी पुरुषों को कदाचित् कहीं भी न लगावें, इस से राजा और राष्ट्र दोनों नष्ट हो जाते हैं।

राज्य पालन में ब्राह्मण की आवश्यकता।

य एवतु सतो रक्षेदसतश्च निवर्तयेत्।
स एव राज्ञा कर्तव्यो राजन्! राजपुरोहितः॥
गुरुर्हि सर्व वर्णानां ज्येष्ठःश्रेष्ठश्चवैद्विजः॥११॥
पत्यभावे यथैवस्त्री देवरं कुरुते पतिम्॥१२॥
एतौहि नित्यं संयुक्ता वितरेतर धारणे।
क्षत्रं वै ब्रह्मणो योनिर्योनिः क्षत्रस्य वै द्विजाः॥
ब्रह्मवृक्षो रक्षमाणो मधुहेम च वर्षति॥
अरक्षमाणः सतत मश्रु पापंच वर्षति॥७३॥११

भीष्म ने वेदशास्त्र सम्मत उपदेश देते हुए कहा राजन्! राज्य की रक्षा के लिये पाप से हटाने वाले पुण्य में लगाने वाले सर्व वर्णों में ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण को पुरोहित बनावो क्योंकि पृथ्वीपति के पद पर मुख्यतया ब्राह्मण का अधिकार है पीछे से क्षत्रिय का है, जैसे पति के प्रभाव में स्त्री का देवर

पति होता है इसी प्रकार ब्राह्मणों के अभाव में क्षत्रिय राजा होता है। और राज्य का प्रबन्ध ब्राह्मण क्षत्रिय मिलकर उत्तम करते हैं। दोनों एक दूसरे के जनक वा वर्धक हैं।

चोरी का धन राजकोश से देना चाहिये

राजन्! प्रजा में सदा वर्णाश्रम विहत वेदोक्त धर्म का प्रचार करना चाहिये, क्योंकि जितना धर्म प्रजा करेगी उस का चतुर्थांश राजा को मिलता है। और देश में से हर एक चोरी आदि कर्म को रोकना चाहिये क्योंकि प्रजा के धर्माचरण को भान्ति प्रजा के पापाचरण का भी चतुर्थांश राजा को भोगना पड़ता है।

प्रत्याहर्तुमशक्यं स्याद्धनं चौरैर्हृतं यदि।
तत्स्वकोशात्प्रदेयं स्यादशक्ते नोपजीवनः॥

शान्ति० ७५। १०

अतः यदि किसी के चोरी हो जाय तो उसका द्रव्य चोरों से निकलवाना चाहिये, यदि किसी से न मिले तो उतना द्रव्य राजा को अपने कोश से देना चाहिये क्योंकि उस की रक्षा में * प्रजावासी कष्ट न पाए यह भूपति के कर्तव्यों में से एक है।

धर्मराज को मोह।

नाहं राज्यसुखान्वेषी राज्यमिच्छाम्यपि क्षणम्।

---

* यस्य स्मविषये राज्ञः स्तेनोभवति वै द्विजः।
राज्ञएवापराधं तं मन्यन्ते किल्बिषं नृप॥ शां० ७६।४

धर्मार्थं रोचयेराज्यं धर्मश्चात्र न विद्यते ॥
तदलं ममराज्येन यत्र धर्मो न विद्यते ॥

७५ । १५, १६

प्रजा के पापाचार के अंश भोगने आदि की कथा सुन धर्मराज ने कहा 'मैं राज्य सुख के लिये क्षणभर भी राजा नहीं बनना चाहता मैं तो धर्म के लिये राज्य चाहता था सो इस में धर्म नहीं अतः मैं राज्य नहीं चाहता।

इस मोहमयी वृत्ति को क्षत्रियों के लिये अकीर्तिप्रद समझ भीष्म बड़े वेग से बोले—

न ह्येतामाशिषं पांडुर्नच कुन्तीत्वयाचत ।
तथैतत्प्रज्ञया तात यथा चरसि मेधया ।७५।२२
शौर्यं बलं च सत्यं च पिता तव सदा ब्रवीत् ।
महात्म्यश्च महौदार्यं भवतः कुन्त्य याचत ॥२३

धर्म ! तेरे को यह धर्म विरुद्ध बुद्धि कहां से पैदा हो गई, इस घृणा भरे कर्म को क्षत्रिय क्लीवता (नामर्दी से) याद करते हैं। तुम अपने पिता पितामह से मिले हुए वृत्त (आचार) को संभाल जो तुम चाह रहे हो राजपुत्रों को यह नहीं शोभता। ये भाव न तेरे पिता महाराज पांडु ने न देवी कुन्ती ने कभी विचारे थे, वे तो सदा शूरता वीरता बल सचाई बड़पन, उदारता आदि की ही सृष्टि तुम में करते रहे हैं वे सब धर्म को जानने हारे थे, और क्षत्रिय के लिये प्रजा पालन से बड़ा धर्म

कोई नहीं है। इस से सब धर्म और धर्मांगों की उत्पत्ति वृद्धि और रक्षा होती है। अतः राजपुत्र ! राजसत्ता हाथ में ले कर दुष्टों के दमन और सज्जनों के पालन से लोक परलोक में यशवर्धक धर्म को प्राप्त कर।

सुशासित राष्ट्र की दशा।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नायज्वा मामकांतर माविशः॥
कृपणानाथ बृद्धानां दुर्बलातुर योषिताम्।
सं विभक्तास्मि सर्वेषां मामकांतर माविशः॥ १८
नासं विभज्य भोक्तास्मि नाविशामि परस्त्रियम्।
स्वतंत्रो जातु न क्रीड़े मामकांतर माविशः॥२१
ना ब्रह्मचारी भिक्षावान् भिक्षुर्वाऽब्रह्मचर्यवान्।
अनृत्विजाहुतं नास्ति मामकांतर माविशः॥२२
नावजानाम्यहं वेद्यान्न बृद्धान्न तपस्विनः।
राष्ट्रे स्वपिति जागर्मि मामकांतर माविशः॥२३
आत्मविज्ञान संपन्नस्तपस्वी सर्व धर्मवित्।
स्वामी सर्वस्य राष्ट्रस्य धीमान् मम पुरोहितः॥२४

न मे राष्ट्रे विधवा ब्रह्मवंधु, नेब्राह्मणःकितवो नोतचोरः । अयाज्ययाजी नच पापकर्मा, नमे भयं विद्यते राक्षसेभ्यः ॥ २६

न मे शस्त्रैरनिर्भिन्नंगात्रे द्व्यंगुल मंतरम् ।
धर्मार्थं युद्धमानस्य मामकांतर माविशः ॥ २७

गो ब्राह्मणेभ्यो यज्ञेभ्यो नित्यं स्वस्त्ययनं मम ।
आशासते जनाःराष्ट्रे मामकांतर माविशः । २८

पितामह ने धर्मपुत्र को कैकेय राजा और राक्षस के संबाद द्वारा बताया कि राजा सुराजा वह है जो अपने संवंध में साभिमान कह सके मेरे राज्य में चोर, कृपण, मादक द्रव्य सेवी, यज्ञहीन अनाहिताग्नि नहीं है । और मैं कृपण, अनाथ, वृद्ध दुर्बल रोगी और अनाश्रित स्त्रियों को बांट कर खाता हूं। मैं कभी एकला नहीं खाता, कभी मन से भी पर स्त्री में प्रवेश नहीं करता, कभी मैं स्वतंत्र हो कर कोई विहार नहीं करता। मेरे राज्य में बिना विद्यार्थियों के कोई भिखारी नहीं या यूं कहो कि मांगता बिना ब्रह्मचारियों के नहीं, और कोई ऋतु यज्ञ बिना नहीं गुजरती । मैं कभी विद्वान् वृद्ध तपस्वियों का अपमान नहीं करता । सारे देश के सोने पर भी मैं जागता हूं। मेरा पुरोहित ज्ञान विज्ञान युक्त, सर्व धर्मवित् , तपस्वी, बुद्धिमान् और सारे राष्ट्र का स्वामी है । मेरे राज्य में विधवा वा कर्म भ्रष्ट ब्राह्मण ठग चोर अयाज्य याजी वा पापकर्मा नहीं

हैं। और मेरा शरीर धर्म निमित्त युद्ध करते हुए शस्त्रों से दो २ अंगुल पर बिंधा हुआ है। मेरे देशवासी सदा गौ ब्राह्मण और यज्ञों का कल्याण चाहते हैं। अतः मेरे राज्य में राक्षसों का प्रवेश निषिद्ध है।

ब्राह्मण आदि का शस्त्र धारण } युधिष्ठिर के पूछने पर कि यदि क्षत्रिय राजा दुष्ट हो जाय तो देश के लिये ब्राह्मणादि को क्या करना चाहिये ? पितामह ने कहा—

तपसा ब्रह्मचर्येण शस्त्रेण बलेनच।
अमायया मायया वा नियंतव्यं तदाभवेत्॥
ब्राह्मणस्त्रिषु वर्णेषु शस्त्रं गृह्णन्न दुष्यति ॥२९
ब्राह्मणास्त्रिषु कालेषु शस्त्रं गृह्णन्न दुष्यति।
आत्मत्राणे वर्णदोषे दुर्दम्य नियमेषुच ॥ ३४
ब्राह्मणो यदि वा वैश्यः शूद्रोवा राजसत्तम।
दस्युभ्योऽथ प्रजारक्षेद्दंडंधर्मेण धारयन्॥ ३६
अपारेयो भवेत्पार मप्लवे यःप्लवो भवेत्।
शूद्रो वा यदिवाप्यन्यः सर्वथा मानमर्हति ॥३८

राजन् राजा हीन वीर्य वा दोष युक्त हो तो ब्राह्मणों को अपने तप, व्रत, बल, और शस्त्र प्रयोग से देश की रक्षा करनी चाहिये, ब्राह्मण तीनों वर्णों और तीनों कालों में शस्त्र

धारण कर सकता है, और देश रक्षण में शस्त्र उठाना तो ब्राह्मण का मुख्य काम है। देश रक्षा में तो हर एक देशवासी को शस्त्र उठाने चाहिये, देशरक्षार्थ शस्त्र धारण करने वाला शूद्र तक भी पूजा के योग्य ही है।

राजमंत्री और सदस्य कैसे हों।

ह्री निषेवास्तथादान्ता सत्यार्जव समन्विताः।
शक्ता कथयितुं सम्यक्ते तव स्युः सभासदः।८३।२
अमात्यांश्चातिशूरांश्च ब्राह्मणां परिश्रुतान्।
सुसंतुष्टांश्च कौन्तेय महोत्साहांश्च कर्मसु ॥ ३
कुलीनान् शीलसंपन्नानिं गितज्ञाननिष्ठुरान्।
देशकाल विधानज्ञान्भर्तृ कार्यहितैषिणः ॥ ८
नित्यमर्थेषुसर्वेषु राजा कुर्वीत मंत्रिणः ॥ ९
कृतप्रज्ञश्चमेधावी बुधो जानपदः शुचिः।
सर्व कर्मसु यः शुद्धः स मंत्रं श्रोतुमर्हति ॥४१
पंचाशद् वर्ष वयसं प्रगल्भ मनसूयकम् ॥ ८५।९
वर्जितं चैव व्यसनैः सुघोरैः सप्तभिर्भृशम् ॥११

राजन्! लज्जायुक्त, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, ऋजुस्वभाव, समय पर कथन करने में समर्थ तेरे सभासद् हों। और शूरवीर, विद्वान्, संतुष्ट, कर्मवीर ब्राह्मणों को मन्त्री बनावें। और कुलीन, शीलवान्, इशारों के जानने वाले, सौम्य स्वभाव, देश काल विधानज्ञ, भर्ता के हितैषी, बुद्धिमान्, मेधावी, पवित्र, सर्व कार्य्यों में शुद्ध, पण्डित, स्वदेशी पुरुषों को राजा मन्त्री बनावे। ये मन्त्री व्यसन रहित, प्रगल्भ, असूयां रहित और आयु में पचास वर्ष से कम न हो।

दूत लक्षण वा दूत रक्षा।

कुलीनः कुलसंपन्नो वाग्मी दक्षः प्रियम्वदः।
यथोक्तवादी स्मृतिमान् दूतः स्यात्सप्तभिर्गुणैः ८५। २८
न तु हन्यान्नृपो जातु दूतं कस्यांचिदापदि ॥२६॥

राजा का दूत कुलीन, व्याख्याता, प्रियम्वद, चतुर, यथोक्तवादी, स्मृतिमान्, श्रेष्ठ दूत होता है। दूत किसी दशा में बध योग्य नहीं, दूत को दण्ड देने से राजा नरक-गामी, अपयशभागी होता है।

राजपुर की बनावट।

यत्पुरं दुर्गसम्पन्नं धान्यायुधसमन्वितम्।
दृढप्राकारपरिखं हस्त्यश्वरथसंकुलम् ॥८६। ६॥
विद्वांसः शिल्पिनो यत्र निचयाश्च सुसंचिताः।
धार्मिकश्च जनो यत्र दाक्ष्य उत्तममास्थितः ८६। ६॥

ऊर्जस्विनरनागाश्च चत्वरापरशोभितम् ।
प्रसिद्धव्यवहारं च प्रशान्तमकुतो भयम् ॥८॥
सुप्रभं सानुनादं च सुप्रशस्तानिवेशनम् ।
शूराढ्यजनसम्पन्नं ब्रह्मघोषानुनादितम् ॥९॥
समाजोत्सवसम्पन्नं सदा पूजितदैवतम् ।
वश्यामात्यबलो राजा तत्पुरं स्वयमाविशेत् ॥१०॥
तत्र कोशं बलं मित्रं व्यवहारं च वर्धयेत् ।
पुरे जनपदे चैव सर्वदोषान्निवर्तयेत् ॥११॥
भाण्डागारायुधागारं प्रयत्नेनाभिवर्धयेत् ।
निचयान्वर्धयेत्सर्वांस्तथा यन्त्रायुधालयान् ॥१२॥
काष्ठलोष्टतुषांगारदारुश्रृङ्गास्थिवैणवान् ।
मज्जास्नेहवसाक्षौद्रमौषधग्राममेव च ॥१३॥
आशयाश्चोदपानाश्च प्रभूतसलिलाकराः ।
निरोद्धव्याः सदा राज्ञा क्षीरिणश्च महीरुहाः ॥१४॥
सत्कृताश्च प्रयत्नेन आचार्य्यर्त्विक्पुरोहिताः ।
महेष्वासाः स्थपतयः साँवत्सराचिकित्सकाः ॥१५॥
प्राज्ञा मेधाविनो दान्ता दक्षाः शूरा बहुश्रुताः ।
कुलीनाः सत्वसम्पन्ना युक्ताः सर्वेषु कर्मसु ॥१७॥
पूजयेद्धार्मिकान्राजा निगृह्णीयादधार्मिकान् ।
नियुज्याच्च प्रयत्नेन सर्ववर्णान्स्वकर्मसु ॥१८॥

यष्टव्यं क्रतुभिर्न्नित्यं दातव्यं चाप्यपीडया ।
प्रजानां रक्षणं कार्यं न कार्यं धर्मबाधकम् ॥२३॥
कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम् ।
योगक्षेमं च वृत्तिं च नित्यमेव प्रकल्पयेत् ॥२४॥

आश्रमेषु यथाकालं चैलभाजनभोजनम् ।
सदैवोपहरेद्राजा सत्कृत्याभ्यर्च्यमान्य च ॥२५॥

राजधानी कैसी हो, इसके उत्तर में कहते हुये भीष्म ने कहा, राजन् ! जो पुर दुर्ग (अपदुर्ग, नरदुर्ग, महीदुर्ग आदि) से युक्त, धन धान्य आयुध युक्त, मजबूत कोट और खाई युक्त, हस्ती, घोड़े, रथ से भरा हुआ हो। जिस नगर में विद्वान्, शिल्पी, कानें और धर्मात्मा तथा चतुर पुरुष हों। जिसके गली, कूचे, बाजार खुले साफ और सजे हुये हो, जिसमें जगत्प्रसिद्ध व्यापार शान्ति से हो, किसी प्रकार का किसी को भय न हो, सुप्रभा, सुचाद्या, प्रशस्त अटारियों से अलंकृत, वेद-पाठ, यज्ञ-हवन, देव-पूजन से पवित्र, समाजोत्सवों से सम्पन्न, वश में रहने वाले अमात्य और बल सेना से युक्त राजा बसे।

अपने पुर वा देश में सर्व प्रकार के कल कारखाने, शस्त्र अस्त्र भंडार आयु धा गार बढ़ावे। और देश में किसी प्रकार का दोष न पैदा होने दे। काष्ट लोष्ट घृत तैल शहद आदि के गोदाम भरपूर रखें।

नगर में जल स्थान, औषध भंडार, अन्न राशि आदि का

पूरा २ अटूट प्रबंध रखे। आचार्य ऋत्विक् पुरोहित आदि का सत्कार करे। धनुर्धारियों का उचित मान रखे।

देश के स्वास्थ्य के लिए सब काल में काम करने वाले चिकित्सक नियत करे। राजा प्रजा रक्षार्थ धर्मानुसार सब काम करे अधर्म को रोके, पुण्यात्माओं के पूजन और पापियों के दमन का ध्यान रखे। देश प्रबंध के हर एक काम पर धर्मात्मा बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय चतुर विद्वान् कुलीन पुरुषों को नियुक्त करे। कभी किसी अधिकार पर लोभी विषयी मूर्ख नीच व्यक्ति को नियुक्त न करे। देश के कृपण अनाथ वृद्ध और विधवा स्त्रियों, तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रम वासियों के वस्त्र भोजन आदि का राज्य की ओर से प्रबन्ध रखे, ताकि दुःखित प्राणी देश को शापित न करे।

बालब्रह्मचारी पूर्ण वेदज्ञ सर्व सेनापति कुरुश्रेष्ठ देवव्रत भीष्म के उपदेश का यह सारातिसार है वरन उनका उपदेश तो सर्व विध विधिशास्त्र का एक भारी विस्तार युक्त व्याख्यान है। कभी समय मिला तो विस्तार से भीष्म चरित्र के साथ ही उसके लिखने का भी विचार है जो कम से कम २०० पृष्ठ से कम न होगा, तथापि हम ने जो उपदेश नवनीत निकाला है इस से विचार संकीर्णता दूर होकर भारत के अभ्युदय काल के स्वराज्य प्राप्त आर्यों के प्रकाशक, पवित्र, उदार भावों का पता लगता है जिसके साहमने योरुप की बढ़ी चढ़ी नीति भी निस्तेज प्रतीत होती है। अतः राष्ट्रीय भावों के भक्तों के लिये इतना ही उपदेश जीवन सरणि के चिन्हों को प्रकाशित कर प्राप्तव्य स्थान की ओर ले जाता है। ईश्वर करे हमारे पाठक इससे पूर्ण लाभ उठावे॥ (शिवमस्तु)

परिशिष्ट न० १

यक्ष और धर्म पुत्र में प्रश्नोत्तर।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्याऽनृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाँ सत्ये प्रजापतिः॥

यजु० १९।७७

एक बार पांडव बन में बिचर रहे थे जल की पिपासा से दुःखी हो जल ढूंडने लगे, दूर से एक सरोवर के चिन्ह देख सहदेव, नकुल, अर्जुन, भीम क्रम से जल लेने गये, परं लौट कर कोई न आया, तब धर्म पुत्र युधिष्ठिर स्वयं जल लेने और पीने सरोवर पर गये, और वहां चारों भाइयों को मृत समान देख, बड़े विस्मित हो, सोचने लगे इन वीर पुरुषों को किस ने इस प्रकार मल दिया है, इन के शरीर पर न कोई शस्त्र का चिन्ह है न अस्त्र का, इन के मुख सौंदर्य पूर्ववत् बने हुये है, बिना यम के कौन है जो इन्हें इस दशा में ला सके।

ऐसा चिन्तन कर जल पीने के लिये सरोवर की ओर बढ़ा तब एक अदृष्ट पुरुष की यह वाणी सुनाई दी।

इमे ते भ्रातरो राजन्वार्यमाणा मयाऽसकृत्।
बलात्तोयं जिहीर्षन्त स्ततोवै मृदिता मया॥
न पेयमुदकं राजन्प्राणानिह परीप्सता।
प्रश्नान्कृत्वा तु कौंतेय! ततः पिव हरस्व च॥

वन ३१२।५०

राजन् ! तेरे ये भाई मुझ से वारे हुये बलात् जल लेते थे, इसलिये मैंने ये मर्दित (मूर्छित) कर दिये हैं। राजन् ! यदि तुम्हें प्राणों की इच्छा है तो जल मत पीना, पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो फिर जल पीओ और ले भी जाओ।

विरूपाक्षं महाकायं यक्षं ताल समुच्छ्रयम्।
वृक्षमाश्रित्य तिष्ठन्तं ददर्श भरतर्षभः ॥

वन० ३१२। ३६

ऊपर की रूखी वाणी को सुन जब राजा ने इधर उधर दृष्टि डाली तो उसने बड़ी काया वाले विरूपाक्ष ताल समान ऊंचे वृक्ष का आश्रय ले खड़े यक्ष को देखा और कहा—

यथा प्रज्ञं तु ते प्रश्नान् प्रति वक्ष्यामि पृच्छ माम् ॥

वन० ३१३।४४

तुम्हारे प्रश्नों का मैं यथा बुद्धि उत्तर दूंगा पूछो तुम्हारे क्या प्रश्न हैं ?

---

* प्रश्नोत्तर मालिका *

प्रश्न—१ सूर्य का उदय कौन करता है ? २ इसके चारों तर्फ होने वाले कौन हैं ? ३ इसका अस्त कौन करता है ? ४ और यह सूर्य स्थित किसमे है ? ४५ ॥

उत्तर—१ ब्रह्म सूर्य को उदय करता है। २ चन्द्रादि देव

---

(१) इस माला में प्रश्न यक्षकी तर्फ से किये हैं और उत्तर महाराज धर्म पुत्र युधिष्ठिर की ओर से दिये गये हैं।

इसके चारों ओर घूमते हैं। ३ धर्म (ईश्वरीय नियम) इसे अस्त करता है। ४ सत्य (ब्रह्म) में यह स्थित है ॥ ४६ ॥

प्रश्न—१ ब्राह्मण श्रोत्रिय कैसे बनता है ? २ और ब्रह्मको किस करके प्राप्त होता है ? ३ दूसरे वाला किस करके होता है ? और बुद्धिमान् किस करके होता है ?

उत्तर—१ वेद के पढ़ने से ब्राह्मण श्रोत्रिय होता है। २ तप से ब्रह्मको प्राप्त होता है। ३ धैर्य से दूसरे वाला होता है। ४ और वृद्ध सेवा से बुद्धिमान् होता है ॥

प्रश्न—१ ब्राह्मणों का देवत्व क्या है ? २ सत्पुरुषों का धर्म क्या है ? ३ और इनका मानुषी भाव क्या है ? ४ इनका असद् भाव क्या है ?

उत्तर—१ वेदाभ्यास ब्राह्मणों का देवत्व है। २ तप इनका सद्धर्म है। ३ मरना इनका मानुषीभाव है। ४ पर निन्दा इनका असद्भाव है ॥

प्रश्न—१ क्षत्रियों का देवत्व क्या है ? २ इनका सद्धर्म क्या है ? ३ और इनका मानुषी भाव क्या है ? ४ इनका असद्भाव क्या है ?

उत्तर—१ बाण विद्या ही क्षत्रियों का देवपन है। २ यज्ञ करना इनका सद्धर्म है। ३ डरना इनका मानुषी भाव है। ४ शरणागत का त्याग देना ही इनका असत्कर्म हैं ॥

प्रश्न—१ यज्ञ संबंधि साम वेद क्या है ? २ यज्ञ संबन्धि यजु क्या है ? ३ वेदों में यज्ञ को कौन अंगी कार करता है ? ४ किसको यज्ञ उलंघन नहीं करते ?

उत्तर—१ प्राण यज्ञ संबन्धि साम है। २ मन यज्ञ

संबंधि यजु है। ३ एक ऋक् ही यज्ञ को अंगीकार करता है। यज्ञ ही इसे उलंघन नहीं करता।

प्रश्न—१ देवताओं को तृप्त करने वालों को उत्तम फल क्या है? २ पितरो को तृप्त करने वालों में उत्तम फल क्या है? ३ प्रतिष्ठा चाहने वालों में श्रेष्ट क्या है? ४ संतति वालों में श्रेष्ठ क्या है?

उत्तर—१ देवों को तृप्त करने वालों को उत्तम फल वृष्टि है। २ पितरों को तृप्ति कर फल बीज है। ३ प्रतिष्ठा चाहने वालों को गौ श्रेष्ठ फल है। ४ संतति चाहने वालों का पुत्र उत्तम फल है॥

प्रश्न—१ विषयों को भोगता हुआ बुद्धिमान् कौन है? २ लोक पूजित कौन है? ३ सब भूतों का संमत कौन है? ४ श्वास लेता हुया मृतक समान कौन है?

उत्तर—१ देवता अतिथि और भृत्यों को प्रसन्न करके जो भोगता है वह बुद्धिमान् है? २ जो पितरों को प्रसन्न करता है वह लोक पूजित है। ३ जो सम्पूर्ण प्राणियों को आत्म तुल्य देखता है वह सब का प्रिय है। ४ और जो मनुष्य देवता, अतिथि, भृत्य, पितर और आत्मा इन पांचों को तृप्त नहीं करता वह श्वास लेता हुया ही मृतक ही है॥

प्रश्न—१ पृथ्वी से बड़ा कौन है? २ और आकाश से ऊंचा कौन है? ३ वायु से शीघ्रगामी कौन है? ४ तथा तृण से अति तुच्छ क्या है?

उत्तर—१ माता पृथ्वी से बड़ो है। २ पिता आकाश से ऊंचा है। ३ मन वायु से भी शीघ्रगामी है। ४ और चिन्ता तृण से भी अति तुच्छ है।

प्रश्न—१ सोया हुआ कौन नहीं जागता ? २ और जन्मा हुआ कौन नहीं चलता है ? ३ हृदय किस के नहीं है ? और ४ वेग से कौन बढ़ता है ?

उत्तर—१ सोया हुआ मत्स्य नहीं जागता। २ जन्मा हुआ अण्डा चलता नहीं। ३ पत्थर के हृदय नहीं होता। ४ और नदी वेग से बढ़ती है।

प्रश्न—१ परदेश में मित्र कौन है ? २ गृहस्थी का मित्र कौन है ? ३ रोगी का मित्र कौन है ? और ४ मरने वाले का मित्र कौन है ?

उत्तर—१ धन परदेश में मित्र है। २ धर्म पत्नी गृह में मित्र है। ३ रोग में वैद्य मित्र है। और ४ धर्म मरने वाले का मित्र है।

प्रश्न—१ सब भूतों का अतिथि कौन है ? २ सनातन धर्म क्या है ? ३ हे राजन् अमृत क्या है ? और ४ सारे जगत् में व्यापक क्या है ?

उत्तर—१ सब प्राणियों का अतिथि अग्नि है। २ गौओं का दूध अमृत है। ३ गौओं की रक्षा सनातन धर्म है। ४ वायु सारे जगत् में व्यापक है।

प्रश्न—१ अकेला कौन विचरता है ? २ जन्म पाकर फिर कौन जन्मता है ? ३ हिम (शीत) का औषध क्या है ? और ४ बड़ा क्षेत्र कौन है ?

उत्तर—१ सूर्य अकेला विचरता है। २ चन्द्रमा पुनः २ जन्मता है (घटता बढ़ता है)। ३ अग्नि हिम का औषध है* और ४ पृथ्वी बड़ा क्षेत्र है (बोने के लिये)।

---

* अग्निर्हिमस्य भेषजम्। इस वेद वचन का अनुवाद है।

प्रश्न—१ धर्म का मुख्य स्थान कौन है ? २ यश का मुख्य स्थान कौन है ? ३ स्वर्ग का मुख्य स्थान कौन है ? और ४ सुख का मुख्य स्थान कौन है ?

उत्तर—१ बुद्धि का चातुर्य (विचार) धर्म का मुख्य स्थान है। २ दान यश का स्थान है। ३ सत्य स्वर्ग का मुख्य स्थान है। ४ और शील सुख का मुख्य स्थान है।

प्रश्न—१ मनुष्य का आत्मा कौन है ? २ देव कृत सखा कौन है ? ३ मनुष्य का उपजीवन कौन है ? ४ मनुष्य का पालन करने वाला कौन है ?

उत्तर—१ पुत्र मनुष्य का आत्मा है। २ भार्या देव का किया (श्रेष्ठ) मित्र है। ३ वृष्टि मनुष्य का उपजीवन है ? ४ और दान मनुष्य का पालन करने वाला है।

प्रश्न—१ धन्यों में उत्तम क्या है ? २ धनोंमें उत्तम क्या है ? ३ लाभोंमें उत्तम क्या है ? और सुखोंमें उत्तम सुख क्या है ?

उत्तर—१ धन्यों में उत्तम धन्य चातुर्य्य। २ धनों में उत्तम धन वेद विद्या। ३ लाभों में उत्तम लाभ अरोगता। ४ और सुखों में उत्तम सुख सन्तोष है।

प्रश्न—१ लोक में श्रेष्ठ धर्म कौन है ? २ सदा फलदाई धर्म कौनसा है ? ३ किसको वश में करके मनुष्य शोच नहीं करते और ४ संधि किनके साथ की छूटती नहीं ?

उत्तर—१ दया श्रेष्ठ धर्म है। वेदोक्त धर्म सदा सुख रूप फल देने वाला है। ३ मन को वश में करके मनुष्य शोचते नहीं। ४ सज्जनों से मैत्री कभी टूटती नहीं।

प्रश्न—१ किसे छोड़ मनुष्य प्रिय होता है ? २ किसे छोड़

मनुष्य सोचता नहीं ? ३ किसे छोड़ मनुष्य धनवान् होता है ? ४ किसको छोड़ पुरुष सुखी होता है ?

उत्तर—१ मान को छोड़ प्रिय हो जाता है । २ क्रोधको छोड़ शोचता नहीं । ३ कामको त्याग धनवान् होता है और ४ लोभ को त्याग मनुष्य सुखी हो जाता है ॥

प्रश्न—१ ब्राह्मणों को दान क्यों दिया जाता है ? नट नर्तक के लिये क्यों दिया जाता है ? ३ नौकरों को किस लिये दिया जाता है ? और ४ राजाओं को किस लिये दिया जाता है ?

उत्तर—१ ब्राह्मणों को धर्म के लिये दान दिया जाता है । नट नर्तकों को यश के लिये । ३ भृत्यों को पालना के लिये । ४ और राजाओं को अपने ऐश्वर्य की बढ़ती के लिये ।

प्रश्न—लोक किससे आच्छादित है ? मनुष्य किससे प्रकाश नहीं करता है ? ३ मित्रों को किस लिये त्याग देता है ? और ४ स्वर्ग को किस कारण से नहीं जा सकता ?

उत्तर—१ लोक अज्ञान से ढका हुआ है । २ तमो गुण से मनुष्य प्रकाश नहीं करता । ३ मनुष्य लोभ से मित्रों को छोड़ देता है । ४ और कुसंग से मनुष्य स्वर्ग को नहीं जा सकता ।

प्रश्न—१ पुरुष मृत समान कैसे होता है ? २ राष्ट्र किस प्रकार मरता है ? ३ श्राद्ध मृत किस प्रकार से होता है ? ४ यज्ञ मृत कैसे होता है ?

उत्तर—१ दरिद्र पुरुष मृतक के समान है । २ राज्य प्रबंध बिना देश मुर्दा है । ३ वेदज्ञ ब्राह्मण के बिना श्राद्ध मृतक के समान है । ४ यज्ञ दक्षिणा के बिना मृत है ।

प्रश्न—१ दिशाओं में उत्तम दिशा कौन है ? २ उत्तम

जल कौन है ? ३ अन्न क्या है ४ विष क्या है ? ५ श्राद्ध का काल क्या है ?

उत्तर—१ सन्त उत्तम दिशा (मार्ग बताने वाले) हैं ? २ उत्तम जल मेघ का है ? ३ अन्नों का जीवनरूप गौ है ? ४ याचना (भीख मांगना) विष है ? ५ श्राद्ध का काल वह है जब उत्तम ब्राह्मण मिले ।

प्रश्न—१ तप का क्या लक्षण है ? २ दम किसे कहते हैं ? ३ उत्तम क्षमा कौनसी है ? और लज्जा क्या कहाती है ?

उत्तर—१ अपने धर्म की पालना तप है । २ मन का वश करना दम है । ३ द्वंद (सुख दुःख हानि लाभ) का सहना क्षमा । ४ और पापाचार से हट जाना ही लज्जा है ।

प्रश्न—१ ज्ञान क्या होता है ? २ शम किसे कहते हैं ? ३ हे राजन् ! परमदया क्या है ? और आर्जव क्या होता है ?

उत्तर—१ तत्व अर्थ का जानना ज्ञान है । २ चित्त की शान्तता शम कहाता है । ३ सब प्राणियों के सुख की इच्छा दया है । ४ समदृष्टि सच्ची आर्जवता (कोमलता) है ॥ ६० ॥

प्रश्न—१ पुरुषों का दुर्जय शत्रु कौन है ? २ भारी रोग क्या है ? ३ साधु कौन है और ४ असाधु कौन है ?

उत्तर—१ क्रोध दुर्जय शत्रु है । २ लोभ भारी रोग है । ३ सब जीवों के हित करने वाला साधु होता है और ४ दयाहीन पुरुष असाधु कहाता है ।

प्रश्न—१ राजन् ! मोह क्या है ? २ मान क्या है ? ३ आलस्य किसे कहते हैं ? शोक क्या होता है ?

उत्तर—१ धर्मका न जानना ही मोह है । २ अपने को

सब से श्रेष्ठमानना मान है। ३ धर्म का अनुष्ठान न करना आलस्य है। ४ अज्ञान ही शोक है।

प्रश्न—१ ऋषियों की कही स्थिरता कौन है? २ उनकी कही धीरता कौन है? ३ उत्तम स्नान कौनसा है? ४ और दान किसे कहते हैं?

उत्तर—१ अपने धर्म में दृढ़ता स्थिरता है। २ इन्द्रियों का रोकना ही धीरता है। ३ मनके मलका त्याग उत्तम स्नान है। ४ प्राणियों (दीन अनाथों) की रक्षा उत्तम दान है।

प्रश्न—१ पंड़ित पुरुष कौन है? २ नास्तिक कौन है? और ३ मूर्ख कौन कहाता है? ४ काम क्या है तथा ५ मत्सर कौन है?

उत्तर—धर्म के जानने वाला ही पंडित है। २ नास्तिक (वेद निन्दक) ही मूर्ख है। ३ संसार की वासना रखना ही काम है। ४ "दूसरे की संपत् देख कर" हृदय दुखाना मत्सर भाव है।

प्रश्न—१ अहंकार क्या है? २ दम्भ कौन है? ३ दैव (भाग्य) क्या है? ४ और पिशुनता (चुगली) क्या है?

उत्तम—१ महा अज्ञान ही अहंकार है। २ दिखाने के लिये किया धर्म दम्भ (पाखंड) है। पूर्व जन्म में किये दानका फल दैव है। ४ दूसरों के दूषण निकालना पिशुनता है।

प्रश्न—१ राजन् धर्म अर्थ काम परस्पर विरोधी हैं, इन नित्य विरोधियों का एक स्थान पर संगम कैसे होता है?

उत्तम—१ जब धर्मात्मा पुरुष और धर्मप्रिय पत्नी आपस में एक दूसरे के अनुकूल (वशकारी) व्यवहार करते हैं तब धर्म अर्थ काम का संगम हो जाता है।

प्रश्न—१ अक्षय नरक किस कर्म से प्राप्त होता है ?

उत्तम—१ दानार्थी वेद वित् ब्राह्मण को स्वयंही देनेके निमित्त प्रथम बुला कर फिर देने से नट जाय वह अक्षय नरक को प्राप्त होता है। और वेद धर्म शास्त्र ब्राह्मण देव पितृ धर्म में जो मिथ्या बुद्धि रखता है वह अक्षय नरक में जाता है। और धन रहने पर भी जो मनुष्य न दान देता है न भोगता है और "दान दूंगा" ऐसा कह कर जो पीछे नट जाता है वह अक्षय नरक में प्राप्त होता है।

प्रश्न—१ राजन् ब्राह्मणत्म कुल से होता है २ आचार से होता है ३ विद्याभ्यास से होता है अथवा वेदाध्ययन से होता है यह निश्चित रूप से कहो।

उत्तर—

शृणु यक्ष कुलं तात ! न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥
३१३ । १०८ ॥

वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः। १०९॥

पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः यः क्रियावान् स पंडितः॥

चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादातिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरोदांतः स ब्राह्मण इति स्मृतः ११११॥

हे यक्ष ! सुनो, ब्राह्मणत्व में न कुल कारण है, न विद्या न वेद-पाठ, किन्तु ब्राह्मणत्व में केवल वृत्त "स्वधर्माचरण" ही कारण है, इसमें सन्देह नहीं ॥१॥ ब्राह्मण को विशेष रूप से "वृत्त" की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि जिसका वृत्त क्षीण नहीं, वह क्षीण नहीं, जिसका वृत्त क्षीण है, वह क्षीण है ॥२॥ पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले, शास्त्र-चिन्तक क्रिया-हीन होने से सब व्यसनी हैं, और जो ब्राह्मण कर्मसे युक्त है, वह पंडित है ॥३॥ चार वेद जानने वाला ब्राह्मण यदि दुष्ट आचरण वाला है, तो वह शूद्र से भी नीच है, और जो अग्निहोत्र आदि करता हुआ इन्द्रियों का दमन किये है, वही ब्राह्मण कहा है ॥४॥

प्रश्न—१ प्रियवचन कहने वाला क्या लभता है ? २ विचार कर करने वाला क्या लभता है ? ३ बहुत मित्रों वाला क्या लभता है ? और ४ धर्मरत पुरुष क्या लभता है, कहो ?

उत्तर—१ प्रिय बोलने से सर्वप्रिय होता है । २ विचार कर काम करने वाला अधिक जीतता है । ३ बहुत मित्रों वाला सुख पूर्वक रहता है । ४ और धर्मरत मनुष्य सद्गति को प्राप्त होता है ।

प्रश्न—

को मोदते किमाश्चर्यं कः पन्था का च वार्तिका ।
वद मे चतुरः प्रश्नान्मृता जीवन्तु बांधवाः ११४॥

१ प्रसन्न कौन है ? २ आश्चर्य्य क्या है ? ३ मार्ग क्या है ? ४ वार्ता क्या है ?

उत्तर—

पञ्चमेऽहनि षष्टे वा शाकं पचति स्वगृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥११५॥

हे वारिचर! जो मनुष्य अपने घर में पांचवें वा छठे दिन शाक पात खाता है, परन्तु वह ऋणी नहीं है, और प्रवासी अर्थात् परदेशवासी (दूसरों के नियम में चलाये जाने वाले देशों में रहने वाला) नहीं है, वह सुखी है।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषा स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ११६

दिन दिन प्राणी यमलोक को जाते हैं, बाकी इन्हें देखकर स्थिरता की इच्छा करते हैं, इससे परे आश्चर्य क्या है। (यही आश्चर्य है)।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना,
नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्॥
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः स पंथा ॥११७॥

युक्ति स्थिति-हीन है, श्रुतियें भिन्न २ अर्थ बताती हैं, ऋषि भी कोई एक ऐसा नही जिसका मत सब मानें, धर्म का तत्व गूढ है, इसलिये महाजन (महात्मा) जिधर चलें वही मार्ग है।

अस्मिन्महामोहमये कटाहे,
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन ।
मासर्तु दर्वी परिघट्टनेन,
भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥११८॥

इस महा मोह रूप कडाहे को सूर्य और अग्नि से रात दिन रूप इन्धन करके काल प्रभु प्राणियों को इसमें पकाता है, और मास ऋतु रूप कडछी से हिलाता है, यही वार्ता है।

सहोदर और सौतेले भाईमें समदृष्टि ।

प्रश्नों का ठीक २ उत्तर सुनने पर यक्ष ने कहा, राजन् ! इनमें से एक जिसे तू चाहे, उसे मैं जीवन दान देता हूं। अतः विचार कर एक को उठवाले।

श्यामो य एव रक्ताक्षो बृहच्छाल इवोत्थितः ।
व्यूढोरस्को महाबाहुर्नकुलो यक्ष ! जीवतु ॥ वन० १२३

राजा युधिष्ठिर ने कहा, यदि आप प्रसन्न हैं, तो यह श्याम वर्ण रक्त नेत्रों वाला बड़े शाल के वृक्ष समान ऊंचा, बड़ी छाती वाला, लम्बी भुजाओं वाला, मेरा भाई नकुल जीवित होजाय।

यह सुन यक्ष ने बार २ कहा—राजन् ! भीम, अर्जुन जैसे बलवान्, धनुर्धारी, सर्वत्र विजय पाने वाले, अति-प्रिय, मा जाये (सगे) भाइयों को छोड़ कर नकुल जो सौत माता

(विमाता) का पुत्र और गुणों में भी विख्यात नहीं, क्यों जगाना चाहते हैं ?

इसके उत्तर में बल-पूर्वक धर्मपुत्र ने कहा, हे यक्षराज ! मेरा धर्म मुझे भाइयों में समता सिखाता है, विषमता नहीं, और न माताओं में विषमता धर्म सम्मत है । "राजा सदा धर्म-शील हो" ऐसा मुझे विद्वान् पुरुष सदा से कहते रहे हैं । अतः मैं धर्म से चलायमान नहीं होना चाहता, "नकुलो यक्ष ! जीवतु" ।

कुन्ती चैवतु माद्रीच द्वे भार्ये हि पितुर्मम ।
उभे सपुत्रे स्यातांवै इतिमे धीयते मति ॥

३१३ । १३१ ॥

यथा कुन्ती तथा माद्री विशेषो नास्ति मे तयोः ।
मातृभ्यां सम मिच्छामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥१३२

मेरी "कुन्ती और माद्री" दो मातायें हैं वे दोनों पुत्र वती हों यह मेरी इच्छा है । मुझे जैसी कुन्ती है वैसी ही माद्री है इनमें कुछ भेद नहीं अतः मैं दोनों में समभाव रखता हुआ यही चाहता हूं कि "नकुल जीता हो जाय"

इस समभाव से प्रसन्न होकर यक्ष ने चारों भाईयों को जीवित (सावधान *) कर दिया और धर्म पुत्र से कहा मैं प्रसन्न हूं तू तीन वर इच्छानुसार मांग !

---

* कई लोग कहा करते हैं पांडव मरे हुये कैसे जीवित होगये ? इस पर हमारे मन्तव्य यह है कि मरने से अभिप्राय यहाँ मूर्छित, और जीवित से सावधान है, अन्य नहीं । वनपर्व

वर प्राप्ति ।

१ पहले वर से ब्राह्मण की जो होम अरणि हिरन ले गया था जिसकी ढूंड में पांडव निकले थे" वह मांगी। २ दूसरे वर से यह मांगा कि हमार वनवास के १२ वर्ष पूर्ण होगये हैं तेरहवां गुप्त वास का वर्ष आने वाला है वह इच्छानुसार गुप्त ही व्यतीत हो जाय मांगा। जिसके उत्तर में यक्षने विराट् नगर उत्तम बताया, जहां इन्होंने यह वर्ष निर्विघ्न पूर्ण किया। और तीसरे वर में अपने लिये नीचे का भाव मांगा।

जयेयं लोभमोहौ च क्रोधं चाहं सदा विभो ।
दाने तपसि सत्येच मनो मे सततं भवेत ॥३१४।१४

मैं सदा लोभ मोह और क्रोध को जीत लूं तथा हे विभो ! मेरा मन निरन्तर दान तप और सत्य 'धर्म' में स्थिर रहे ॥ "तथास्तु" कह यक्ष चले गये।

यक्ष कौन था ?

पाठक जानना चाहते होंगे ये यक्ष जिसने भीमादि को इतनी देर मृतवत् मूर्छित रखा कौन था ? इसका उत्तर वनपर्व अध्याय ३१५ श्लोक ५। ६ से देते हैं।

प्रश्न—

स भवान्सुहृदोऽस्माक मथवा नः पिता भवान् ॥५

के अ० ११३ के श्लोक २० में शब्द निपातिता और ४१ में मृदिता से भी गिराना या मर्दित करना ही स्पष्ट होता है।

(सम्पादक)

युधिष्ठिर पूछते हैं श्रीमान् ! आप हमारे सुहृद् हैं ? वा हमारे पिता (धर्म) हैं ?

उत्तर—

अहं ते जनकस्तात धर्मा मृदु पराक्रम ॥ ६॥

यक्ष कहते हैं हे सौम्य ! मैं तेरा जन्म दाता पिता धर्म हूं तुझे और तेरे धार्मिक गुणों को देखने आया हूं ।

परिशिष्ट संख्या २

धर्मपुत्र का भक्त परिपालन ।

तीन आश्रमों के धर्मों का पालन कर युधिष्ठिर महाराज भीम आदि भाईयों तथा द्रौपदी सहित हिमालय में चले गये, चलते २ वर्फ के टीलों में पहले द्रौपदी फिर सहदेव, नकुल अर्जुन, भीम सब क्रम से गिर कर मर गये अन्त में केवल एक कुत्ता उनके साथ रहा जो घर से उनके पीछे २ चल पड़ा था। भाइयों तथा द्रौपदी के मरण पर जब धर्म पुत्र ने कुछ भी शोक मोह न किया तब प्रसन्न हो इन्द्र स्वर्ग से रथ लेकर आये और बोले-

धर्मात्मन् ! यह स्वर्ग से आपके लिये रथ आया है बैठिये और स्वर्ग पधारिये ।

यह सुन धर्म पुत्र बोले—यहां मेरे भाई और सुख योग्य देवी द्रौपदी गिर गई है इन्हें भी ले चलें तो मैं चलता हुं बिना भाईयों के मैं स्वर्ग नहीं चाहता ।

इन्द्र—आपके भाई द्रौपदी साथ स्वर्ग में ही मिलेंगे, आप इसी देह से स्वर्ग को चलें ।

धर्मपुत्र—देवराज ! अच्छा तो यह मेरा भक्त कुत्ता है नित्य मेरे साथ रहता है इसे बैठाइये ।

इन्द्र—राजन् ! आप देव भाव को प्राप्त हुए हैं स्वर्ग में पशु नहीं जा सकते इसे यहीं छोड़ चलिये ।

धर्मपुत्र—देवराज ! मैं आर्य हूं मुझ से साथी को त्यागने का अनार्य कर्म नहीं हो सकता यदि यह स्वर्ग में नहीं जासकता तो मैं इसे त्याग स्वर्ग सुख संभोग ही नहीं चाहता ।

इन्द्र—राजन् ! स्वर्ग में इसका जाना कठिन है इसके छोड़ने में पाप नहीं विचार से काम कीजिये ।

भक्त त्यागं प्राहुरत्यत्त पापं,
तुल्यं लोके ब्रह्म वध्या कृतेन ।
तस्मान्नाहं जातु कथंचनाऽद्य,
त्यक्ष्याम्येनं स्वसुखार्थी महेन्द्र ॥
भीतं भक्तं नान्यदस्तीति चार्तं,
प्राप्तं क्षीणं रक्षणे प्राणलिप्सुम् ।
प्राण त्यागा दप्यहं नैव मोक्तुं,
यतेयं वै नित्यमेतद्व्रतं मे ॥ महा प्र० ३।११।१२

धर्मपुत्र—महेन्द्र ! भक्त का त्यागना अति पाप ब्रह्महत्या सम कहा है; इस लिये केवल अपने सुखके लिये मैं इसे छोड़ने को आज किसी तरह भी तय्यार नहीं । और मेरा यह व्रत है डरे हुए, दुःखी, अनाश्रय, रक्षा चाहने वाले, भक्त, क्षीण को

प्राण देकर भी आश्रय दूं इस लिये इसे छोड़ मैं स्वर्ग सुख भोगने के लिये तय्यार नहीं।

देवराज—ने धर्म पुत्रका यह निश्चय देख प्रसन्न होकर कहा पुत्र! मैं प्रसन्न हूं तेरे धार्मिक भावों से जो तू कुत्तों के पालन निमित्त स्वर्ग सुख छोड़ता है सचमुच स्वर्ग लोक में तुझसा भक्त पालक ऊंच नीच में सम बुद्धि रखने वाला कोई न होगा। मैं तेरा पिता हूं तेरी परीक्षा के लिये जैसे पहले यक्ष बना था, आज इन्द्र बना हूं। सच मुच धर्म के पुत्र में जैसे और जो २ गुण चाहिये वे तुझ में सब विद्यमान् हैं तेरा सदा कल्याण हो।

एक कलियुगी राजा पर प्रभाव।

ऊपर की भक्त वत्सलता द्योतक कथा को चाहे कोई समालोचक कविकल्पना ही मानें, पर आर्य्य जाति के जीवनों पर इसका प्रभाव स्थायी तथा व्यापक होचुका है, जिसका एक उदाहरण "राजा चन्द्रापीड और चमार" की कथा से (जो ईसा की सातवीं सदी के आरम्भ में हुई और जिसका विस्तृत वर्णन पण्डित-प्रवर कविवर कल्हण अपने रचित संस्कृत इतिहास "राज-तरङ्गिणी" के चतुर्थ तरङ्गमें किया है) मिलता है। कथा इस प्रकार है।

महाराज चन्द्रापीड काश्मीर में त्रिभुवन स्वामी का मन्दिर बनाने लगे, मन्दिर की भूमि के साथ लगती एक चमार की झोंपड़ी थी, कारीगरों ने उसे मन्दिर की पूर्त्ति के लिये लेना चाहा। चमार ने देने में अनिच्छा प्रकट की, मन्त्रियों ने राजा को सूचना दी, राजा ने राजकर्मचारियों को धिक्कारा, कि

यदि उसकी प्रसन्नता नहीं, तो तुम उसे क्यों तंग करते हो, हम न्याय-विरुद्ध उसे वाधित नहीं कर सकते। इतने में एक दूत ने कहा, वह चमार सरकार को साक्षात् देखना चाहता है, यदि अन्दर आने की आज्ञा न हो तो आंगन में ही खड़ा रह कर अपना विचार कह देगा। दूसरे दिन उसे राजा से मिलाया गया। राजा ने कहा, क्या तुम ही इस पुण्य-कर्म में विघ्न कर रहे हो, यदि तुम्हें वह घर सुन्दर जचता है, तो हम उससे अच्छा तुम्हें बनवा देते हैं। जितना धन चाहिये, उतना मांगलो। (राजा से चमार की बात चीत में कुछ राजकर्मचारी बड़ बड़ा सा रहे थे) इस पर चमार ने कहाः—

हे राजन् ! मैं कुछ प्रार्थना करना चाहता हूं, शान्त-चित्त से सुनिये।

नाहमूनः शुनो नास्ति काकुत्स्थात्पार्थिवः पृथुः।
क्षुभ्यन्तीवाद्य तत्सभ्या संलापेऽस्मिन् किमावयोः
जातस्य जन्तोः संसारे भंगुरः कायकञ्चुकः।
अहन्ताममताख्याभ्यां शंकुभ्यामेव बध्यते ॥२॥
कङ्कणाङ्गदहारादिशोभितां भवतां यथा।
निष्किंचनानामस्माकं स्वदेहेऽहंक्रिया तथा ॥३॥
देवस्य राजधान्येषा यादृशी सौधहासिनी।
कुटी घटमुखानद्धतमोरिस्तादृशी मम ॥४॥

आजन्मनः साक्षिणीयं मातेव सुखदुःखयोः ।
मठिका लोठ्यमानाद्य नेक्षितुं क्षम्यते मया ॥५॥
नृणां यद्वेश्महरणे दुःखमाख्यातुमीश्वरः ।
तद्विमानच्युतो मर्त्यो राज्यभ्रष्टोऽथ पार्थिवः ॥६॥
एवमप्येत्य मद्वेश्म साचेद्देवेन याच्यते ।
सदाचारानुरोधेन दातुं तदुचितं मम ॥७॥

मैं कुत्ते से कम नहीं, आप धर्मपुत्र युधिष्ठिर से बड़े नहीं, तो मेरे आपके सम्वाद में ये लोग क्यों क्षुब्ध होरहे हैं । राजन् सुनिये संसार में जन्मे हुये जन्तु का टूटा फूटा यह शरीर रूपी चोला अहन्ता ममता (मैं मेरा) दो शङ्कुओं के सहारे संभाला जाता है । कङ्कण, केयूर और हार आदि से अलंकृत अपने शरीर में जैसा अहङ्कार आपको है, वैसा ही हम निष्कि-चनों को भी अपने नंगे शरीर में है ।

बड़े २ विशाल महलों से सुशोभित अपनी राजधानी जिस प्रकार आपको प्यारी है, वैसे ही मुझे अपनी वह छोटी सी कुटिया प्यारी है, जिसकी खिड़की घड़े के घेरे से बनाई गई है । जन्म-काल से लेकर माता के समान सुख दुःख की साक्षिणी इस कुटिया को ढहती हुई मैं नहीं देख सकता । मकान छिनने से जो दुःख मनुष्यों को होता है, उसका वर्णन कोई विमान से गिरा हुआ (स्वर्ग-च्युत) पुरुष और राज्य-भ्रष्ट राजा ही कर सकता है । हां अगर यों आप मेरे मकान पर

चल कर मांगे, तो सदाचार के अनुरोध से वह कुटिया मुझे दे ही डालनी चाहिये, यह और बात है।

इति तेनोत्तरे दत्ते भूभृद्गत्वा तदास्पदम्।
कुटीं जग्राह वित्तेन नाभिमानः शुभार्थिनाम् ८॥

चमार का यह उत्तर सुन राजा उसके मकान पर गया और धन देकर उससे वह कुटिया लेली। सच है, शुभार्थी मनुष्यों को अभिमान न करना चाहिये।

पाठक! देखिये, आर्य्य-राजाओं की नम्रता, न्याय-प्रियता का नमूना एक दरिद्र चमार के सत्य-पक्ष के सामने किस प्रकार झुक जाते थे, और अपने पूर्वजों की मर्यादा का कभी उल्लङ्घन न करते, यद्यपि राज-मन्त्री-मण्डल दूसरी ओर ही लेजाना चाहता हो। इसके सामने तुलना करें उन अनार्य्य राजाओं की नीति की जो देश भर के विद्वानों की चिल्लाहट को न सुनते हुए किसी व्यापार कर्म वा निजू हित के लिये देव-मन्दिर और सहस्रों वर्षों से बसी हुई वस्तियों को भी उजाड़ कर दम लेते हैं। गृह-वासियों की प्रसन्नता तो क्या उन्हें दिन काटनेके लिये स्थान देना भी ज़रूरी नहीं समझते। कहीं २ तो देव-मन्दिरों को गिरा घोड़शाला बनाई जाती है। साथ ही वर्त्तमान हिन्दुओं की घोर निर्दयता को भी देखिये, जिनके बड़े साथ रहने वाले कुत्ते को स्वर्गीय विमान में बिठाना आवश्यक धर्म समझते थे, जिनके महाराज चमार के घर जाकर कुटिया मांगते थे, उनके वंशधर विजातियों के पादाक्रान्त होने पर भी मिथ्या अभिमान के मारे हुए, सहस्रों वर्षों से अपने धर्म, देश, जाति के हित अहित में साथ देने

वाले परमभक्त शूद्रों को अछूत कहकर न केवल अपनाते नहीं, किन्तु उन्हें कूओं से जल न देकर सभा-समाज में बैठने का निषेध कर पर-धर्म में जाने के लिये विवश कर रहे हैं।

हम नहीं समझ सकते मालाबार के द्विजाति विद्वान् शूद्रों को मार्ग पर से भी २० बीसियों हाथ दूर रखने की आज्ञा देते हुए महाराज युधिष्ठिर की आत्मा को कितना दुःख देते हैं ? और उनका यह क्रूर कर्म भारतीय धर्म के कितना अनुकूल है ? ईश्वर करे, महाभारत के पाठक अपने पूर्वजों का आचरण बनाकर आर्य्य-जाति परसे निर्दयता का कलङ्क-तिलक शीघ्र मिटा दें !

स्वर्गयात्रा २

भाईयों के बिना स्वर्ग नहीं चाहिये
भाईयों के संग मुझे नरक अच्छा है।

इन्द्र धर्मपुत्र को इसी देह से विमान में बैठा कर स्वर्ग में ले गये, पार्थिव देह में युधिष्ठिर को देख देवता विस्मित हो बातें करने लगे। स्वर्ग में पहुंचते ही देवर्षि नारद ने स्वर्ग सुखों की सूचना दी। पर धर्मात्मा युधिष्ठिर ने स्वर्ग सुख की कुछ भी परवाह न करते हुए कहा यह स्वर्ग अच्छा हो वा बुरा मैं मातृलोक में जाना चाहता हूं और किसी लोक की मुझे चाह नहीं।

देवराज—ने कहा धर्मात्मन् ! पुण्य कर्मों से प्राप्त किये

इस लोक में बसो दूसरे लोगों की इच्छा मत करो। इस पर फिर धर्मपुत्र ने कहा—

तैर्बिना नोत्सहे वस्तुमिह दैत्यनिबर्हण !
गन्तुमिच्छामि तत्राहं यत्र ते भ्रातरो गताः ॥
यत्र सा बृहतीश्यामा बुद्धिसत्वगुणान्विता ।
द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा यत्र चैव गता मम ॥

महा प्रस्था० ३ । ३७, ३८

देवराज मैं भाईयों के बिना स्वर्ग में रहना नहीं चाहता, मैं तो वहां ही जाना चाहता हूं जहां मेरे भाई हों और बुद्धि विद्या आदि गुणों से युक्त नारी रत्न द्रौपदी हो।

दुष्ट के साथ स्वर्ग में न रहूंगा

जब स्वर्ग में धर्मपुत्र किञ्चित काल ठहरे तो उन्हें मालूम हुआ कि यहां दुर्योधन बड़ी प्रतिष्ठा से विराजमान हैं, तब देखते ही युधिष्ठिर जोर से बोले देवराज ! मैं उस स्वर्ग में नहीं रहना चाहता जहां जाति हत्यारा, देशघाती, संसार नाशक, स्त्रियों को प्रतिष्ठा हरने वाला दुर्योधन प्रतिष्ठा पारहा हो। देवताओ ! बताओ यदि अधर्मी, पापी, बन्धु द्रोही दुर्योधन को ये उत्तम लोक प्राप्त हैं तो त्यागी, सत्यवादी, शूरवीर महारथी क्षत्रियों को कौन लोक प्राप्त होंगे ? मैं उन लोकों को देखना चाहता हूं।

कर्णं चैव महात्मानं कौन्तेयं सत्य संगरम् ।
धृष्टद्युम्नं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान् ॥

विराटद्रुपदौ चैव धृष्टकेतुमुखांश्चतान् ।
जुहुवुर्ये शरीराणि रणवन्हौ महारथाः ॥
राजानो राजपुत्राश्च येमदर्थे हतारणे ।
क्वते महारथा सर्वे शार्दूलसम विक्रमाः ॥
कच्चिन्नतैरवाप्तोयं नृपैर्लोकोऽक्षयः शुभः ।
न तैरहं विनारंस्ये, भ्रातृभिर्ज्ञातिभिस्तथा ॥
किं मेभ्रातुर्विहीनस्य स्वर्गेण सुरसत्तमाः ।
यत्रते मम स स्वर्गो नायं स्वर्गो मतो मम ॥

स्वर्गा० अ० १, २

सत्य प्रतिज्ञा वाला महात्मा कर्ण कहां है ? धृष्टद्युम्न सात्यकि, धृष्टद्युम्न के पुत्र महाराज विराट् द्रुपद धृष्टकेतु आदि वीर जिन्हों ने मेरे लिये रणाग्नि में अपने शरीरों की आहुतियें करदी हैं वे शूरवीर पराक्रमी महारथी कहां हैं ? मैं उन्हें देखना चाहता हूं । क्या इन नरपालों ने यह उत्तम लोक प्राप्त नहीं किया ? यदि वे स्वर्ग में नहीं तो मैं उन भाईयों और सजातीय बन्धुओं के बिना स्वर्ग में रमण नहीं करूंगा ।

देवता लोगो ! भ्रातृ विहीन मुझ को स्वर्ग सुख से क्या आनन्द है ? सच तो यह है कि जहां मेरे भाई बन्धु हों वह स्वर्ग है यह स्वर्ग नहीं अर्थात् मैं भाईयों के साथ नरक वास को ही स्वर्ग सुख समझूंगा । यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा समझिये

कि मैं अकेला स्वर्ग में न रहूंगा । स्वार्थी भारतीय प्रजा को अपने इस आदर्श महाराज, अजातशत्रु की पवित्र इच्छा को बार २ पढ़ कर विचारना चाहिये कि क्या हमारे पूर्वज हमें यही शिक्षा देते हैं कि समय असमय हम सदा अपना ही उल्लू सीधा करें, देश, जाति, परिवार और सधर्मी चाहे मरें वा जीवें । और क्या यही मार्ग हमारे जीवन को लंबा, सुखी,शान्त करने वाला है वा सदा के लिये जाति को नरक पहुंचाने के साथ अपने को भी दुःख, निन्दा, कृतघ्नता के कूप में डालने वाला है । साथियों को मंझधार में छोड़ पार होने की इच्छा वाले उतावलो ! तथा विश्वास हीनो ? याद रखो एक बेड़े में बैठे हो । जब तक सब का सुख न चाहोगे एकले पार न जा सकोगे अपने बड़ों के उदार चरित से शिक्षा लेकर अपना कल्याण करो ।

धर्मपुत्र की नरक यात्रा वा नरक वास ।

जब धर्मपुत्र ने प्रतिज्ञा पूर्वक कह दिया कि मैं अकेला स्वर्ग में न रहूंगा, भाईयों संग मुझे नरक अच्छा मालूम होता है तो आप को नरक में लेजाया गया, नरक में नाना प्रकार के घोर, कठोर, दुःखदायी दंड पापी लोगों को दिये जारहे थे, और नरकलोक यथार्थ में दुःख विशेष स्थल बना हुआ था । पर " जहां धर्मी वहां स्वर्ग " के मत अनुसार जब ही धर्मपुत्र वहां गये वह स्थान सुखरूप हो गया और जब वहां से हटने लगे तो तपने लग गया । जिस से पापियों के मन में पुण्य के लिये श्रद्धा हो गई ।

एक प्रश्न का उत्तर — } पाठक प्रश्न करेंगे कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर सा महा पुण्यात्मा नरक में क्यों गया ?

इस का उत्तर कवियों ने नीचे लिखे अनुसार दिया है ।

नरक वासियों के दुःख देखने और उन्हें पुण्य के लिये श्रद्धा पैदा करने ।

धर्मपुत्र से द्रोण वध प्रसंग में नीतिवानों ने बहाने से "अश्वत्थामा हतः कुञ्जरो वा नरोवा" * कहला कर झूठ बुलाया था इस झूठ का फल बहाने से नरक दर्शन थोड़े काल के लिये कराया गया ।

धर्मपुत्र का भ्रातृ स्नेह प्रसिद्ध था इस की परीक्षा करने के लिये जैसे सरोवर पर यक्ष द्वारा परीक्षा की थी, तथा भक्त पालन की परीक्षा जैसे कुत्ता और स्वर्गीय विमान प्रसंग में की थी वैसे ही यहां नरक दर्शन से की गई ।

युधिष्ठिर की धर्म परीक्षा " सत्संग परीक्षा " कि क्या वह दुर्योधन से अन्यायी राजा के राज्य में स्वर्गवास की इच्छा रखते हैं वा सत्संग की इच्छा रखते हुए स्वर्ग तक को छोड़ने के लिये ही तयार नहीं किन्तु नरक जाने को भी तयार है । जैसा कि अन्य महात्माओं के जीवन से भी पाया जाता है । और मनुस्मृति में भी लिखा है ।

नाधार्मिके वसेद्राज्ये ।

ऊपर की कथा चाहे कवि कल्पना ही हो पर शिक्षाप्रद होने से लिखदी है ।

---

* हमने तो धर्मपुत्र द्वारा कहा यह श्लोक सारे महाभारत में कहीं देखा नहीं । सं० रा० वैद्य ।

परिशिष्ट संख्या ४

आर्यावर्त देशीय–राजवंशावली।

अब आर्यावर्त देशीय राजवंश कि जिस में श्रीमान् महाराज " युधिष्ठिर " से लेकर महाराज " यशपाल " हुए हैं उस इतिहास को लिखते हैं। और श्रीमान् महाराज "स्वायंभव " मनु से ले के महाराज " युधिष्ठिर " पर्यन्त का इतिहास महाभारत आदि में लिखा ही है।

और इस से सज्जन लोगों को इधर के कुछ इतिहास का वर्तमान विदित होगा। यद्यपि यह विषय विद्यार्थी संमिलित " हरिश्चन्द्र चन्द्रिका " और मोहन चन्द्रिका जो कि पाक्षिक पत्र श्रीनाथद्वारे से निकलता था उस से हमने अनुवाद किया है। यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या पुस्तकों का खोज कर प्रकाश करेंगे तो देश को बड़ा ही लाभ पहुंचेगा।

उस पत्र के सम्पादक महाशय ने अपने मित्र से एक प्राचीन पुस्तक जो कि विक्रम के सं० १७८२ का लिखा था उस से ग्रहण कर अपने सं० १९३९ वि० मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष १९–२० किरण अर्थात् दो पाक्षिक पत्रों में छापा है सो निम्न लिखे प्रमाण जानिये।

———

वंशावली ।

इन्द्रप्रस्थ में आर्य्य लोगों ने श्रीमन्महाराज "यशपाल" पर्यन्त राज्य किया, जिनमें श्रीमन्महाराज "युधिष्ठिर" से महाराज "यशपाल" तक वंश (पीढ़ी) अनुमान १२४ राजा, तथा वर्ष ४१५७, * मास ६, दिन १४, समय में हुए हैं । इनका ब्योरा—

राजा	शक	वर्ष	मास	दिन
आर्य्यराजा	१२४	४१५७	६	१४

श्रीमन्महाराज युधिष्ठिरादि वंश अनुमान पीढ़ी ३०, वर्ष १७७०, मास ११, दिन १० । इनका विस्तार—

संख्या	आर्य्य राजा	वर्ष	मास	दिन
१	राजा युधिष्ठिर	३६	८	२५
२	परीक्षित	६०	०	१
३	राजा जनमेजय	८४	७	२३
४	राजा अश्वमेध	८२	८	२२
५	द्वितीय राम	८८	२	८
६	छत्रमल	८१	११	२७
७	चित्ररथ	७५	३	१८
८	दुष्ट शैल्य	७५	१०	२४
९	उग्रसेन	७८	७	२१

---

* युधिष्ठिर के संवत् को ५००० वर्ष से ऊपर होचुका है, इस वंशावली में लगभग ८५० वर्ष कम पड़ता है, सम्भव है, कुछ पीढ़ी बीच में चूक गई हों । (सम्पादक)

संख्या	आर्य्य राजा	वर्ष	मास	दिन
१०	शूरसेन	७८	७	२१
११	भुवनपति	६९	५	५
१२	रणजीत	६५	१०	४
१३	ऋक्षक	६४	७	४
१४	सुखदेव	६२	०	२४
१५	नरहरिदेव	५१	१०	२
१६	सुचित्ररथ	४२	११	२
१७	शूरसेन (दूसरा)	५८	१०	८
१८	पर्वतसेन	५५	८	१०
१९	मेधावी	५२	१०	१०
२०	सोनचीर	५०	८	२१
२१	भीमदेव	४७	९	२०
२२	नृहरिदेव	४५	११	२३
२३	पूर्णमल	४४	८	७
२४	करदवी	४४	१०	८
२५	अलंमिक	५०	११	८
२६	उदयपाल	३८	९	०
२७	दुवनमल	४०	१०	२६
२८	दमात	३२	०	०
२९	भीमपाल	५८	५	८
३०	क्षेमक	४८	११	२१

राजा क्षेमक के प्रधान विश्रवा ने क्षेमक राजा को मार कर राज्य किया। पीढ़ी १४, वर्ष ५००, मास ३, दिन १७। इनका विस्तार—

संख्या	आर्य्य राजा	वर्ष	मास	दिन
१	विश्रवा	१७	३	२६
२	पुरसेनी	४२	८	२१
३	वीरसेनी	५२	१०	७
४	अनङ्गशायी	४७	८	२३
५	हरिजित्	३५	६	१७
६	परमसेनी	४४	२	२३
७	सुखपाताल	३०	२	२१
८	कद्रुत	४२	६	२४
९	सज्ज	३२	२	१४
१०	अमरचूड	२७	३	१६
११	अमीपाल	२२	११	२५
१२	दशरथ	२५	४	१२
१३	वीरसाल	३१	८	१४
१४	वीरसालसेन	४७	०	१४

राजा वीरसालसेन को वीरमहा प्रधान ने मार कर राज्य किया, वंश १६, वर्ष ४४५, मास ५, दिन ३, इनका विस्तार—

संख्या	आर्य्य राजा	वर्ष	मास	दिन
१	राजा वीरमहा	३५	१०	८
२	आजतसिंह	२७	७	१९
३	सर्वदत्त	२८	३	१०
४	भुवनपति	१५	४	१०
५	वीरसेन	२१	२	१३
६	महीपाल	४०	८	७
७	शत्रुशाल	२६	४	३

संख्या	आर्य्य राजा	वर्ष	मास	दिन
८	संघराज	१७	२	१०
६	तेजपाल	२८	११	१०
१०	माणिकचन्द	३७	७	२१
११	कामसेनी	४२	५	१०
१२	शत्रुमर्दन	८	११	१३
१३	जीवनलोक	२८	९	१७
१४	हरिराव	२६	१०	२६
१५	वीरसेन (दूसरा)	३५	२	२०
१६	आदित्यकेतु	२३	११	१३

राजा आदित्यकेतु मगध देशके राजा को "धन्धर" नामी प्रयाग के राजा ने मारकर राज्य किया वंश पीढी ९ वर्ष ३७४ मास ११ दिन २६ इनका विस्तार।

संख्या	आर्य्य राजा	वर्ष	मास	दिन
१	राजा धन्धर	४२	७	२४
२	महर्षी	४१	२	२६
३	सनरच्ची	५०	१०	१९
४	महायुद्ध	३०	३	८
५	दुरनाथ	२८	५	२५
६	जीवनराज	४५	२	५
७	रूद्रसेन	४७	४	२८
८	आरीलक	५२	१०	८
६	राजपाल	३६	०	०

१ राजा राजपाल को सामन्त 'महानपाल' ने मारकर राज्य किया पीढ़ी १ वर्ष १६ मास दिन इनका विस्तार नहीं।

संख्या	आर्य्य राजा	वर्ष	मास	दिन
१	हरिप्रेम	७	५	१६
२	गोबिन्दप्रेम	२०	७	२८
३	गोपालप्रेम	१	७	२८
४	महाबहु	६	८	२६

राजा महाबाहु राज्य छोड़ बनमें तपश्चर्या करने गये, यह बंगाल के राजा आधीसेन ने इन्द्र-प्रस्थ में आकर राज्य करना आरम्भ कर दिया पीढ़ी १२ वर्ष १५१ मास ११ दिन २ इनका विस्तार—

१	राजा आधीसेन	१८	५	२१
२	बिलावलसेन	१२	४	२
३	केशवसेन	१५	७	१५
४	माधसेन	१२	४	२
५	मयूरसेन	२०	११	२७
६	भीमसेन	५	१०	९
७	कल्याणसेन	४	८	२१
८	हरीसेन	१२	०	२५
९	क्षेमसेन	८	११	१५
१०	नारायणसेन	२	२	२९
११	लक्ष्मीसेन	२६	१०	०
१२	दामोदरसेन	११	५	१६

राजा दामोदरसेन ने अपने उमराव को बहुत दुःख दिया इसलिये, उमराव दीपसिंह ने सेना जोड़ राजा के साथ लड़ाई की उस लड़ाई में राजा को मारकर दीपसिंह

आप राज्य करने लगे पीढ़ी ६ वर्ष १०७ मास ६ दिन २२ इनका विस्तार—

संख्या	आर्य्य राजा	वर्ष	मास	दिन
१	दीपसिंह	१७	१	२६
२	राजसिंह	१४	५	०
३	रणसिंह	६	८	११
४	नरसिंह	४५	०	१५
५	हरिसिंह	१३	२	२९
६	जीवनसिंह	८	०	१

राजा जीवनसिंह ने कुछ कारण से अपनी सारी सेना उत्तर दिशा को भेजदी यह खबर सुन पृथ्वीराज चौहान बैराट् के राजा ने जीवनसिंह पर चढ़ाई की और लड़ाई में उसे मारकर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया* पीढ़ी ५ वर्ष ८६ मास दिन २० इनका विस्तार।

१	पृथ्वीराज	१२	२	१९
२	अभयपाल	१४	५	१७

* इसके आगे और इतिहासों में इस प्रकार है कि महाराज पृथ्वीराज के ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन गौरी चढ़कर आया और कई बार हार कर लौट गया अन्त को सं० १२४९ में आपसकी फूट के कारण महाराज पृथ्वीराज को जीत बन्धाकर अपने देश को लेगया पश्चात् दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) का राज्य आप करने लगा, मुसलमान ने का राज्य पीढ़ी ४५ वर्ष ६१३ रहा।

संख्या	आर्य्य राजा	वर्ष	मास	दिन
३	दुर्जनपाल	११	४	१४
४	उदयपाल	११	७	३
५	यशपाल	३६	४	२७

राजा यशपाल के ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन गौरी गढ़ गज़नी से चढ़ाई करके आया और राजा यशपाल को प्रयाग के किला में सं० १२४६ वि० में पकड़ कर कैद किया पश्चात् इन्द्रप्रस्थ का राज्य आप करने लगा पीढ़ी ५३ वर्ष ७५४ मास १ दिन १७ इनका विस्तार हिन्दुस्तान के नये इतिहासों में लिखा है इसलिए यहां नहीं लिखा। *

---

* यह वंशावली महर्षि स्वामी दयानन्दजी कृत सत्यार्थ प्रकाश नागरी चौदहवी बार के छपे से हमने उद्धृत की है।

सन्तराम वैद्य।